सत् शास्त्र-प्रकाशन—

श्रीमद्भागवत-महापुराण

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत—

[पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ टीका सहित]

सप्तम एवं अष्टम स्कन्ध

(पंचम खण्ड)

सम्पादक :
सुदर्शनसिंह 'चक्र'

प्रकाशक :
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान
मथुरा-२८१००१

श्री हित हरिवंश

वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया. अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है | इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है | पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो | इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था | सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है | सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया | तत्पश्चात पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की | अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए | पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे | तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई |

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती | हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे | इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है | नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है |

https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka

मकर संक्रांति, जनवरी 15, 2024 राधे राधे ...

॥ सप्तमः स्कन्धः ॥

सप्तमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच-

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥ १ ॥

समः प्रियः सुहृत् ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयं इन्द्रस्य अर्थे ककं दैत्यान् अवधीत् विषमः यथा ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**इन्द्रस्य अर्थे**	फिर इन्द्रके लिए
भगवान् स्वयं	भगवान् स्वभावसे ही	**यथा विषमः**	जैसे कोई भेदभाव रखनेवाला हो
भूतानां समः	सब प्राणियोंके प्रति समान,	**दैत्यान् कथं अवधीत्**	दैत्योंको क्यों मारा ॥१॥
प्रियः सुहृत्	(सबके) प्रिय और सुहृद हैं,		

न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निः श्रेयसात्मनः ।
नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥ २ ॥

न हि अस्य अर्थः सुरगणैः साक्षात् निः श्रेयस आत्मनः न एव असुरेभ्यः विद्वेषः न उद्वेगः च अगुणस्य हि ॥२॥

हि	क्योंकि	**अस्य आत्मनः**	इन परमात्माका
साक्षात्	साक्षात्	**सुरगणैः**	देवताओंसे कोई
निःश्रेयस	कल्याण स्वरूप	**अर्थः न**	प्रयोजन नहीं

च अगुणस्य हि	और इन निर्गुण-को तो	न उद्वेगः एव	न उद्वेग ही होता है ॥२॥
असुरेभ्यः	असुरोंसे		
विद्वेषः नः	शत्रुता नहीं है		

इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान् प्रति ।
संशयः सुमहाञ्जातस्तद्भवांश्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥

इति नः सुमहाभाग नारायण गुणान् प्रति संशयः सुमहान् जातः तत् भवान् छेत्तुं अर्हति ॥३॥

सुमहाभाग	परम सौभाग्यवान् प्रभु !	संशयः जातः	सन्देह उत्पन्न हो गया है
इति नः	इस प्रकारका मुझे	तत् भवान्	उसे आपको
नारायण गुणान्	नारायणके गुणोंके	छेत्तुं अर्हति	काट देना चाहिए ॥३॥
प्रति	सम्बन्धमें		
सुमहान्	बहुत बड़ा		

श्रीशुक उवाच—

साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् ।
यद् भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥ ४ ॥

साधु पृष्टं महाराज हरेः चरितं अद्भुतं यद् भागवत माहात्म्यं भगवत् भक्ति वर्धनम् ॥४॥

महाराज	महाराज !	यद् भगवत्	क्योंकि (इस प्रसङ्ग-में) भगवान्की
हरेः अद्भुतं	श्रीहरिके अद्भुत	भक्तिवर्धनं	भक्ति बढ़ानेवाला
चरितं	चरितके सम्बन्धमें	भागवत	भगवान्के भक्तोंका
साधु पृष्टं	तुमने अच्छा प्रश्न किया	माहात्म्यं	माहात्म्य आवेगा ॥४॥

गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः ।
नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥ ५ ॥

गीयते परमं पुण्यं ऋषिभिः नारद आदिभिः नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥५॥

परमं पुण्यं	(जो) परम पुण्यप्रद (माहात्म्य)	**नत्वा**	नमस्कार करके
नारद आदिभिः	देवर्षि नारद आदि	**हरेः कथां**	(यह) श्रीहरिकी कथा
ऋषिभिः गीयते	ऋषियों द्वारा वर्णित होता है ।	**कथयिष्ये**	वर्णन करूँगा ॥५॥
कृष्णाय मुनये	मुनि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजीको		

निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान् प्रकृतेः परः ।
स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥ ६ ॥

निर्गुणः अपि अजः अव्यक्तः भगवान् प्रकृतेः परः स्वमाया गुणं आविश्य बाध्य बाधकतां गतः ॥६॥

निर्गुणः अजः	निर्गुण, अजन्मा,	**आविश्य**	प्रवेश करके
अव्यक्तः	अव्यक्त	**बाध्य बाधकतां**	मरने और मारनेवाले (परस्पर विरोधी) भावको
प्रकृतेः परः	प्रकृतिसे परे		
अपि भगवान्	होनेपर भी भगवान्	**गतः**	प्राप्त होते हैं ॥६॥
स्व माया गुणं	अपनी मायाके गुणोमें		

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।
न तेषां युगपद्राजन् ह्रास उल्लास एव वा ॥ ७ ॥

सत्त्वं रजः तमः इति प्रकृतेः न आत्मनः गुणाः न तेषां युगपत् राजन् ह्रास उल्लास एव वा ॥७॥

राजन्	राजन् !
सत्त्वः रजः	सत्त्व, रज
तमः इति	तम, ये
प्रकृतेः गुणाः	प्रकृतिके गुण हैं,
आत्मनः न	आत्माके नहीं,
युगपत् तेषां	एक साथ उनका
ह्रास वा	घटना अथवा
उल्लास	बढ़ना
एव न	ही नहीं होता ॥७॥

जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् ।
तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥ ८ ॥

जयकाले तु सत्त्वस्य देवऋषीन् रजसः असुरान् तमसः यक्ष रक्षांसि तत् काल अनुगुणः अभजत् ॥८॥

सत्त्वस्य	सत्त्वगुणकी
जयकालेतु	अभिवृद्धिके समय तो
देव ऋषीन्	देवता और ऋषियोंका
रजसः	रजोगुण (बढ़ने)के समय
असुरान्	असुरोंका
तमसः	तमोगुण (वृद्धि) के समय
यक्ष रक्षांसि	यक्ष-राक्षसोंका (इस प्रकार)
तत् काल	उस समयके
अनुगुणः	गुणके अनुसार वर्गोंका
अभजत्	सेवन (पोषण) करते हैं ॥८॥

ज्योतिरादिरिवाभाति सङ्घातान्न विविच्यते ।
विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः ॥ ९ ॥

ज्योतिः आदिः इव आभाति सङ्घातात् न विविच्यते विन्दन्ति आत्मनि आत्मस्थं मथित्वा कवयः अन्ततः ॥९॥

आदिः ज्योतिः	प्रथम ज्योति अग्नि
इव आभाति	के समान (भगवान्) प्रतीत होते हैं
सङ्घातात्	(काष्ठादि) पदार्थोंसे
विविच्यते न	पृथक नहीं प्रतीत होते; किन्तु
कवयः	बुद्धिमान साधक

आत्मनि	अपने ही द्वारा	**आत्मस्थं**	अपनेमें ही स्थित
मथित्वा	मन्थन करके	**विन्दन्ति**	जान लेते हैं ॥९॥
अन्ततः	अन्ततः		

यदा सिसृक्षुः पुर आत्मनः परो
रजः सृजत्येष पृथक् स्वमायया ।
सत्त्वं विचित्रासु रिरंसुरीश्वरः
शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥१०॥

यदा सिसृक्षुः पुरं आत्मनः परः रजः सृजति एष पृथक् स्वमायया सत्त्वं विचित्रासु रिरंसुः ईश्वरः शयिष्यमाणः तमः ईरयति असौ ॥१०॥

यदा	जब	**रिरंसुः**	रमण (खेलने)की इच्छा होनेपर
परः ईश्वरः	परमेश्वर	**सत्त्वं**	सत्त्व गुण और
आत्मनः पुरः	अपने लिए पुरियां	**शयिष्यमाणः**	सो जानेकी इच्छा होनेपर
सिसृक्षुः	बनाना चाहते हैं तो	**असौ तमः**	ये तमोगुणको
स्वमायया	अपनी मायासे	**ईरयति**	प्रेरित करते हैं ॥१०॥
एष पृथक्	ये अपनेसे भिन्न		
रजः सृजति	रजोगुण उत्पन्न करते हैं		
विचित्रासु	उन विचित्र (पुरियों) में		

कालं चरन्तं सृजतीश आश्रयं
प्रधानपुम्भ्यां नरदेव सत्यकृत् ।
य एष राजन्नपि काल ईशिता
सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यतः ।
तत्प्रत्यनीकानसुरान् सुरप्रियो
रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥११॥

कालं चरन्तं सृजति ईश आश्रयं प्रधान पुम्भ्यां नरदेव सत्यकृत् स एष राजन् अपि काल ईक्षिता सत्त्वं सुर अनीकं इव ऐधयति अतः तत् प्रति अनीकान् असुरान् सुरप्रियः रजः तमस्कान् प्रमिणोति उरुश्रवाः ॥११॥

नरदेव	राजन् !	सत्त्वं	सत्त्वगुणकी (वृद्धिके समय)
स एष सत्यकृत्	वही ये सत्य संकल्प	सुर अनीकं	देवसेनाको
काल ईक्षिता	कालके दृष्टा होनेपर	ऐधयति इव	बढ़ाते हुए-से रहते हैं,
अपि	भी	अतः सुरप्रियः	इसलिए देवप्रिय
ईश	सर्व सञ्चालक	तत् प्रति	उनके
कालं चरन्तं	कालके अनुसार व्यवहार करते हुए	अनीकान्	विरोधी
प्रधान पुम्भ्यां	प्रकृति और जीवके द्वारा	रजः तमस्कान्	रजोगुणी-तमोगुणी
आश्रयं	सबके आश्रय जगत-की	असुरान्	असुरोंको
सृजति	सृष्टि करते हैं।	उरुश्रवाः	ये अपार यश
राजन्	राजन् !	प्रमिणोति	मारते हैं ॥११॥

अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुर्षिणा ।
प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छतेऽजातशत्रवे ॥१२॥

अत्र एव उदाहृतः पूर्वं इतिहासः सुर्षिणा प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छते अजातशत्रवे ॥१२॥

पूर्वं अत्र एव	पहिले इसी सम्बन्ध-में	पृच्छते	पूछनेपर
महाक्रतौ	महायज्ञ (राजसूय) के समय	प्रीत्या	प्रसन्न होकर
अजातशत्रवे	अजातशत्रु (युधि-ष्ठिर) के	सुर्षिणा	देवर्षि नारदने
		इतिहासः	इस इतिहासका
		उदाहृतः	उदाहरण दिया था ॥१२॥

दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ ।
वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥१३॥

दृष्ट्वा महा अद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥१३॥

महाक्रतौ	महायज्ञ	**महा अद्भुतं**	यह अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना
राजसूये	राजसूयके समय	**दृष्ट्वा**	देखकर
चेदिभूभुजः	चेदि देशकेराजा शिशुपालका	**राजा**	राजा युधिष्ठिरने (पूछा था) ॥१३॥
भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें		
सायुज्यं	लीन हो जाना		

तत्रासीनं सुरऋषिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ ।
पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ॥१४॥

तत्र आसीनं सुरऋषिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ पप्रच्छ विस्मित मना मुनीनां शृण्वतां इदम् ॥१४॥

क्रतौ तत्र	यज्ञमें वहीं	**राजा पाण्डुसुतः**	राजा पाण्डुनन्दनने
आसीनं	बैठे	**मुनीनां शृण्वतां**	मुनियोंके सुनते हुए
सुरऋषिं	देवर्षि नारदसे	**इदं पप्रच्छ**	यह पूछा ॥१४॥
विस्मित मना	आश्चर्यचकित चित्त		

युधिष्ठिर उवाच–

अहो अत्युद्भुतं ह्येतद्दुर्लभैकान्तिनामपि ।
वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥१५॥

अहो अति अद्भुतं हि एतत् दुर्लभ एकान्तिनां अपि वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिः चैद्यस्य विद्विषः ॥१५॥

हि	क्योंकि	**परे तत्त्वे**	परमतत्त्व
एकान्तिनां अपि	अनन्य भक्तोंके लिए भी	**वासुदेवे**	वासुदेवमें
दुर्लभ	दुर्लभ	**विद्विषः**	उनसे द्वेष करनेवाले

चैद्यस्य प्राप्तिः	शिशुपालका मिल जाना	अति अद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत घटना है ॥१५॥
अहो एतत्	अहो यह तो		

एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने ।
भगवन्निन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥१६॥

एतत् वेदितुं इच्छामः सर्व एव वयं मुने भगवत् निन्दया वेनः द्विजैः तमसि पातितः ॥१६॥

मुने	महामुनि !	भगवत् निन्दया	भगवान्‌की निन्दा करनेसे
वयं सर्व एव	हम सभी	द्विजैः वेनः	ब्राह्मणों द्वारा वेन-को
एतत् वेदितुं	इस (रहस्य) को जानना	तमसि पातितः	नरकमें गिरा दिया गया था ॥१६॥
इच्छामः	चाहते हैं,		
(पुरा)	पहिले		

दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात् ।
सम्प्रत्यमर्षी गोविन्दे दन्तवक्त्रश्च दुर्मतिः ॥१७॥

दमघोषसुतः पापः आरभ्य कल भाषणात् सम्प्रति अमर्षी गोविन्दे दन्तवक्त्रः च दुर्मतिः ॥१७॥

पापः	पापी	कल भाषणात्	तुतलाकर बोलनेसे
दमघोषसुतः	दमघोषका पुत्र शिशुपाल	आरभ्य	लेकर
च दुर्मतिः	और दुर्बुद्धि	सम्प्रति	अब तक
दन्तवक्त्रः	दन्तवक्त्र	गोविन्दे अमर्षी	श्रीकृष्णसे द्वेष करते रहे ॥१८॥

शपतोरसकृद्विष्णुं यद्ब्रह्म परमव्ययम् ।
श्वित्रो न जातो जिह्वायां नान्धं विविशतुस्तमः ॥१८॥

शपतोः असकृत् विष्णुं यत् ब्रह्म परम् अव्ययं श्वित्रः न जातः जिह्वायां न अन्धं विवशतुः तमः ॥१८॥

यत् ब्रह्म परम्	जो परम ब्रह्म
अव्ययं	अविनाशी
विष्णुं	श्रीकृष्णको
असकृत शपतोः	बराबर गाली देते रहनेपर भी
जिह्वायां	(इनकी) जीभमें
श्वित्रः न जातः	कोढ़ नहीं हो गया
न अन्धं तमः	न घोर नरकमें
विवशुतुः	गये ॥१८॥

कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राहधामनि ।
पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरञ्जसा ॥१९॥

कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राह धामनि पश्यतां सर्वलोकानां लयं इयतुः अञ्जसा ॥१९॥

दुरवग्राह	कठिनाईसे जिनका
धामनि	धाम मिलता है
तस्मिन् भगवति	उन भगवान्‌में
कथं अञ्जसा	कैसे अनायास
लयं इयतुः	लीन हो गये ॥१९॥

एतद् भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना ।
ब्रूह्येतद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥२०॥

एतद् भ्राम्यति मे बुद्धिः दीप अर्चिः इव वायुना ब्रूहि एतत् अद्भुत तमं भगवान् तत्र कारणम् ॥२०॥

एतद्	इस विषयमें
मे बुद्धिः	मेरी बुद्धि
वायुना	वायुसे
दीप अर्चिः इव	दीपककी लौके समान
भ्राम्यति	लड़खड़ा रही है
भगवान्	भगवान् !
एतत्	यह तो
अद्भुत तमं	बहुत अद्भुत है
तत्र कारणं	इसका कारण
ब्रूहि	बतलाइये ॥२०॥

श्रीशुक उवाच–

राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः ।
तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वत्यास्तत्सदः कथाः ॥२१॥

राज्ञः तत् वचः आकर्ण्य नारदः भगवान् ऋषिः तुष्टः प्राह तं आभाष्य शृण्वत्याः तत् सदः कथाः ॥२१॥

तत् राज्ञःवचः	वह राजाकी बात	**तत् सदः**	उस सभाके सदस्योंके
आकर्ण्य	सुनकर	**शृण्वत्याः**	सुनते हुए
भगवान्	भगवान्,	**कथाः प्राह**	यह कथा सुनायी ॥२१॥
ऋषिः नारदः	देवर्षि नारदने		
तुष्टः	प्रसन्न होकर		
तं आभाष्य	उनको सम्बोधित करके		

नारद उवाच–

निन्दनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम् ।
प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पिताम् ॥२२॥

निन्दनस्तव सत्कार न्यक्कार अर्थं कलेवरं प्रधान परयोः राजन् अविवेकेन कल्पिताम् ॥२२॥

राजन्	राजन् !	**प्रधान परयोः**	प्रकृति और जीवका (संयोग रूप शरीर)
निन्दनस्तव	निन्दा-स्तुति,	**अविवेकेन**	अज्ञान द्वारा
सत्कार	सत्कार-	**कल्पिताम्**	कल्पित है ॥२२॥
न्यक्कार	तिरस्कार		
कलेवरं अर्थं	शरीरके लिए ही होता है ।		

हिंसा तदभिमानेन दण्डपारुष्ययोर्यथा ।
वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥२३॥

हिंसा तत् अभिमानेन दण्ड पारुष्ययोः यथा वैषम्यं इह भूतानां मम अहं इति पार्थिव ॥२३॥

पार्थिव	राजन् !	वैषम्यं	भेदभाव आता है।
तत् अभिमानेन	उस (शरीर) को मैं माननेसे	यथा दण्ड	जैसे (शरीरको) ताड़नासे
अहं मम इति	'मैं मेरा' इस प्रकार	पारुष्ययोः	(तथा) कठोर वचनोंसे
इह भूतानां	इस शरीरके कारण प्राणियोंमें	हिंसा	पीड़ा होती है ॥२३॥

यन्निबद्धोऽभिमानोऽयं तद्वधात्प्राणिनां वधः।
तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः।
परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥२४॥

यत् निबद्धः अभिमानः अयं तत् वधात् प्राणिनां वधः तथा न यस्य कैवल्यात् अभिमानः अखिल आत्मनः परस्य दमकर्तुः हि हिंसा केन अस्य कल्प्यते ॥२४॥

अयं अभिमानः	यह अभिमान	यस्य कैवल्यात्	जो अद्वितीय है
यत् निबद्धः	जिसमें दृढ़ बँधा है,	न	उसमें नहीं है
तत् वधात्	उसके बधसे	हि	क्योंकि वे
प्राणिनां वधः	प्राणियोंका बध होता है।	दमकर्तुः	सर्वशासक
तथा	वैसा	परस्य	सबसे परे हैं,
अखिल आत्मनः	सर्वात्माका	अस्य केन	इनकी किस प्रकार
अभिमानः	अभिमान	हिंसा कल्प्यते	हिंसाकी कल्पना होगी ॥२४॥

तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा ।
स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात् कथञ्चिन्नेक्षते पृथक् ॥२५॥

तस्मात् वैर अनुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा स्नेहात् कामेन वा युञ्ज्यात् कथञ्चित् न ईक्षते पृथक् ॥२५॥

तस्मात्	इसलिए
वैर अनुबन्धेन	सुदृढ़ बैर भावसे,
निर्वैरण	बिना बैरके
वा भयेन	अथवा भयसे,
वा कामेन	या कामनासे
युञ्ज्यात्	(भगवान्‌में) मन लगा दे,
कथञ्चित्	किसी भी प्रकार लगानेपर
पृथक् न ईक्षते	(वे) इनमें भेद नहीं देखते ॥२५॥

यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात् ।
न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥२६॥

यथा वैर अनुबन्धेन मर्त्यः तन्मयतां इयात् न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥२६॥

इति मे	ऐसा मेरा
निश्चिता मतिः	निश्चित मत है कि
मर्त्यः यथा	मनुष्य जैसे
वैर अनुबन्धेन	दृढ़ बैरभावसे
तन्मयतां इयात्	तन्मयता प्राप्त करता है
तथा	वैसा
भक्तियोगेन न	भक्तिभावसे नहीं ॥२६॥

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन् ।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्सरूपताम् ॥२७॥

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तं अनुस्मरन् संरम्भ भययोगेन विन्दते तत् सरूपताम् ॥२७॥

पेशस्कृता	भृंगी द्वारा
कुड्यायां	मिट्टीके नन्हें घोंसलेमें
रुद्धः कीटः	बन्द किया गया कीड़ा
संरम्भ	उद्वेग तथा
भययोगेन	भयसे

तं अनुस्मरन्	उस (भृंगी) का स्मरण करता	विन्दते	प्राप्त कर लेता है ॥२७॥*
तत् सरूपतां	उसका स्वरूप		

एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे ।
वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया ॥२८॥

एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे वैरेण पूत पाप्मानः तं आपुः अनुचिन्तया ॥२८॥

एवं	इसी प्रकार	अनुचिन्तया	बार-बार उनका चिन्तन करनेसे
मायामनुज	मायासे मनुष्य बने		
ईश्वरे	परमेश्वर	पूत पाप्मानः	पापोंसे पवित्र होकर
भगवति कृष्णे	भगवान् श्रीकृष्णसे	तं आपुः	उन्हें प्राप्त कर लिया ॥२८॥
वैरेण	शत्रुता करके		

कामाद् द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः ।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥२९॥

कामात् द्वेषात् भयात् स्नेहात् यथा भक्त्या ईश्वरे मनः आवेश्य तत् अघं हित्वा बहवः तत् गतिं गताः ॥२९॥

कामात् द्वेषात्	कामनासे, द्वेषसे,	तत् अघं	उसे (द्वेषादि) के पापको
भयात् स्नेहात्	भयसे, स्नेहसे,		
यथा भक्त्या	जैसे भक्तिसे	हित्वा	त्यागकर (नष्ट करके)
ईश्वरे मनः	परमेश्वरमें मन		
आवेश्य	लगाकर		

---

* यह कवि-सत्य है। वस्तुतः कीड़ा भृंगी नहीं बनता। भृंगी हल्का डंक मारकर कीड़ेको मूर्छितप्राय करके उसके शरीरपर अंडा देकर उसे बन्द कर देता है। फिर अंडेसे उत्पन्न भृंगी-शिशु कीड़ेको खाकर बाहर निकलता है।

बहवः तत् गतिं	बहुत लोग उन (ईश्वर) के	गतिं गताः	स्वरूपको प्राप्त हुए हैं ॥२९॥

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥३०॥

गोप्यः कामात् भयात् कंसः द्वेषात् चैद्य आदयः नृपाः सम्बन्धात् वृष्णयः स्नेहात् यूयं भक्त्या वयं विभो ॥३०॥

विभो	राजन् !	सम्बन्धात्	सम्बन्धसे,
गोप्यः कामात्	गोपियाँ कामसे	यूयं स्नेहात्	तुम लोग स्नेहसे,
कंसः भयात्	कंस भयसे	वयं भक्त्या	हम (भजन करने-वाले) भक्तिसे (उन्हें पाते हैं) ॥३०॥
चैद्य आदयः	शिशुपाल आदि		
नृपाः द्वेषात्	राजा लोग द्वेषसे,		
वृष्णयः	यदुवंशी		

कतमोऽपि न वेनः स्यात्पञ्चानां पुरुषं प्रति ।
तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥३१॥

कतमः अपि न वेनः स्यात् पञ्चानां पुरुषं प्रति तस्मात् केन अपि उपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥३१॥

पुरुषं प्रति	परम पुरुषके प्रति	न स्यात्	नहीं था,
पञ्चानां	(भक्तिके अतिरिक्त) पाँचों प्रकारसे (मन लगाने वालों)	तस्मात्	इसलिए
		केन अपि	किसी भी
		उपायेन मनः	उपायसे मन
वेनः कतमः	वेन कोई	कृष्णे निवेशयेत्	श्रीकृष्णमें लगावे ॥३१॥
अपि	भी		

मातृष्वसेयो वश्चैद्यो दन्तवक्त्रश्च पाण्डव ।
पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात्पदाच्च्युतौ ॥३२॥

मातृ स्वस्रेयः वः चैद्यः दन्तवक्त्रः च पाण्डव पार्षद प्रवरौ विष्णोः विप्रशापात् पदात् च्युतौ ॥३२॥

पाण्डव	युधिष्ठिर !	**पदात् च्युतौ**	अपने स्थानसे गिरे
वः मातृष्वसेयः	तुम्हारी मौसीके पुत्र	**विष्णोः**	भगवान् विष्णुके
चैद्यः च दन्त	शिशुपाल और दन्त-	**पार्षदप्रवरौ**	श्रेष्ठ पार्षद थे ॥३२॥
वक्त्रः	वक्त्र		
विप्र शापात्	ब्राह्मणोंके शापसे		

युधिष्ठिर उवाच–

कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः ।
अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकान्तिनां भवः ॥३३॥

कीदृशः कस्य वा शापः हरिदास अभिमर्शनः अश्रद्धेय इव आभाति हरेः एकान्तिनां भवः ॥३३॥

हरिदास	भगवान्के भक्तोंको भी	**भवः**	संसारमें जन्म
अभिमर्शनः	प्रभावित करनेवाला	**अश्रद्धेय इव**	विश्वास न करने जैसा
शापः कीदृशः	शाप कैसा था	**आभाति**	लगता है ॥३३॥
वा कस्य	अथवा किसका था ?		
हरेः एकान्तिनां	श्रीहरिके अनन्य भक्तोंका		

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ।
देहसम्बन्धसम्बद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥३४॥

देह इन्द्रिय असु हीनानां वैकुण्ठपुर वासिनां देह सम्बन्ध सम्बद्धं एतत् आख्यातुं अर्हसि ॥३४॥

देह इन्द्रिय असु हीनानां	शरीर, इन्द्रिय, प्राण रहित(चिद्वपु)	**सम्बन्ध सम्बद्धं**	सम्बन्ध करके बँध जाना
वैकुण्ठपुर वासिनां	वैकुण्ठपुरीमें रहने वालोंका	**आख्यातुं अर्हसि**	(आपको) बतलाना चाहिए ॥३४॥
एतत् देह	यह शरीरसे		

नारद उवाच–

एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ।
सनन्दनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयम् ॥३५॥

एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोः लोकं यदृच्छया सनन्दन आदयः जग्मुः चरन्तः भुवनत्रयम् ॥३५॥

एकदा	एक बार	**चरन्तः**	घूमते हुए
ब्रह्मणः पुत्रा	ब्रह्माजीके पुत्र	**यदृच्छया**	अकस्मात्
सनन्दन आदयः	सनन्द आदि	**विष्णोः लोकं**	विष्णुलोक (वैकुण्ठ)
भुवनत्रयं	तीनों लोकोंमें	**जग्मुः**	पहुँच गये ॥३५॥

पञ्चषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ।
दिग्वाससः शिशून् मत्वा द्वाः स्थौ तान् प्रत्यषेधताम् ॥३६॥

पञ्च षट् हायन अर्भ आभाः पूर्वेषां अपि पूर्वजाः दिग्वाससः शिशून् मत्वा द्वाः स्थौ तान् प्रत्यषेधताम् ॥३६॥

पञ्च	पाँच	**पूर्वजाः**	पूर्वज
षट् हायन	छः वर्षके	**दिग्वाससः तान्**	दिगम्बर उनको
अर्भ आभाः	बालक-सी आयुकेसे लगते; पर	**शिशून् मत्वा**	शिशु मानकर
		द्वाः स्थौ	द्वारपालोंने
पूर्वेषां अपि	प्राचीनोंके भी	**प्रत्यषेधताम्**	रोक दिया ॥३६॥

अशपन् कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः ।
रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ।
पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥३७॥

अशपन् कुपिता एवं युवां वासं न च अर्हथः रजः तमः भ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः पापिष्ठां आसुरीं योनिं बालिशौ यातं आशु अतः ॥३७॥

एवं	इस प्रकार (रोकने से)	**पादमूले**	चरणोंके समीप
कुपिता	क्रोधित होकर	**युवां वासं**	तुम दोनों रहने
अशपन्	(उन्होंने) शाप दिया	**अर्हथः न च**	योग्य नहीं ही हो,
रजः तमः भ्यां	रजोगुण तमोगुणसे	**अतः बालिशौ**	अतः मूर्खो
रहिते मधुद्विषः	रहित भगवान् मधुसूदनके	**पापिष्ठां**	पापमयी
		आसुरीं योनिं	आसुरी-योनिमें
		आशु यातं	शीघ्र जाओ ॥३७॥

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः ।
प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥३८॥

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः प्रोक्तौ पुनः जन्मभिः वां त्रिभिः लोकाय कल्पताम् ॥३८॥

एवं शप्तौ	इस प्रकार शाप पाकर	**प्रोक्तौ**	कहा—
स्वभवनात्	अपने धामसे	**वां पुनः**	'तुम दोनों फिर
पतन्तौ	गिरते हुए उनसे	**त्रिभिः जन्मभिः**	तीन जन्म लेकर
तैः कृपालुभिः	उन कृपालुओंने	**लोकाय कल्पतां**	इस लोकमें आ जाना ।' ॥३८॥

जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ ।
हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥३९॥

जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्य दानव वन्दितौ हिरण्यकशिपुः ज्येष्ठः हिरण्याक्षः अनुजः ततः ॥३९॥

तौ दितेः	वे दोनों दितिके	**हिरण्यकशिपुः**	हिरण्यकशिपु
पुत्रौ जज्ञाते	पुत्र होकर उत्पन्न हुए ।	**ज्येष्ठः**	बड़ा था
दैत्य दानव	दैत्य-दानवोंसे	**ततः अनुजः**	उसका छोटा भाई
वन्दितौ	वन्दित उनमें	**हिरण्याक्षः**	हिरण्याक्ष था ॥३९॥

हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा ।
हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥४०॥

हतः हिरण्यकशिपुः हरिणा सिंह रूपिणा हिरण्याक्षः धरा उद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥४०॥

हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपु	**बिभ्रता**	धारण करके
सिंह रूपिणा	नृसिंह रूपधारी और	**हिरण्याक्षः**	हिरण्याक्षको
धरा उद्धारे	पृथ्वीके उद्धारके समय	**हरिणा हतः**	श्रीहरिने मार दिया ॥४०॥
सौकरं वपुः	वाराह शरीर		

हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम् ।
जिघांसुरकरोन्नाना यातना मृत्युहेतवे ॥४१॥

हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियं जिघांसुः अकरोत् नाना यातना मृत्युहेतवे ॥४१॥

हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपुने	**मृत्युहेतवे**	उसकी मृत्युके लिए
केशवप्रियं	भगवान् केशवके प्रिय	**नाना यातना**	अनेक प्रकारसे पीड़ाएँ
पुत्रं प्रह्लादं	अपने पुत्र प्रह्लादको	**अकरोत्**	दीं ॥४१॥
जिघांसुः	मार देनेकी इच्छासे		

सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशान्तं समदर्शनम् ।
भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धन्तुमुद्यमैः ॥४२॥

सर्वभूत आत्मभूतं तं प्रशान्तं समदर्शनं भगवत् तेजसा स्पृष्टं न अशक्नोत् हन्तुं उद्यमैः ॥४२॥

सर्वभूत आत्मभूतं	सब प्राणियोंके आत्मा भगवान्‌के बने,	**प्रशान्तं समदर्शनं**	अत्यन्त शान्त समदर्शी
		भगवत् तेजसा	भगवान्‌के तेजसे

स्पृष्टं तं	सुरक्षित उन (प्रह्लाद)को	हन्तु	मारनेमें
		न अशक्नोत्	समर्थ नहीं हुआ ॥४२॥
उद्यमैः	अपने प्रयत्नोंसे		

ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवः सुतौ ।
रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥४३॥

ततः तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवः सुतौ रावणः कुम्भकर्णः च सर्वलोक उपतापनौ ॥४३॥

ततः तौ	फिर वे दोनों	रावणः च	रावण और
केशिन्यां	केशिनीसे	कुम्भकर्णः	कुम्भकर्ण
विश्रवः सुतौ	विश्रवाके पुत्ररूपमें	राक्षसौ जातौ	राक्षस उत्पन्न हुए ॥४३॥
सर्वलोक	सब लोकोंको		
उपतापनौ	सन्ताप देनेवाले		

तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये ।
रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेयमुखात् प्रभो ॥४४॥

तत्र अपि राघवः भूत्वा न्यहनत् शाप मुक्तये रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेय मुखात् प्रभो ॥४४॥

प्रभो	राजन् !	न्यहनत्	मारा ।
तत्र अपि	उस जन्ममें भी	त्वं	तुम
शाप मुक्तये	(इनको) शापसे मुक्त करनेके लिए	मार्कण्डेय	मार्कण्डेय मुनिके
		मुखात्	मुखसे
राघवः भूत्वा	भगवान्ने रामावतार लेकर	रामवीर्यं	श्रीरामका पराक्रम
		श्रोष्यसि	(आगे) सुनोगे ॥४४॥

तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव ।
अधुनां शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥४५॥

ताः एव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्त्र आत्मजौ तव अधुना शाप निर्मुक्तौ कृष्णचक्र हत अहंसौ ॥४५॥

ताः एव	वही दोनों	**अधुना**	इस बार
तव मातृष्वस्त्र	तुम्हारी मौसीके	**कृष्णचक्र**	श्रीकृष्णके चक्रसे
आत्मजौ	पुत्र	**हत अहंसौ**	मारे जाकर निष्पाप
क्षत्रियौ जातौ	क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए थे,	**शाप निर्मुक्तौ**	और शापसे छूट गये ॥४५॥

वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् ।
नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥४६॥

वैर अनुबन्ध तीव्रेण ध्यानेन अच्युत सात्मतां नीतौ पुनः हरेः पार्श्वं जग्मतुः विष्णुपार्षदौ ॥४६॥

वैर अनुबन्ध	वैर-भावके कारण	**पुनः हरेः**	फिर श्रीहरिके
तीव्रेण ध्यानेन	तीव्र ध्यानसे	**पार्श्वं जग्मतुः**	समीप चले गये ॥४६॥
अच्युत सात्मतां	भगवन्मय चित्त होकर		
विष्णुपार्षदौ	वे भगवान् विष्णुके पार्षद		

युधिष्ठिर उवाच–

विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ।
ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ॥४७॥

विद्वेषः दयिते पुत्रे कथं आसीत् महात्मनि ब्रूहि मे भगवन् येन प्रह्लादस्य अच्युत आत्मता ॥४७॥

भगवन्	भगवन् !	**पुत्रे कथं**	पुत्रसे कैसे
दयिते महात्मनि	प्यारे और महात्मा	**विद्वेष आसीत्**	द्वेष हो गया ?

येन प्रह्लादस्य	जिस कारणसे प्रह्लादका	मे ब्रूहि	(वह भी) मुझे बतलाइये ॥४७॥
अच्युत आत्मता	चित्त भगवान् अच्युतमें लग गया		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संहितायां सप्तस्कन्धे प्रह्लादचरितोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच—

भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना।
हिरण्यकशिपू राजन् पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ १ ॥

भ्रातरि एवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना हिरण्यकशिपू राजन् पर्यतप्यत रुषा शुचा ॥१॥

राजन्	राजन् !	विनिहते	मारे जानेपर
क्रोडमूर्तिना	वाराह रूपधारी	हिरण्यकशिपू	हिरण्यकशिपु
हरिणा	श्रीहरिके द्वारा	रुषा शुचा	क्रोध और शोकसे
एवं भ्रातरि	इस प्रकार भाईके	पर्यतप्यत	संतप्त हो उठे ॥१॥

आह चेदं रुषा घूर्णः सन्दष्टदशनच्छदः ।
कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन् धूम्रमम्बरम् ॥ २ ॥

आह च इदं रुषा घूर्णः सन्दष्ट दशनच्छदः कोप उज्ज्वलत् भ्यां चक्षुः भ्यां निरीक्षन् धूम्रं अम्बरम् ॥२॥

सन्दष्ट	ओष्ठको	चक्षुः भ्यां	नेत्रोंसे
दशनच्छदः	दांतोंसे काटता	धूम्रं अम्बरं	धुंधले दीखते आकाशको
रुषा घूर्णः	रोषसे घूमते	निरीक्षन्	घूरता हुआ
कोप	क्रोधसे	इदं च आह	यही बोला ॥२॥
उज्ज्वलत् भ्यां	जलते		

करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः ।
शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

कराल दंष्ट्रा उग्र दृष्टचा दुष्प्रेक्ष्य भ्रुकुटी मुखः शूलं उद्यम्य सदसि दानवान् इदं अब्रवीत् ॥३॥

कराल दंष्ट्रा	भयानक दाढ़ों,	सदसि	सभामें
उग्र दृष्टचा	उग्र दृष्टिसे उसकी	शूलं उद्यम्य	भाला उठाकर
भ्रुकुटी मुखः	भौंहों और मुखकी ओर	दानवान्	दानवोंसे
दुष्प्रेक्ष्य	देखा नहीं जाता था,	इदं अब्रवीत्	यह बोला ॥३॥

हिरण्यकशिपुरुवाच—*

भो भो दानवदैतेया द्विमूर्धंस्त्र्यक्ष शम्बर ।
शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥ ४ ॥

भो भो दानव दैतेया द्विमूर्धः त्र्यक्ष शम्बर शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥४॥

भो भो	हे !	शम्बर शतबाहो	शम्बर, शतबाहु,
दानव दैतेया	दानवो ! दैत्यो !	हयग्रीव नमुचे	हयग्रीय, नमुचि,
द्विमूर्धः त्र्यक्ष	द्विमूर्धा, त्र्यक्ष,	पाक इल्वल	पाक, इल्वल ॥४॥

विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनादयः ।
शृणुतानन्तरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरम् ॥ ५ ॥

विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनि आदयः शृणुत अनन्तरं सर्वे क्रियतां आशु मा चिरम् ॥५॥

विप्रचित्ते	विप्रचित्ति,	आशु क्रियतां	उसका शीघ्र पालन करो
पुलोमन्	पुलोमा,	मा चिरं	विलम्ब मत करो ॥५॥
शकुनि आदयः	शकुनि आदि		
मम वचः शृणुत	मेरी आज्ञा सुनो,		
अनन्तरं सर्वे	बादमें सबलोग		

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत् ।
पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः ॥ ६ ॥

सपत्नैः घातितः क्षुद्रैः भ्राता मे दयितः सुहृत् पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेन अपि उपधावनैः ॥६॥

क्षुद्रैः सपत्नैः	क्षुद्र शत्रुओंने	पार्ष्णिग्राहेण	अपने पक्षमें करके
समेन अपि	(देव-असुर दोनोंके प्रति) समान होने-पर भी	हरिणा	विष्णुके द्वारा
		मे दयितः	मेरे प्यारे
		सुहृत् भ्राता	हितैषी भाईको
उपधावनैः	दौड़ धूप करके	घातितः	मरवा दिया ॥६॥

तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः ।
भजन्तं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मन ॥ ७ ॥

तस्य त्यक्त स्वभावस्य घृणेः माया वनौकसः भजन्तं भजमानस्य बालस्य इव अस्थिर आत्मनः ॥७॥

स्वभावस्य	अपने स्वाभाव (निष्पक्षता) को	अस्थिर	चञ्चल
		आत्मनः	चित्त
त्यक्त	त्याग करके	तस्य माया	उस मायासे
बालस्य इव	बालकके समान	वनौकसः घृणेः	जंगली सुअर बने ॥७॥
भजन्तं	पक्षधर होनेवाले		
भजमानस्य	सेवा करनेवालोंका		

मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै ।
रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥ ८ ॥

मत् शूल भिन्न ग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥८॥

मत् शूल	मेरे भालेसे	वै भूरिणा	निश्चय बहुत
भिन्न ग्रीवस्य	फटे गले वालेके	रुधिरेण	रक्तसे

रुधिरप्रियं	रक्तप्रेमी	गतव्यथः	तब (मेरी) पीड़ा
मे भ्रातरं	अपने भाईका		जायगी ॥८॥
तर्पयिष्ये	तर्पण करूँगा		

तस्मिन् कूटेऽहिते नष्टे कृत्तमूले ननस्पतौ ।
विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥ ९ ॥

तस्मिन् कूटे अहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥९॥

तस्मिन् कूटे	उस मायावी	दिवौकसः	देवता
अहिते नष्टे	शत्रुके नष्ट हो जाने-	शुष्यन्ति	सूख जायेंगे
	पर	विष्णुप्राणा	(क्योंकि) उनका
वनस्पतौ	वृक्षकी		प्राण विष्णु ही है
कृत्तमूले	जड़कट जानेपर		॥९॥
विटपा इव	डालियोंके समान		

तावद्यात भुवं यूयं विप्रक्षत्रसमेधिताम् ।
सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥१०॥

तावत् यात भुवं यूयं विप्रक्षत्र समेधितां सूदयध्वं तपः यज्ञ स्वाध्याय व्रत दानिनः ॥१०॥

तावत् यूयं	तब तक तुम लोग	तपः यज्ञ	तपस्या, यज्ञ,
विप्रक्षत्र	ब्राह्मणक्षत्रियोंसे	स्वाध्वाय	वेदाध्ययन,
समेधितां	समृद्ध हुई	व्रत दानिनः	व्रत और दान करने
भुवं यात	पृथ्वीपर जाओ		वालोंको
	(वहां)	सूदयध्वं	मार डालो ॥१०॥

विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान् ।
देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥११॥

विष्णुः द्विज क्रिया मूलः यज्ञः धर्ममयः पुमान् देव ऋषि पितृ भूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥११॥

विष्णुः मूलः	विष्णुकी जड़ हैं	**देव ऋषि**	देवता, ऋषि,
द्विज क्रिया	ब्राह्मणोंके कर्म (क्योंकि)	**पितृ भूतानां**	पितर, सब प्राणी,
		च धर्मस्य	और धर्मका भी
पुमान्	महापुरुष	**परायणं**	(यही) आश्रय है ॥११॥
यज्ञः धर्ममयः	यज्ञ और धर्मस्वरूप है।		

यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः ।
तं तं जनपदं यात सन्दीपयत वृश्चत ॥१२॥

यत्र यत्र द्विजा गावः वेदा वर्ण आश्रमाः क्रियाः तं तं जनपदं यात सन्दीपयत वृश्चत ॥१२॥

यत्र यत्र	जहां-जहां	**क्रियाः**	कर्म होते हैं
द्विजा गावः	ब्राह्मण, गायें,	**तं तं जनपदं**	उन-उन बस्तियोंमें
वेदा	वेद	**यात सन्दीपयत**	जाकर उनको जलादो या
वर्ण आश्रमाः	वर्ण-आश्रमके अनुसार	**वृश्चत**	उजाड़ दो ॥१२॥

श्रीशुक उवाच—*

इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसाऽऽहृताः ।
तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥१३॥

इति ते भर्तृ निर्देशं आदाय शिरसा आहृताः तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥१३॥

ते कदन प्रियाः	वे विनाश प्रिय (असुर)	**इति भर्तृ निर्देशं आहृताः**	इस प्रकार स्वामीकी आज्ञाको आदरपूर्वक

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

शिरसा आदाय	सिर झुकाकर स्वीकार करके	कदनं विदधुः	नाश करने लगे ॥१३॥
तथा प्रजानां	उसी प्रकार प्रजाका		

पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् ।
खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च ॥१४॥

पुर ग्राम व्रज उद्यान क्षेत्र आरामआश्रम आकरान् खेट खर्वट घोषान् च ददहुः पत्तनानि च ॥१४॥

पुर ग्राम	कस्बे, गाँव,	खेट खर्वट	खेड़े (छोटे पुरवे), खेतोंपर के झोंपड़े,
व्रज उद्यान	चलती-फिरती बस्तियां, बगीचे,	च घोषान्	और पशुपालकोंके गाँव,
क्षेत्र आराम	तीर्थस्थान, फुलवारी,	च पत्तनानि	तथा नगरोंको
आश्रम	आश्रम,	ददहुः	जला डाला ॥१४॥
आकरान्	खदान,		

केचित्खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान् ।
आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान् केचित्परशुपाणयः ।
प्रादहञ् शरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥१५॥

केचित् खनित्रैः बिभिदुः सेतु प्राकार गोपुरान् आजीव्यान् चिच्छिदुः वृक्षान् केचित् परशु पाणयः प्रादहन् शरणान् अन्ये प्रजानां ज्वलित उल्मुकैः ॥१५॥

केचित् खनित्रैः	कुछने खोदनेके शस्त्रोंसे	परशु पाणयः	हाथमें कुल्हाड़े लिए (दैत्यों)ने
सेतु प्राकार गोपुरान्	पुल, चहार दीवारी, नगर-द्वार	आजीव्यान्	जीविका देनेवाले
बिभिदुः	तोड़ दिये,	वृक्षान्	वृक्षोंको
केचित्	कुछ	चिच्छिदुः	काट दिया,

अन्ये ज्वलित उल्मुकैः	दूसरोंने जलती लकड़ियोंसे	प्रजानां शरणान् प्रादहन्	प्रजाके घरोंको जला दिया ॥१५॥

एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्रानुचरैर्मुहुः ।
दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥१६॥

एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्र अनुचरैः मुहुः दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुः अलक्षिताः ॥१६॥

एवं	इस प्रकार	देवाः दिवं	देवता स्वर्ग
दैत्येन्द्र अनुचरैः	दैत्यराजके अनुयायियों द्वारा	परित्यज्य	छोड़कर
		अलक्षिताः	छिपकर
मुहुः लोके	बार-बार लोगोंको	भुवि चेरुः	पृथ्वीपर विचरण करने लगे ॥१६॥
विप्रकृते	उत्पीड़ित करनेपर		

हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः सम्परेतस्य दुःखितः ।
कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसान्त्वयत् ॥१७॥

हिरण्यकशिपुः भ्रातुः सम्परेतस्य दुःखितः कृत्वा कट उदक आदीनि भ्रातृपुत्रान् असान्त्वयत् ॥१७॥

दुःखितः	दुखित	आदीनि	अन्त्येष्टि क्रिया
हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपुने	कृत्वा	करके
सम्परेतस्य	मेरे	भ्रातृपुत्रान्	भतीजोंको
भ्रातुः	भाईको	असान्त्वयत्	सान्त्वना देने लगा ॥१७॥
कट उदक	जलांजलि देना आदि		

शकुनिं शम्बरं धृष्टं भूतसन्तापनं वृकम् ।
कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचम् ॥१८॥

शकुनिं, शम्बरं, धृष्टं, भूतसन्तापनं, वृकं, कालनाभं, महानाभं, हरिश्मश्रुं, अथ उत्कचं ॥१८॥ (ये हिरण्याक्षके पुत्रोंके नाम हैं ।)

तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा ।
श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वर ॥१९॥

तत् मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदं आह जनेश्वरः ॥१९॥

तत् मातरं	उनकी माता	देशकालज्ञ	देशकालके अनुसार
रुषाभानुं	रुषाभानुको,	श्लक्ष्णया गिरा	मधुर वाणीसे
च जननीं दितिं	और अपनी जननी दितिको	जनेश्वरः	उस दैत्यराजने
		इदं आह	यह कहा ॥१९॥

हिरण्यकशिपुरुवाच–

अम्बाम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं मार्हथ शोचितुम् ।
रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः ॥२०॥

अम्ब अम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं मा अर्हथ शोचितुं रिपोः अभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः ॥२०॥

अम्ब अम्ब	मां, हे मां !	रिपोः अभिमुखे	शत्रुका सामना करते हुए
हे वधूः	हे बहू,	शूराणां वध	शूरवीरका मारा जाना
पुत्राः	पुत्रो,	श्लाघ्यः	प्रशंसनीय और
वीरं	वीर (हिरण्याक्ष)के लिए	ईप्सितः	अभीष्ट है ॥२०॥
शोचितुं	शोक		
मा अर्हथ	नहीं करना चाहिए।		

भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते ।
दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥२१॥

भतानां इह संवासः प्रपायां इव सुव्रते दैवेन एकत्र नीतानां उन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥२१॥

सुव्रते	उत्तम व्रतों वाली देवि !	**भूतानां**	प्राणियोंका
स्वकर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार	**इह संवासः**	यहां (जीवनमें) साथ रहना
दैवेन	दैवके द्वारा	**प्रपायां इव**	प्याऊपर (इकट्ठे होनेके) समान है ॥२१॥
एकत्र नीतानां	एकत्र किए गए या		
उन्नीतानां	पृथक कर दिए गये		

नित्य आत्माव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः ।
धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गं मायया विसृजन्गुणान् ॥२२॥

नित्य आत्मा अव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित् परः धत्ते असौ आत्मनः लिङ्गम् मायया व्यसृजन् गुणान् ॥२२॥

आत्मा	यह आत्मा	**गुणान् व्यसृजन्**	इन्द्रियोंकी सृष्टि करके
नित्य अव्ययः	नित्य, अविनाशी,	**आत्मनः लिङ्गं**	अपना (सूक्ष्म)शरीर
शुद्धः सर्वगः	शुद्ध, सर्वव्यापी,	**धत्ते**	धारण करता है ॥२२॥
सर्ववित् परः	सर्वज्ञ, सबसे परे है ।		
असौ मायया	यही मायासे		

यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ।
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥२३॥

यथा अम्भसा प्रचलता तरवः अपि चला इव चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलती इव भूः ॥२३॥

यथा अम्भसा	जैसे पानीके	**चक्षुषा**	(स्वयं घूमनेसे) नेत्रोंके
प्रचलता	हिलनेसे	**भ्राम्यमाणेन**	घूमनेसे
तरवः अपि	(उसमें प्रतिविम्बित) वृक्ष भी	**भूः चलती इव**	पृथ्वी घूमती-सी
चल इव	हिलनेसे लगते हैं,	**दृश्यते**	दीखती है ॥२३॥

एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः पुमान् ।
याति तत्साम्यतां भद्रे ह्यलिङ्गो लिङ्गवानिव ॥२४॥

एवं गुणैः भ्राम्यमाणे मनसि अविकलः पुमान् याति तत् साम्यतां भद्रे हि अलिङ्गः लिङ्गवान् इव ॥२४॥

भद्रे	कल्याणी !	**लिङ्गवान् इव**	शरीरधारीके समान
एवं	इसी प्रकार	**तत् साम्यतां**	उस (मन) की समानताको
मनसि गुणैः	मनके विषयोंमें	**याति**	पा लेता है ॥२४॥
भ्राम्यमाणे:	भटकनेसे		
अविकलः पुमान्	अविचल पुरुष		
अलिङ्गः हि	अशरीरी होनेपर भी		

एष आत्मविपर्यासो ह्यलिङ्गे लिङ्गभावना ।
एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥२५॥

एष आत्म विपर्यासः हि अलिङ्गे लिङ्गभावना एष प्रिय अप्रियैः योगः वियोगः कर्म संसृतिः ॥२५॥

हि	क्योंकि	**एष**	यही
अलिङ्गे	शरीर रहित होने-पर भी	**प्रिय अप्रियैः**	प्रिय-अप्रियसे
लिङ्गभावना	अपनेको शरीर मान लेना	**योगः वियोगः**	मिलना-बिछुड़ना रूप
एष	यही	**कर्म संसृतिः**	कर्मका आवागमन चक्र है ॥२५॥
आत्म विपर्यासः	आत्माका उलटापन (अज्ञान) है,		

सम्भवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधः स्मृतः ।
अविवेकश्च चिन्ता च विवेकास्मृतिरेव च ॥२६॥

सम्भवः च विनाशः च शोकः च विविधः स्मृतः अविवेकः च चिन्ता च विवेक अस्मृतिः एव च ॥२६॥

सम्भवः च	जन्म और	**च विवेक**	तथा विवेककी
विनाशः	मृत्यु	**अस्मृतिः**	विस्मृति
च विविधः	और अनेक प्रकारके	**एव च**	भी (अज्ञानसे ही हैं) ॥२६॥
शोकः च	शोक भी		
स्मृतः	जो कहे जाते हैं,		
अविवेकः च	अविवेक और		
चिन्ता	चिन्ता		

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥२७॥

अत्र अपि उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥२७॥

अत्र अपि	इस विषयमें भी	**पुरातनं**	पुराने
यमस्य	यमराजका और	**इमं इतिहासं**	इस इतिहासका
प्रेतबन्धूनां	मरे हुएके सम्बन्धियोंका	**उदाहरन्ति**	उदाहरण दिया जाता है,
संवादं	संवाद रूप	**तं निबोधत**	उसे सुनो ॥२७॥

उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः ।
सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥२८॥

उशीनरेषु अभूत् राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः सपत्नैः निहतः युद्धे ज्ञातयः तं उपासत ॥२८॥

उशीनरेषु	उशीनर देशमें	**निहतः**	मारे जानेपर
सुयज्ञ इति	सुयज्ञ इस नामका	**ज्ञातयः**	उसके जाति-भाई
विश्रुतः राजा	प्रसिद्ध राजा	**तं उपासत**	उसके पास बैठ गये ॥२८॥
अभूत्	हुआ था ।		
युद्धे सपत्नैः	युद्धमें शत्रुओं द्वारा		

विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम् ।
शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम् ॥२९॥

विशीर्ण रत्न कवचं विभ्रष्ट आभरण स्रजं शरनिर्भिन्न हृदयं शयानं असृक् आविलम् ॥२९॥

रत्न कवचं	रत्न-जटित कवच	हृदयं	हृदय
विशीर्ण	छिन्न-भिन्न हो गया था,	शरनिर्भिन्नं	वाणसे फट गया था,
आभरण स्रजं	आभूषण तथा माला	असृक् आविलं	रक्त लथपथ
विभ्रष्ट	गिर गयी थीं,	शयानं	पड़ा था ॥२९॥

प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम् ।
रजःकुण्ठमुखाम्भोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥३०॥

प्रकीर्णकेशं ध्वस्त अक्षं रभसा दष्ट दत् छदं रजः कुण्ठ मुखाम्भोजं छिन्न आयुध भुजं मृधे ॥३०॥

प्रकीर्णकेशं	केश बिखरे थे,	रजः कुण्ठ	धुलिसे ढक गया था,
ध्वस्त अक्षं	नेत्र बैठ गये थे,	मृधे	युद्धमें
रभसा	क्रोधसे	छिन्न आयुध	शस्त्र और
दष्ट दत् छदं	दाँतोंसे ओष्ठ दबाये था,	भुजं	भुजा कट गयी थी ॥३०॥
मुखाम्भोजं	मुख-कमल		

उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं
पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ।
हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं
घ्नन्त्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापतन् ॥३१॥

उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः हताः स्म नाथ इति करैः उरः भृशं घ्नन्त्यः मुहुः तत् पदयोः उप आपतन् ॥३१॥

विधिना	भाग्य द्वारा
तथा कृतं	ऐसी दशामें किये
पतिं उशीनरेन्द्रं	अपने पति उशीनर-नरेशको
प्रसमीक्ष्य	देखकर
दुःखिताः	दुःखी
महिष्यः	रानियां
नाथ हताः स्म	'नाथ हम मारी गयीं'
इति	ऐसा कहकर
करैः भृशं	हाथोंसे बार-बार
उरः घ्नन्त्यः	छाती पीटती
तत् पदयोः	उसके पैरोंके
उप आपतन्	समीप गिर पड़ीं

॥३१॥

रुदत्य उच्चैर्दयिताङ्घ्रि पङ्कजं
सिञ्चन्त्य अस्रैः कुचकुङ्कुमारुणैः ।
विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां
सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥३२॥

रुदत्य उच्चैः दयित अङ्घ्रि पङ्कजं सिञ्चन्त्य अस्रैः कुच कुङ्कुम आरुणैः विस्रस्तकेश आभरणाः शुचं नृणां सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥३२॥

उच्चैः रुदत्य	उच्चस्वरसे रोती हुई
दयित	अपने प्रियतमके
अङ्घ्रि पङ्कजं	चरण-कमलोंको
कुच कुंकुम	स्तनोंपर लगे कुंकुमसे
आरुणैः अस्रैः	लाल हुए आँसुओंसे
सिञ्चन्त्य	भिगाती हुई
विस्रतकेश	विखरे केश
आभरणाः	आभूषण (वाली वे)
आक्रन्दनया	अपने आर्तनादसे
नृणां शुचं	मनुष्योंमें शोक
सृजन्त्य	उत्पन्न करती हुई
विलेपिरे	विलाप करने लगीं

॥३२॥

अहो विधात्राकरुणेन नः प्रभो
भवान् प्रणीतो दृगगोचरां दशाम् ।
उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा
कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥३३॥

अहो विधात्रा अकरुणेन नः प्रभो भवान् प्रणीतः दृक् अगोचरां दशां उशी नराणां असि वृत्तिदः पुरा कृतः अधुना येन शुचां विवर्धनः ॥३३॥

अहो अकरुणेन	अरे निष्ठुर
विधात्रा	विधाता !
नः प्रभो	हमारे स्वामीको
दृक् अगोचरां	आँखोंसे न दीखने वाली
दशां भवान्	दशामें तुम
प्रणीतः	ले गये
येन पुरा	जो पहिले
उशी नराणां	उशीनर देश-वासियोंको
वृत्तिदः	आजीविका देते थे,
अधुना	इस समय (उन्हें)
शुचां विवर्धनः	शोकको बढ़ानेवाला
कृतः	बना दिया ॥३३॥

त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते
कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ।
तत्रानुयानं तव वीर पादयोः
शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥३४॥

त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते तत्र अनुयानं तव वीर पादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥३४॥

त्वया कृतज्ञेन	तुम कृतज्ञ
महीपते	नरेश
सुहृत्तमेन	परम प्रियतमके
विना वयं	बिना हम
कथं स्याम	कैसे रहेंगी (अतः)
वीर तव पादयोः	पतिदेव तुम्हारे चरणोंकी
शुश्रूषतीनां	सेवा करने वाली-को
यत्र यास्यसि	जहां जाओगे
तत्र	वहां
ते अनुयानं	तुम्हारे पीछे जाने-की
दिश	आज्ञा दो ॥३४॥

एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम् ।
अनिच्छतीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत ॥३५॥

एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिं अनिच्छतीनां निर्हारं अर्कः अस्तं संन्यवर्तत ॥३५॥

एवं	इस प्रकार	अनिच्छतीनां	नहीं चाहती थीं (इतनेमें)
मृतं पतिं	मेरे पति (देह)को	अर्कः अस्तं	सूर्य-अस्त होनेके
परिगृह्य वै	पकड़ करके ही	संन्यवर्तत	समीप पहुँच गया ॥३५॥
विलपतीनां	विलाप करती हुई		
निर्हरं	(दाहके लिए) ले जाना		

तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रुत्य परिदेवितम् ।
आह तान् बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥३६॥

तत्र ह प्रेतबन्धूनां आश्रुत्य परिदेवितं आह तान् बालकः भूत्वा यमः स्वयं उपागतः ॥३६॥

तत्र ह	वहां तो	बालकः भूत्वा	बालक बनकर
प्रेतबन्धूनां	मरेके सम्बन्धियोंका	स्वयं यमः	स्वयं यमराज
परिदेवितं	विलाप	उपागतः	समीप आकर
आश्रुत्य	सुनकर	तान् आह	उनसे बोले ॥३७॥

यम उवाच–

अहो अमीषां वयसाधिकानां
विपश्यतां लोकविधि विमोहः ।
यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं
स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थम् ॥३७॥

अहो अमीषां वयसा अधिकानां विपश्यतां लोकविधि विमोहः यत्र आगतः तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचन्ति अपार्थम् ॥३७॥

अहो अमीषां	अरे इन	लोकविधि	लोककी (साधारण) रीतिके विषयमें
वयसा-	बड़ी आयुके		
अधिकानां	लोगोंका	विमोहः	इतना अज्ञान तो

विपश्यतां	देखो,	अपि	होनेपर भी
यत्र आगतः	जहांसे आया था	अपार्थं शोचन्ति	व्यर्थ शोक कर रहे हैं ॥३७॥
तत्र गतं	वहां चले गये		
मनुष्यं	मनुष्यके लिए		
स्वयं सधर्मा	स्वयं उसके सहधर्मी (मरणशील)		

अहो वयं धन्यतमा यदत्र
त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः ।
अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः
स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥३८॥

अहो वयं धन्यतमा यत् अत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः अभक्ष्यमाणा अबला वृक आदिभिः स रक्षिता रक्षति यः हि गर्भे ॥३८॥

अहो वयं	अहा, हम	वृक आदिभिः	भेड़िये आदि द्वारा
धन्यतमा	परम धन्य हैं	अभक्ष्यमाणाः	खाये नहीं गये
यत् अत्र	क्योंकि यहां	हि	क्योंकि
पितृभ्यां त्यक्ताः	माता-पिता द्वारा छोड़ दिये जानेपर भी	यः गर्भे रक्षति	जो गर्भमें रक्षा करता है
विचिन्तयामः न	चिन्ता नहीं करते हैं,	स रक्षिता	वह रक्षक है ॥३८॥
अबला	निर्बल होनेपर भी		

य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो
य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः ।
तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितु-
श्चराचरं निग्रहसङ्ग्रहे प्रभुः ॥३९॥

यः इच्छया ईशः सृजति इदं अव्ययः यः एव रक्षति अवलुम्पते च यः तस्य अबलाः क्रीडनं आहुः ईशितुः चर अचरं निग्रह संग्रहे प्रभुः ॥३९॥

यः अव्ययः	जो अविनाशी
ईशः	ईश्वर
इच्छया इदं	अपनी इच्छासे इस जगतकी
सृजति	सृष्टि करता है,
यः एव रक्षति	जो रक्षा भी करता है
च यः	और जो
अवलुम्पते	नष्ट भी कर देता है,
अबलाः	स्त्रियों
तस्य ईशितुः	उस लीलामयका
चर अचरं	जंगम-स्थावर सब
क्रीडनम् आहुः	खिलौने कहे गये हैं।
निग्रह संग्रहे	(किसीको भी) दण्ड या पुरस्कार देनेमें
प्रभुः	वही समर्थ है ॥३९॥

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं
गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने
गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥४०॥

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तत् विहतं विनश्यति जीवति अनाथः अपि तत् ईक्षितः वने गृहे अपि गुप्तः अस्य हतः न जीवति ॥४०॥

पथि च्युतं	(कोई वस्तु) मार्गमें गिरी
दिष्टरक्षितं	प्रारब्धसे रक्षित हो तो
तिष्ठति	वहीं पड़ी रहती है,
गृहे स्थितं	घरमें रखी भी
तत् विहतं	उस (प्रारब्ध) से नष्ट की गयी
विनश्यति	नष्ट हो जाती है,
तत् ईक्षितः	उस (दैव) की दया दृष्टि होनेपर
अनाथः	असहाय
वने अपि	वनमें भी
जीवति	जीवित रहता है; किन्तु
गृहे अपि गुप्तः	घरमें भी सुरक्षित रहनेपर
अस्य हतः	इस (दैव)का मारा
जीवति न	जीवित नहीं रहता ॥४०॥

भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभि-
र्भवन्ति काले न भवन्ति सर्वशः ।
न तत्र ह्यात्मा प्रकृतावपि स्थित-
स्तस्या गुणैरन्यतमो निबध्यते ॥४१॥

भूतानि तैः तैः निज योनि कर्मभिः भवन्ति काले न भवन्ति सर्वशः न तत्र ह आत्मा प्रकृताः अपि स्थितः तस्या गुणैः अन्यतमः निबध्यते ॥४१॥

सर्वशः भूतानि	समस्त प्राणियोंका	**तत्र ह**	इस (जन्म-मृत्यु)-
तैः तैः	उन उनके		में तो
निज कर्मभिः	अपने कर्मोंके	**आत्मा**	आत्मा
	अनुसार	**प्रकृताः**	प्रकृतिमें
काले योनिः	समयपर भिन्न-	**स्थितः अपि**	स्थित रहता हुआ भी
	भिन्न योनियोंमें	**अन्यतमः**	उनसे पृथक होनेके
भवन्ति	जन्म होता है या		कारण
न भवन्ति	न होना (मरण)	**तस्या गुणैः**	उस प्रकृतिके गुणोंसे
	होता है।	**निबध्यते न**	बँधता नहीं है ॥४१॥

इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं
यथा पृथग्भौतिकमीयते गृहम् ।
यथौदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः
कालेन जातो विकृतो विनश्यति ॥४२॥

इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथक् भौतिकं ईयते गृहं यथा उदकैः पार्थिव तैजसैः जनः कालेन जातः विकृतः विनश्यति ॥४२॥

यथा गृहं	जैसे मकानको	**यथा उदकैः**	जैसे जलके (बुलबुले
भौतिकं पृथक्	मिट्टीसे बना अपने-		आदि)
	से पृथक्	**पार्थिव**	मिट्टीके (घड़े
ईयते	समझता है,		आदि)

तैजसैः	तेज (सोने) के (गहने आदि)	मोहजं	मोहके कारण (अपना स्वरूप) लगता है ।
कालेन जातः	समयपर उत्पन्न होकर	जनः	जन्म लेने वाला है अतः
विकृतः	विकृत होते हैं (वैसे ही)	विनश्यति	नष्ट होगा ही ॥४२॥
पुरुषस्य	पुरुषका		
इदं शरीरं	यह शरीर भी		

यथानलो दारुषु भिन्न ईयते
यथानिलो देहगतः पृथक् स्थितः ।
यथा नभः सर्वगतं न सज्जते
तथा पुमान् सर्वगुणाश्रयः परः ॥४३॥

यथा अनलः दारुषु भिन्न ईयते यथा अनिलः देहगतः पृथक् स्थितः यथा नभः सर्वगतं न सज्जते तथा पुमान् सर्वगुण आश्रयः परः ॥४३॥

यथा अनलः	जैसे अग्नि	न सज्जते	(किसीसे) संसक्त नहीं होता
दारुषु भिन्न	लकड़ियोंसे पृथक	तथा पुमान्	वैसे ही आत्मा
ईयते	जाना जाता है,	सर्वगुण आश्रयः	सब (देह) इन्द्र-यादिका आश्रय होकर भी
यथा अनिलः	जैसे वायु	परः	उनसे परे (निर्लिप्त) है ॥४३॥
देहगतः	शरीरमें रहनेपर भी		
पृथक् स्थितः	(उससे) अलग रहता है,		
यथा नभः	जैसे आकाश		
सर्वगतं	सर्वव्यापक होकर भी		

सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ ।
यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥४४॥

सुयज्ञः ननु अयं शेते मूढा यं अनु शोचथ यः श्रोता यः अनुवक्ता इह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥४४॥

मूढा	मूर्खो !	**इह यः श्रोता**	इसमें जो सुननेवाला,
यं अनु	जिसके पीछे	**(च) यः अनुवक्ता**	और जो बोलनेवाला था,
शोचथ	(तुम लोग) शोक कर रहे हो	**स कर्हिचित्**	वह तो कभी भी
ननु सुयज्ञः	निश्चय वह सुयज्ञ	**दृश्येत न**	दीखता नहीं है ॥४४॥
अयं शेते	यह (शरीर) सो रहा है,		

न श्रोता नानुवक्तायं मुख्योऽप्यत्र महानसुः ।
यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः ॥४५॥

न श्रोता न अनुवक्ता अयं मुख्यः अपि अत्र महान् असुः यः तु इह इन्द्रियवान् आत्मा स च अन्यः प्राण देहयोः ॥४५॥

अत्र	इस देहमें	**इह यः तु**	इस शरीरमें जो तो
मुख्यः अपि	प्रधान होनेपर भी	**इन्द्रियवान्**	इन्द्रियोंका स्वामी
अयं महान् असुः	यह महान् प्राण	**आत्मा**	आत्मा है
न श्रोता	न सुननेवाला है	**स च प्राण**	वह तो प्राण और
न अनुवक्ता	न सुनकर बोलनेवाला है	**देहयोः**	देहसे
		अन्यः	भिन्न है ॥४५॥

भूतेन्द्रियमनोलिङ्गान् देहानुच्चावचान् विभुः ।
भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥४६॥

भूत इन्द्रिय मनः लिङ्गात् देहान् उच्च अवचान् विभुः भजति उत् सृजति हि अन्यः तत् च अपि स्वेन तेजसा ॥४६॥

भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रिय,	**देहान् विभुः**	शरीरोंको वह समर्थ
मनः लिङ्गात्	मनसे युक्त होकर	**भजति**	स्वीकार करता है, या
उच्च अवचान्	श्रेष्ठ-नीच		

उत् सृजति	छोड़ देता है	च तत् अपि	और वह (शरीरोंको पकड़ना-छोड़ना) भी
हि अन्यः	क्योंकि वह (इन शरीरोंसे) पृथक है	स्वेन तेजसा	अपने तेजसे ही करता है ॥४६॥

यावल्लिङ्गान्वितो ह्यात्मा तावत् कर्म निबन्धनम् ।
ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते ॥४७॥

यावत् लिङ्ग अन्वितः हि आत्मा तावत् कर्म निबन्धनं ततः विपर्ययः क्लेशः माया योगः अनुवर्तते ॥४७॥

यावत् आत्मा	जब तक आत्मा	ततः विपर्ययः	उसीसे यह उलटी दशा
लिङ्ग अन्वितः	सूक्ष्म शरीरके साथ है	क्लेशः	(अविद्य अस्मितादि) क्लेश
तावत्	तब तक	माया योगः	मायाके संयोगसे
कर्म निबन्धनं	कर्म-बन्धन है,	अनुवर्तते	पीछे लगे हैं ॥४७॥
हि	क्योंकि		

वितथाभिनिवेशोऽयं यद् गुणेष्वर्थदृग्वचः ।
यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वमैन्द्रियकं मृषा ॥४८॥

वितथ अभिनिवेशः अयं यत् गुणेषु अर्थ दृक् वचः यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वं ऐन्द्रियकं मृषा ॥४८॥

यत् गुणेषु	जो प्रकृतिके गुणोंको	यथा मनोरथः	जैसे मनोरथ या
अर्थ दृक् वचः	सत्य देखना या कहना है	स्वप्नः	स्वप्न हो (वैसे ही)
अयं वितथ	यह व्यर्थ	सर्वं ऐन्द्रियकं	इन्द्रियोंसे प्रतीत होनेवाला सब
अभिनिवेशः	दुराग्रह है	मृषा	झूठा है ॥४८॥

अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचन्ति तद्विदः ।
नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥४९॥

अथ नित्यं अनित्यं वा न इह शोचन्ति तद् विदः न अन्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतां इति ॥४६॥

अथ नित्यं	यह शरीर नित्य हो	**इति स्वभावः**	ऐसा (शोक करने-का) स्वभाव ही है
वा अनित्यं	या अनित्य		
तद् विदः	उस आत्माको जाननेवाले	**अन्यथा कर्तुं**	उसे विपरीत बना देना
इह न शोचन्ति	इसके विषयमें शोक नहीं करते	**शक्यते न**	शक्य नहीं होता ॥४६॥
शोचतां	शोक करने वालोंका		

लुब्धको विपिने कश्चित्पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः ।
वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥५०॥

लुब्धकः विपिने कश्चित् पक्षिणां निर्मितः अन्तकः वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥५०॥

पक्षिणां	पक्षियोंके लिए	**तत्र तत्र**	जहां-तहां
अन्तकः निर्मितः	काल बनाया हुआ	**प्रलोभयन्**	(पक्षियोंको) लल-चानेकी
विपिने कश्चित्	वनमें कोई		
लुब्धकः	बहेलिया	**विदधे**	व्यवस्था करता था ॥५०॥
जालं वितत्य	जाल फैलाकर		

कुलिङ्गमिथुनं तत्र विचरत्समदृश्यत ।
तयोः कुलिङ्गी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥५१॥

कुलिङ्ग मिथुनं तत्र विचरत् सम् अदृश्यत तयोः कुलिङ्गी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥५१॥

तत्र	उस वनमें	**विचरत्**	घूमता
कुलिङ्ग मिथुनं	कुलिंग पक्षीका जोड़ा	**सम् अदृश्यत**	दिखायी पड़ा,
		तयोः सहसा	उनमें-से अचानक

लुब्धकेन	व्याध द्वारा	कुलिङ्गी	कुलिंगी ॥५१॥
प्रलोभिता	ललचायी गयी		

सासञ्जत शिचस्तन्त्यां महिषी कालयन्त्रिता ।
कुलिङ्गस्तां तथाऽऽपन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः ।
स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥५२॥

सा असञ्जत शिचः तन्त्यां महिषी काल यन्त्रिता कुलिङ्गः तां तथा आपन्नां निरीक्ष्य भृश दुःखितः स्नेहात् अकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥५२॥

काल यन्त्रिता	कालकी प्रेरणासे	स्नेहात् भृश	स्नेहके कारण अत्यंत
सा महिषी	वह मादा पक्षी	दुःखितः	दुःखी होकर
शिचः तन्त्यां	जालकी तांतोंमें	कृपणः	अभागा वह
असञ्जत	बँध गयी	अकल्पः	कुछ करनेमें असमर्थ
तां तथा	उसे इस	कृपणां	उस अभागिनीके
आपन्नां	विपत्तिमें पड़ी		लिए
निरीक्ष्य	देखकर	पर्यदेवयत्	विलाप करने लगा
कुलिङ्गः	नर कुलिंग		॥५२॥

अहो अकरुणो देवः स्त्रियाऽऽकरुणया विभुः ।
कृपणं मानुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥५३॥

अहो अकरुणः देवः स्त्रिया आकरुणया विभुः कृपणं मा अनुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥५३॥

देवः विभुः	विधाता समर्थ होनेपर भी	आकरुणया	छटपटाती
		दीनया स्त्रिया	दीना मेरी स्त्रीका
अहो अकरुणः	अहो, निष्ठुर है	किं करिष्यति	वह क्या करेगा
मा कृपणं	मुझ दुःखीके लिए		॥५३॥
अनुशोचन्त्या	शोक करती		

कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे ।
दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥५४॥

कामं नयतु मां देवः किं अर्धेन आत्मनः हि मे दीनेन जीवता दुःखं अनेन विधुर आयुषा ॥५४॥

देवः कामं	दैव इच्छानुसार	आत्मनः अर्धेन	अपने आधे
मां नयतु	मुझे भी ले जाय	अनेन आयुषा	इस जीवनको
हि	क्योंकि	किं	लेकर क्या करूंगा
मे दीनेन	मैं दुःखिया		॥५४॥
विधुर	विधुर होकर		
दुःखं जीवता	दुःखी होकर जीते रहकर		

कथं त्वजातपक्षांस्तान् मातृहीनान् बिभर्म्यहम् ।
मन्दभाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥५५॥

कथं तु अजात पक्षान् तान् मातृहीनान् बिभर्मि अहं मन्द भाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥५५॥

तान्	उन	मे नीडे	मेरे घोंसलेमें
अजात पक्षान्	पंख न निकले	मन्द भाग्याः	वे अभागे
मातृहीनान्	मातृहीन	मातरं प्रतीक्षन्ते	अपनी माताकी
प्रजाः कथं तु	शावकोंका भला कैसे		प्रतीक्षा करते होंगे ॥५५॥
अहं बिभर्मि	मैं पालन-पोषण करूंगा		

एवं कुलिङ्गं विलपन्तमारात्
प्रियावियोगातुरमश्रुकण्ठम् ।
स एव तं शाकुनिकः शरेण
विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥५६॥

एवं कुलिंग विलपन्तं आरात् प्रियावियोग आतुरं अश्रुकण्ठं स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितः विलीनः ॥५६॥

एवं कुलिंग	इस प्रकार कुलिंग	आरात् विलीनः	समीप ही छिपे
प्रियावियोग	पत्नीके वियोगमें	स एव	उसी
आतुरं	व्याकुल	शाकुनिकः	पक्षियोंके शिकारीने
अश्रुकण्ठं	आंसू भरे गलेसे	कालप्रहितः	काल प्रेरित
विलपन्तं	विलाप कर रहा था तभी	तं शरेण	उसे बाणसे
		विव्याध	बींध दिया ॥५६॥

एवं यूयमपश्यन्त्य आत्मापायमबुद्धयः ।
नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥५७॥

एवं यूयं अपश्यन्त्यः आत्म अपायं अबुद्धयः न एनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैः अपि ॥५७॥

एवं	इस प्रकार	पतिं	पतिके लिए
आत्म अपायं	अपनी मृत्यु	शोचन्त्यः	शोक करती हुई
अपश्यन्त्यः	न देखती हुईं	वर्षशतैः अपि	सौ वर्षमें भी
अबुद्धयः	मूर्खाओ	एनं न प्राप्स्यथ	इसे नहीं पाओगी ॥५७॥
यूयं	तुम सब		

हिरण्यकशिपुरुवाच—

बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः ।
ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ॥५८॥

बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मित चेतसः ज्ञातयः मेनिरे सर्वं अनित्यं अयथा उत्थितम् ॥५८॥

बाल एवं	बालकके इस प्रकार	सर्वे ज्ञातयः	सब जातिके भाई-बन्धु
प्रवदति	कहनेपर		

विस्मित चेतसः	चकित चित्त रह गये	**अयथा उत्थितं मेनिरे**	मिथ्या प्रतीत होता मान लिया ॥५८॥
सर्वं अनित्यं	(उन्होंने) सब संसारको अनित्य		

यम एतदुपाख्याय तत्रैवान्तरधीयत ।
ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्साम्परायिकम् ॥५९॥

यम एतत् उपाख्याय तत्र एव अन्तः अधीयत ज्ञातयः अपि सुयज्ञस्य चक्रुः यत् साम्परायिकम् ॥५९॥

यम एतत्	यमराज यह	**सुयज्ञस्य**	सुयज्ञकी
उपाख्याय	कहकर	**यत्**	जो
तत्र एव	वहीं	**साम्परायिकं**	मरणोत्तर क्रिया थी
अन्तः अधीयत	अन्तर्धान हो गये ।	**चक्रुः**	किया ॥५९॥
ज्ञातयः अपि	जाति वालोंने भी		

ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च ।
क आत्मा कः परो वात्र स्वीयः पारक्य एव वा ।
स्वपराभिनिवेशेन विनाज्ञानेन देहिनाम् ॥६०॥

ततः शोचत मा यूयं परं च आत्मानं एव च कः आत्मा कः परः वा अत्र स्वीयः पारक्य एव वा स्व पर अभिनिवेशेन विना ज्ञानेन देहिनाम् ॥६०॥

ततः यूयं	इसलिए तुम लोग	**स्व पर**	अपना-पराया
परं च	दूसरेके लिए और	**अभिनिवेशेन**	माननेसे ही
आत्मानं एव च	अपने लिए भी	**देहिनां**	शरीर धारियोंको
मा शोचत	शोक मत करो ।	**विना ज्ञानेन**	ज्ञान न होनेसे
अत्र कः आत्मा	इस संसारमें कौन अपना	**स्वीयः वा**	अपने या
		पारक्य एव	परायेका भी (भेद-
वा कः परः	या कौन पराया है ।		भाव) है ॥६०॥

नारद उवाच—

इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सुस्नुषा ।
पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥६१॥

इति दैत्यपतेः वाक्यं दितिः आकर्ण्य सुस्नुषा पुत्रशोकं क्षणात् त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तं अधारयत् ॥६१॥

इति दैत्यपतेः	इस प्रकार दैत्य-राजकी	**पुत्र शोकं**	पुत्रका (मरण) शोक
वाक्यं आकर्ण्य	बात सुनकर	**त्यक्त्वा**	त्यागकर
सुस्नुषा दितिः	पुत्र-वधुओंके साथ दितिने	**चित्तं**	अपना चित्त
क्षणात्	एक क्षणमें	**तत्त्वे अधारयत्**	(परमात्म) तत्त्वमें लगाया ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
सप्तमस्कन्धे दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

नारद उवाच–

हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ।
आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥

हिरण्यकशिपू राजन् अजेयं अजरं अमरं आत्मानं अप्रति द्वन्द्वं एकराजं व्यधित्सत ॥१॥

राजन्	राजन् !	**द्वन्द्वं**	द्वन्दी रहित,
हिरण्यकशिपू	हिरण्यकशिपुने	**एकराजं**	एकछत्र सम्राट्
आत्मानं	अपनेको	**व्यधित्सत**	बनानेकी इच्छासे
अजेयं अजरं	अजेय, अजर		॥१॥
अमरं अप्रति	अमर, प्रति		

स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ।
ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥

स तेपे मन्दर द्रोण्यां तपः परम दारुणं उर्ध्व बाहुः नभः दृष्टिः पाद अङ्गुष्ठ आश्रिता अवनिः ॥२॥

मन्दर द्रोण्यां	मन्दराचलकी घाटीमें	**ऊर्ध्व बाहुः**	दोनों भुजा उठाकर
स पाद अङ्गुष्ठ	वह पैरके अंगूठेसे	**नभः दृष्टिः**	आकाशको देखता
अवनि आश्रिता	पृथ्वीका सहारा लेकर	**परम दारुणं तपः तेपे**	अत्युग्र तपस्या करने लगा ॥२॥

जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः ।
तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥ ३ ॥

जटा दीधितिभिः रेजे संवर्त अर्क इव अंशुभिः तस्मिन् तपः तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥३॥

अंशुभिः	किरणोंसे	**तस्मिन् तपः**	उसके तपस्या
संवर्त अर्क	प्रलयकालीन सूर्यके	**तप्यमाने**	करते समय
इव	समान	**देवाः स्थानानि**	देवता अपने स्थानों-पर
जटा	जटाकी		
दीधितिभिः	चमकसे	**भेजिरे**	प्रतिष्ठित हो गये ॥३॥
रेजे	शोभित हुआ		

तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः ।
तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ ४ ॥

तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमः अग्निः तपोमयः तिर्यक् उर्ध्वं अधः लोकान् अतपत् विष्वक् ईरितः ॥

तस्य मूर्ध्नः	उसके मस्तकसे	**तिर्यक् उर्ध्वं**	आस-पास बगलमें, ऊपर,
तपोमय अग्निः	तपस्यामयी अग्नि	**अधः लोकान्**	नीचेके लोकोंको
समुद्भूतः	निकलती हुई	**अतपत्**	संतप्त करने लगी ॥४॥
विष्वक् ईरितः	चारों ओर फैलकर		

चुक्षुभुर्नद्युदन्वन्तः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः ।
निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश ॥ ५ ॥

चुक्षुभुः नद्य उदन्वन्तः सद्वीप अद्रिः चचाल भूः निपेतुः सग्रहाः तारा जज्वलुः च दिशः दश ॥५॥

नद्य उदन्वतः	नदियां और समुद्र	**सग्रहाः ताराः**	ग्रहोंके साथ तारे
चुक्षुभुः	खौलने लगे,	**निपेतुः**	गिरने लगे,
सद्वीप अद्रिः	द्वीपों और पर्वतों सहित	**च दश दिशः**	और दसों दिशाएँ
		जज्वलुः	जलने लगीं ॥५॥
भूः चचाल	पृथ्वी डगमगाने लगी,		

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ।
धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥ ६ ॥

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः धात्रे विज्ञापया मासुः देवदेव जगत् पते ॥६॥

तेन तप्ता	उस (तप) से संतप्त होकर	**धात्रे**	ब्रह्माजीको
दिवं त्यक्त्वा	स्वर्ग छोड़कर	**विज्ञापया मासुः**	सूचना दी
सुराः ब्रह्मलोकं	देवता ब्रह्मलोक	**देवदेव जगत् पते**	'हे देवदेव, जगत्पति !' ॥६॥
ययुः	गये,		

दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः ।
तस्य चोपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे ।
लोका न यावन्नङ्क्षयन्ति बलिहारास्तवाभिभूः ॥७॥

दैत्येन्द्र तपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः तस्य च उपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे लोकाः न यावत् नङ्क्ष्यन्ति बलिहाराः तव अभिभूः ॥७॥

दैत्येन्द्र तपसा	दैत्यराजकी तपस्या-से	**यावत् तव**	जब तक आपको
तप्ता दिवि	तपते स्वर्गमें	**बलिहाराः**	भेंट देनेवाले
स्थातुं न	हम ठहर नहीं	**लोका**	लोक
शक्नुमः	पाते हैं,	**नङ्क्ष्यन्ति न**	नष्ट नहीं हो जाते
विभुः अभिभूः	सर्व व्यापक, सर्वाध्यक्ष !	**तस्य उपशमं**	उस (ज्वाला) को शान्त करनेका
यदि मन्यसे	यदि उचित समझें तो	**विधेहि**	उपाय कीजिए ॥७॥

तस्यायं किल सङ्कल्पश्चरतो दुश्चरं तपः ।
श्रूयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितः ॥ ८ ॥

तस्य अयं किल सङ्कल्पः चरतः दुश्चरं तपः श्रूयतां किं न विदितः तव अथ अपि निवेदितः ॥८॥

तस्य दुश्चरं	उसका दुश्चर तप	तव किं	आपको क्या
चरतः	करते हुए	विदितः न	ज्ञात नहीं है
अयं सङ्कल्पः	यह संकल्प	अथ अपि	परन्तु फिर भी
किल	तो	निवेदितः	(हम) निवेदन कर
श्रूयतां	सुनिये,		रहे हैं ॥८॥

सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ।
अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम् ॥ ९ ॥

सृष्ट्वा चर अचरं इदं तपः योग समाधिना अधि आस्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निज आसनम् ॥९॥

तपः योग	'तपस्या, योग,	परमेष्ठी	ब्रह्माजी,
समाधिना	एकाग्रताके द्वारा	सर्वधिष्ण्येभ्यः	सब लोकोंसे
इदं चर अचरं	इस जंगम स्थावर	अधि निज	ऊपर अपने
	जगतकी	आसनं	लोकमें
सृष्ट्वा	सृष्टि करके	आस्ते	(जैसे) हैं ॥९॥

तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ।
कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साधयिष्ये तथाऽऽत्मनः ॥१०॥

तत् अहं वर्धमानेन तप योग समाधिना काल आत्मनः च नित्यत्वात् साधयिष्ये तथा आत्मनः ॥१०॥

तत्	इसलिए	समाधिना	एकाग्रतासे
काल	काल	वर्धमानेन	बढ़ता हुआ
आत्मनः च	और आत्माके	तथा आत्मनः	वैसा ही अपनेको
नित्यत्वात्	नित्य होनेसे	साधयिष्ये	बना लूंगा ॥१०॥
अहं तपः योग	मैं तपस्या, योग,		

अन्यथेदं विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा ।
किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥११॥

अन्यथा इदं विधास्ये अहं अयथा पूर्वं ओजसा किं अन्यैः काल निर्धूतैः कल्प अन्ते वैष्णव आदिभिः ॥११॥

ओजसा	अपने तेजसे	विधास्ये	बनाऊँगा ।
इदं	इस संसारको	कल्प अन्ते	कल्पके अन्तमें
अयथा पूर्वं	जैसा पहिले नहीं था	काल निर्धूतैः	कालके द्वारा नष्ट होनेवाले
अन्यथा	दूसरे ढंगका (पाप-पुण्यके नियम पलटकर)	वैष्णव आदिभिः	वैष्णव आदि
		अन्यैः किं	दूसरे पदोंमें क्या रखा है ॥११॥

इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परममास्थितः ।
विधत्स्वानन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥१२॥

इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परमं आस्थितः विधत्स्व अनन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥१२॥

इति निर्बन्धं	ऐसा दृढ़ आग्रह	स्वयं	आप स्वयं
शुश्रुम	(उसका हम) सुनते हैं,	त्रिभुवनेश्वर	त्रिलोकीके स्वामी हैं
		अनन्तरं	अब इसके बाद
परमं तपः	घोर तपस्यामें	युक्तं विधत्स्व	उचित उपाय
आस्थितः	लगा है'		कीजिए ॥१२॥

तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते ।
भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥ १३ ॥

तव आसनं द्विज गवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥१३॥

जगत्पते	विश्वस्वामी !
तव पारमेष्ठ्यं	आपका यह ब्रह्माका
आसनं	पद
द्विज गवां	ब्राह्मण और गायोंके
भवाय श्रेयसे	वृद्धि, कल्याण,
भूत्यै क्षेमाय	विभूति, कल्याण,
च विजयाय	और विजयके लिए है । १३॥

[यदि यह हिरण्यकशिपूने ले लिया तो गौ-ब्राह्मणोंका क्या होगा ?]

इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप ।
परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥१४॥

इति विज्ञापितः देवैः भगवान् आत्मभूः नृप परीतः भृगु दक्ष आद्यैः ययौ दैत्येश्वर आश्रमम् ॥१४॥

नृप	राजन् !
इति देवैः	इस प्रकार देवताओं द्वारा
विज्ञापितः	सूचना देनेपर
भगवान्	भगवान्
आत्मभूः	स्वयम्भू
भृगु दक्ष	भृगु, दक्ष
आद्यैः परीतः	आदिसे घिरे
दैत्येश्वर आश्रमं	दैत्यराजके आश्रम-पर
ययौ	गये ॥१४॥

न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः ।
पिपीलिकाभिराचीर्णमेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥१५॥

न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीक तृण कीचकैः पिपीलिकाभिः आचीर्ण मेदः त्वक् मांस शोणितम् ॥१५॥

पिपीलिकाभिः	चींटियों द्वारा
मेद त्वक् मांस	चर्बी, चमड़ा, मांस,
शोणितं आचीर्णं	रक्त चाट लिया गया था,
वल्मीक तृण	दीमकोंकी बांबीपर उगे तृण
कीचकैः	बांसोंसे
प्रतिच्छन्नं	ढक गये उसे
न ददर्श	नहीं देख सके ॥१५॥

तपन्तं तपसा लोकान् यथाभ्रापिहितं रविम् ।
विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन् हंसवाहनः ॥१६॥

तपन्तं तपसा लोकान् यथा अभ्र अपिहितं रविः विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन् हंसवाहनः ॥१६॥

यथा अभ्र	जैसे बादलोंसे	**विस्मितः**	चकित
अपिहितं रविः	ढका सूर्य हो	**प्रहसन्**	हँसते हुए
तपसा लोकान्	अपनी तपस्यासे लोकोंको	**हंसवाहनः प्राह**	हंसवाहन ब्रह्माजी बोले ॥१६॥
तपन्तं विलक्ष्य	संतप्त करते देखकर		

ब्रह्मोवाच–

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपः सिद्धोऽसि काश्यप ।
वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥१७॥

उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ भद्रं ते तपः सिद्धः असि काश्यप वरदः अहं अनुप्राप्तः व्रियतां ईप्सितः वरः ॥१७॥

काश्यप	कश्यपनन्दन !	**अहं वरदः**	मैं वरदान देने
उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ	उठो ! उठो !	**अनुप्राप्तः**	आया हूँ,
तपः सिद्धः असि	तपस्यासे सिद्ध हो गये हो,	**ईप्सितः वरः**	अभीष्ट वरदान
		व्रियतां	मांग लो ॥१७॥

अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारं महदद्भुतम् ।
दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ॥१८॥

अद्राक्षं अहं एतत् ते हृत् सारं महत् अद्भुतं दंश भक्षित देहस्य प्राणा हि अस्थिषु शेरते ॥१८॥

अहं	मैंने	**ते हृत् सारं**	तुम्हारे हृदयका बल
महत् अद्भुतं	महान् अद्भुत		

अद्राक्षं	देख लिया	भक्षित	खा लेनेपर भी
हि	क्योंकि	प्राणा अस्थिषु	प्राण हड्डियोंमें
देहस्य दंश	शरीरके डांसोंके	शेरते	टिके हुए हैं ॥१८॥

नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ।
निरम्बुर्धारयेत्प्राणान् को वै दिव्यसमाः शतम् ॥१९॥

न एतत् पूर्व ऋषयः चक्रुः न करिष्यन्ति च अपरे निरम्बुः धारयेत् प्राणान् कः वै दिव्य समाः शतम् ॥१९॥

पूर्व ऋषयः	पहिलेके ऋषियोंने	दिव्य शतं समाः	देवताओंके सौ वर्ष तक
एतत् न चक्रुः	इतना (कठिन तप) नहीं किया है	निरम्बुः	निर्जल रहकर
अपरे न	दूसरे भी आगे नहीं	प्राणान् धारतेत्	प्राणोंको बचाये
करिष्यन्ति	करेंगे		रहेगा ॥१९॥
वै कः	भला कौन		

व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् ।
तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनन्दन ॥२०॥

व्यवसायेन ते अनेन दुष्करेण मनस्विनां तपः निष्ठेन भवता जितः अहं दितिनन्दन ॥२०॥

मनस्विनां	धीर पुरुषों द्वारा भी	व्यवसायेन	उद्योगसे
दुष्करेण	दुष्कर	दितिनन्दन	दिति-नन्दन !
ते अनेन	तुम्हारे इस	भवता	तुम्हारे द्वारा
तपः निष्ठेन	तपस्यामें तत्परता रूप	अहं जितः	मैं जीत लिया गया ॥२०॥

ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुङ्गव ।
मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम ॥२१॥

ततः त आशिषः सर्वा ददामि असुर पुङ्गव मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं न अफलं मम ॥२१॥

असुर पुङ्गव	असुरश्रेष्ठ !	ते मर्त्यस्य	तुम मरण धर्माके लिए
ततः	इसलिए	मम अमर्त्यस्य	मुझ अमरका
त सर्वा आशिषः	तुम्हारी सब अभिलाषाएँ	दर्शनं न अफलं	दर्शन निष्फल नहीं होगा ॥२१॥
ददामि	दूंगा		

नारद उवाच—

इत्युक्त्वाऽऽदिभवो देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः ।
कमण्डलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा ॥२२॥

इति उक्त्वा आदिभवः देवः भक्षित अङ्गम् पिपीलिकैः कमण्डलु जलेन औक्षत् दिव्येन अमोघ राधसा ॥२२॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	अमोघ राधसा	अमोघ प्रभाव
आदिभवः देवः	सबसे प्रथम उत्पन्न उन देव ब्रह्माजीने	दिव्येन	दिव्य (अपने)
		कमण्डलु जलेन	कमण्डलुके जलसे
पिपीलिकैः	चींटियों द्वारा	औक्षत्	छीटा मार दिया ॥२२॥
भक्षित अङ्गम्	खाये शरीरको		

स तत्कीचकवल्मीकात् सह ओजोबलान्वितः ।
सर्वावयवसम्पन्नो वज्रसंहननो युवा ।
उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥२३॥

स तत् कीचक वल्मीकात् सह ओज बल अन्वितः सर्व अवयव सम्पन्नः वज्र संहननः युवा उत्थितः तप्त हेम आभः विभावसुः इव एधसः ॥२३॥

स तत् कीचक वल्मीकात्	वह उस बांस और दीमकोंकी बांबीसे	सह ओज बल	मनोबल, इन्द्रियबल, शरीरबल

अन्वितः	युक्त
सर्व अवयव	सब अंगोंसे
सम्पन्नः	सम्पन्न
वज्र संहननः	वज्रके समान कठोर
युवा तप्त हेम	युवा, तपाये स्वर्ण
आभः	कान्ति वाला
एधस	सूखी लकड़ीमें
विभावसुः इव	अग्निके समान
उत्थितः	उठ खड़ा हुआ ॥२३॥

स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितम् ।
ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥२४॥

स निरीक्ष्य अम्बरे देवं हंसवाहं अवस्थितं ननाम शिरसा भूमौ तत् दर्शन महोत्सवः ॥२४॥

स अम्बरे	उसने आकाशमें
हंसवाहं	अपने हंसवाहनपर
अवस्थितं	बैठे
देवं निरीक्ष्य	ब्रह्माजीको देखकर
तत् दर्शन	उनके दर्शनसे
महोत्सवः	बहुत प्रसन्न होकर
भूमौ शिरसा	पृथ्वीपर सिर रखकर
ननाम	प्रणाम किया ॥२४॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् ।
हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयागृणात् ॥२५॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणः दृशा विभुं हर्ष अश्रु पुलक उद्भेदः गिरा गद्गदया गृणात् ॥२५॥

उत्थाय प्रह्व	उठकर नम्रतासे
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर
दृशा विभुं	नेत्रोंसे उन प्रभुको
ईक्षमाणः	देखते हुए
हर्ष अश्रु	हर्षसे आंसू,
पुलक-उद्भेदः	रोमाञ्च युक्त
गद्गद्या गिरा	गद्गद् वाणीसे
गृणात्	स्तुति करने लगा ॥२५॥

हिरण्यकशिपु उवाच—

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसाऽऽवृतम् ।
अभिव्यनग् जगदिदं स्वयञ्ज्योतिः स्वरोचिषा ॥२६॥

कल्पान्ते कालसृष्टेन यः अन्धेन तमसा आवृतं अभिव्यनक् जगत् इदं स्वयं ज्योतिः स्वरोचिषा ॥२६॥

कल्पान्ते	कल्पके अन्तमें	**यः स्वयं ज्योतिः**	जिन स्वयं प्रकाशने
कालसृष्टेन	कालके द्वारा प्रेरित	**स्वरोचिषा**	अपने तेजसे
तमसा	तमोगुण द्वारा	**अभिव्यनक्**	अभिव्यक्त किया
अन्धेन आवृतं	अन्धकारसे ढके		॥२६॥
इदं जगत्	इस विश्वको		

आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ।
रजः सत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥२७॥

आत्मना त्रिवृता च इदं सृजति अवति लुम्पति रजः सत्त्व तमः धाम्ने पराय महते नमः ॥२७॥

च आत्मना	और अपनेको	**रजः सत्त्व**	(उन) रजोगुण,
त्रिवृता	त्रिविध बनाकर		सत्त्वगुण,
इदं	इस जगतकी	**तमः धाम्ने**	तमोगुण स्वरूप
सृजति	सृष्टि करते हैं,	**पराय**	इनसे परे
अवति	रक्षा करते हैं	**महते नमः**	महान्‌को नमस्कार
लुम्पति	लय करते हैं,		॥२७॥

नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ।
प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥२८॥

नमः आद्याय बीजाय ज्ञान विज्ञान मूर्तये प्राण इन्द्रिय मनः बुद्धिः विकारैः व्यक्ति ईयुषे ॥२८॥

आद्याय बीजाय	जगतसे आदि बीज (कारण)	**विकारैः**	आदि विकारोंके द्वारा
ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञान	**व्यक्ति ईयुषे**	व्यक्ति रूपमें प्रकट हुए
मूर्तये	स्वरूप		
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रिय,	**नमः**	(आपको) नमस्कार
मनः बुद्धिः	मन, बुद्धि,		॥२८॥

त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च
प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ।
चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां
पतिर्महान् भूतगुणाशयेशः ॥२९॥

त्वं ईशिषे जगतः तस्थुषः च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानां चित्तस्य चित्तेः मन इन्द्रियाणां पतिः महान् भूत गुण आशय ईशः ॥२९॥

त्वं जगतः	आप चर	चित्तस्य चित्तेः	चित्त और चेतनाके,
च तस्थुषः	तथा अचर	मन, इन्द्रियाणां	मन, इन्द्रियों,
प्रजानां	प्रजाके	भूत, गुण,	पञ्चभूत, त्रिगुण,
मुख्येन प्राणेन	मुख्य प्राण (सूत्रात्मा) के रूपमें	आशय ईशः महान्	अन्तःकरणके संचालक महत्तत्त्व- के रूपमें
ईशिषे पतिः	नियन्त्र करनेवाले स्वामी हैं	पतिः	स्वामी हैं ॥२९॥

त्वं सप्ततन्तून् वितनोषि तन्वा
त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ।
त्वमेक आत्माऽऽत्मवतामनादि-
रनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥३०॥

त्वं सप्ततन्तून् वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रक विद्यया च त्वं एक आत्मा आत्मवतां अनादिः अनन्त अपारः कविः अन्तरात्मा ॥३०॥

चातुर्होत्रक	(होता, उद्गाता, अध्वर्यु, ब्रह्मा इन) चारसे सम्पन्न होने- वाले यज्ञ	विद्यया तन्वा	वेद रूपी शरीरसे
		त्वं सप्ततन्तून	आप सात (अग्नि- ष्टोम आदि) तन्तुओंका
त्रय्या	त्रयी (कर्म, ज्ञान, उपासना प्रतिपादक)	वितनोषि च एक त्वं	विस्तार करते हैं, तथा एकमात्र आप

आत्मवतां	प्राणधारियोंके	अपारः कविः	अपार, सर्वज्ञ,
आत्मा	आत्मा हैं,	अन्तरात्मा	अन्तर्यामी हैं ॥३०॥
अनादिः अनन्त	अनादि, अनन्त,		

त्वमेव कालोऽनिमिषो जनाना-
मायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ।
कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महां-
स्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥३१॥

त्वं एव कालः अनिमिषः जनानां आयुः लव आदि अवयवैः क्षिणोषि कूटस्थ आत्मा परमेष्ठि अजः महान् त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥३१॥

त्वं एव कालः	आप ही काल हैं,	आत्मा, परमेष्ठि	आत्मा, परमेश्वर,
अनिमिषः	सावधान रहकर	अजः महान्	अजन्मा, महान्
लव आदि	लव-निमेषादि	च त्वं	और आप
अवयवैः	अपने अंगोंसे	जीवलोकस्य	सब जीवोंके
जनानां आयुः	लोगोंकी आयु	जीव आत्मा	जीवन तथा आत्मा
शिणोषि	क्षीण करते रहते हैं,		हैं ॥३१॥
कूटस्थ	(फिर भी) कूटस्थ,		

त्वत्तः परं नापरमप्यनेज-
देजच्च किञ्चिद् व्यतिरिक्तमस्ति ।
विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा
हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥३२॥

त्वत्तः परं न अपरं अपि नेजत् एजत् च किञ्चित् व्यतिरिक्तं अस्ति विद्याः कलाः ते तनवः च सर्वा हिरण्यगर्भः असि बृहत् त्रिपृष्ठः ॥३२॥

त्वत्तः	आपसे	किञ्चित्	कुछ भी
परं अपरं	कारण-कार्य	व्यक्तिरिक्तं न	भिन्न नहीं है
नेजत् एजत्	अचर-चर	सर्वा विद्याः	सब विद्या

च कलाः	और कला	हिरण्यगर्भः	स्वर्णमय ब्रह्माण्डको
ते तनवः	आपका शरीर हैं।		अपने भीतर रखने-
त्रिपृष्ठः	त्रिगुणातीत्		वाले
बृहत्	(आप) ब्रह्म हैं।	असि	हैं ॥३२॥

व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं
येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ।
भुङ्क्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्ये
अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥३३॥

व्यक्तं विभो स्थूलं इदं शरीरं येन इन्द्रिय प्राण मनः गुणान् त्वं भुङ्क्षे स्थितः धामनि पारमेष्ठ्ये अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥३३॥

येन	जिससे	भुङ्क्षे	भोग करते हैं
पारमेष्ठ्ये-	ब्रह्म-	इदं स्थूलं शरीरं	(आपका) यह स्थूल
धामनि	लोकमें		देह
स्थितः	रहकर	व्यक्तं	प्रगट है, किन्तु
विभो	प्रभो !		(आप)
इन्द्रिय प्राण	इन्द्रिय, प्राण,	अव्यक्त आत्मा	अव्यक्त, आत्मा,
मनः	मनके	पुराणः पुरुषः	पुराण पुरुष हैं
गुणान् त्वं	गुणोंका आप		॥३३॥

अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ।
चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥३४॥

अनन्त अव्यक्त रूपेण येन इदं अखिलं ततं चित् अचित् शक्ति युक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥३४॥

अनन्त अव्यक्त	अनन्त अव्यक्त	चित् अचित्	चेतन-अचेतन
रूपेण येन	रूपसे जिसने		(दोनों)
इदं अखिलं	इस सम्पूर्ण (दृश्य)	शक्ति युक्ताय	शक्तियोंसे युक्त
	को	तस्मै भगवते	उन भगवान्को
ततं	व्याप्त कर रखा है	नमः	नमस्कार ॥३४॥

यदि दास्यस्यभिमतान् वरान्मे वरदोत्तम ।
भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ॥३५॥

यदि दास्यसि अभिमतान् वरान् मे वरद उत्तम भूतेभ्यः त्वत् विसृष्टेभ्यः मृत्युः मा भूत् मम प्रभो ॥३५॥

वरद	वरदान देने वालोंमें	**दास्यसि**	देना चाहते हैं तो
उत्तम प्रभो	श्रेष्ठ प्रभो !	**त्वत् विसृष्टेभ्यः**	आपके बनाये
यदि मे	यदि मेरे	**भूतेभ्यः**	किसी भी प्राणीसे
अभिमतान्	अभीष्ट	**मम मृत्युः**	मेरी मृत्यु
वरान्	वरदान	**मा भूत्**	न होवे ॥३५॥

नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ।
न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ॥३६॥

न अन्तः बहिः दिवा नक्तं अन्य स्मात् अपि च आयुधैः न भूमौ न अम्बरे मृत्युः न नरैः न मृगैः अपि ॥३६॥

अन्तः बहिः	भीतर या बाहर	**न भूमौ**	न पृथ्वीमें,
दिवा नक्तं	दिनको या रातको,	**न अम्बरे**	न आकाशमें,
च अन्य स्मात्	तथा किसी दूसरे	**न नरैः**	न मनुष्यसे,
आयुधैः अपि	हथियारसे भी	**न मृगैः अपि**	न पशुसे ही
न	न हो	**मृत्युः**	मृत्यु हो ॥३६॥

व्यसुभिर्वासुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः ।
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ॥३७॥

वि असुभिः वा असुमत् भिः वा सुर असुर महा उरगैः अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ॥३७॥

वि असुभिः	निष्प्राण तत्त्वसे	**महा उरगैः**	महानागोंसे (मृत्यु
वा असुमत्भिः	अथवा सप्राणोंसे		न हो)
वा सुर असुर	या देवता, असुर,	**युद्धे**	युद्धमें

अप्रतिद्वद्वतां	मेरा कोई प्रतिद्वन्दी न हो,	ऐकपत्यं	एकछत्र सम्राट् होऊँ ॥३७॥
देहिनां	सब प्राणियोंका		

सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथाऽऽत्मनः ।
तपोयोगप्रभावाणां यन्न रिष्यति कर्हिचित् ॥३८॥

सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथा आत्मनः तपः योग प्रभावाणां यत् न रिष्यति कर्हिचित् ॥३८॥

सर्वेषां	सब	तपः योग	तपस्या, योगके
लोकपालानां	लोकपालोंका	प्रभावाणां	प्रभाव वालों जैसा
महिमानं	प्रभाव	यत् कर्हिचित्	पर जो कभी भी
यथा आत्मनः	जैसा है, मेरा रहे ।	रिष्यति न	घटे नहीं ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारद उवाच–

एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ ।
प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १ ॥

एवं वृतः शतधृतिः हिरण्यकशिपोः अथ प्रादात् तत् तपसा प्रीतः वरान् तस्य सुदुर्लभान् ॥१॥

अथ एवं	तब इस प्रकार	**तत् तपसा**	उसकी तपस्यासे
हिरण्यकशिपोः	हिरण्यकशिपुके द्वारा	**प्रीतः शतधृतिः**	प्रसन्न ब्रह्माजीने
		तस्य सुदुर्लभान्	उसके अत्यन्त दुर्लभ
वृतः	वरदान मांगनेपर	**वरान् प्रादात्**	वरदान दे दिये ॥१॥

ब्रह्मोवाच–

तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान् वृणीषे वरान् मम ।
तथापि वितराम्यङ्ग वरान् यदपि दुर्लभान् ॥ २ ॥

तात इमे दुर्लभाः पुंसां यान् वृणीषे वरान् मम तथापि वितरामि अङ्ग वरान् यदपि दुर्लभान् ॥२॥

तात् पुंसां	वत्स ! पुरुषोंके लिए	**तथापि अङ्ग**	फिर भी तुम प्रिय हो
यान् वरान्	जो वरदान	**वरान्**	अतः ये वरदान
मम वृणीषे	मुझसे मांग रहे तो	**वितरामि**	दे रहा हूँ ॥२॥
इमे दुर्लभाः	ये दुर्लभ हैं,		
यदपि दुर्लभान्	यद्यपि दुर्लभ हैं ।		

ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विभुः ।
पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३ ॥

ततः जगाम भगवान् अमोघ अनुग्रहः विभुः पूजितः असुर वर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥३॥

असुर वर्येण	असुरश्रेष्ठके	विभुः	समर्थ
पूजितः	पूजा कर लेनेपर,	ततः जगाम	वहांसे चले गये
प्रजेश्वरैः	प्रजापतियों द्वारा		॥३॥
स्तूयमानः	स्तुत होते		
अमोघ अनुग्रहः	जिनकी कृपा व्यर्थ नहीं होती वे		

एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः ।
भगवत्यकरोद् द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४ ॥

एवं लब्धवरः दैत्यः बिभ्रत् हेममयं वपुः भगवति अकरोत् द्वेषं भ्रातुः वधं अनुस्मरन् ॥४॥

एवं लब्धवरः	इस प्रकार वरदान पाकर	अनुस्मरन्	बार-बार स्मरण करके
हेममयं वपुः	स्वर्णमय शरीर	भगवति	भगवान (विष्णु) से
बिभ्रत् दैत्यः	धारण किये उस दैत्यने	द्वेषं अकरोत्	द्वेष करने लगा ॥४॥
भ्रातुः वधं	भाईके वधको		

स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन् महासुरः ।
देवासुरमनुष्येन्द्रान् गन्धर्वगरुडोरगान् ॥ ५ ॥

स विजित्य दिशः सर्वा लोकान् च त्रीन् महा असुरः देव असुर मनुष्य इन्द्रान् गन्धर्व गरुड उरगान् ॥५॥

स महा असुरः	उस महादैत्यने	च त्रीन् लोकान्	तथा तीनों लोकोंको
सर्वा दिशः	सब दिशाओंको	विजित्य	जीतकर,

देव असुर	देवता, असुर,	गरुड उरगान्	गरुड़, सर्पोंके
मनुष्य गन्धर्व	मनुष्य, गन्धर्व,	इन्द्रान्	प्रधानोंको ॥५॥

सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन् पितृपतीन् मनून् ।
यक्षरक्षः पिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ ॥ ६ ॥

सिद्ध चारण विद्याध्रान् ऋषीन् पितृपतीन् मनून् यक्ष रक्षः पिशाच ईशान् प्रेत भूतपतीन् अथ ॥६॥

सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,	यक्ष रक्षः	यक्ष, राक्षस,
विद्याध्रान्	विद्याधरों,	पिशाच ईशान्	पिशाचोंके नायकों,
ऋषीन्	ऋषियों,	अथ प्रेत	तथा प्रेत-
पितृपतीन्	पितरोंके स्वामियों,	भूतपतीन्	भूतोंके सरदारोंको
मनून्	मनुओं,		॥६॥

सर्वसत्त्वपतीञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित् ।
जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥ ७ ॥

सर्व सत्त्व पतीन् जित्वा वशं आनीय विश्वजित् जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥७॥

सर्व सत्त्व	सब प्राणियोंके	विश्वजित्	विश्वविजयी होकर
पतीन्	नायकोंको	लोकपालानां	सब लोकपालोंके
जित्वा	जीतकर	तेजसा सह	तेजके साथ
वशं आनीय	उन्हें अपने वशमें करके	स्थानानि जहार	स्थानोंको भी छीन लिया ॥७॥

देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् ।
महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा ।
त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत् ॥ ८ ॥

देव उद्यान श्रिया जुष्टं अध्यास्ते स्म त्रिविष्टपं महेन्द्रभवनं साक्षात् निर्मितं विश्वकर्मणा त्रैलोक्य लक्ष्म्या आयतनं अधि उवास अखिल ऋद्धिमत् ॥८॥

देव उद्यान	देव उद्यान (नन्दन-कानन) की	निर्मितं	बनाये गये
श्रिया जुष्टं	शोभासे सुशोभित	अखिल	सम्पूर्ण
त्रिविष्टपं	स्वर्गके	ऋद्धिमत्	सम्पत्तियोंसे भरे
अध्यास्ते स्म	सिंहासनपर बैठता था,	त्रैलोक्य लक्ष्म्या	त्रिभुवनके सौन्दर्यके
साक्षात्	साक्षात्	आयतनं	निवास भूत
विश्वकर्मणा	विश्वकर्मा द्वारा	महेन्द्रभवनं	इन्द्रके भवनमें
		अधि उवास	रहने लगा ॥८॥

यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः ।
यत्र स्फाटिककुड्यानि वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तयः ॥ ९ ॥

यत्र विद्रुम सोपाना महामारकता भुवः यत्र स्फाटिक कुड्यानि वैदूर्यस्तम्भ पङ्क्तयः ॥९॥

यत्र विद्रुम	जहां मूंगेसे बनी	यत्र स्फाटिक	जहां स्फटिककी
सोपाना	सीढ़ियां	कुड्यानि	भित्तियां
महामारकता	(और) महा मरकत मणिका	वैदूर्यस्तभ	वैदूर्य-मणिके खम्भोंकी
भुवः	फर्श है ।	पङ्क्तयः	पंक्तियाँ हैं ॥९॥

यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च ।
पयः फेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ॥१०॥

यत्र चित्र वितानानि पद्मराग आसनानि च पयः फेन निभाः शय्या मुक्तादाम परिच्छदाः ॥१०॥

यत्र चित्र	जहां चित्र-विचित्र	च पद्मराग	और पद्मराग-
वितानानि	चँदोवे लगे हैं,		मणिके

आसनानि	आसन हैं,	पयः फेन निभाः	दूधके फेनके समान कोमल
मुक्तादाम	मोतियोंकी झालरों-से	शय्या	पलंग हैं ॥१०॥
परिच्छदाः	सजी हुई		

कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयन्त्य इतस्ततः ।
रत्नस्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम् ॥११॥

कूजत्भिः नूपुरैः देव्यैः शब्दयन्त्य इतः ततः रत्न स्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम् ॥११॥

देव्यैः	देवियां	रत्न स्थलीषु	रत्नोंसे बने स्थानोंमें
कूजत्भिः नूपुरैः	झंकार करनेवाले नूपुरोंसे	सुदतीः	सुन्दर दांतोंवाले अपने
इतः ततः	सब कहीं	सुन्दरं मुखं	सुन्दर मुख
शब्दयन्त्यः	(रुनझुन) शब्द करती	पश्यन्ति	देखती थीं ॥११॥

तस्मिन्महेन्द्रभवने महाबलो
महामना निर्जितलोक एकराट् ।
रेमेऽभिवन्द्याङ्घ्रियुगः सुरादिभिः
प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः ॥१२॥

तस्मिन् महेन्द्र भवने महाबलः महामना निर्जित लोक एकराट् रेमे अभिवन्द्य अङ्घ्रि युगः सुर आदिभिः प्रतापितैः ऊर्जित चण्डशासनः ॥१२॥

महाबलः	महाबली,	महेन्द्र भवने	इन्द्रके राजभवनमें
महामना	महामनस्वी,	रेमे	विहार करता था ।
निर्जित लोक	त्रिभुव विजयी,	चण्डशासनः	उसके कठोर शासनसे
एकराट्	एकछत्र सम्राट् वह		
तस्मिन्	उस	अर्जित	प्रभावित

प्रतापितैः	भयभीत	अभिवन्द्य	प्रणाम किया जाता
सुर आदिभिः	देवतादि द्वारा		था ॥१२॥
अङ्घ्रि युगः	(उसके) दोनों चरणोंमें		

तमङ्ग मत्तं मधुनोरुगन्धिना
विवृत्ततास्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ।
उपासतोपायनपाणिभिर्विना
त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम् ॥१३॥

तं अङ्ग मत्तं मधुना उरुगन्धिना विवृत्ततास्रं अक्षं अशेष धिष्ण्यपाः उपासत उपायन पाणिभिः विना त्रिभिः तपः योग बल ओजसां पदम् ॥१३॥

अङ्ग	प्रिय युधिष्ठिर !	तं	उसकी
तपः योग	तपस्या, योग,	त्रिभिः विना	तीन (ब्रह्मा, विष्णु,
बल ओजसां	शारीरिक तथा मानसिक बलके		शिव) को छोड़कर
		अशेष धिष्ण्यपाः	सभी देवता
पदं	भण्डार	उपायन पाणिभिः	हाथोंमें भेंट लेकर
उरुगन्धिना	उत्कट गन्धवाली	उपासत	उपासना करते थे
मधुना मत्तं	मदिरा पीकर मत्त		॥१३॥
विवृत्ततास्र अक्षं	चढ़े लाल-लाल नेत्रवाले		

जगुर्महेन्द्रासनमोजसा स्थितं
विश्वावसुस्तुम्बुरुरस्मदादयः ।
गन्धर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन्मुहु-
र्विद्याधरा अप्सरसश्च पाण्डव ॥१४॥

जगुः महेन्द्र आसनं ओजसा स्थितं विश्वावसुः तुम्बुरुः अस्मत् आदयः गन्धर्व सिद्धा ऋषयः अस्तुवन् मुहुः विद्याधरा अप्सरसः च पाण्डव ॥१४॥

पाण्डव	युधिष्ठिर !	जगुः	(यश) गाते थे,
ओजसा	अपने उत्साहसे	गन्धर्व सिद्धा	गन्धर्व, सिद्ध,
महेन्द्र आसन	इन्द्रासनपर	ऋषयः	ऋषिगण,
स्थितं	बैठे उसका	विद्याधरा	विद्याधर,
विश्वावसुः	विश्वावसु,	च अप्सरसः	और अप्सराएँ
तुम्बुरुः	तुम्बुरु,	मुहुः स्तुवन्	बार-बार स्तुति
अस्मत् आदयः	हम सब लोग		करते थे ॥१४॥

स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत् स्वेन तेजसा ॥१५॥

स एव वर्ण आश्रमिभिः क्रतुभिः भूरि दक्षिणैः इज्यमानः हविः भागान् अग्रहीत् स्वेन तेजसा ॥१५॥

वर्ण आश्रमिभिः	वर्ण-आश्रम धर्म मानने वालों द्वारा	स एव	वही
भूरि दक्षिणैः	बहुत दक्षिणा दिये जानेवाले	स्वेन तेजसा	अपने तेजसे
क्रतुभिः	यज्ञों द्वारा	हविः भागान्	हविष्यका सब भाग
इज्यमानः	यजन करनेपर	अग्रहीत्	ग्रहण कर लेता था ॥१५॥

अकृष्टपच्या तस्यासीत् सप्तद्वीपवती मही ।
तथा कामदुघा द्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः ॥१६॥

अकृष्टपच्या तस्य आसीत् सप्तद्वीपवती मही तथा कामदुघा द्यौः तु नाना आश्चर्य पदं नभः ॥१६॥

तस्य	उसके लिए	आसीत्	हो गयी थी ।
सप्तद्वीपवती	सातों द्वीपों वाली	द्यौः कामदुघा	अन्तरिक्ष इच्छा-
मही	पृथ्वी		नुसार
अकृष्टपच्या	बिना जोते फसल देने वाली		पदार्थ देनेवाला था ।

नभः	आकाश	पदं	दिखानेका स्थान
नाना आश्चर्य	अनेकों आश्चर्य		हो गया था ॥१६॥

रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः ।
क्षारसीधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥१७॥

रत्नाकराः च रत्न ओघान् तत् पत्न्यः च उहुः उर्मिभिः क्षार सीधु घृत क्षौद्र दधि क्षीर अमृत उदकाः ॥१७॥

क्षार सीधु	खारे पानी, सुरा,	च तत् पत्न्यः	और उसकी पत्नी नदियां
घृत क्षौद्र	घी, इक्षुरस,	उर्मिभिः	अपनी लहरोंसे
दधि क्षीर	दही, दूध,	रत्न ओघन्	रत्नोंकी राशि
अमृत उदकाः	मीठे पानीके	उहुः	ढोती थीं ॥१७॥
रत्नाकराः च	समुद्र भी		

शैला द्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान् द्रुमाः ।
दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥१८॥

शैला द्रोणीभिः आक्रीडं सर्व ऋतुषु गुणान् द्रुमाः दधार लोकपालानां एक एव पृथक् गुणान् ॥१८॥

शैलाः द्रोणीभिः	पर्वत अपनी घाटियोंमें	लोकपालानां	सब लोकपालोंके
आक्रीडं	खेलके स्थान (देते थे)	पृथक् गुणान्	भिन्न-भिन्न गुणोंको
द्रुमाः	वृक्ष	एक एव दधार	उसने अकेले ही धारण किया ॥१८॥
सर्व ऋतुषु	सब ऋतुओंमें		
गुणान्	सब गुणोंको धारण करते		

स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान् प्रियान् ।
यथोपजोषं भुञ्जानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥१९॥

स इत्थं निर्जित ककुब् एकराट् विषयान् प्रियान् यथा उपजोषं भुञ्जानः न अतृप्यत अजित इन्द्रियः ॥१९॥

स इत्थं	वह इस प्रकार	**भुञ्जानः**	भोगता हुआ
निर्जित ककुब्	दिग्विजयी,	**अजित इन्द्रियः**	इन्द्रियोंको न जीतनेसे
एकराट्	एकछत्र सम्राट्		
प्रियान् विषयान्	अपने प्रिय भोगोंको	**अतृप्यत न**	तृप्त नहीं हुआ ॥१९
यथा उपजोषं	यथेच्छ		

एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः ।
कालो महान् व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥२०॥

एवं ऐश्वर्य मत्तस्य दृप्तस्य उच्छास्त्र वर्तिनः कालः महान् व्यतीयाय ब्रह्मशापं उपेयुषः ॥२०॥

ब्रह्मशापं	ब्राह्मण (सनकादि) द्वारा शाप	**दृप्तस्य**	घमंडमें चूर
उपेयुषः	प्राप्त	**उच्छास्त्र**	शास्त्र मर्यादाका
एवं ऐश्वर्य	इस प्रकारके ऐश्वर्य-से	**वर्तिनः**	उलंघन करके चलते हुए
मत्तस्य	मतवाला होकर	**महान् कालः**	बहुत अधिक समय
		व्यतीयाय	बीत गया ॥२०॥

तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः ।
अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम् ॥२१॥

तस्य उग्र दण्ड संविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः अन्यत्र अलब्ध शरणाः शरणं ययुः अच्युतम् ॥२१॥

तस्य उग्र दंड	उसके घोर दण्डसे	**अन्यत्र शरणाः**	दूसरे किसीसे शरण
संविग्नाः	घबड़ाकर	**अलब्ध**	न पाकर
सपालकाः	लोकपालोंके साथ	**अच्युतं**	भगवान् अच्युतकी
सर्वे लोकाः	सब लोग	**शरणं ययुः**	शरणमें गये ॥२१॥

तस्यै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥२२॥

तस्यै नमः अस्तु काष्ठायै यत्र आत्मा हरिः ईश्वरः यद् गत्वा न न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनः अमलाः ॥२२॥

यत्र आत्मा	जहां परमात्मा	संन्यासिनः	संन्यासी
ईश्वरः हरिः	सर्वेश्वर श्रीहरि रहते हैं,	न निवर्तन्ते	नहीं लौटते
		तस्यै काष्ठायै	उस भगवद्धामको
यद् गत्वा	जहां जाकर	नमः अस्तु	नमस्कार है ॥२२॥
शान्ताः अमलाः	शान्त, निर्मल,		

इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः ।
उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥२३॥

इति ते संयत आत्मानः समाहित धियः अमलाः उपतस्थुः हृषीकेशं विनिद्राः वायु भोजनाः ॥२३॥

इति	इस प्रकारसे	वायु भोजनाः	केवल श्वास लेते हुए
संयत आत्मानः	मनको संयमित करके	हृषीकेशं	भगवान् हृषीकेशकी
समाहित धियः	एकाग्र बुद्धिसे	उपतस्थुः	उपासना करने लगे ॥२३॥
ते अमलाः	वे निर्मल लोग		
विनिद्राः	निद्रा त्यागकर		

तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिस्वना ।
सन्नादयन्ती ककुभः साधूनामभयङ्करी ॥२४॥

तेषां आविः अभूत् वाणी अरूपा मेघनिः स्वना सन्नादयन्ती ककुभः साधूनां अभयङ्करी ॥२४॥

तेषां	उनके पास	अभयङ्करी	अभयदायिनी
अरूपा मेघनिः	रूपहीन मेघ गम्भीर	वाणी ककुभः	वाणी दिशाओंको
स्वना	ध्वनि,	सन्नादयन्ती	गुंजित करती
साधूनां	सत्पुरुषोंको	आविः अभूत्	प्रकट हुई ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच–*

मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः ।
मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥२५॥

मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रं अस्तु वः मत् दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेय उपपत्तये ॥२५॥

विबुधश्रेष्ठाः	देवश्रेष्ठो !	**मत् दर्शनं**	मेरा दर्शन
मा भैष्ट	डरो मत,	**भूतानां**	प्राणियोंको
वः सर्वेषां	तुम सब लोगोंका	**सर्वश्रेय**	सम्पूर्ण कल्याण
भद्रं अस्तु	कल्याण हो !	**उपपत्तये**	प्रदान करनेवाला
हि	क्योंकि		है ॥२५॥

ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च ।
तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत ॥२६॥

ज्ञातं एतस्य दौरात्म्यं दैतेय अपसदस्य च तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत् प्रतीक्षत ॥२६॥

एतस्य	इस	**करिष्यामि**	कर दूंगा,
दैतेय अपसदस्य	दुष्ट दैत्यकी	**तावत् कालं**	उस समयकी
दौरात्म्यं ज्ञातं	दुष्टता जानता हूँ,	**प्रतीक्षत**	(आप लोग) प्रतीक्षा
तस्य शान्तिं	उसकी शान्ति		करें ॥२६॥

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥२७॥

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यदा	जब कोई
देवेषु वेदेषु	देवताओं, वेदों,
गोषु विप्रेषु	गौओं, ब्राह्मणों,
साधुषु धर्मे	सत्पुरुषों, धर्म
च मयि	तथा मुझसे
विद्वेषः	विशेष द्वेष करता है,
स वा आशु	वह निश्चय शीघ्र
विनश्यति	नष्ट हो जाता है ॥२७॥

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ।
प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥२८॥

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने प्रह्लादाय यदा द्रुह्येत् हनिष्ये अपि वर अर्जितम् ॥२८॥

निर्वैराय	शत्रुताहीन,
प्रशान्ताय	अत्यन्त शान्त
स्वसुताय	अपने पुत्र
महात्मने	महात्मा
प्रह्लादाय	प्रह्लादसे
यदा द्रुह्येत्	जब द्रोह करेगा
वर अर्जितं अपि	तब वरदानसे शक्तिशाली होनेपर भी
हनिष्ये	(उसे) मार दूंगा ॥२८॥

नारद उवाच–

इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः ।
न्यवर्तन्त गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम् ॥२९॥

इति उक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिव ओकसः न्यवर्तन्त गत उद्वेगा मेनिरे च असुरं हतम् ॥२९॥

लोकगुरुणा	त्रिलोक गुरु भगवान्के
इति उक्ता	ऐसा कहनेपर
दिव ओकसः	स्वर्गके निवासी (देवता)
तं प्रणम्य	उनको प्रणाम करके
न्यवर्तन्त	लौट आये,
च असुरं	तथा असुरको
हतं मेनिरे	मारा गया मान लिया ॥२९॥

तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः ।
प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥३०॥

तस्य दैत्यपतेः पुत्राः चत्वारः परम अद्भुताः प्रह्लादः अभूत् महान् तेषां गुणैः महत् उपासकः ॥३०॥

तस्य दैत्यपतेः	उस दैत्यराजके	**महत् उपासकः**	महापुरुषोंके उपासक
परम अद्भुताः	अत्यन्त अद्भुत	**प्रह्लादः**	प्रह्लाद
चत्वारः पुत्राः	चार पुत्र थे	**महान् अभूत्**	महापुरुष हो गये
तेषां गुणैः	उनमें-से अपने गुणोंसे		॥३०॥

ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥३१॥

ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्यसन्धः जितेन्द्रियः आत्मवत् सर्वभूतानां एकः प्रिय सुहृत्तमः ॥३१॥

ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण-भक्त,	**आत्मवत्**	अपने समान सम-
शीलसम्पन्नः	शीलवान्,		झनेवाले,
सत्यसन्धः	सत्यप्रतिज्ञ,	**एकः प्रिय**	सबके एकमात्र
जितेन्द्रियः	इन्द्रियजयी,		प्रिय और
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंको	**सुहृत्तमः**	अत्यन्त हितैषी थे
			॥३१॥

दासवत्संनतार्याङ्घ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः ।
भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः ।
विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः ॥३२॥

दासवत् सन्नतः आर्य अङ्घ्रिः पितृवत् दीनवत्सलः भ्रातृवत् सदृशे स्निग्धः गुरुषु ईश्वर भावनः विद्या अर्थ रूप जन्म आढ्यः मान स्तम्भ विवर्जितः ॥३२॥

आर्य अङ्घ्रि	बड़ोंके चरणोंमें	गुरुषु	गुरुको
दासवत् सन्नतः	दासके समान विनम्र	ईश्वर भावनः	ईश्वर माननेवाले थे।
पितृवत्	पिताके समान	विद्या अर्थ	विद्या, धन,
दीनवत्सलः	दीनोंपर वात्सल्य रखनेवाले,	रूप जन्म	सौन्दर्य, उच्च-कुलमें जन्मसे
सदृशे	बराबरवालोंसे	आढ्यः	सम्पन्न होनेपर भी
भ्रातृवत् स्निग्धः	भाईके समान प्रेम रखनेवाले	मान स्तम्भः	घमण्ड और हेकड़ीसे
		विवर्जितः	रहित थे ॥३२॥

नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निःस्पृहः
श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक् ।
दान्तेन्द्रियप्राणशरीरधीः सदा
प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः ॥३३॥

न उद्विग्न चित्तः व्यसनेषु निःस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेषु अवस्तु दृक् दान्त इन्द्रिय प्राण शरीर धीः सदा प्रशान्त कामः रहित आसुरः असुरः ॥३३॥

व्यसनेषु	कष्टोंमें	इन्द्रिय प्राण	इन्द्रियों, प्राण,
उद्विग्न चित्तः न	उनका चित्त घबड़ाता नहीं था,	शरीर धीः	शरीर और बुद्धिका
श्रुतेषु दृष्टेषु	सुने हुए और देखे (पारलौकिक-लौकिक)	सदा दान्त	सदा दमन किये थे,
		प्रशान्त कामः	कामनामें शान्त हो गयी थीं
गुणेषु	भोगोंको	असुरः	असुर (होनेपर भी)
अवस्तु दृक्	असत् देखकर उनसे	आसुरः रहितः	आसुरी भावसे रहित थे ॥३३॥
निःस्पृहः	निस्पृह थे।		

यस्मिन्महद्गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः ।
न तेऽधुनापिधीयन्ते यथा भगवतीश्वरे ॥३४॥

यस्मिन् महत् गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिः मुहुः न ते अधुना अपि धीयन्ते यथा भगवति ईश्वरे ॥३४॥

राजन्	राजन् !	**कविभिः**	बुद्धिमानों द्वारा
यथा ईश्वरे	जैसे सर्वेश्वर	**मुहुः गृह्यन्ते**	बार-बार अपनाए जाते हैं,
भगवति	भगवान्‌में		
अधुना अपि	इस समय भी	**ते धीयन्ते न**	वे (अनन्त होनेसे)
यस्मिन्	जिनके		ध्यानमें नहीं आते
महत् गुणा	महान् गुण		॥३४॥

यं साधुगाथासदसि रिपवोऽपि सुरा नृप ।
प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किमुतान्ये भवादृशाः ॥३५॥

यं साधुगाथा सदसि रिपवः अपि सुरा नृप प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किं उत अन्ये भवादृशाः ॥३५॥

नृप	राजन् !	**प्रकुर्वन्ति**	मानकर उद्धृत करते हैं,
रिपवः अपि	शत्रु होनेपर भी	**भवादृशाः अन्ये**	फिर आप जैसे दूसरोंका
सुरा सदसि	देवता सभामें		
साधुगाथा	सत्पुरुषोंकी चर्चामें	**किं उत**	क्या कहना ॥३५॥
यं प्रयिमानं	जिनको प्रमाण		

गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते ।
वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥३६॥

गुणैः अलं असंख्येयैः माहात्म्यं तस्य सूच्यते वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥३६॥

असंख्येयैः	असंख्य	**अलं**	इतना ही पर्याप्त है
गुणैः	गुणोंसे (क्या प्रयोजन)	**यस्य**	जिनकी
		भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें
तस्य माहात्म्यं	उनकी महिमा	**नैसर्गिकी रतिः**	स्वाभाविक प्रीति थी ॥३६॥
सूच्यते	सूचित करनेको		

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया ।
कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥३७॥

न्यस्त क्रीडनकः बालः जडवत् तन् मनः तया कृष्णग्रह गृहीत आत्मा न वेद जगत् ईदृशम् ॥३७॥

बालः क्रीडनकः	शैशवमें भी खिलौनोंको	**जड़वत्**	पागलके समान
		तन् मनः तया	तन्मय होनेसे
न्यस्त	त्यागकर	**जगत् ईदृशं**	जगत्को इस रूपमें
कृष्णग्रह	श्रीकृष्ण रूपी ग्रहसे	**वेद न**	जानते ही नहीं थे ॥३७॥
गृहीत आत्मा	पकड़े चित्त,		

आसीनः पर्यटन्नश्नन् शयानः प्रपिबन् ब्रुवन् ।
नानुसन्धत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥३८॥

आसीनः पर्यटन् अश्नन् शयानः प्रपिबन् ब्रुवन् न अनुसन्धत्त एतानि गोविन्द परिरम्भितः ॥३८॥

गोविन्द	गोविन्दसे	**प्रपिबन् ब्रुवन्**	पीते, बोलते
परिरम्भितः	आलिंगित	**एतानि**	इन सबका
आसीनः पर्यटन्	बैठे, घूमते,	**अनुसन्धत्त**	ध्यान नहीं रहता था ॥३८॥
अश्नन् शयानः	खाते, सोते,		

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः ।
क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥३९॥

क्वचित् रुदति वैकुण्ठ चिन्ता शबल चेतनः क्वचित् हसति तत् चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥३९॥

क्वचित् वैकुण्ठ	कभी भगवान्की	**हसति**	हँसते थे,
चिन्ता शबल	चिन्तासे व्याकुल	**क्वचित्**	कभी
चेतनः रुदति	चित्त रोते थे,	**उद्गायति**	उच्च स्वरसे गाते थे ॥३९॥
क्वचित् तत्	कभी उनके		
चिन्ताह्लाद	चिन्तनके आनन्दसे		

नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ।
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥४०॥

नदति क्वचित् उत्कण्ठः विलज्जः नृत्यति क्वचित् क्वचित् तत् भावनायुक्तः तन्मयः अनुचकार ह ॥४०॥

क्वचित् उत्कण्ठः	कभी खुले गलेसे	**भावनायुक्तः**	भावना करके
नदति	चिल्ला पड़ते थे,	**तन्मयः**	तन्मय होकर
क्वचित् विलज्ज	कभी लज्जा छोड़कर	**अनुचकार ह**	उनका अनुकरण ही करने लगते थे ॥४०॥
नृत्यति	नाचने लगते थे,		
क्वचित् तत्	कभी उनकी		

क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ।
अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः ॥४१॥

क्वचित् उत्पुलकः तूष्णीं आस्ते संस्पर्श निर्वृतः अस्पन्द प्रणय आनन्द सलिल आमीलित ईक्षणः ॥४१॥

क्वचित् संस्पर्श	कभी (भीतर ही भगवान्‌का) स्पर्श करके	**सलिल**	अश्रु बहाते
आनन्द निर्वृतः	आनन्दमग्न	**आमीलित**	नेत्र बन्द
उत्पुलकः	रोमाञ्चित	**ईक्षणः**	किये
प्रणय आनन्द	प्रेमके आनन्दसे	**अस्पन्द तूष्णीं आस्ते**	बिना हिले-डुले चुप रह जाते ॥४१॥

स उत्तमश्लोकपदारविन्दयो-
र्निषेवयाकिञ्चनसङ्गलब्धया ।
तन्वन् परां निर्वृतिमात्मनो मुहु-
र्दुःसङ्गदीनान्यमनःशमं व्यधात् ॥४२॥

स उत्तम श्लोक पदार विन्दयोः निषेवया अकिञ्चन सङ्ग लब्धया तन्वन् परां निर्वृतिं आत्मनः मुहुः दुःसङ्ग आदीना अमनः शमं व्यधात् ॥४२॥

अकिञ्चन सङ्ग	अकिञ्चन भक्तोंके सङ्गसे	आत्मनः	अपने चित्तके
		परां निर्वृतिं	परमानन्दमें
लब्धया	प्राप्त होनेवाली	तन्वन्	मग्न रखते ही थे
उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति भगवान्के	दुःसंग आदीना	कुसंग आदिसे
		अमनः	खिन्नोंजो
पदार विन्दयोः	चरण-कमलोंकी	मुहुः शमं	बार-बार शान्ति
निषेवया	सेवासे	व्यधात्	देते थे ॥४२॥

तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि ।
हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे ॥४३॥

तस्मिन् महाभागवते महाभागे महात्मनि हिरण्यकशिपू राजन् अकरोत् अघं आत्मजे ॥४३॥

राजन्	राजन्,	आत्मजे	अपने पुत्रका
तस्मिन्	उस	हिरण्यककशिपू	हिरण्यकशिपु
महाभागवते	महाभागवत	अघं अकरोत्	अनिष्टकी चेष्टा करने लगा ॥४३॥
महाभागे	महाभाग		
महात्मनि	महात्मा		

युधिष्ठिर उवाच–

देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत ।
यदात्मजाय शुद्धाय पितादात् साधवे ह्यघम् ॥४४॥

देवर्ष एतत् इच्छामः वेदितुं तव सुव्रत यत् आत्मजाय शुद्धाय पिता अदात् साधवे हि अघम् ॥४४॥

सुव्रत देवर्षे	उत्तमव्रती देवर्षि !	शुद्धाय साधवे	शुद्ध सत्पुरुष
एतत् वेदितुं	यह जाननेकी	आत्मजाय	अपने पुत्रका
इच्छामः	हम सब इच्छा करते हैं,	पिता अघं अदात्	पिता ही अनिष्ट करने लगा ॥४४॥
यत्	जिस कारण		

पुत्रान् विप्रतिकूलान् स्वान् पितरः पुत्रवत्सलाः ।
उपालभन्ते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥४५॥

पुत्रान् विप्रतिकूलान् स्वान् पितरः पुत्रवत्सलाः उपालभन्ते शिक्षा अर्थं न एव अघं अपरः यथा ॥४५॥

पुत्रवत्सलाः	पुत्रपर स्नेह रखनेवाले	अर्थं	देनेके लिए
पितरः स्वान्	पिता अपने	उपालभन्ते	डाँटते हैं,
विप्रतिकूलान्	अधिक उलटे चलनेवाले	अपरः यथा	परायेके समान
पुत्रान् शिक्षा	पुत्रोंको शिक्षा	अघं न एव	अनिष्ट नहीं ही करते ॥४५॥

किमुतानुवशान् साधूंस्तादृशान् गुरुदेवतान् ।
एतत् कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ।
पितुः पुत्राय यद् द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥४६॥

किं उत अनुवशान् साधून् तादृशान् गुरुदेवतान् एतत् कौतूहलं ब्रह्मन् अस्माकं विधम प्रभो पितुः पुत्राय यत् द्वेषः मरणाय प्रयोजितः ॥४६॥

अनुवशान्	अपने वशमें रहनेवाले,	तादृशान्	उस प्रकारके
साधून्	सत्पुरुष	गुरुदेवतान्	गुरुजनोंको देवता माननेवाले

किं उत	की तो बात ही क्या	**पितुः पुत्राय**	पिताका पुत्रसे
प्रभो	प्रभो !	**यत् द्वेषः**	जिस कारणसे
एतत् अस्माकं	यह हम लोगोंका		इतना द्वेष कि
कौतूहलं विधम	कौतूहल शान्त कीजिए	**मरणाय प्रयोजितः**	उसे मार डालनेका प्रयत्न किया ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारद उवाच–

पौरोहित्याय भगवान् वृतः काव्यः किलासुरैः ।
शण्डामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके ॥१॥

पौरोहित्याय भगवान् वृतः काव्यः किल असुरैः शण्ड अमर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराज गृह अन्तिके ॥१॥

भगवान् काव्यः	भगवान् शुक्राचार्य	**तस्य सुतौ**	उनके दो पुत्र
किल असुरैः	अरे, असुरों द्वारा	**शण्ड अमर्कौ**	शण्ड और अमर्क
पौरोहित्याय	पुरोहिती करनेके लिए	**दैत्यराज गृह**	दैत्यराजके भवनके
		अन्तिके	समीप (रहते थे)
वृतः	वरण किये गये थे,		॥१॥

तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् ।
पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥२॥

तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदं पाठयामासतुः पाठ्यान् अन्यान् च असुर बालकान् ॥२॥

तौ राज्ञा प्रापितं	वे दोनों राजाके भेजे	**असुर बालकान्**	असुर बालकोंको
		पाठ्यान्	पढ़ाने योग्य विषयों-
नयकोविदं	नीति-निपुण		को
बालं प्रह्लादं	बालक प्रह्लादको	**पाठयामासतुः**	पढ़ाते थे ॥२॥
च अन्यान्	और दूसरे		

यत्तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनु पपाठ च ।
न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ॥३॥

यत् तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवे अनु पपाठ च न साधु मनसा मेने स्व पर असत् ग्रह आश्रयम् ॥३॥

तत्र यत्	वहां जो	**स्वपर**	अपने-परायेके
गुरुणा प्रोक्तं	गुरुजी कहते थे	**असत् ग्रह**	झूठे आग्रहपर
शुश्रुवे	उसे (प्रह्लाद) सुनते थे	**आश्रयं**	अवलम्बित (उस विद्या) को
च अनु पपाठ	और दुहराते भी थे; किन्तु	**मनसा**	मनसे
		साधु न मेने	अच्छा नहीं मानते

एकदासुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पाण्डव ।
पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ॥४॥

एकदा असुरराट् पुत्रं अङ्कं आरोप्य पाण्डव पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यत् भवान् ॥४॥

पाण्डव	युधिष्ठिर !	**पप्रच्छ वत्स**	पूछा 'बेटा !
एकदा असुरराट्	एक बार असुर-राजने	**भवान् यत्**	तुम जो
		साधु मन्यते	उत्तम मानते हो
पुत्रं अङ्कं	पुत्रको गोदमें	**कथ्यतां**	वह बतलाओ' ॥४॥
आरोप्य	बैठाकर		

प्रह्लाद उवाच—

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥५॥

तत् साधु मन्ये असुर वर्य देहिनां सदा समुद्विग्न धियां असत् ग्रहात् हित्वा आत्मपातं गृहं अन्धकूपं वनं गतः यत् हरिं आश्रयेत ॥५॥

असुरवर्य	असुरश्रेष्ठ !
असत् ग्रहात्	असत् पदार्थोंको पकड़नेसे
सदा समुद्विग्न	सदा उद्विग्न
धियां	चित्त रहने वाले
देहिनां	शरीरधारियोंके लिए
तत् साधु मन्ये	मैं यही उत्तम मानता हूँ
यत् आत्मपातं	जो अपना पतन कराने वाले
अन्ध कूपं गृहं	अन्धे कुएँके समान घरको
हित्वा वनं गतः	त्याग कर वनमें जाकर
हरिं आश्रयेत	श्रीहरिका आश्रय ले ॥५॥

नारद उवाच–

श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः ।
जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥ ६ ॥

श्रुत्वा पुत्रगिरः दैत्यः परपक्ष समाहिताः जहास बुद्धिः बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥६॥

दैत्यः	दैत्य (हिरण्यकशिपु)
परपक्ष	शत्रुपक्षका
समाहिताः	समर्थन करने वाली
पुत्रगिरः	पुत्रकी बात
श्रुत्वा जहास	सुनकर ठठाकर हँसा
परबुद्धिभिः	दूसरों के बहकानेसे
बालानां बुद्धिः	बालकोंकी बुद्धि
भिद्यते	बहक जाती है ॥६॥

सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः ।
विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा ॥ ७ ॥

सम्यक् विधार्यतां बालः गुरुगेहे द्विजातिभिः विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैः न भिद्येत अस्य धीः यथा ॥७॥

गुरुगेहे	गुरुजीके घरमें
प्रतिच्छन्नैः	छिपे हुए
विष्णुपक्षैः	विष्णुके पक्षपाती
द्विजातिभिः	ब्राह्मणों द्वारा
अस्य धीः	इसकी बुद्धि
यथा न भिद्येत	जैसे न बहके
बालः	बालककी (वैसे)
सम्यक् विधार्यतां	भली प्रकार देख-रेख करो ॥७॥

गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः ।
प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छन्त सामभिः ॥ ८ ॥

गृहं आनीतं आहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा सामपृच्छन्त सामभिः ॥८॥

गृहं आनीतं	घर पहुँचाये गये	**सामभिः**	फुसलाकर
प्रह्लादं आहूय	प्रह्लादको (पास) बुलाकर	**श्लक्ष्णया वाचा**	मधुर-वाणीसे
		प्रशस्य	प्रशंसा करके
दैत्ययाजकाः	दैत्य पुरोहितोंने	**समपृच्छन्त**	पूछने लगे ॥८॥

गुरुपुत्रोवाच*—

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा ।
बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः ॥ ९ ॥

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा बालान् अति कुतः तुभ्यं एष बुद्धि विपर्ययः ॥९॥

वत्स प्रह्लाद	बेटा प्रह्लाद !		छोटे बालक हो
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	**तुभ्यं बुद्धि**	तुम्हारी बुद्धि
सत्यं कथय	सच बतला दो	**एष कुतः**	यह कैसे
मृषा मा	झूठ मत बोलना	**विपर्ययः**	उलटी हो गयी ॥९॥
बालान् अति	(अभी तुम) बहुत		

बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् ।
भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनन्दन ॥१०॥

बुद्धिभेदः परकृतः उत अहो ते स्वतः अभवत् भण्यतां श्रोतुकामनां गुरूणां कुलनन्दन ॥१०॥

कुलनन्दन	कुलनन्दन !	**अहो**	अहो
गुरूणां	(हम तुम्हारे) गुरुजन	**स्वतः अभवत्**	स्वयं हो गयी है
श्रोतुकामानां	सुनना चाहते हैं कि	**उत परकृतः**	अथवा दूसरोंने कर (बहका) दिया है ॥१०॥
ते बुद्धिभेदः	तुम्हारी (दूसरों से)		

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

प्रह्लाद उवाच—

स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः ।
विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥११॥

स्वः परः च इति असत् ग्राहः पुंसां यत् मायया कृतः विमोहितधियां दृष्टः तस्मै भगवते नमः ॥११॥

विमोहितधियां	मोहग्रस्त बुद्धिवाले	**असत् ग्राहः**	झूठा दुराग्रह
पुंसां	पुरुषोंको	**कृतः दृष्टः**	उत्पन्न होता देखा गया है
यत् मायया	जिनकी मायासे		
स्वः पर इति	'अपना-पराया' इस प्रकारका	**तस्मै भगवते**	उन भगवान्‌को
		नमः	नमस्कार ॥११॥

स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ।
अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगतासती ॥१२॥

स यदा अनुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिः विभिद्यते अन्य एष तथा अन्यः अहं इति भेदगता असती ॥१२॥

एष अन्यः	'यह दूसरा है	**पशुबुद्धिः**	पशुबुद्धि
तथा अन्यः	और इससे भिन्न	**स यदा अनुव्रतः**	वे जब अनुग्रह करते हैं
अहं इति	मैं हूँ' इस प्रकारकी	**विभिद्यते**	(तब) नष्ट होती है ॥१२॥
भेदगता	भेदभावापन्ना		
पुंसां असती	पुरुषोंकी झूठी		

स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभि-
र्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ।
मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो
ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम् ॥१३॥

स एष आत्मा स्वपर इति अबुद्धिभिः दुरत्यय अनुक्रमणः निरूप्यते मुह्यन्ति यद् वर्त्मनि वेदवादिनः ब्रह्मा आदयः हि एष भिनत्ति मे मतिम् ॥१३॥

स एष आत्मा	वही (परमात्मा) यह आत्मा है,
अबुद्धिभिः	अज्ञानी लोगों द्वारा
स्वपर इति	'अपने-पराये' इस रूपमें
निरूप्यते	निरूपण किया जाता है
हि	क्योंकि
अनुक्रमणः	(इसका ठीक) अनुगमन
दुरत्यय	दुष्पार है
यद् वर्त्मनि	जिसके मार्गमें
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मा आदि
वेदवादिनः	वेदवक्ता भी
मुह्यन्ति	मोहित हो जाते हैं,
एष मे	(वही) यह (परमात्मा) मेरी
मतिं भिनत्ति	बुद्धिको (दूसरोंसे) भिन्न करता है ॥१३॥

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ ।
तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥१४॥

यथा भ्राम्यति अयः ब्रह्मन् स्वयं आकर्ष सन्निधौ तथा मे भिद्यते चेतः चक्रपाणेः यदृच्छया ॥१४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
यथा अयः	जैसे लोहा
आकर्ष सन्निधौ	चुम्बकके समीप
स्वयं भ्राम्यति	स्वयं खिंच जाता है
तथा मे चेतः	वैसे ही मेरा चित्त
चक्रपाणेः	भगवान् चक्र-पाणिकी
यदृच्छया	स्वतंत्र इच्छासे
भिद्यते	(उनकी ओर) खिंच जाता है ॥१४॥

नारद उवाच–

एतावद्ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः ।
तं निर्भर्त्स्यार्थ कुपितः स दीनो राजसेवकः ॥१५॥

एतावत् ब्राह्मणाय उक्त्वा विरराम महामतिः तं निर्भर्त्स्य अथ कुपितः स दीनः राजसेवकः ॥१५॥

ब्राह्मणाय	ब्राह्मणों (गुरुपुत्रों) से	अथ स	तब वे
		दीनः राजसेवकः	बेचारे राजाके सेवक
एतवत् उक्त्वा	इतना ही कहकर		
महामतिः	महाबुद्धिवान (प्रह्लाद)	कुपितः	क्रोध करके
		तं निर्भत्स्य	उनको डांटने लगे
विरराम	रुक (चुप हो) गये,		॥१५॥

गुरुपुत्रौवाच*

आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः ।
कुलाङ्गारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः ॥१६॥

आनीयतां अरे वेत्रं अस्माकं अयशः करः कुलाङ्गारस्य दुर्बुद्धेः चतुर्थः अस्य उदितः दमः ॥१६॥

अरे वेत्रं	अरे (कोई) बेंत तो	कुलाङ्गारस्य	कुलांगारके लिए
आनीयतां	लाओ,	चतुर्थः दमः	चौथा उपाय दण्ड ही
अस्माकं	(यह) हम लोगोंको		
अयशः करः	अपयश देनेवाला है,	उदितः	उपयुक्त है ॥१६॥
अस्य दुर्बुद्धेः	इस कुबुद्धि		

दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः ।
यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥१७॥

दैतेय चन्दनवने जातः अयं कण्टकद्रुमः यत् मूल उन्मूल परशोः विष्णोः नालायितः अर्भकः ॥१७॥

दैतेय	दैत्यवंश रूपी	अयं कण्टक द्रुमः	यह कांटेका वृक्ष (बबूल)
चन्दनवने	चन्दनवनमें		

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

जातः	(होकर) उत्पन्न हुआ है,	विष्णोः	विष्णुका
यत् मूल उन्मूल परशोः	जिसे जड़से काटनेके लिए कुल्हाड़ेके समान	अर्भकः	यह बालक
		नालायितः	बेंट (हत्था) बन रहा है ॥१७॥

नारद उवाच—*

इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः ।
प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनम् ॥१८॥

इति तं विविधः उपायैः भीषयत् तर्जन आदिभिः प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्य उपपादनम् ॥१८॥

इति	इस प्रकार	त्रिवर्गस्य	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) को
विविधः उपायैः	अनेक प्रकारके उपाय	उपपादनं	प्राप्त करनेकी शिक्षा
भीषयत् तर्जन आदिभिः	डराने-धमकाने आदिसे	ग्राहयामास	ग्रहण करायी ॥१८॥
तं प्रह्लादं	उन प्रह्लादजीको		

तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयम् ।
दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलङ्कृतम् ॥१९॥

तत एनं गुरुः ज्ञात्वा ज्ञात ज्ञेय चतुष्टयं दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टं लअङ्कृतं ॥१९॥

तत एनं	तब फिर (कुछ दिनपर) इनको	ज्ञेय चतुष्टयं	जानने योग्य चारों (साम, दान, अर्थ, भेद) को
गुरुः	गुरुने		

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ज्ञात ज्ञात्वा	जाना हुआ जानकर	अलङ्कृतं	आभूषित
मातृमृष्टं	माता द्वारा स्नान कराके	दैत्येन्द्रं शंयामास	दैत्यराजको दिखलाया ॥१९॥

पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्याशिषासुरः ।
परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम् ॥२०॥

पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्य आशिषः असुरः परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमां आप निर्वृतिम् ॥२०॥

पादयोः पतितं	चरणोंपर गिरे	दोर्भ्यां चिरं	भुजाओंसे उठाकर देर तक
बालं आशिषः	बालकको आशीर्वाद देकर	परिष्वज्य	आलिंगन करके
प्रतिनन्द्य	अभिनन्दित करके	परमां निर्वृतिं	परम शान्ति
असुरः	असुरराजने	आप	प्राप्त की ॥२०॥

आरोप्याङ्कमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलाम्बुभिः ।
आसिञ्चन् विकसद्वक्त्रमिदमाह युधिष्ठिर ॥२१॥

आरोप्य अङ्कम् अवघ्राय मूर्धनि अश्रुकला अम्बुभिः आसिञ्चन् विकसत् वक्त्रं इदं आह युधिष्ठिर ॥२१॥

युधिष्ठिर	युधिष्ठिर !	आसिञ्चन्	सींचते हुए
अङ्कम् आरोप्य	गोदमें बैठाकर	अवघ्राय	सूंघकर
अश्रुकला	आंसूकी बूंदोंके	विकसत् वक्त्रं	खिले (प्रसन्न) मुखसे
अम्बुभिः मूर्धनि	जलसे सिरको	इदं आह	यह बोला ॥२१॥

हिरण्यकशिपुरुवाच—

प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किञ्चिदुत्तमम् ।
कालेनैतावताऽऽयुष्मन् यदशिक्षद् गुरोर्भवान् ॥२२॥

प्रह्लादन् ऊच्यतां तात स्वधीतं किञ्चित् उत्तमं कालेन एतावता आयुष्मन् यत् अशिक्षत् गुरोः भवान् ॥२२॥

आयुष्मन् तात	आयुष्मन् बेटा	**गुरोः अशिक्षत्**	गुरुसे सीखा है
प्रह्लादन्	प्रह्लाद !	**स्वधीतं**	उस अपने पढ़ेमें-से
एतावता कालेन	इतने समय तक	**किञ्चित् उत्तमं**	कोई श्रेष्ठ बात
यत् भवान्	जो तुमने	**ऊच्यतां**	सुनाओ ॥२२॥

प्रह्लाद उवाच--

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥२३॥

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनं अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्म निवेदनम् ॥२३॥

विष्णोः	श्रीहरिका	**अर्चनं वन्दनं**	अर्चन, वन्दन,
श्रवणं कीतनं	श्रवण, कीर्तन,	**दास्यं सख्यं**	दास्य, सख्य
स्मरणं पाद-	स्मरण, पाद-	**आत्म निवेदनं**	आत्म निवेदन ॥२३॥
सेवनं	सेवन,		

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥२४॥

इति पुंसा अर्पिता विष्णौ भक्तिः चेत् नव लक्षणा क्रियते भगवति अद्धा तत् मन्ये अधीतं उत्तमम् ॥२४॥

इति नव लक्षणा	इस प्रकार नौ लक्षणोंवाली	**चेत् भक्तिः**	यदि भक्ति
पुंसा भगवति	पुरुषोंकी भगवान्	**अद्धा क्रियते**	भली प्रकार की जाय
विष्णौ अर्पिता	विष्णुके प्रति समर्पित	**तत् उत्तमं अधीतं मन्ये**	तो उसे उत्तम अध्ययन मानता हूँ ॥२४॥

नारद उवाच–*

निशम्यैतत्सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥२५॥

निशम्य एतत् सुतवचः हिरण्यकशिपुः तदा गुरुपुत्रं उवाच इदं रुषा प्रस्फुरित अधरः ॥२५॥

एतत् सुतवचः	यह पुत्रकी बात	प्रस्फुरित अधरः	फड़कते ओष्ठ
निशम्य	सुनकर	गुरुपुत्रं	गुरुपुत्रोंसे
हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपु	इदं उवाच	यह बोला ॥२५॥
तदा रुषा	उस समय क्रोधसे		

हिरण्यकशिपुरुवाच–*

ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षं श्रयतासता ।
असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥२६॥

ब्रह्मबन्धो किं एतत् ते विपक्षं श्रयता असता असारं ग्राहितः बालः मां अनादृत्य दुर्मते ॥२६॥

ब्रह्मबन्धो	अधम ब्राह्मण !	असता	तुझ दुष्टने
दुर्मते	दुर्बुद्धि	मां अनादृत्य	मेरी उपेक्षा करके
किं एतत् ते	क्या यह तेरा काम है ?	बालः	बालकको
विपक्षं श्रयता	विरोधी पक्ष अपनाकर	असारं ग्राहितः	निःसार शिक्षा दी ॥२६॥

सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः ।
तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ॥२७॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सन्ति हि असाधवः लोके दुः मैत्राः छद्मवेषिणः तेषां उदेति अघं काले रोगः पातकिनां इव ॥२७॥

हि	क्योंकि	पातकिनां	पाप करनेवालोंके
लोके	संसारमें	रोगः इव	रोगके समान
दुः मैत्राः	बुरे मित्रके	तेषां अघः	उनका पाप
छद्मवेषिणः	कपट-वेशमें	काले उदेति	समयपर प्रगट हो
असाधवः सन्ति	दुष्ट लोग हैं		जाता है ॥२७॥

गुरुपुत्र उवाच—

न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं
सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो ।
नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्
नियच्छ मन्युं कददाः स्म मा नः ॥२८॥

न मत् प्रणीतं न परप्रणीतं सुतः वदति एष तव इन्द्र शत्रो नैसर्गिकी इयं मतिः अस्य राजन् नियच्छ मन्युं कददाः स्म मा नः ॥२८॥

इन्द्रशत्रो	इन्द्रशत्रो !	अस्य इयं मतिः	इसकी यह बुद्धि
राजन्	महाराज !	नैसर्गिकी	स्वाभाविक है,
न मत् प्रणीतं	न मेरा पढ़ाया,	मन्युं नियच्छ	(अतः) क्रोध रोकिये
न परप्रणीतं	न किसी दूसरेका पढ़ाया	नः मा कददाः	हमरा अपमान मत कीजिए ॥२८॥
एष तव सुतः	यह तुम्हारा पुत्र		
वदति	कह रहा है,		

नारद उवाच—

गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरः सुतम् ।
न चेद्गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्रासती मतिः ॥२९॥

गुरुणा एवं प्रतिप्रोक्तः भूय आह असुरः सुतं न चेत् गुरुमुखी इयं ते कुतः अभद्रासती मतिः ॥२९॥

एवं गुरुणा	इस प्रकार गुरुके	गुरुमुखी न	गुरुमुखसे सुनी बात
प्रतिप्रोक्तः	प्रत्युत्तर देनेपर		नहीं है ।
असुरः सुतं	असुरराजने पुत्रसे	ते	तो तुम्हारी
भूय आह	फिर पूछा	अभद्रासती मतिः	कुबुद्धि
चेत् इयं	यदि यह	कुतः अभूत्	कहांसे हो गयी ॥२९॥

प्रह्लाद उवाच—

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा
मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं
पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥३०॥

मतिः न कृष्णे परतः स्वतः वा मिथः अभिपद्येत गृहव्रतानां अदान्त गोभिः विशतां तमिस्रं पुनः पुनः चर्वित चर्वणानाम् ॥३०॥

अदान्त गोभिः	अजित इन्द्रियों द्वारा	मतिः परतः	बुद्धि दूसरेके द्वारा
पुनः पुनः	बार-बार	वा स्वतः	अथवा स्वतः
चर्वित चर्वणानां	भोगे हुएको ही भोगनेवाले	मिथः	या दोनों मिलकर भी
तमिस्रं विशतां	नरककी ओर जाते	कृष्णे	भगवान् कृष्णमें
गृहव्रतानां	गृहासक्त लोगोंकी	न अभिपद्येत	नहीं लगती ॥३०॥

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं
दुराशया ये बहिरर्थमानिनः ।
अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना
वाचीशतन्त्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥३१॥

न ते विदुः स्वार्थ गतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिः अर्थ मानिनः अन्धा यथा अन्धैः उपनीय माना वाचि ईश तन्त्यां उरुदाम्नि बद्धाः ॥३१॥

यथा अन्धा	जैसे अन्धे	बहिः अर्थ	बाह्य विषयोंको ही
अन्धैः	अन्धे द्वारा	मानिनः	माननेवाले
उपनीय माना	ले जाये जाते हो	ये दुराशया	जो दुरभिप्राय लोग
ईश वाचि	ईश्वरकी वाणी वेदरूपी	स्वार्थ गतिं	अपने परम पुरुषार्थ स्वरूप
तन्त्यां	रस्सीमें लगी	ते विष्णुं	वे भगवान् विष्णुको
उरुदाम्नि	बहुत-सी रस्सियोंसे	न विदुः	नहीं जानते ॥३१॥
बद्धाः	बाँधे हुए		
हि	क्योंकि		

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥३२॥

न एषां मतिः तावत् उरुक्रम अङ्घ्रिं स्पृशति अनर्थ अपगमः यत् अर्थः महीयसां पादरजः अभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥३२॥

एषां मतिः	इनकी बुद्धि	यावत्	जब-तक
अनर्थ अपगमः	अनर्थ निवारक	निष्किञ्चनानां	अकिञ्चन
उरुक्रम अङ्घ्रिं	भगवान् अनन्त पराक्रमके चरणोंको	महीयसां	महापुरुषोंकी
		पादरजः	चरणरजमें
यत् अर्थः	जो सच्चे स्वार्थ हैं	अभिषेकं	स्नान करना
तावत्	तब-तक	न वृणीत	नहीं वरण कर लेती ॥३२॥
न स्पृशति	स्पर्श नहीं करती		

नारद उवाच–*

इत्युक्त्वोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा ।
अन्धीकृतात्मा स्वोत्सङ्गान्निरस्यत महीतले ॥३३॥

इति उक्त्वा उपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा अन्धीकृत आत्मा स्व उत्सङ्गात् निरस्यत महीतले ॥३३॥

इति उक्त्वा	इतना कहकर	आत्मा	बुद्धिके कारण
उपरतं पुत्रं	चुप हुए पुत्रको	स्व उत्सङ्गात्	अपनी गोदसे
हिरण्यकशिपू	हिरण्यकशिपुने	महीतले	पृथ्वीपर
रुषा अन्धीकृत	क्रोधसे अन्धी बनी	निरस्यत	पटक दिया ॥३३॥

आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः ।

आह अमर्ष रुषा आविष्टः कषायी भूत लोचनः

अमर्ष रुषा	असहनशीलता और क्रोधसे	लोचनः	नेत्रोंवाला
कषायी भूत	लाल हो गये	आह	बोला

हिरण्यकशिपुरुवाच–*

वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैर्ऋताः ॥३४॥

बध्यतां आशु अयं वध्यः निःसारयत नैर्ऋताः ॥३४॥

नैर्ऋताः	दैत्यो	आशु बध्यतां	शीघ्र मार दो
अयं निःसारयत	इसे निकाल दो ।	बध्यः	यह मार ही देने योग्य है ॥२४॥

अयं मे भ्रातृहा सोऽयंहित्वा स्वान् सुहृदोऽधमः ।
पितृव्यहन्तुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥३५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अयं मे भ्रातृ हा सः अयं हित्वा स्वान् सुहृदः अधमः पितृव्य हन्तुः यः पादौ विष्णोः दासवत् अर्चति ॥३५॥

अयं अधमः	यह अधम	सः पितृव्य	उसी चाचाको
स्वान् सुहृदः	अपने सम्बन्धियोंको	हन्तुः	मारनेवाले
हित्वा	छोड़कर	विष्णोः पादौ	विष्णुके चरणोंकी
यः मे भ्रातृ हा	जो मेरे भाईको मारनेवाला है	अयं दासवत्	यह दासके समान
		अर्चति	पूजा करता है ॥३५॥

विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमञ्जसः ।
सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद्यः पञ्चहायनः ॥३६॥

विष्णोः वा साधु असौ किं नु करिष्यति असमञ्जसः सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोः अहः अद्यः पञ्च हायनः ॥३६॥

अहः अद्यः	दिनोंके हिसाबसे अभी यह	असमञ्जसः	(त्यागकर) अविश्वसनीय हो गया
पञ्च हायनः	पांच वर्षका है (पर)	असौ विष्णोः	यह विष्णुका ही
पित्रोः	माता-पिताके	नु किं साधु	भला क्या हित
दुस्त्यजं सौहृदं	दुस्त्याज्य सौहार्द्रको	करिष्यति	करेगा ॥३६॥

परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं
स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ।
छिन्द्यात्तदङ्गं यदुतात्मनोऽहितं
शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात् ॥३७॥

परः अपि अपत्यं हित कृत् यथा औषधं स्वदेहजः अपि आमयवत् सुतः अहितः छिन्द्यात् तत् अङ्गं यद् उत आत्मनः अहितं शेषं सुखं जीवति यत् विवर्जनात् ॥३७॥

परः अपि	दूसरेका भी	अपत्यं	पुत्र
हित् कृत	भला करनेवाला	औषधं यथा	औषधिके समान है,

अहितः	अहित करनेवाला	तत् अङ्गं	उस अंगको
स्वदेहजः	अपने शरीरसे	छिन्द्यात्	काट दें
अपि सुतः	उत्पन्न पुत्रभी	यत् विवर्जनात्	जिसको त्याग देनेसे
आमयवत्	रोगके समान है,	शेषं सुखं	शेष सब सुखसे
यद् उत	जो कहीं	जीवति	जीवित रहते हैं
आत्मनः	अपनेको ही		॥३७॥
अहितं	हानिकारक हो		

सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः सम्भोजशयनासनैः ।
सुहृल्लिङ्गधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेन्द्रियम् ॥३८॥

सर्वैः उपायैः हन्तव्यः सम्भोज शयन आसनैः सुहृत् लिङ्ग धरः शत्रुः मुनेः दुष्टं इव इन्द्रियम् ॥३८॥

दुष्टं इन्द्रियं	दुष्ट (भोग लोलुप) इन्द्रियां	सम्भोज शयन आसनैः	भोजन करते, सोते, बैठे (किसी दशामें)
मुनेः इव	मुनिके लियेके समान	सर्वैः उपायैः	सब उपायोंसे
सुहृत् लिङ्ग धरः शत्रुः	सम्बन्धीका रूप धारण किये (यह) शत्रु है ।	हन्तव्यः	मार डालने योग्य है ॥३८॥

नारद उवाच—*

नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः ।
तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥३९॥

नैर्ऋताः ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः तिग्म दंष्ट्र कराल आस्याः ताम्रश्मश्रु शिरोरुहाः ॥३९॥

ते शूलपाणयः	वे हाथमें भाला लिए	कराल आस्याः	भयानक मुख
तिग्म दंष्ट्र	तीक्ष्ण दाढ़ोंवाले	ताम्रश्मश्रु	लाल दाढ़ी और

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

शिरोरुहाः	केशोंवाले	वै समादिष्टा	निश्चित आदेश दिये जानेपर ॥३९॥
नैर्ऋताः	दैत्य		
भर्त्रा	अपने स्वामी द्वारा		

नदन्तो भैरवान्नादांश्छिन्धि भिन्धीति वादिनः ।
आसीनं चाहनञ् शूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥४०॥

नदन्तः भैरवान् नादान् छिन्धि भिन्धि इति वादिनः आसीनं च अहनञ् शूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥४०॥

छिन्धि भिन्धि	'काट दो, छेद डालो'	नदन्तः	चिल्लाते हुए
इति वादिनः	ऐसा कहते	आसीनं प्रह्लादं	बैठे हुए प्रह्लादको
च भैरवान्	तथा भयंकर	सर्वमर्मसु	सब मर्म स्थानोंमें
नादान्	गर्जनासे	शूलैः अहनञ्	भालोंसे मारा ॥४०॥

परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि ।
युक्तात्मन्यफला आसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः ॥४१॥

परे ब्रह्मणि अनिर्देश्ये भगवति अखिल आत्मनि युक्त आत्मनि अफला आसन् अपुण्यस्य इव सत् क्रियाः ॥४१॥

अपुण्यस्य	पुण्यहीनके	भगवति	भगवान्‌में
सत् क्रियाः इव	सत् कर्मोंके समान	युक्त आत्मनि	चित्त लगाये (प्रह्लादके)
अनिर्देश्ये	जिनका निर्देश नहीं हो सकता	अफला आसन्	(ऊपर किये आघात) निष्फल हो गये ॥४१॥
परे ब्रह्मणि	उन परमब्रह्म		
अखिल आत्मनि	सर्वात्मा		

प्रयासेऽपहृते तस्मिन् दैत्येन्द्रः परिशङ्कितः ।
चकार तद्वधोपायान्निर्बन्धेन युधिष्ठिर ॥४२॥

प्रयासे अपहृते तस्मिन् दैत्येन्द्रः परिशङ्कितः चकार तत् वध उपायान् निर्बन्धेन युधिष्ठिर ॥४२॥

युधिष्ठिर	युधिष्ठिर !	परिशङ्कितः	अत्यन्त शंकित होकर
तस्मिन्	उन (प्रह्लाद) पर	निर्बन्धेन	हठ पूर्वक
प्रयासे अपहृते	(किये गये) प्रयत्नके विफल हो जानेपर	तत् वध	उसके बधके
दैत्येन्द्रः	दैत्यराजने	उपायान्	उपाय
		चकार	किये ॥४२॥

दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः ।
मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥४३॥

दिग्गजैः दन्दशूकैः च अभिचारैः अवपातनः मायाभिः सन्निरोधैः च गरदानैः अभोजनैः ॥४३॥

दिग्गजैः	हाथियोंसे (कुचलवाकर)	अवपातनैः	(ऊँचेसे) गिराकर,
दन्दशूकैः	सर्पों द्वारा (उनके बीचमें डालकर)	मायाभिः	माया-प्रयोग करके,
च अभिचारैः	और अभिचार (मारण-प्रयोग) करके	सन्निरोधैः	(कोठरीमें) बन्द करके,
		गरदानैः	विष देकर
		च अभोजनैः	तथा भोजन न देकर ॥४३॥

हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि ।
न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम् ।
चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥४४॥

हिम वायु अग्नि सलिलैः पर्वत आक्रमणैः अपि न शशाक यदा हन्तुं अपापं असुरः सुतम् चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तः तत् कर्तुं न अभ्यपद्यत ॥४४॥

हिम	बरफसे (दबाकर)	सलिलैः	जलमें (डुबाकर)
वायु	अन्धड़ (में डालकर)	पर्वत	पर्वतोंसे
अग्नि	अग्निसे (जलती चितामें डालकर)	आक्रमणैः अपि	दबाकर-कर भी
		यदा असुरः	जब वह दैत्य

अपापं सुतं	अपने निष्पाप पुत्रको	तत् कर्तुं	उसे (दूर) करनेका
हन्तुं न शशाक	मार नहीं सका,	न अभ्यपद्यत	(उपाय) नहीं पाता
दीर्घतमां चिन्तां	बहुत बड़ी चिन्ता		था ॥४४॥
प्राप्तः	मिल गयी (हो गयी)।		

एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः ।
तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥४५॥

एष मे बहु असाधु उक्तः वधः उपायाः च निर्मिताः तैः तैः द्रोहैः असत् धर्मैः मुक्तः स्वेन एव तेजसा ॥४५॥

मे एष	मैंने इसे	तैः तैः द्रोहैः	उन-उन शत्रुतापूर्ण
बहु असाधु	बहुत बुरा-भला	असत् धर्मैः	दुर्व्यवहारोंसे
उक्तः	कहा	स्वेन एव	अपने ही
च वधः उपायाः	और मारनेके उपाय	तेजसा मुक्तः	तेजसे बच गया
निर्मिताः	भी किये		॥४५॥

वर्तमानोऽविदूरे वै बालोऽप्यजडधीरयम् ।
न विस्मरति मेऽनार्यं शुनःशेप इव प्रभुः ॥४६॥

वर्तमानः अविदूरे वै बालः अपि अजडधीः अयं न विस्मरति मे अनार्यं शुनः शेप इव प्रभुः ॥४६॥

अयं बालः अपि	यह बालक होनेपर भी	प्रभुः	समर्थ है,
अजडधीः	समझार है,	शुनः शेप इव	शुनःशेपकी भांति*
अविदूरे वै	समीप ही डटा	मे अनार्यं	मेरी बुराइयोंको
वर्तमानः	रहता है,	न विस्मरति	नहीं भूलेगा ॥४६॥

---

* शुनःशेपको उसके पिताने बलि देनेके लिए बेच दिया था; किन्तु वह वरुणकी स्तुति करके बच गया और फिर पिताके पास नहीं लौटा। उसने विश्वामित्रको पिता बना लिया।

अप्रमेयानुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमरः ।
नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥४७॥

अप्रमेय अनुभावः अयं अकुतश्चित् भयः अमरः नूनं एतत् विरोधेन मृत्युं मे भविता न वा ॥४७॥

अयं अप्रमेय	यह अमाप	नूनं एतत्	निश्चय इसके
अनुभावः	प्रभाव वाला है,	विरोधेन	विरोधसे
अकुतश्चित्	किसीसे भी नहीं	मे मृत्युं भविता	मेरी मृत्यु होगी,
भयः	डरता	वा न	अथवा न भी हो
अमरः	अमर है,		॥४७॥

इति तं चिन्तया किञ्चिन्म्लानश्रियमधोमुखम् ।
शण्डामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः ॥४८॥

इति तं चिन्तया किञ्चित् म्लान श्रियं अधोमुखं शण्ड अमर्काः औशनसौ विविक्त इति ह ऊचतुः ॥४८॥

इति तं	इस प्रकार उसे	विविक्त	एकान्तमें
चिन्तया	चिन्तासे	औशनसौ	शुक्राचार्यके पुत्र
किञ्चित्	कुछ	शण्ड अमर्काः	शण्ड और अमर्कने
म्लान श्रियं	मलिन कान्ति	इति ह	इस प्रकार निश्चयसे
अधोमुखं	मुख लटकाये-से	ऊचतुः	कहा ॥४८॥

जितं त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवो-
र्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् ।
न तस्य चिन्त्यं तव नाथ चक्ष्महे
न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ॥४९॥

जितं त्वया एकेन जगत् त्रयं भ्रुवोः विजृम्भण त्रस्त समस्त धिष्ण्यपं न तस्य चिन्त्यं तव नाथ चक्ष्महे न वै शिशूनां गुण दोषयोः पदम् ॥४९॥

नाथ	स्वामी !
एकेन त्वया	अकेले आपने
जगत् त्रयं जितं	त्रिभुवन विजय किया है,
विजृम्भण	(आपके) जम्हाई लेनेपर
समस्त धिष्ण्यपं	सब देवता
त्रस्त	डर जाते हैं,
तस्य	उस (आप) के लिए
चिन्त्यं	चिन्ता करने योग्य
चक्ष्महे न	(हम कुछ) देखते नहीं
शिशूनां	बच्चोंके
गुण दोषयोः	गुण-दोषोंका
पदं वै न	स्थिर स्थिति नहीं ही होती ॥४९॥

इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्ध्वा
निधेहि भीतो न पलायते यथा ।
बुद्धिश्च पुंसो वयसाऽऽर्यसेवया
यावद् गुरुर्भार्गव आगमिष्यति ॥५०॥

इमं तु पाशैः वरुणस्य बद्ध्वा निधेहि भीतः न पलायते यथा बुद्धिः च पुंसः वयसा आर्य सेवया यावत् गुरुः भार्गव आगमिष्यति ॥५०॥

इमं तु	इसे तो
वरुणस्य पाशैः	वरुणके पाशमें
बद्ध्वा निधेहि	बाँध रखिये
भीतः यथा	डरकर जिससे
पलायते न	भाग न जाय
यावत् गुरुः	जब तक गुरु
भार्गव	शुक्राचार्य
आगमिष्यति	आ न जायँ
पुंसः बुद्धिः	पुरुषोंको बुद्धि
वयसा	बड़ी आयु होनेपर
च आर्य सेवया	तथा श्रेष्ठ पुरुषोंकी सेवासे आती है ॥५०॥

तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् ।
धर्मा ह्यस्योपदेष्टव्या राज्ञां ये गृहमेधिनाम् ॥५१॥

तथा इति गुरु पुत्र उक्तं अनुज्ञाय इदं अब्रवीत् धर्मा हि अस्या उपदेष्टव्या राज्ञां ये गृहमेधिनाम् ॥५१॥

गुरु पुत्र उक्तं	गुरुपुत्रोंके कहेको	गृहमेधिनां	गृहस्थ
तथा इति	'ऐसा ही हो'	राज्ञां	राजाओंके हैं
अनुज्ञाय	अनुमति देकर	हि अस्या	वही इसको
इदं अब्रवीत्	यह बोला	उपदेष्टव्या	उपदेश करना
ये धर्मा	'जो धर्म		चाहिए ॥५१॥

धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः ।
प्रह्लादायोचतू राजन् प्रश्रितावनताय च ॥५२॥

धर्मं अर्थं च कामं च नितरां च अनुपूर्वशः प्रह्लादाय ऊचतू राजन् प्रश्रित अवनताय च ॥५२॥

राजन्	राजन् !	नितरां च	आत्यन्तिक बतलाते
प्रश्रित	विनयसे		हुए ही
अवनताय	झुके हुए	च अनुपूर्वशः	तथा क्रमशः
प्रह्लादाय च	प्रह्लादको तो	ऊचतुः	शिक्षा देने लगे
धर्मं अर्थं	धर्म, अर्थ,		॥५२॥
च कामं	और कामको		

यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् ।
न साधु मेने तच्छिक्षां द्वन्द्वारामोपवर्णिताम् ॥५३॥

यथा त्रिवर्गं गुरुभिः आत्मने उपशिक्षितं न साधु मेने तत् शिक्षां द्वन्द्व आराम उपवर्णिताम् ॥५३॥

द्वन्द्व आराम	(राग-द्वेषादि) द्वन्दोंमें सुख लेने वालोंके लिए	गुरुभिः	गुरुओं द्वारा
		यथा आत्मने	जैसी अपनेको दी गयी
उपवर्णितां	वर्णन की गयी	तत् शिक्षां	उस शिक्षाको
त्रिवर्गं	अर्थ, धर्म, कामकी	साधु न मेने	अच्छा नहीं माना
उपशिक्षितं	शिक्षा		॥५३॥

यदाऽऽचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु ।
वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥५४॥

यदा आचार्यः परावृत्तः गृहमेधीय कर्मसु वयस्यैः बालकैः तत्र स उपहूतः कृतक्षणैः ॥५४॥

यदा आचार्यः	जब आचार्य	**कृतक्षणैः**	छुट्टी मिलनेपर
गृहमेधीय	गृहस्थोचित	**वयस्यैः बालकैः**	समवयस्क बालकोंने
कर्मसु	किसी कामसे	**स उपहूतः**	वे (प्रह्लाद) बुलाये गये ॥५४॥
परावृत्तः	(कहीं) बाहर चले गये		

अथ ताञ् श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः ।
उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥५५॥

अथ तान् श्लक्ष्णया वाचा प्रति आहूय महाबुधः उवाच विद्वान् तत् निष्ठां कृपया प्रहसन् इव ॥५५॥

महाबुधः	परम बुद्धिमान् (प्रह्लाद) ने	**तत् निष्ठां**	उन सबकी गति (आन्तरिक स्थिति)
अथ तान्	तब उनको	**विद्वान्**	जानकर
श्लक्ष्णया वाचा	मधुर वाणीसे	**कृपया**	कृपासे
प्रति आहूय	अपने पास बुलाकर	**प्रहसन् इव**	हँसते हुएसे
		उवाच	बोले ॥५५॥

ते तु तद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः ।
बाला नदूषितधियो द्वन्द्वारामेरितेहितैः ॥५६॥

ते तु तत् गौरवात् सर्वे त्यक्त क्रीडा परिच्छदाः बाला न दूषित धियः द्वन्द्व आराम ईरितैः इहितैः ॥५६॥

द्वन्द्व आराम	(सुख दुःखादि) विषय भोगोंमें सुख माननेवालोंके	**ते बाला तु**	वे बालक तो
		सर्वे	सबने
		तत् गौरवात्	उन (प्रह्लाद) में आदर बुद्धि होनेसे
ईरितैः ईहितैः	उपदेशों और चेष्टाओंसे	**क्रीडा परिच्छदाः**	खेलनेके उपकरण
न दूषित धियः	(अभी) बुद्धि दूषित नहीं हुई थी	**त्यक्त**	छोड़ दिये ॥५६॥

पर्युपासत राजेन्द्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः ।
तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ॥५७॥

पर्युपासत राजेन्द्र तत् न्यस्त हृदय ईक्षणाः तान् आह करुणः मैत्रः महाभागवतः असुरः ॥५७॥

राजेन्द्र	महाराज !	**महाभागवतः**	परम भगवद्-भक्त
तत्	उन (प्रह्लाद) में	**असुरः**	असुर प्रह्लाद
हृदय ईक्षणाः	चित्त और नेत्र	**मैत्रः करुणः**	(उनके) मित्र होनेसे
न्यस्त	लगाकर (वे)		कृपापूर्वक
पर्युपासत	(उनके) चारों ओर पास बैठ गये ।	**तान् आह**	उनसे बोले ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥५७॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रह्लाद उवाच—

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥१॥

कौमार आचरेत् प्राज्ञः धर्मान् भागवतान् इह दुर्लभं मानुषं जन्म तत् अपि अध्रुवं अर्थदम् ॥१॥

प्राज्ञः	समझदारको	**मानुषं जन्म**	मनुष्य जन्म
इह कौमार	इस कुमारावस्थामें ही	**दुर्लभं**	दुर्लभ है,
		तत् अपि	वह भी
भागवतान्	भागवत्	**अध्रुवं**	अनित्य है; पर
धर्मान्	धर्मोंका	**अर्थदं**	परमार्थ देनेवाला है ॥१॥
आचरेत्	आचरण करना चाहिए ।		

यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् ।
यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥२॥

यथा हि पुरुष अस्य इह विष्णोः पाद उपसर्पणं यत् एष सर्वभूतानां प्रिय आत्मा ईश्वरः सुहृत् ॥२॥

अस्य पुरुष	इस पुरुषका	**यत्**	क्योंकि
विष्णोः पाद	भगवान् विष्णुके चरणों तक	**एष सर्वभूतानां**	ये सब प्राणियोंके
		प्रिय आत्मा	प्रिय, आत्मा,
यथा इह	जैसे भी इसी जीवनमें	**ईश्वरः सुहृत्**	स्वामी और हितैषी हैं ॥२॥
उपसर्पणं	पहुँचना हो		

सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ।
सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः ॥३॥

सुखं ऐन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनां सर्वत्र लभ्यते दैवात् यथा दुःखं अयत्नतः ॥३॥

दैत्या	दैत्यो !	सुखं सर्वत्र	सुख सब कहीं
देहयोगेन	शरीर मिलनेपर	लभ्यते	मिल जाता है,
देहिनां	शरीर धारियोंको	यथा अयत्नतः	जैसे बिना प्रयत्नके
दैवात्	भाग्यके अनुसार		ही
ऐन्द्रियकं	इन्द्रियों द्वारा	दुःखं	दुःख (मिलता है)
	मिलनेवाला		॥३॥

तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ।
न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥४॥

तत् प्रयासः न कर्तव्यः यत आयुः व्ययः परं न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्द चरणाम्बुजम् ॥४॥

तत् प्रयासः	उस (ऐन्द्रिक सुखके	तथा क्षेमं	और कल्याणस्वरूप
	लिए) प्रयत्न	मुकुन्द	श्रीमुकुन्दके
न कर्तव्यः	नहीं करना चाहिए	चरणाम्बुजं	चरण-कमल
यत परं	क्योंकि उसमें लगकर	न विन्दते	नहीं मिल पाते ॥४॥
आयुः व्ययः	आयु बीत जाती है		

ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः ।
शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥५॥

ततः यतेत कुशलः क्षेमाय भयं आश्रितः शरीरं पौरुषं यावत् न विपद्येत पुष्कलम् ॥५॥

ततः कुशलः	इसलिए चतुर व्यक्ति	शरीरं	यह शरीर
भयं आश्रितः	(रोग-मृत्यु आदिका) भय मानकर	पुष्कलं	(इसके लिए) पर्याप्त है; किन्तु
क्षेमाय यतेत	कल्याणके लिए प्रयत्न करे,	यावत्	जब तक यह
		न विपद्येत	न मर जाय ॥५॥

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः ।
निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः ॥६॥

पुंसः वर्षशतं हि आयुः तत् अर्धं च अजित आत्मनः निष्फलं यत् असौ रात्र्यां शेते अन्धं प्रापितः तमः ॥६॥

हि	क्योंकि	यत् असौ	क्योंकि यह
पुंसः वर्षशतं	पुरुषकी सौ वर्षकी	रात्र्यां	रातको
आयुः	आयु है,	अन्धं तमः	अज्ञानसे
अजित आत्मनः	अजित चित्त वालेकी	प्रापितः	ग्रस्त
तत् अर्धं च	उसकी आधी तो	शेते	सोता रहता है ॥६॥
निष्फलं	व्यर्थ है		

मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः ।
जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥७॥

मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतः याति विंशतिः जरया ग्रस्त देहस्य याति अकल्पस्य विंशतिः ॥७॥

मुग्धस्य	अज्ञान दशामें	जरया ग्रस्त	बुढ़ापेसे आक्रान्त
बाल्ये	शैशवमें और	अकल्पस्य	असमर्थ
क्रीडतः	खेलते हुए	देहस्य	शरीरमें
कौमारे	कुमारावस्थामें	विंशतिः याति	बीस वर्ष बीत जाते हैं ॥७॥
विंशतिः याति	बीस वर्ष (आयु) बीत जाती है,		

दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा ।
शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥८॥

दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्य अपयाति हि ॥८॥

हि	क्योंकि	गृहेषु	घरोंमें
दुरापूरेण	जिसका पेट कभी नहीं भरता उस	सक्तस्य	आसक्तकी
		प्रमत्तस्य	प्रमादग्रस्तकी
कामेन च	कामनासे और	शेषं	बची (आयु)
बलीयसा	बलवान	अपयाति	व्यर्थ बीत जाती है ॥८॥
मोहेन	मोहसे		

को गृहेषु पुमान्सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः ।
स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥९॥

कः गृहेषु पुमान् सक्तं आत्मानं अजित इन्द्रियः स्नेह पाशैः दृढैः बद्धं उत्सहेत विमोचितुम् ॥९॥

अजित इन्द्रियः	इन्द्रियोंको न जीतनेवाला	बद्धं	बँधे
		गृहेषु सक्तं	घरोंमें आसक्त
कः पुमान्	कौन पुरुष	आत्मानं	अपनेको
दृढैः स्नेह पाशैः	मजबूत स्नेहसे बन्धनसे	विमोचितुं	छुड़ानेका
		उत्सहेत	उत्साह करेगा ॥९॥

को न्वर्थतृष्णां विसृजेत् प्राणेभ्योऽपि य ईप्सितः ।
यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ।१०॥

कः नु अर्थ तृष्णां विसृजेत् प्राणेभ्यः अपि य ईप्सितः यं क्रीणाति असुभिः प्रेष्ठैः तस्करः सेवकः वणिक् ॥१०॥

यं प्रेष्ठैः	जिस परम प्रियको	असुभिः	प्राणोंके (मूल्य) द्वारा

तस्करः	चोर
सेवकः	सेवक (और)
वणिक्	व्यापारी
क्रीणाति	खरीदते हैं,
य प्राणेभ्यः	जो प्राणोंसे
अपि ईप्सितः	भी अभीष्ट है
अर्थ तृष्णां	(उस) धनकी तृष्णाको
नु कः	भला कौन
विसृजेत्	छोड़ सकता है ॥१०॥

कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः
सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान् ।
सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां
कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥११॥

कथं प्रियायाः अनुकम्पितायाः सङ्गं रहस्यं रुचिरान् च मन्त्रान् सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कल अक्षराणां अनुरक्त चित्तः ॥११॥

अनुकम्पितायाः	प्रेम करनेवाली
प्रियायाः	प्रिय पत्नीके
रहस्यं	एकान्त
संङ्गं	सहवास
च रुचिरान्	तथा मधुर
मन्त्रान् च	सलाह और
सुहृत्सु	हितैषी जनोंसे
स्नेहसितः	प्रेमोज्वल
शिशूनां	बालकोंकी
कल अक्षराणां	तोतली बोलीमें
अनुरक्त	आसक्त
चित्तः	चित्त
कथं	कैसे (छूट सकता है) ॥११॥

पुत्रान्स्मरंस्ता दुहितॄर्हृदय्या
भ्रातॄन् स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ ।
गृहान् मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च
वृत्तीश्च कुल्याः पशुभृत्यवर्गान् ॥१२॥

पुत्रान् स्मरन् ता दुहितृः हृदय्या भ्रातॄन् स्वसृः वा पितरौ च दीनौ गृहान् मनोज्ञः उरु परिच्छदान् च वृत्तीः च कुल्याः पशु भृत्यवर्गान् ॥१२॥

पुत्रान्	पुत्रोंको
ता हृदय्या	उन अत्यन्त प्रिय
दुहितृः	पुत्रियोंको,
भ्रातृन्	भाइयोंको,
वा स्वसृः	या बहिनोंको,
च दीनौ	तथा दीन अवस्था प्राप्त
पितरौ	माता-पिताको,
मनोज्ञः	मनोहर
उरु परिच्छदान्	बहुत-सी सामग्रियों-वाले
गृहान्	घरोंको,
च कुल्याः	एवं कुल परम्परा प्राप्त
वृत्तीः	आजीविकाको,
च पशु	और पशुओं,
भृत्यवर्गान्	सेवक-वर्गको
स्मरन्	स्मरण करता (कैसे छूट सकता है) ॥१२॥

त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः
कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ।
औपस्थ्यजैह्व्यं बहु मन्यमानः
कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥१३॥

त्यजेत कोशः कृत इव ईहमानः कर्माणि लोभात् अवितृप्तकामः औपस्थ्य जैह्व्यं बहु मन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥१३॥

औपस्थ्य	उपस्थके और
जैह्व्यं	जिह्वाके भोगोंको
बहु	बहुत (प्रिय)
मन्यमानः	मानता हुआ
कोशः कृत	रेशमके कीड़ेके
इव	समान
लोभात्	लोभसे
अवितृप्तकामः	अतृप्त कमना
कर्माणि	कर्मोंको
ईहमानः	करनेकी चेष्टा करता
विरज्येत	(उनसे) विरक्त
कथं	कैसे होगा
दुरन्तमोहः	सीमाहीन मोह
त्यजेत	(कैसे) छोड़ेगा ॥१३॥

कुटुम्बपोषाय वियन् निजायु-
र्न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ।

सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा
निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः ॥१४॥

कुटुम्ब पोषाय वियत् निज आयुः न बुध्यते अर्थं विहतं प्रमत्तः सर्वत्र तापत्रय दुःखित आत्मा निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः ॥१४॥

कुटुम्ब	कुटुम्बके		सुखी
पोषाय	पोषणके लिये	सर्वत्र	सब कहीं
निज आयुः	अपनी आयु	तापत्रय	तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंसे
वियत्	व्यय करता		
प्रमत्तः	असावधान	दुःखित आत्मा	दुःखित चित्त (रहनेपर भी)
विहतं	दैवका मारा	निर्विद्यते न	विरक्त नहीं होता ॥१४॥
अर्थं	वास्तविक हित		
न बुध्यते	नहीं जानता।		
स्वकुटुम्बरामः	अपने कुटुम्बमें ही		

वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता
विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्तुः।
प्रेत्येह चाथाप्यजितेन्द्रियस्त-
दशान्तकामो हरते कुटुम्बी ॥१५॥

वित्तेषु नित्य अभिनिविष्ट चेता विद्वान् च दोषं परवित्त हर्तुः प्रेत्य इह च अथ अपि अजित इन्द्रियः तत् अशान्तकामः हरते कुटुम्बी ॥१५॥

वित्तेषु	धनमें	परवित्त	दूसरेके धनको
नित्य	सदा	हर्तुः	हरण करनेवालेके
अभिनिविष्ट	लगे हुए	दोषं	दोषको
चेता	चित्तके कारण	विद्वान्	जानता है,
इह	इस लोकमें	अथ अपि	फिर भी
च प्रेत्य	तथा मरनेके बाद भी	अजित इन्द्रियः	इन्द्रियां वशमें न होनेसे

अशान्तकामः	कामनाओंसे व्याकुल	हरते	(परधन) हरण
कुटुम्बी	कुटुम्बमें आसक्त		करता है ॥१५॥

विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं
पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै ।
यः स्वीयपारक्यविभिन्नभाव-
स्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥१६॥

विद्वान् अपि इत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन् स्वलोकाय न कल्पते वै यः स्वीय पारक्य विभिन्न भावः तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥१६॥

दनुजाः	दानवो !	पुष्णन्	पोषण करता हुआ
यः स्वीय	जो अपने	वै	निश्चय
पारक्य	परायेपनके	स्वलोकाय	अपने स्वरूपकी
विभिन्नः	भेद	कल्पते न	कल्पना भी नहीं
भाव	भाववाला है (वह)		करता,
इत्थं	इस प्रकार	विमूढः यथा	अज्ञानीके समान
विद्वान् अपि	जानता हुआ भी	तमः प्रपद्येत	नरक जाता है ॥१६॥
कुटुम्बं	कुटुम्बका		

यतो न कश्चित् क्व च कुत्रचिद् वा
दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ।
विमोचितुं कामदृशां विहार-
क्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः ॥१७॥

यतः न कश्चित् क्व च कुत्रचित् वा दीनः स्वं आत्मानं अलं समर्थः विमोचितुं कामदृशां विहार क्रीडामृगः यत् निगडः विसर्गः ॥१७॥

कामदृशां	काम-दृष्टिवाली स्त्रियोंका	यत् विसर्गः	जिसने सन्तानकी
		निगडः	बेड़ी पहिन ली है
क्रीडामृगः	खेलनेका मृग	क्व च	वह कहींका हो,

कश्चित्	कोई हो,	विमोचितुं	मुक्त करनेमें
वा कुत्रचित्	या कहीं भी हो	अलं	पूर्ण
यतः दीनः	क्योंकि दीन हो गया है	समर्थः न	समर्थ नहीं हो सकता ॥१७॥
स्वं आत्मानं	अपने आपको		

ततो विदूरात् परिहृत्य दैत्या
दैत्येषु सङ्गं विषयात्मकेषु ।
उपेत नारायणमादिदेवं
स मुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः ॥१८॥

ततः विदूरात् परिहृत्य दैत्या दैत्येषु सङ्गं विषय आत्मकेषु उपेत नारायणं आदिदेवं स मुक्तसङ्गैः इषितः अपवर्गः ॥१८॥

ततः दैत्या	अतः दैत्यो !	आदिदेवं	आदिदेव
विषय	विषय भोगोंमें	नारायणं	नारायणकी
आत्मकेषु	आसक्त चित्त	उपेत	शरण लो
दैत्येषु	दैत्योंका	स मुक्तसङ्गैः	वही आसक्तिहीन महात्माओंके
संङ्गं	साथ		
विदूरात्	दूरसे	इषितः	अभीष्ट
परिहृत्य	परित्याग करके	अपवर्गः	मोक्षस्वरूप हैं ॥१८॥

न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः ।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥१९॥

न हि अच्युतं प्रीणयतः बहु आयासः असुरात्मजाः आत्मत्वात् सर्व भूतानां सिद्धत्वात् इह सर्वतः ॥१९॥

असुरात्मजाः	दैत्य-पुत्रो !	आत्मत्वात्	आत्मा होनेसे,
हि	क्योंकि	इह सर्वतः	यहां सब कहीं
सर्व भूतानां	सब प्राणियोंके	सिद्धत्वात्	स्वतः सिद्ध (विद्यमान) होनेसे

अच्युत	भगवान् अच्युत्को	बहु आयासः	बहुत परिश्रम
प्रीणयतः	प्रसन्न करनेमें	न	नहीं होता ॥१९॥

परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु ।
भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥२०॥

पर अवरेषु भूतेषु ब्रह्म अन्तः स्थावर आदिषु भौतिकेषु विकारेषु भूतेषु अथ महत्सु च ॥२०॥

पर अवरेषु	बड़े-छोटे	विकारेषु	विकारोंमें
भूतेषु	प्राणियोंमें	भूतेषु	पंचभूतोंमें
ब्रह्म अन्तः	ब्रह्मासे लेकर	अथ च	और फिर
स्थावर आदिषु	अचर वृक्षादिमें,	महत्सु	महत् तत्त्वमें ॥२०॥
भौतिकेषु	पंचभूतोंके (सब)		

गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा ।
एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥२१॥

गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा एक एव परः हि आत्मा भगवान् ईश्वरः अव्ययः ॥२१॥

गुणेषु	(सत्व-रज-तम) गुणोंमें	परः	इस (सृष्टि-प्रलय) से परे भी
च गुण साम्ये	और गुणोंकी साम्या-वस्था (प्रलय) में	हि एक एव	क्योंकि एक ही
तथा	तथा	अव्ययः	अविनाशी
गुणव्यतिकरे	गुणोंमें विकार (सृष्टि) के समय	आत्मा	परमात्मा
		भगवान्	भगवान्
		ईश्वरः	सर्व नियन्ता हैं ॥२१॥

प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयम् ।
व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः ॥२२॥

प्रत्यक् आत्मस्वरूपेण दृश्य रूपेण च स्वयं व्याप्यव्यापक निर्देश्यः हि अनिर्देश्यः अविकल्पितः ॥२२॥

प्रत्यक्	भीतर
आत्मस्वरूपेण	आत्माके रूपमें,
च स्वयं	और बाहर
दृश्य रूपेण	दृश्यके रूपमें
हि	क्योंकि
व्याप्यव्यापक	व्याप्य और व्यापक रूपमें
निर्देश्यः	निर्दिष्ट होनेवाले (वे)
अनिर्देश्यः	अनिर्वचनीय
अविकल्पितः	कल्पनातीत हैं ॥२२॥

केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः ।
मायया अन्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥२३॥

केवल अनुभव आनन्द स्वरूपः परमेश्वरः मायया अन्तर्हित ऐश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥२३॥

परमेश्वरः	परमेश्वर
केवल	अद्वितीय,
अनुभव	ज्ञान,
आनन्द	आनन्द
स्वरूपः	स्वरूप हैं ।
गुणसर्गया	गुणोंकी सृष्टि करनेवाली
मायया	मायाके द्वारा
ऐश्वर्य	अपने ऐश्वर्यको
अन्तर्हित	छिपाये हैं ॥२३॥

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम् ।
आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥२४॥

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदं आसुरं भावं उन्मुच्य यया तुष्यति अधोक्षजः ॥३४॥

तस्मात्	इसलिए
आसुरं भावं	आसुरी स्वभावको
उन्मुच्य	त्यागकर
सर्वेषु भूतेषु	सब प्राणियोंपर
दयां	दया और
सौहृदं	मित्रता
कुरुत	करो
यया	जिससे
अधोक्षजः	भगवान् हृषीकेश
तुष्यति	सन्तुष्ट होते हैं ॥२४॥

तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये
किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः ।
धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन
सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥२५॥

तुष्टे च तत्र किं अलभ्यम् अनन्त आद्ये किं तैः गुणव्यतिकरात् इह ये स्वसिद्धाः धर्म आदयः किं अगुणेन च काङ्क्षितेन सारंजुषां चरणयोः उपगायतां नः ॥२५॥

तत्र	वहां (उन)	स्वसिद्धाः	स्वयं प्राप्त होते हैं,
अनन्त	अनन्त	सारंजुषां	सारतत्त्व ग्रहण करनेवाले
आद्ये	आदिपुरुषके	चरणयोः	(भगवान्के) चरणों-का (सुयश)
तुष्टे च	संन्तुष्ट होनेपर तो	उपगायतां	गायन करनेवाले
किं अलभ्यं	क्या अप्राप्य रहता है,	नः	हम लोगोंको
धर्म आदयः	धर्म (अर्थ नाम) आदिका	अगुणेन च	निर्गुण (मोक्ष) को भी
ये इह	जो इस लोकमें	काङ्क्षितेन	कामनासे
गुण व्यतिकरात्	गुणोंके विकारसे (कालके अनुसार)	किं	क्या प्रयोजन ॥२५॥

धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग
ईक्षात्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता ।
मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं
स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥२६॥

धर्म अर्थ काम इति यः अभिहितः त्रिवर्ग ईक्षात्रयी नय दमौ विविधा च वार्ता मन्ये तत् एतत् अखिलं निगमस्य सत्यं स्व आत्म अर्पणं स्व सुहृदः परमस्य पुंसः ॥२६॥

धर्म अर्थ काम	धर्म, अर्थ, काम
इति यः	इस प्रकार जो
त्रिवर्ग	त्रिवर्ग
अभिहितः	(शास्त्रमें) बतलाया गया है,
ईक्षा	अध्यात्म-विद्या,
त्रयी	कर्मकाण्ड
नय	नीति (न्यायशास्त्र)
दमौ	दण्डशास्त्र
तत् एतत्	वे ये
अखिलं	सब
स्व सुहृदः	अपने सुहृद
परमस्य पुंसः	परम पुरुषको
स्व आत्म अर्पणं	अपने आत्म समर्पण के
निगमस्य	प्रतिपादक होनेसे
सत्यं मन्ये	सत्य मानता हूँ ॥२६॥

ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह
नारायणो नरसखः किल नारदाय ।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिञ्चनानां
पादारविन्दरजसाऽऽप्लुतदेहिनां स्यात् ॥२७॥

ज्ञानं तत् एतत् अमलं दुरवापं आह नारायणः नरसखः किल नारदाय एकान्तिनां भगवतः तत् अकिञ्चनानां पादारविन्द रजसा आप्लुत देहिनां स्यात् ॥२७॥

तत् एतत्	वह यह
अमलं	निर्मल
दुरवापं	दुष्प्राप्य
ज्ञानं	ज्ञान
नरसखः	नरके सखा
नारायणः किल	नारायणने तो
नारदाय	नारदजीको
आह	उपदेश किया था ।
तत्	वह (ज्ञान)
भगवतः	भगवान्के
एकान्तिनां	अनन्य
अकिञ्चनानां	अकिञ्चन-भक्तोंकी
पादारविन्द	चरण-कमलकी
रजसा आप्लुत	धूलिमें लोट-पोट होनेवाले
देहिनां स्यात्	शरीर-धारियोंको होता है ॥२७॥

श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ।
भर्म भागवतं शुद्धं नारदाद् देवदर्शनात् ॥२८॥

श्रुतं एतत् मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञान संयुतं धर्मं भागवतं शुद्धं नारदात् देवदर्शनात् ॥२८॥

एतत्	यह	**देवदर्शनात्**	देवताओंको दर्शन देनेवाले
ज्ञानं संयुतं	विज्ञान सहित		
विज्ञान	ज्ञानवाला	**नारदात्**	नारदजीसे
शुद्धं	शुद्ध	**मया**	मैंने
भागवतं धर्मं	भागवत-धर्म	**पूर्वं श्रुतं**	सुना था ॥२८॥

दैत्यपुत्रा ऊचुः

प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुम् ।

एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ ॥२९॥

प्रह्लाद त्वं वयं च अपि न ऋते अन्यं विद्महे गुरुं एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानां अपि हि ईश्वरौ ॥२९॥

प्रह्लाद	प्रह्लाद !	**अन्यं गुरुं**	दूसरे गुरुको
त्वं	तुम	**न विद्महे**	नहीं जानते,
च वयं अपि	और हम लोग भी	**बालानां अपि**	हम सब बालकोंके ही
एताभ्यां	इन दोनों	**ईश्वरौ**	ये शासक हैं ॥२९॥
गुरुपुत्राभ्यां	गुरु-पुत्रोंको		
ऋते	छोड़कर		

बालस्यान्तः पुरस्थस्य महत्सङ्गो दुरन्वयः ।

छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद्विश्रम्भकारणम् ॥३०॥

बालस्य अन्तः पुरस्थस्य महत् सङ्गः दुरन्वयः छिन्धि नः संशयं सौम्य स्यात् चेत् विश्रम्भ कारणम् ॥३०॥

सौम्य	सौम्य !	**अन्तः पुरस्थस्य**	अन्तःपुरमें रहने-वाले

बालस्य	बालकके लिए	**कारणं**	कारण
महत् सङ्गः	महापुरुष (नारदजी) से मिलना	**स्यात् चेत्**	यदि कुछ हो तो
		नः संशयं	हमारे संशयको
दुरन्वयः	असंगत-सा है,	**छिन्धि**	काट दो ॥६॥
विश्रम्भ	(इसमें) विश्वासका		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारद उवाच—

एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः ।
उवाच स्मयमानस्तान्स्मरन् मदनुभाषितम् ॥१॥

एवं दैत्यसुतैः पृष्टः महाभागवतः असुरः उवाच स्मयमानः तान् स्मरन् मत् अनुभाषितम् ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**अनुभाषितं**	बातका
दैत्यसुतैः	दैत्यपुत्रोंके	**स्मरन्**	स्मरण करते हुए
पृष्टः	पूछनेपर	**स्मयमानः**	मुस्कराते हुए
महाभागवतः	परमभगवद्भक्त	**तान्**	उनसे
असुरः	असुर प्रह्लादजीने	**उवाच**	बोले ॥१॥
मत्	मेरी		

प्रह्लाद उवाच—

पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मन्दराचलम् ।
युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति ॥२॥

पितरि प्रस्थिते अस्माकं तपसे मन्दराचलं युद्ध उद्यमं परं चक्रुः विबुधा दानवान् प्रति ॥२॥

अस्माकं	हमारे	**विबुधाः**	देवताओंने
पितरि	पिताके	**दानवान् प्रति**	दानवोंसे
तपसे	तप करनेके लिए	**परं**	भारी
मन्दराचलं	मन्दराचलपर	**युद्ध उद्यमं**	युद्धका उद्योग
प्रस्थिते	चले जानेपर	**चक्रुः**	किया ॥२॥

पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः ।
पापेन पापोऽभक्षीतिवादिनो वासवादयः ॥३॥

पिपीलिकैः अहिः इव दिष्ट्या लोक उपतापनः पापेन पापः अभक्षि इति वादिनः वासव आदयः ॥३॥

अहिः	'सांपको	**पापेन**	(उसके) पापने
पिपीलिकैः इव	चींटियोंके समान	**अभक्षि**	खा लिया'
दिष्ट्या	सौभाग्यसे	**इति वादिनः**	ऐसा कहनेवाले
पापः	पापी (हिरण्यकशिपु) को	**वासव आदयः**	इन्द्र आदिने ॥३॥

तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः ।
वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥४॥

तेषां अतिबल उद्योगं निशम्य असुर यूथपाः वध्यमानः सुरैः भीता दुद्रुवुः सर्वतः दिशम् ॥४॥

तेषां	उन (देवताओं) का	**वध्यमानाः**	मार खाकर
अतिबल	भारी सेना और	**असुर यूथपाः**	असुर सेना-नायक
उद्योगं	प्रयत्न	**भीताः**	डरकर
निशम्य	सुनकर (तथा)	**सर्वतः दिशं**	दिशाओंमें सब ओर
सुरैः	देवताओं द्वारा	**दुद्रुवुः**	भाग गये ॥४॥

कलत्रपुत्रमित्राप्तान्गृहान्पशुपरिच्छदान् ।
नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥५॥

कलत्र पुत्र मित्र आप्तान् गृहान् पशु परिच्छदान् न अवेक्षमाणाः त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥५॥

प्राणपरीप्सवः	प्राण बचानेके लिए	**गृहान् पशु**	भवन, पशु,
सर्वे	सबके सब	**परिच्छदान्**	साज सामानकी
कलत्र पुत्र	स्त्री-पुत्र,	**अवेक्षमाणाः न**	चिन्ता न करके
मित्र आप्तान्	मित्र, गुरुजन,	**त्वरिताः**	जल्दीमें (भागे) ॥५॥

व्यलुम्पन् राजशिबिरममरा जयकाङ्क्षिणः ।
इन्द्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥६॥

व्यलुम्पन् राजशिबिरं अमरा जयकाङ्क्षिणः इन्द्रः तु राज महिषीं मातरं मम च अग्रहीत् ॥६॥

जयकाङ्क्षिणः	विजयेच्छु	च इन्द्रः तु	और इन्द्रने तो
अमरा	देवताओंने	मम मातरं	मेरी माता
राजशिबिरं	राजमहलको	राज महिषीं	महारानीको
व्यलुम्पन्	लूट लिया	अग्रहीत्	पकड़ लिया ॥६॥

नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव ।
यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥७॥

नीयमानां भय उद्विग्नां रुदतीं कुररीम् इव यदृच्छया आगतः तत्र देवर्षिः ददृशे पथि ॥७॥

भय उद्विग्नां	भय विह्वला	तत्र	वहां
कुररीं इव	कुररी पक्षीकी भांति	यदृच्छया	संयोगवश
रुदतीं	रोती हुई	आगतः	आये
नीयमानां	(इन्द्र द्वारा) ले जायी जातीको	देवर्षिः	देवर्षि नारदजीने
		पथि ददृशे	मार्गमें देखा ॥७॥

प्राह मैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम् ।
मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥८॥

प्राह मा एनां सुरपते नेतुं अर्हसि अनागसम् मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥८॥

प्राह	बोले	अनागसम्	निरपराध
महाभाग	महाभाग्यवान	एनां	इसको
सुरपते	देवराज !	मा नेतुं	(तुम्हें) नहीं ले जाना

अर्हसि	चाहिए	सतीं	पतिव्रता है,
परपरिग्रहं	दूसरेकी पत्नी है,	मुञ्च मुञ्च	छोड़ो-छोड़ो ॥८॥

इन्द्र उवाच—

आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ।
आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥९॥

आस्ते अस्या जठरे वीर्यं अविषह्यं सुरद्विषः आस्यतां यावत् प्रसवं मोक्ष्ये अर्थ पदवीं गतः ॥९॥

अस्या जठरे	इसके पेटमें	यावत् प्रसवं	प्रसव होने तक
सुरद्विषः	देवद्रोही (हिरण्य-कशिपु) का	आस्यतां	मेरे पास रहे,
		अर्थ	प्रयोजन
अविषह्यं	असह्य प्रभाव	पदवीं गतः	पूरा हो जानेपर
वीर्यं आस्ते	वीर्य है	मोक्ष्ये	छोड़ दूंगा ॥९॥

नारद उवाच—

अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् ।
त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥१०॥

अयं निष्किल्बिषः साक्षात् महाभागवतः महान् त्वया न प्राप्स्यते संस्थां अनन्त अनुचरः बली ॥१०॥

अयं	यह (गर्भस्थ शिशु)	महान् बली	महाबलवान है,
निष्किल्बिषः	निष्पाप,	त्वया	तुम्हारे द्वारा
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त,	संस्थां न	मारा नहीं
साक्षात्	साक्षात्	प्राप्स्यते	जा सकेगा ॥१०॥
अनन्त अनुचरः	भगवान्का सेवक,		

इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः ।
अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥११॥

इति उक्तः तां विहाय इन्द्रः देवर्षेः मानयन् वचः अनन्तप्रिय भक्त एनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥११॥

इति उक्तः	(नारदजीके) ऐसा कहनेपर	**विहाय**	छोड़कर
देवर्षेः	देवर्षिकी	**एनां**	इसके (पेटमें)
वचः मानयन्	बात मानकर	**अनन्तप्रिय**	भगवान्‌का प्यारा
इन्द्रः	इन्द्रने	**भक्त**	भक्त है (इस भावसे)
तां	उसे	**परिक्रम्य**	परिक्रमा करके
		दिवं ययौ	स्वर्ग चले गये ॥११॥

ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् ।
आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत् ते भर्तुरागमः ॥१२॥

ततः नः मातरं ऋषिः समानीय निज आश्रमं आश्वास्य इह उष्यतां वत्से यावत् ते भर्तुः आगमः ॥१२॥

ततः	तब	**वत्से**	'बेटी
नः मातरं	हमारी माताको	**यावत्**	जब तक
ऋषिः	देवर्षिने	**ते भर्तुः**	तुम्हारे पति
निज आश्रमं	अपने आश्रमपर	**आगमः**	आवें
समानीय	साथ लाकर	**इह उष्यतां**	यहां रहो' ॥१२॥
आश्वास्य	आश्वासन देकर कहा		

तथेत्यवात्सीद् देवर्षेरन्ति साप्यकुतोभया ।
यावद् दैत्यपतिर्घोरात् तपसा न न्यवर्तत ॥१३॥

तथा इति अवात्सीत् देवर्षेः अन्ति सा अपि अकुतः भया यावत् दैत्यपतिः घोरात् तपसा न न्यवर्तत ॥१३॥

तथा इति	'ऐसा ही हो' (कहकर)	**यावत्**	जब तक
		घोरात् तपसा	उग्र तपस्यासे

दैत्यपतिः	दैत्यराज	अकुतः भया	सब ओरसे निर्भय
न न्यवर्तत	लौट नहीं आये	अवात्सीत्	निवास करती रही
सा अपि	वह भी		॥१३॥
देवर्षेः अन्ति	देवर्षिके समीप		

ऋषिं पर्यचरत् तत्र भक्त्या परमया सती ।
अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥१४॥

ऋषिं पर्यचरत् तत्र भक्त्या परमया सती अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमाय इच्छा प्रसूतये ॥१४॥

तत्र	वहाँ	प्रसूतये	प्रसव करनेके लिए
अन्तर्वत्नी	गर्भवती	परमया भक्त्या	परम भक्ति भावसे
सती	पतिव्रता (मेरी मां)	ऋषिं	ऋषिकी
स्वगर्भस्य	अपने गर्भके	पर्यचरत्	सेवा करने लगी
क्षेमाय	कल्याणके लिए और		॥१४॥
इच्छा	इच्छानुसार		

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः ।
धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥१५॥

ऋषिः कारुणिकः तस्याः प्रादात् उभयं ईश्वरः धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मां अपि उद्दिश्य निर्मलम् ॥१५॥

ईश्वरः	समर्थ	धर्मस्य तत्त्वं	भागवत धर्मका
ऋषिः	देवर्षि		रहस्य
कारुणिकः	परम दयालु हैं,	च निर्मलं	और निर्मल
तस्याः	उसको	ज्ञानं उभयं	ज्ञान दोनों
मां अपि	मुझको भी	प्रादात्	प्रदान किया ॥१५॥
उद्दिश्य	लक्षित करके		

तत्तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वान्मातुस्तिसेदधे ।
ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः ॥१६॥

तत् तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वात् मातुः तिरोदधे ऋषिणा अनुगृहीतं मां न अधुना अपि जहात् स्मृतिः ॥१६॥

तत् तु	वह तो	ऋषिणा	देवर्षि द्वारा
कालस्य	समयके	अनुगृहीतं	अनुग्रह किये गये
दीर्घत्वात्	बहुत बीत जानेसे,	मां	मुझे
स्त्रीत्वात्	स्त्री होनेके कारण	अधुना अपि	आज भी
मातुः	माताको	स्मृतिः	उसकी स्मृति
तिरोदधे	भूल गया,	न अजहात्	नहीं छोड़ती ॥१६॥

भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ।
वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥१७॥

भवतां अपि भूयात् मे यदि श्रद्दधते वचः वैशारदीः धीः श्रद्धातः स्त्री बालानां च मे यथा ॥१७॥

यदि मे	यदि मेरी	स्त्री च बालानां	स्त्रियों और बालकोंकी
वचः	बातपर	धीः	बुद्धि
श्रद्दधते	श्रद्धा करो तो	मे यथा	मेरी जैसी
भवतां अपि	तुम लोगोंको भी	वैशारदीः	निपुणा (हो जाती है) ॥१७॥
भूयात्	(वह ज्ञान) हो सकता है		
श्रद्धातः	श्रद्धा करनेपर		

जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः ।
फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥१८॥

जन्म आद्याः षट् इमे भावा दृष्टा देहस्य न आत्मनः फलानां इव वृक्षस्य कालेन ईश्वर मूर्तिना ॥१८॥

ईश्वर मूर्तिना	ईश्वर स्वरूप	वृक्षस्य	वृक्षोंके
कालेन	कालके द्वारा	फलानां इव	फलोंके समान

इमे षट्	ये छः (जन्म-मृत्यु, वृद्धि-ह्रास परिवर्तन-स्थिति)	भावा	भाव
		देहस्य दृष्टा	शरीरके ही देखे जाते हैं
जन्म आद्याः	जन्मादि	आत्मनः न	आत्माके नहीं ॥१८॥

आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः।
अविक्रियः स्वदृग् हेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः ॥१९॥

आत्मा नित्यः अव्ययः शुद्धः एकः क्षेत्रज्ञः आश्रयः अविक्रियः स्वदृक् हेतुः व्यापकः असङ्गि अनावृतः ॥१९॥

आत्मा	आत्मा	स्वदृक्	स्वय प्रकाश
नित्यः अव्ययः	नित्य, अविनाशी,	हेतुः व्यापकः	सर्वकारण, व्यापक,
शुद्धः एकः	शुद्ध, अद्वितीय,	असङ्गि	अनासक्त,
क्षेत्रज्ञः आश्रयः	क्षेत्रज्ञ, सर्वाश्रय,	अनावृतः	निरावरण है ॥१९॥
अविक्रियः	निर्विकार,		

एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः।
अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥२०॥

एतैः द्वादशभिः विद्वान् आत्मनः लक्षणैः परैः अहं मम इति असत् भावं देह आदौ मोहजं त्यजेत् ॥२०॥

एतैः द्वादशभिः	इन बारह	मोहजं	मोहसे उत्पन्न
आत्मनः	आत्माके	अहं मम	मैं-मेरा
परैः लक्षणैः	श्रेष्ठ लक्षणोंको	इति असत्	इस मिथ्या
विद्वान्	जानकर	भावं त्यजेत्	भावको छोड़ दे ॥२०॥
देह आदौ	शरीर आदिमें		

स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः
क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात्।

क्षेत्रेषु देहेषु तथाऽऽत्मयोगै-
रध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत ॥२१॥

स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैः तत् अभिज्ञ आप्नुयात् क्षेत्रेषु देहेषु तथा आत्मयोगैः अध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत् ॥२१॥

यथा क्षेत्रेषु	जैसे खदानोंमें	तथा	वैसे ही
ग्रावसु	ढेलोंमें-से	देहेषु क्षेत्रेषु	देह रूपी क्षेत्रमें
तत् अभिज्ञ	उसे जाननेवाला	आत्मयोगैः	अपनी साधनासे
हेमकारः	स्वर्णकार	अध्यात्मविद्	अध्यात्म तत्त्ववेत्ता
यथा योगैः	जैसे उपायों द्वारा	ब्रह्मगतिं	ब्रह्मपदको
स्वर्णं आप्नुयात्	सोना प्राप्त कर लेता है	लभेत	प्राप्त कर लेता है ॥२१॥

अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः ।
विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥२२॥

अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ताः त्रय एव हि तत् गुणाः विकाराः षोडश आचार्यैः पुमान् एकः समन्वयात् ॥२२॥

हि आचार्यैः	क्योंकि आचार्योंने	तत् गुणाः	उनके गुण हैं,
अष्टौ	आठ (मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और रूपरसादि पञ्च तन्मात्रा)	षोडश	सोलह (पञ्च महाभूत, दस इन्द्रियां, एक मन) ये
प्रकृतयः	(इनको) प्रकृति	विकाराः	विकार हैं,
प्रोक्ताः	बतलाया है ।	एकः पुमान्	एक पुरुष
त्रय एव	तीन ही (सत्त्व, रज, तम)	समन्वयात्	सबमें व्यापक है ॥२२॥

देहस्तु सर्वसंघातो जगत् तस्थुरिति द्विधा ।
अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत् त्यजन् ॥२३॥

देहः तु सर्वसंघातः जगत् तस्थुः इति द्विधा अत्र एव मृग्यः पुरुषः न इति न इति इति अतत् त्यजन् ॥२३॥

जगत् तस्थुः	सचर और अचर	इति	इस प्रकार
इति द्विधा	इस प्रकार दो भेदका	अतत्	अनात्म वस्तुओं (अन्तःकरण आदि-को)
देहः तु	शरीर तो		
सर्वसंघातः	इन सबका समुदाय है,	त्यजन्	छोड़ते हुए
अत्र एव	इसी (देहमें ही)	पुरुषः	पुरुषको
न इति न इति	यह नहीं, यह नहीं	मृग्यः	ढूंढ़ना चाहिए ॥२३॥

अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशताऽऽत्मना ।
सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥२४॥

अन्वय व्यतिरेकेण विवेकेन उशता आत्मना सर्गस्थान समाम्नायैः विमृशद्भिः असत्वरैः ॥२४॥

असत्वरैः	बिना उतावली किये	अन्वय	सृष्टि क्रमसे,
सर्गस्थान	(संसारकी) सृष्टि स्थिति (प्रलय) का	व्यतिरेकेण	प्रलय क्रमसे
		विवेकेन	विवेक शक्तिसे
समाम्नायैः	शास्त्र प्रतिपादित रीतिसे	विमृशद्भिः	विचार करते हुए ॥२४॥
उशता आत्मना	शुद्ध बुद्धिसे		

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ।
ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥२५॥

बुद्धेः जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिः इति वृत्तयः ता येन एव अनुभूयन्ते सः अध्यक्षः पुरुषः परः ॥२५॥

जागरणं	जागृति,	सुषुप्तिः	सुषुप्ति
स्वप्नः	स्वप्न,	इति	ये

बुद्धेः वृत्तयः	बुद्धिकी वृत्तियां हैं,		अध्यक्ष,
ता येन	वे जिसके द्वारा	परः	(इनसे) परे
अनुभूयन्ते	अनुभवकी जाती हैं,	पुरुषः	पुरुष है ॥२५॥
सः अध्यक्षः	वह (इनका)		

एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः ।
स्वरूपमात्मनो वुध्येद् गन्धैर्वायुमिवान्वयात् ॥२६॥

एभिः त्रिवर्णैः पर्यस्तैः बुद्धिभेदैः क्रिया उद्भवैः स्वरूपं आत्मनः वुध्येत् गन्धैः वायुः इव अन्वयात् ॥२६॥

गन्धैः	गन्धके द्वारा	बुद्धिभेदैः	बुद्धिकी विभिन्न
वायुम् इव	वायुके समान		स्थितियोंसे
एभिः	इन	अन्वयात्	(इनमें साक्षी रूपसे)
क्रिया उद्भवैः	क्रिया जन्य		अनुगत
त्रिवर्णैः	तीन रूपोंमें	आत्मनः	आत्माका
पर्यस्तैः	बदलनेवाली	स्वरूपं	स्वरूप
		वुध्येत्	जाने ॥२६॥

एतद्द्वारो हि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः ।
अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ॥२७॥

एतत् द्वारः हि संसारः गुण कर्म निबन्धनः अज्ञान मूलः अपार्थः अपि पुंसः स्वप्न इव इष्यते ॥२७॥

गुण कर्म	गुण और कर्मोंके	अपार्थः अपि	अवास्तविक होनेपर
निबन्धनः	कारण		भी
हि एतत्	क्योंकि यह	पुंसः	पुरुषके लिए
संसारः	संसार (जन्म-मृत्यु)	स्वप्न इव	स्वप्नके समान
	का	इष्यते	प्रतीत हो रहा है
द्वारः	द्वार		॥२७॥
अज्ञान मूलः	अज्ञान-मूलक,		

तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ।
बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥२८॥

तस्मात् भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुण आत्मनां बीज निर्हरणं योगः प्रवाह उपरमः धियः ॥२८॥

तस्मात्	इसलिए	**त्रिगुण आत्मनां**	त्रिगुण स्वरूप
भवद्भिः	तुम लोगों द्वारा	**कर्मणां**	कर्मोंके
धियः	बुद्धिकी	**बीज निर्हरणं**	बीजनाशका
प्रवाह	वृत्तियोंके प्रवाहको	**योगः**	साधन
उपरमः	शान्त कर देनेके लिए	**कर्तव्यं**	करना चाहिए ॥२८॥

तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः ।
यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ॥२९॥

तत्र उपाय सहस्राणां अयं भगवता उदितः यत् ईश्वरे भगवति यथा यैः अञ्जसा रतिः ॥२९॥

तत्र	इस सम्बन्धके	**यथा अञ्जसा**	जिस प्रकार सरलतासे
उपाय सहस्राणां	सहस्रों साधनोंमें	**भगवति**	भगवान्
अयं	यह	**ईश्वरे**	सर्वेश्वरमें
भगवता उदितः	भगवान्का बतलाया है	**यत् रतिः**	जो प्रीति हो ॥२९॥
यैः	जिसके द्वारा		

गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ।
सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥३०॥

गुरु शुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्ध अर्पणेन च सङ्गेन साधुभक्तानां ईश्वर आराधनेन च ॥३०॥

गुरु	गुरुकी	साधुभक्तानां	सच्चरित्र-भक्तोंके
भक्त्या	भक्तिपूर्वक	सङ्गेन	साथसे
शुश्रूषया	सेवा करनेसे,	च	एवं
च	तथा	ईश्वर	ईश्वरकी
सर्वलब्ध	(अपनेको) जो सब मिले	आराधनेन	आराधनासे ॥३०॥
अर्पणेन	उसे (भगवान्‌को) अर्पित करनेसे		

श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ।
तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः ॥३१॥

श्रद्धया तत् कथायां च कीर्तनैः गुण कर्मणां तत् पादाम्बुरुह ध्यानात् तत् लिङ्ग ईक्षा अर्हण आदिभिः ॥३१॥

तत् कथायां	उन (भगवान्) की कथामें	तत्	उनके
श्रद्धया	श्रद्धा होनेसे	पादाम्बुरुह	चरण-कमलका
च गुण	एवं (उनके) गुणों	ध्यानात्	ध्यान करनेसे
कर्मणां	कर्मों (अवतार चरितों) का	तत् लिङ्ग	उनकी मूर्तियोंका
कीर्तनैः	कीर्तन करनेसे	ईक्षा	दर्शन तथा
		अर्हण आदिभिः	पूजनादि करनेसे ॥३१॥

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः ।
इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥३२॥

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवान् आस्त ईश्वरः इति भूतानि मनसा कामैः तैः साधु मानयेत् ॥३२॥

सर्वेषु भूतेषु	सब प्राणियोंमें	आस्त	विराजमान हैं
ईश्वरः	सर्वशक्तिमान	इति मनसा	ऐसा मनमें समझकर
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि	भूतानि	प्राणियोंको

तैः कामैः	उनकी इच्छा पूर्ण करके,	मानयेत्	सम्मानित करें ॥३२॥
साधु	श्रेष्ठ मानकर		

एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे ।
वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम् ॥३३॥

एवं निर्जित षट्वर्गैः क्रियते भक्तिः ईश्वरे वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम् ॥३३॥

एवं	इस प्रकार	भगवति	भगवान्
षट्वर्गैः	छः (काम-क्रोध, लोभमोह, मद-मत्सर) वर्गोंको	वासुदेवे	वासुदेवकी
		भक्तिः क्रियते	भक्ति की जाती है
		यया	जिसके द्वारा
निर्जित	जीतकर	रतिं	(भगवान्में) प्रीति
ईश्वरे	सर्वसमर्थ	संलभते	प्राप्त होती है ॥३३॥

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्
वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं
प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥३४॥

निशम्य कर्माणि गुणान् अतुल्यान् वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि यदा अतिहर्षः उत्पुलक अश्रु गद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥३४॥

लीलातनुभिः	लीलासे अवतार धारण करके	यदा अतिहर्षः	जब अत्यन्त हर्षसे
		उत्पुलक	रोमांच,
कृतानि	किये हुए	अश्रु	अश्रु,
कर्माणि	कर्मों तथा	गद्गदं प्रोत्कण्ठ	गद्गद् कण्ठसे
अतुल्यान्	अतुलनीय	उद्गायति	उच्च स्वरसे गाता,
गुणान्	गुणों एवं	रौति	रोता,
वीर्याणि	पराक्रमोंको	नृत्यति	नाचता है ॥३४॥
निशम्य	सुनकर		

यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम् ।
मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥३५॥

यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचित् हसति आक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनं मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते नारायण इति आत्ममतिः गतत्रपः ॥३५॥

यदा	जब		करता है,
ग्रहग्रस्त इव	ग्रहग्रस्तके समान	मुहुः श्वसन्	बार-बार लम्बी
क्वचित्	कभी		श्वास लेकर
गतत्रपः	निर्लज्ज होकर	हरे जगत्पते	हरे ! जगत्पते !
हसति	हँसता है,	नारायण	नारायण !
आक्रन्दते	फूटफूटकर रोता है,	इति वक्ति	ऐसा पुकारता है
ध्यायति	ध्यान करने लगता है,	आत्ममतिः	तन्मय हो जाता है ॥३५॥
जनं वन्दते	लोगोंको प्रणाम		

तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥३६॥

तदा पुमान् मुक्त समस्त बन्धनः तत् भाव भाव अनुकृत आशय आकृतिः निर्दग्ध बीज अनुशयः महीयसा भक्ति प्रयोगेण समेति अधोक्षजम् ॥३६॥

तदा	उस समय	पुमान्	पुरुष
भक्ति	भक्तिके	समस्त बन्धनः	सम्पूर्ण बन्धनोंसे
महीयसा	महान	मुक्त	मुक्त हो जाता है,
ययोगेण	प्रयोगसे	तत् भाव	उस भगवद् भावकी

भाव	भावनासे	बीज निर्दग्ध	(कर्म-संस्कार) बीज जल जाते हैं।
आशय आकृतिः	अन्तःकरणका स्वरूप		
अनुकृत	तदाकार हो जाता है,	अधोक्षजं समेति	(वह) अन्तर्यामीके पास पहुँच जाता है ॥३६॥
अनुशयः	उसमें रहनेवाले		

अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः
शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ।
तद् ब्रह्म निर्वाणसुखं विदुर्बुधा-
स्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥३७॥

अधोक्षज आलम्भं इह अशुभ आत्मनः शरीरिणः संसृति चक्र शातनं तत् ब्रह्म निर्वाण सुखं विदुः बुधाः ततः भजध्वं हृदये हृदि ईश्वरम् ॥३७॥

अधोक्षज आलम्भं	अन्तर्यामीकी प्राप्ति	बुधाः	ज्ञानी-पुरुष
इह	इस संसारमें	ब्रह्म निर्वाण	ब्रह्म-निर्वाण
अशुभ आत्मनः	अशुभ-चित्त	सुखं	सुख
शरीरिणः	शरीरधारी जीवके	विदुः	जानते हैं
संसृति चक्र	आवागमनके चक्रको	ततः हृदये	इसलिए हृदयमें
शातनं	काट देनेवाला है।	हृदि ईश्वरं	हृदयके स्वामी (भगवान्) का
तत्	इसीको	भजध्वं	भजन करो ॥३७॥

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरे-
रुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः ।
स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां
सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥३८॥

कः अति प्रयासः असुर बालका हरेः उपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः स्वस्य आत्मनः सख्युः अशेष देहिनां सामान्यतः किं विषय उपपादनैः ॥३८॥

असुर बालका	असुर-पुत्रो !	हरेः उपासने	श्रीहरिकी उपासना में
स्वे हृदि	अपने हृदयके		
छिद्रवत्	आकाशके समान	कः	कौन-सा
सतः	विद्यमान	अति प्रयासः	बहुत प्रयत्न करना है ।
सामान्यतः	साधारण रूपसे		
स्वस्य आत्मनः	अपने ही आत्मा,	विषय	(और) विषय-भोगोंको
अशेष देहिनां	समस्त शरीर-धारियोंके	उपपादने	जुटानेमें
सख्युः	सखा	किं	क्या लाभ है ॥३८॥

रायः कलत्रं पशवः सुतादयो
गृहा मही कुञ्जरकोशभूतयः ।
सर्वेऽर्थकामाः क्षणभङ्गुरायुषः
कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः ॥३९॥

रायः कलत्रं पशवः सुत आदयः गृहा मही कुञ्जर कोशभूतयः सर्वे अर्थ कामाः क्षणभङ्गुः आयुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः ॥३९॥

रायः कलत्रं	धन, स्त्री,	अर्थ कामाः	अर्थ और काम
पशवः	पशु,	चलाः	अस्थिर हैं,
सुत आदयः	पुत्र आदि,	क्षणभङ्गुः	एक क्षणमें नष्ट होनेवाली
गृहा मही	भवन, भूमि,		
कुञ्जर	हाथी,	आयुषः	आयु वाले
कोशभूतयः	खजाना आदि वैभव,	मर्त्यस्य	मरण-धर्मा मनुष्यका
		कियत् प्रियं	कितना प्रिय
सर्वे	सब	कुर्वन्ति	कर सकते हैं ॥३९॥

एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी
क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः ।

तस्माददृष्टश्रुतदूषणं परं
भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये ॥४०॥

एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः स अतिशया न निर्मलाः तस्मात् अदृष्ट श्रुत दूषणं परं भक्ति एक ईशं भजत आत्म लब्धये ॥४०॥

हि	क्योंकि	निर्मलाः न	निर्मल नहीं हैं,
क्रतुभिः कृता	यज्ञों द्वारा बनाये (पाये) गये	तस्मात्	इसलिए
		दूषणं	(जिसमें) दोष
अमी लोकाः	ये (स्वर्गादि) लोक भी	अदृष्ट श्रुत	देखे-सुने नहीं गये
		परं ईशं	परमेश्वरकी
एवं क्षयिष्णवः	ऐसे ही नाशवान हैं,	आत्म लब्धये	आत्म प्राप्तिके लिए
स अतिशया	एक दूसरेसे बड़े-छोटे हैं,	एक भक्ति	अनन्य भक्तिसे
		भजत	भजन करो ॥४०॥

यदध्यर्थ्येह कर्माणि विद्वन्मान्यसकृन्नरः ।
करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम् ॥४१॥

यत् अधि अर्थे इह कर्माणि विद्वन् मान्य असकृत् नरः करोति अतः विपर्यासं अमोघं विन्दते फलम् ॥४१॥

विद्वन् मान्य	अपनेको विद्वान मानकर	कर्माणि	कर्मोंको
		करोति	करता है
इह	इस संसारमें	अतः विपर्यासं	उससे उलटा
यत् अधि अर्थे	जिस प्रयोजनसे	अमोघं फलं	निश्चित फल
नरः	मनुष्य	विन्दते	पाता है ॥४१॥
असकृत्	बार-बार		

सुखाय दुःखमोक्षाय सङ्कल्प इह कर्मिणः ।
सदाऽऽप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥४२॥

सुखाय दुःखमोक्षाय सङ्कल्प इह कर्मिणः सदा आप्नोति ईहया दुःखं अनीहायाः सुख आवृतः ॥४२॥

अनीहायाः	कामना न होनेपर	इह	इस संसारमें
सुख आवृतः	(जो) सुखमें निमग्न रहता था,	कर्मिणः	कर्म करनेवाले
ईहया	कामनासे	सुखाय	सुखके लिए और
सदा	सदा	दुःखमोक्षाय	दुःखसे छूटनेके लिए
दुःखं आप्नोति	दुःख पाता है (फिर भी)	सङ्कल्प	संकल्प करते हैं ॥४२॥

कामान्कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुषः ।
स वै देहस्तु पारक्यो भङ्गुरो यात्युपैति च ॥४३॥

कामान् कामयते काम्यैः यत् अर्थं इह पूरुषः स वै देहः तु पारक्यः भङ्गुरः याति उपैति च ॥४३॥

यत् अर्थं	जिसके लिए	पारक्यः	पराया है,
पूरुषः इह	पुरुष इस संसारमें	भङ्गुरः	नाशवान है,
काम्यैः	सकाम कर्मों द्वारा	याति	छूट जाता है,
कामान् कामयते	भोगोंको चाहता है,	च उपैति	और फिर मिल
वै स देहः तु	निश्चित वह देह तो		जाता है ॥४३॥

किमु व्यवहितापत्यदारागारधनादयः ।
राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता ममतास्पदाः ॥४४॥

किं उ व्यवहित अपत्य दारा आगार धन आदयः राज्यं कोश गज अमात्य भृत्य आप्तता ममता आस्पदाः ॥४४॥

उ	फिर	अपत्य दारा	पुत्र, स्त्री
व्यवहित	इस (देह) से पृथक	आगार धन	भवन, धन,
ममता आस्पदाः	मेरा कहे जानेवाले	आदयः	आदि

राज्यं कोश	राज्य, खजाना,	किं	का क्या कहना
गज अमात्य	हाथी, मन्त्री,		॥४४॥
भृत्य आप्त	सेवक, गुरुजन		

किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः ।
अनर्थैरर्थसंकाशैर्नित्यानन्दमहोदधेः ॥४५॥

किं एतैः आत्मनः तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः अनर्थैः अर्थ संकाशैः नित्य आनन्द महोदधेः ॥४५॥

सह देहेन	शरीरके साथ	नित्य आनन्द	नित्य आनन्द
नश्वरैः	नष्ट हो जानेवाले	महोदधेः	महासागर
अर्थ संकाशैः	पुरुषार्थसे लगनेवाले	आत्मनः	आत्माका
अनर्थैः	अनर्थ रूप	किं	क्या प्रयोजन ॥४५॥
एतैः तुच्छैः	इन छुद्रोंसे		

निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान्देहभृतोऽसुराः ।
निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥४६॥

निरूप्यतां इह स्वार्थः कियान् देहभृतः असुराः निषेकादिषु अवस्थासु क्लिश्यमान् अस्य कर्मभिः ॥४६॥

असुराः	असुरो !	अस्य	इस (शरीर) के
निरूप्यतां	विचार करो,	कर्मभिः	कर्मोंके द्वारा
इह	इस संसारमें	क्लिश्यमान्	कष्ट भोगते हुए
निषेकादिषु	गर्भाधानसे लेकर	देहभृतः	देहधारी जीवका
अवस्थासु	सब दशाओंमें	कियान् स्वार्थः	क्या स्वार्थ है ॥४६॥

कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना ।
कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥४७॥

कर्माणि आरभते देही देहेन आत्म अनुवर्तिना कर्मभिः तनुते देहं उभयं तु अविवेकतः ॥४७॥

आत्म	अपने	**देहं तनुते**	शरीर पाता है,
अनुवर्तिना	पीछे चलनेवाले	**उभयं तु**	(कर्मसे शरीर और
देहेन	सूक्ष्म शरीरसे		शरीरसे कर्म) दोनों
देही	जीव		ही तो
कर्माणि	कर्मोंका	**अविवेकतः**	अज्ञान (अविचार)
आरभते	प्रारम्भ करता है		के कारण हैं ॥४७॥
कर्मभिः	फिर कर्मोंके (फलसे) द्वारा		

तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः ।
भजतानीहयाऽऽत्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥४८॥

तस्मात् अर्थाः च कामाः च धर्माः च यत् अपाश्रयाः भजत अनीहया आत्मानं अनीहं हरिं ईश्वरं ॥४८॥

तस्मात्	इसलिए	**आत्मानं**	आत्म स्वरूप
अर्थाः च	धन और	**अनीहं ईश्वरं**	निष्काम सर्वसमर्थ
कामाः च	भोग तथा	**हरिं**	श्रीहरिका
धर्माः च	धर्म भी	**अनीहया भजत**	निष्काम भावसे
यत् अपाश्रयाः	जिनके आश्रयसे होते हैं उस		भजन करो ॥४८॥

सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रियः ।
भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥४९॥

सर्वेषां अपि भूतानां हरिः आत्मा ईश्वरः प्रियः भूतैः महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥४९॥

महद्भिःभूतैः	पञ्च महाभूतोंसे बने	**हरिः**	श्रीहरि ही
स्वकृतैः	अपने ही बनाये	**प्रियः आत्मा**	(उनके) प्रिय आत्मा
सर्वेषां	सब	**ईश्वरः**	(तथा) संचालक हैं
भूतानां अपि	प्राणियोंमें ही		॥४९॥
जीवसंज्ञितः	जीव नामसे		

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च ।
भजन् मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्याद् यथा वयम् ॥५०॥

देवः असुरः मनुष्यः वा यक्षः गन्धर्व एव च भजन् मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्यात् यथा वयम् ॥५०॥

देवः असुरः	देवता, असुर,	**भजन**	भजन करनेसे
वा मनुष्यः	या मनुष्य,	**वयं यथा**	हमारे ही समान
यक्षः च	यक्ष अथवा	**स्वस्तिमान्**	कल्याण भजन
गन्धर्व एव	गन्धर्व ही हो	**स्यात्**	होता है ॥५०॥
मुकुन्दचरणं	श्रीमुकुन्दके चरणों-का		

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥५१॥

न अलं द्विजत्वं देवत्वं ऋषित्वं वा असुर आत्मजाः प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥५१॥

असुर आत्मजाः	असुर पुत्रो !	**वा ऋषित्वं**	ऋषि होना
मुकुन्दस्य	श्रीमुकुन्दको	**अलं न**	पर्याप्त नहीं है,
प्रीणनाय	प्रसन्न करनेके लिए	**न वृत्तं**	न आचरण
द्विजत्वं	द्विज होना,	**न बहुज्ञता**	न बहुत जानकारी (पर्याप्त है) ॥५१॥
देवत्वं	देवता होना,		

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम् ॥५२॥

न दानं न तपः न इज्या न शौचं न व्रतानि च प्रीयते अमलया भक्त्या हरिः अन्यत् विडम्बनम् ॥५२॥

न दानं न तपः	न दान, न तपस्या,	**न व्रतानि च**	न व्रत ही
न इज्या	न यज्ञ	**हरिः**	श्रीहरि

अमलया	निर्मल	अन्यत् विडम्बनं	दूसरे सब (साधन) विडंबना हैं ॥५२॥
भक्त्या	भक्तिसे		
प्रीयते	प्रसन्न होते हैं		

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः ।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥५३॥

ततः हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः आत्म औपमम्येन सर्वत्र सर्वभूत आत्मनि ईश्वरे ॥५३॥

दानवाः	दानवो !	औपमम्येन	समान समझकर
ततः	इसलिए	ईश्वरे	सर्वेश्वर
सर्वत्र	सब कहीं	भगवति हरौ	भगवान् श्रीहरिकी
सर्वभूत	सब प्राणियोंको	आत्मनि	हृदयसे
आत्म	अपने ही	भक्तिं कुरुत	भक्ति करे ॥५३॥

दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः ।
खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥५४॥

दैतेया यक्ष रक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रज ओकसः खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति हि अच्युततां गताः ॥५४॥

हि	क्योंकि	खगा मृगाः	पशु-पक्षी
दैतेया	दैत्य,	पापजीवाः	पापी जीव भी,
यक्ष रक्षांसि	यक्ष, राक्षस,	अच्युततां गताः	भगवद् भावको प्राप्त
स्त्रियः शूद्रा	स्त्रियां, शूद्र,		
व्रज ओकसः	सब ब्रजवासी,	सन्ति	हुए हैं ॥५४॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ।
एकान्त भक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम् ॥५५॥

एतावान् एव लोके अस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः एकान्त भक्तिः गोविन्दे यत् सर्वत्र तत् ईक्षणम् ॥५५॥

अस्मिन् लोके	इस लोकमें	**एकान्त भक्तिः**	अनन्य भक्ति हो
एतावान् एव	इतना ही	**यत्**	जिससे
पुंसः	पुरुषका	**सर्वत्र**	सब कहीं
परः स्वार्थः	परम स्वार्थ	**तत्**	उन भगवान्का
स्मृतः	कहा गया है कि	**ईक्षणं**	दर्शन हो ॥५५॥
गोविन्दे	श्रीगोविन्दमें		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

नारद उवाच–

अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ।
जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥१॥

अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तत् अनुवर्णितं जगृहुः निरवद्यत्वात् न एव गुरु अनुशिक्षितम् ॥१॥

अथ	तब	**जगृहुः**	(उसे) ग्रहण कर लिया,
सर्वे दैत्यसुताः	सब दैत्य पुत्रोंने	**गुरु अनुशिक्षितं**	गुरु द्वारा दी गयी शिक्षा
तत्	उन (प्रह्लाद) के	**न एव**	नहीं ही (ग्रहणकी) ॥१॥
अनुवर्णितं	वर्णनको		
श्रुत्वा	सुनकर		
निरवद्यत्वात्	निर्दोष होनेके कारण		

अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकान्तसंस्थिताम् ।
आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद् यथा ॥२॥

अथ आचार्य सुतः तेषां बुद्धि एकान्त संस्थितां आलक्ष्य भीतः त्वरितः राज्ञ आवेदयत् यथा ॥२॥

अथ	फिर	**आचार्य सुतः**	शुक्राचार्यके पुत्रोंने
तेषां बुद्धि	उन सबकी बुद्धि	**भीतः**	डरकर
एकान्त	दृढता पूर्वक (भगवान्में)	**त्वरितः**	शीघ्र
		यथा	जैसा था
संस्थितां	लगी	**राज्ञ आवेदयत्**	राजासे निवेदन किया ॥२॥
आलक्ष्य	देखकर		

श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयम् ।
कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे ॥३॥

श्रुत्वा तत् अप्रियं दैत्यः दुःसहं तनय अनयं कोप आवेश चलत् गात्रः पुत्रं हन्तुं मनः दधे ॥३॥

तत् अप्रियं	वह अप्रिय	**दैत्यः**	दैत्य हिरण्यकशिपुने
तनय अनयं	पुत्रकी अनीति	**पुत्रं हन्तुं**	पुत्रको मार देनेका
श्रुत्वा	सुनकर	**मनः दधे**	मनमें निश्चय किया
कोप आवेश	क्रोधावेशसे		॥३॥
चलत् गात्रः	कांपते शरीरवाले		

क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम् ।
आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥४॥

क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादं अतत् अर्हणं आह ईक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥४॥

परुषया वाचा	कठोर वाणीसे	**पापेन**	पाप भरी
क्षिप्त्वा	डाँटते हुए	**तिरश्चीनेन**	तिरछी दृष्टिसे
अतत् अर्हणं	इस (डांटने) के अयोग्य	**ईक्षमाणः**	देखता हुआ
		आह	बोला ॥४॥
प्रह्लादं	प्रह्लादको		

प्रश्रयावनतं दान्तं बद्धाञ्जलिमवस्थितम् ।
सर्पः पदाहत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥५॥

प्रश्रय अवनतं दान्तं बद्ध अञ्जलिं अवस्थितं सर्पः पद आहतः इव श्वसन् प्रकृति दारुणः ॥५॥

प्रश्रय अवनतं	नम्रतासे झुके	**दान्तं**	जितेन्द्रिय (प्रह्लाद) से
बद्ध अञ्जलिं	हाथ जोड़े	**पद आहतः**	पैरसे कुचले
अवस्थितं	सामने खड़े		

सर्पः इव	सर्पके समान	प्रकृति दारुणः	स्वभावसे ही क्रूर (बोला) ॥५॥
श्वसन्	फुफकारता		

हिरण्यकशिपुरुवाच—*

हे दुर्विनीत मन्दात्मन्कुलभेदकराधम ।
स्तब्धं मच्छासनोद्धूतं नेष्ये त्वाद्य यमक्षयम् ॥६॥

हे दुर्विनीत मन्द आत्मन् कुल भेदकर अधम स्तब्धं मत् शासन उद् धूतं नेष्ये त्वा अद्य यम क्षयम् ॥६॥

हे दुर्विनीत	अरे उद्दण्ड,	मत् शासन	मेरी आज्ञाकी
मन्द आत्मन्	मन्द-बुद्धि,	उद् धूतं	अवहेलना करने-वाला
कुल भेदकर	कुलमें फूट डालने-वाला,	अद्य त्वा	आज तुझे
अधम	अधम,	यम क्षयं	यमराजके लोक
स्तब्धं	मूर्ख	नेष्ये	भेज देता हूँ ॥६॥

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ।
तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किम्बलोऽत्यगाः ॥७॥

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयः लोकाः सह ईश्वराः तस्य मे अभीतवन् मूढ शासनं किं बलः अत्यगाः ॥७॥

यस्य क्रुद्धस्य	जिसके क्रोध करनेपर	शासनं	आदेशका
त्रयः लोकाः	तीनों लोक	मूढ	मूर्ख !
सह ईश्वराः	अपने स्वामियोंके साथ	अभीतवन्	निर्भयके समान
कम्पन्ते	काँपने लगते हैं	किं बलः	किस बलपर (तूने)
तस्य मे	उस मेरे	अत्यगाः	उलंघन किया है ॥७॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

प्रह्लाद उवाच–

न केवलं मे भवतश्च राजन्
स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ।
परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये
ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥८॥

न केवलं मे भवतः च राजन् स वै बलं बलिनां च अपरेषां परे अवरे अमी स्थिर जङ्गमा ये ब्रह्मा आदयः येन वशं प्रणीताः ॥८॥

राजन्	राजन् !	वै स	निश्चय वही
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मा आदि	केवलं मे न	केवल मेरा ही नहीं
अमी मरे अवरे	ये बड़े-छोटे	भवतः च	आपका भी
ये स्थिर	जितने स्थावर	च अपरेषां	तथा दूसरे भी
जङ्गमा	जंगम हैं	बलिनां बलं	बलवानोंका बल है
येन	जिसके द्वारा		॥८॥
वशं प्रणीताः	वशमें किये गये हैं		

स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसा-
वोजःसहः सत्त्वबलेन्द्रियात्मा ।
स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः
सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः ॥९॥

स ईश्वरः कालः उरुक्रमः असाः ओजः सहः सत्त्व बल इन्द्रिय आत्मा स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजति अवति अत्ति गुणत्रय ईशः ॥९॥

स उरुक्रमः	वही अनन्त पराक्रम	ओजः सहः	इन्द्रिय-बल, मनोबल
ईश्वरः	सर्वसमर्थ	सत्त्व बल	देह-बल,
कालः	काल है,	इन्द्रिय आत्मा	इन्द्रिय तथा बुद्धि हैं
असाः	वही	स एव परमः	वही परमात्मा

गुणत्रय	तीनों गुणोंके	विश्वं सृजति	संसारकी सृष्टि करते हैं,
ईशः	स्वामी		
स्वशक्तिभिः	अपनी शक्तियोंसे	अवति	रक्षा करते हैं और
		अत्ति	खा लेते हैं ॥९॥

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः
समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ।
ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्
तद्धि ह्यनन्तस्य महत् समर्हणम् ॥१०॥

जहि आसुरं भावं इमं त्वं आत्मनः समं मनः धत्स्व न सन्ति विद्विषः ऋते अजित आदात्मन उत्पथ स्थितात् तत् हि हि अनन्तस्य महत् समर्हणम् ॥१०॥

त्वं	आप	विद्विषः	(दूसरा कोई) शत्रु
इमं आत्मनः	यह अपना	न सन्ति	नहीं है,
आसुरं भावं	आसुरी स्वभाव	मनः समं	मनको समतामें
जहि	त्याग दीजिए,	धत्स्व	धारण कीजिए
हि	क्योंकि	हि	क्योंकि
उत्पथ स्थितात्	कुमार्गमें लगे	तत् अनन्तस्य	वह भगवान् अनन्त-
अजित आदात्मन	बिना जीते मनको		की
ऋते	छोड़कर	महत् समर्हणं	महती पूजा है ॥१०॥

दस्यून्पुरा षण्ण विजित्य लुम्पतो
मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश ।
जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां
साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥११॥

दस्यून् पुरा षट् न विजित्य लुम्पतः मन्यन्त एके स्वजिता दिशः दश जित आत्मनः ज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोह प्रभवाः कुतः परे ॥११॥

पुरा	पहिले	जित आत्मनः	मनको जीते
लुम्पतः	लूटनेमें लगे	ज्ञस्य	तत्त्वज्ञानी,
षट् दस्यून्	(काम-क्रोधादि) छः डाकुओंको	देहिनां समस्य	सब प्राणियोंके प्रति समान रहनेवाले
न विजित्य	बिना जीते ही	साधोः	साधु-पुरुषके लिए
एके	कोई	स्वमोह	अपने अज्ञानसे
दश दिशः	दसो दिशाओंको	प्रभवाः	उत्पन्न
स्वजिता	अपनी जीती	परे कुतः	ये शत्रु कहाँसे होंगे ॥११॥
मन्यन्त	मानते हैं,		

हिरण्यकशिपुरुवाच—

व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे ।
मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन् ननु स्युर्विप्लवा गिरः ॥१२॥

व्यक्तं त्वं मर्तुं कामः असि यः अतिमात्रं विकत्थसे मुमूर्षूणां हि मन्द आत्मन् ननु स्युः विप्लवा गिरः ॥१२॥

व्यक्तं	स्पष्ट है कि	हि	क्योंकि
त्वं मर्तुं कामः	तू मरनेकी इच्छा वाला	मन्द आत्मन्	मन्दबुद्धे !
असि	है,	मुमूर्षूणां	मरनेवालोंकी
यः अतिमात्रं	जो बहुत अधिक	गिरः	वाणी
विकत्थसे	बकबाद कर रहा है	विप्लवाः स्युः	बेसिर-पैरकी होती है ॥१२॥

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥१३॥

यः त्वया मन्द भाग्य उक्तः मत् अन्यः जगत् ईश्वरः क्व असौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥१३॥

मन्द भाग्य	अभागे !	मत् अन्यः	मुझसे भिन्न
त्वया यः	तूने जो	जगत् ईश्वरः	संसारका स्वामी

उक्तः	बतलाया	स्तम्भे	इस खम्भेमें
असौ क्व	यह कहाँ है ?	कस्मात्	क्यों
स यदि	वह यदि	न दृश्यते	नहीं दीखता ॥१३॥
सर्वत्र	सर्वत्र है तो		

सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ।
गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥१४॥

सः अहं विकत्थ मानस्य शिरः कायात् हरामि ते गोपायेत हरिः तु अद्य यः ते शरणं ईप्सितम् ॥१४॥

सः अहं	वह मैं	यः ते	जो तेरी
विकत्थ मानस्य	बकवाद करते	ईप्सितं शरणं	अभीष्ट शरण है
ते शिरः	तेरा सिर	तु हरिः	वह हरि
कायात्	शरीरसे	अद्य ते	आज तेरी
हरामि	पृथक कर देता हूँ	गोपायेत	रक्षा करे ॥१४॥

नारद उवाच—*

एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा
सुतं महाभागवतं महासुरः ।
खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात्
स्तम्भं ततादातिबलः स्वमुष्टिना ॥१५॥

एवं दुरुक्तैः मुहुः अर्दयन् रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः खड्गं प्रगृह्य उत्पतितः वरासनात् स्तम्भं ततड अतिबलः स्वमुष्टिना ॥१५॥

महाभागवतं	परम भगवद् भक्त	मुहुः अर्दयन्	बार-बार रौंदता हुआ
सुतं	पुत्र (प्रह्लाद) को		
एवं दुरुक्तैः	इस प्रकार दुर्वचनोंसे	महासुरः	वह महादैत्य

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

खड्गं प्रगृह्य	तलवार लेकर	अतिबलः	बड़े जोरसे
वरासनात्	श्रेष्ठ सिंहासनसे	स्वमुष्टिना	अपने घसेसे
रुषा उत्पतितः	क्रोधके मारे कूद पड़ा	स्तम्भं ततोड	खम्भेको मारा ॥१५॥

तदैव तस्मिन् निनदोऽतिभीषणो
बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ।
यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः
श्रुत्वा स्वधामाप्ययमङ्ग मेनिरे ॥१६॥

तत् एव तस्मिन् निनदः अति भीषणः बभूव येन अण्ड कटाहं अस्फुटत् यं वै स्वधिष्ण्य उपगतं तु अजादयः श्रुत्वा स्वधाम अप्ययं अङ्ग मे निरे ॥१६॥

अङ्ग	प्रिय युधिष्ठिर !	अस्फुटत्	(लगा कि) फट गया,
तत् एव	उसी समय	यं स्वधिष्ण्य	जिसे अपने धाम
तस्मिन्	उस (खम्भे) से	उपगतं	पहुँचनेपर
अति भीषणः	बहुत भयंकर	अजादयः तु	ब्रह्मादिने तो
निनदः बभूव	शब्द हुआ,	श्रुत्वा	सुनकर
येन	जिससे	वै	निश्चित
अण्ड कटाहं	ब्रह्माण्ड रूपी कड़ाहा	स्वधाम अप्ययं	अपने धामकी प्रलय
		मेनिरे	मान लिया ॥१६॥

स विक्रमन् पुत्रवधेप्सुरोजसा
निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्भुतम् ।
अन्तःसभायां न ददर्श तत्पदं
वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥१७॥

स विक्रमन् पुत्र वध इप्सुः ओजसा निशम्य निर्ह्रादं अपूर्वं अद्भुतं अन्तःसभायां न ददर्श तत् पदं वितत्रसुः येन सुर अरि यूथपाः ॥१७॥

स	वह (हिरण्यकशिपु)
पुत्र वध	पुत्रको मारना
इप्सुः	चाहता हुआ
ओजसा विक्रमन्	वेगसे झपटा था; किन्तु
येन	जिससे
सुर अरि यूथपाः	देवशत्रुओंके सेना-नायक
वितत्रसुः	बहुत डर गये थे, उस
अपूर्वं अद्भुतं	अपूर्व, अद्भुत
निर्ह्रादं	घोर शब्दको
निशम्य	सुनकर
सनायां	सभामें
तत् पदं	उस (शब्द) का स्थान
न ददर्श	नहीं देख सका

॥१७॥

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥१८॥

सत्यं विधातुं निज भृत्य भाषितं व्याप्तिं च भूतेषु अखिलेषु च आत्मनः अदृश्यत अति अद्भुतं रूपं उद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥१८॥

निज भृत्य	अपने सेवक (प्रह्लाद) का
भाषितं	कहा
सत्यं विधातुं	सत्य करनेके लिए
च अखिलेषु	तथा समस्त
भूतेषु	प्राणि-पदार्थोंमें
आत्मनः	अपनी
व्याप्तिं च	व्यापकता भी (प्रकट करनेके लिये)
न मृगं	न पशुका
न मानुषं	न मनुष्यका
अति अद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत
रूपं	रूप (नृसिंह)
उद्वहन्	धारण करके
सभायां स्तम्भे	सभाके खम्भेमें
अदृश्यत	दिखलायी पड़े

॥१८॥

स सत्त्वमेनं परितोऽपि पश्यन्
स्तम्भस्य मध्यादनु निर्जिहानम् ।

नायं मृगो नापि नरो विचित्र-
महो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥१९॥

स सत्त्वं एनं परितः अपि पश्यन् स्तम्भस्य मध्यात् अनु निर्जिहानं न अयं मृगः न अपि नरः विचित्रं अहो किं एतत् नृमृगेन्द्र रूपम् ॥१९॥

स एनं	वह (हिरण्यकशिपु) इस
सत्त्वं परितः	प्राणीको चारों ओर
पश्यन् अपि	देख (ढूंढ़) ही रहा था कि
अनु	पीछे
स्तम्भस्य	खम्भेके
मध्यात्	बीचसे
निर्जिहानं	निकलते हुए (देख-कर सोचने लगा)
अहो	अरे,
अयं न मृगः	यह न पशु है,
न नरः	न मनुष्य है,
विचित्रं	विचित्र
नृमृगेन्द रूपं	नृसिंह रूप
एतत् किं	यह क्या है ?

॥१९॥

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो
नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ।
प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं
स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम् ॥२०॥

मीमांसमानस्य समुत्थितः अग्रतः नृसिंहरूपः तत् अलं भयानकं प्रतप्त चामीकर चण्ड लोचनं स्फुरत् सटा केशर जृम्भित आननम् ॥२०॥

मीमांसमानस्य	उधेड़-बुनमें पड़े (हिरण्यकशिपुके)
अग्रतः	सामने
समुत्थितः	उठकर खड़े हुए
नृसिंहरूपः	भगवान् नृसिंहका रूप
भयानकं तत् अलं	भयंकरताकी वह सीमा है,
प्रतप्त चामीकर	तपाये सोनेके समान
चण्ड लोचनं	उग्र नेत्र,
सटा केशर	गर्दनके बाल
जृम्भित आननं	जम्हाई लेनेसे फैले मुखके कारण
स्फुरत्	हिल रहे थे ॥२०॥

करालदंष्ट्रं करवालचञ्चल-
क्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुत-
व्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥२१॥

करालदंष्ट्रं करवालचञ्चल क्षुरान्तजिह्वं भृकुटीमुखोल्बणं स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुत व्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥२१॥

करालदंष्ट्रं	विकराल दाढ़ें,	स्तब्धोर्ध्वकर्णं	कान ऊपर स्थिर उठे थे,
करवाल	तलवारके समान	नासं हनुभेद	फूली नासिकासे
चञ्चल	लपलपाती	गिरिकन्दर	पर्वतकी गुफाके समान
क्षुरान्त जिह्वं	छुरेकी धारके समान तीखी जीभ,	अद्भुत	अद्भुत
भृकुटी	(टेढ़ी) भौंहोंसे	व्यात्त आस्य	फैला मुख
मुख उल्बणं	मुख और भयानक हो रहा था,	भीषणं	और भयंकर लगता था ॥२१॥

दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवर-
ग्रीवोरुवक्षः स्थलमल्पमध्यमम् ।
चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहै-
र्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥२२॥

दिविस्पृशत् कायं अदीर्घ पीवर ग्रीव उरु वक्षः स्थलं अल्प मध्यमं चन्द्र अंशु गौरैः छुरितं तनूरुहैः विष्वक् भुज अनीक शतं नखा आयुधम् ॥२२॥

कायं	शरीर	ग्रीव	गर्दन थी,
दिविस्पृशत्	स्वर्गको छू रहा था,	उरु वक्षः स्थलं	छाती चौड़ी,
अदीर्घ पीवर	नाटी और मोटी	अल्पं मध्यमं	कमर पतली थी,

चन्द्र अंशु गौरैः	चन्द्र किरणोंके समान श्वेत	शतं भुज अनीक	सैकड़ों भुजाओं रूपी सेना
तनूरुहै छुरितं	रोमोंसे मानो पोते गये हों,	नखा आयुधं	नखों रूपी शस्त्र लिए थी ॥२२॥
विष्वक्	चारों ओर		

दुरासदं सर्वनिजेतरायुध-
प्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ।
प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना
वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥

दुरासदं सर्व निज इतर आयुध प्रवेक विद्रावित दैत्य दानवं प्रायेण मे अयं हरिणा उरु मायिना वधः स्मृतः अनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥

दुरासदं	उनके पास जाया नहीं जा सकता था	उरु मायिना	अत्यन्त मायावी
		हरिणा	हरिने
निज सर्व इतर	अपने सभी (चक्रादि) तथा दूसरे (वज्रादि)	मे वधः	मेरे वधके लिए
		अयं प्रायेण	यह ढंग
		स्मृतः	सोचा है (पर)
आयुध	आयुधोंके	अनेन	इसकी
प्रवेक	आधातसे	समुद्यतेन	इस चालसे
दैत्य दानवं	दैत्यों दानवोंको	किम्	क्या होनेवाला है ॥२३॥
विद्रावित	भगा दिया (तब हिरण्यकशिपुने सोचा)		

एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद् गदायुधो
नदन् नृसिंहं प्रति दैत्यकुञ्जरः ।
अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतङ्गमो
यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥२४॥

एवं ब्रुवन् तु अभ्यपतत् गदा आयुधः नदन् नृसिंहं प्रति दैत्य कुञ्जरः
अलक्षितः अग्नौ पतितः पतङ्गमः यथा नृसिंह ओजसि सः असुरः तदा ॥२४॥

एवं ब्रुवन्	ऐसा कहता हुआ
गदा आयुधः	गदा रूपी शस्त्र लेकर
नदन्	गर्जना करता हुआ
नृसिंहं प्रति	नृसिंहकी ओर
दैत्य कुञ्जरः तु	दैत्य रूपी गजराज तो
अभ्यपतत्	झपट पड़ा,
यथा अग्नौ	जैसे अग्निमें
पतितः पतङ्गमः	गिरा पतंग
तदा	उस समय
सः असुरः	वह असुर
नृसिंह ओजसि	नृसिंहके तेजमें (वैसे ही)
अलक्षितः	अलक्षित हो गया ॥२४॥

न तद् विचित्रं खलु सत्त्वधामनि
स्वतेजसा यो नु पुरापिबत् तमः ।
ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो
रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥२५॥

न तत् विचित्रं खलु सत्त्व धामनि स्वतेजसा यः नु पुरा अपिबत् तमः ततः अभिपद्य अभ्यहनत् महा असुरः रुषा नृसिंहं गदया उरु वेगया ॥२५॥

सत्त्व धामनि	समस्त शक्तिके धाम (भगवान्के लिए)
यः नु	जिन्होंने तो
पुरा	पहिले (सृष्टिके समय)
स्वतेजसा	अपने तेजसे
तमः	(प्रलय कालीन) अन्धकार
अपिबत्	पी लिया था
तत् खलु	यह तो कोई
विचित्रं न	विचित्र बात नहीं है ।
ततः महा असुरः	फिर असुरराज (हिरण्यकशिपु) ने
नृसिंहं	नृसिंहके
अभिपद्य	समीप पहुँचकर
रुषा गदया	क्रोधमें भरकर गदासे
उरु वेगया	बड़े वेगसे
अभ्यहनत्	प्रहार किया ॥२५॥

तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरो
महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाग्रहीत् ।
स तस्य हस्तोत्कलितस्तदासुरो
विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥२६॥

तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरः महा उरगं तार्क्ष्यसुतः यथा अग्रहीत् स तस्य हस्त उत्कलितः तदा असुरः विक्रीडतः यत्वत् अहिः गरुत्मतः ॥२६॥

तं विक्रमन्तं	उसे प्रहार करते समय ही	यत्वत्	जैसे
		अहिः	सर्पसे
महा उरगं	भारी सर्पको	विक्रीडतः	खेल करते समय (सर्प छूट जाय)
यथा तार्क्ष्यसुतः	जैसे गरुड़ (पकड़ें)		
गदाधरः	भगवान्ने	तदा स असुरः	उस समय वह असुर
सगदं	गदाके साथ	तस्य हस्त	उनके हाथसे
अग्रहीत्	पकड़ लिया,	उत्कलितः	निकल गया ॥२६॥
गरुत्मतः	गरुड़ द्वारा		

असाध्वमन्यन्त हृतौकसोऽमरा
घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः ।
तं मन्यमानो निजवीर्यशङ्कितं
यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ।
पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी
प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे ॥२७॥

असाध्व मन्यन्त हृत ओकसः अमरा घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः तं मन्यमानः निजवीर्य शंकितं यत् हस्तमुक्तः नृहरिं महा असुरः पुनः तं आसज्जत खड्ग चर्मणी प्रगृह्य वेगेन जितश्रमः मृधे ॥२७॥

भारत	युधिष्ठिर !	सर्वधिष्ण्यपाः	सब लोकपाल
घनच्छदा	मेघोंकी आड़में छिपे		

हृत ओकसः	जिनके घर छीन लिये गये थे
अमरा	वे देवता
असाध्व मन्यन्त	अच्छा नहीं माना,
महा असुरः	महादैत्यने
तं निजवीर्य	उन (नृसिंह) को अपने पराक्रमसे
शंकितं	डरा
मन्यमानः	माना
यत्	क्योंकि
नृहरिं	नृसिंहके
हस्तमुक्तः	हाथसे छूट गया था,
पुनः	फिर
खड्ग चर्मणी	ढाल-तलवार
प्रगृह्य	लेकर
जितश्रमः	थकावट जीतकर
मृधे वेगेन	युद्धमें वेग पूर्वक
तं आसज्जत	उनकी ओर दौड़ा ॥२७॥

तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभि-
श्चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ।
कृत्वाट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं
निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥२८॥

तं श्येनवेगं शतचन्द्र वर्त्मभिः चरन्तं अच्छिद्रं उपरि अधः हरिः कृत्वा अट्टहासं खरं उत्स्वन उल्बणं निमीलित अक्षं जगृहे महाजवः ॥२८॥

श्येनवेगं	बाजके समान गतिसे
उपरि अधः	ऊपर-नीचे
शतचन्द्र	तलवारके
वर्त्मभिः	पैंतरे
चरन्तं	बदलता
अच्छिद्रं	(पकड़नेके अवकाश-की त्रुटि न करता
तं	उस (हिरण्यकशिपु) को देखकर
खरं उत्स्वन	तीक्ष्ण उच्चस्वरसे
उल्बणं अट्टहासं	भयंकर अट्टहास
कृत्वा	करके
निमीलित अक्षं	(उसके) नेत्र बन्द होते ही
महाजवः	बड़े वेगसे
जगृहे	पकड़ लिया ॥२८॥

विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरि-
र्व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ।

द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया
नखैर्यथाहिं गरुडो महाविषम् ॥२९॥

विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहण आतुरं हरिः व्यालः यथा आखुं कुलिश अक्षत त्वचं द्वाः यूर आपात्य ददार लीलया नखैः यथा अहिं गरुडः महाविषम् ॥२९॥

यथा आखुं	जैसे चूहेको	त्वचं	चमड़ीको
व्यालः	सर्प (पकड़ ले)	यथा	जैसे
ग्रहण आतुरं	पकड़े जानेसे व्याकुल	महाविषं	अत्यन्त विषैले
विष्वक् स्फुरन्तं	चारों ओर छटपटाते-को	अहिं गरुडः	सर्पको गरुड़ (फाड़ दें)
द्वाः यूर	द्वारकी चौखटपर	लीलया	खेलमें ही
आपात्य	गिराकर	हरिः ददार	नृसिंहने फाड़ दिया ॥२९॥
कुलिश अक्षत	वज्रसे भी घाव न लगने वाला		

संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो
व्यात्ताननान्तं विलिहन्स्वजिह्वया ।
असृग्लवाक्तारुणकेसराननो
यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥३०॥

संरम्भ दुष्प्रेक्ष्य कराल लोचनः व्यात्त आनन अन्तं विलिहन् स्वजिह्वया असृक् लव आक्त अरुण केसर आननः यथा अन्त्रमाली द्विप हत्यया हरिः ॥३०॥

संरम्भ	क्रोधसे भरे	अन्तं	किनारोंको
कराल लोचनः	भयानक नेत्रोंकी ओर	स्वजिह्वया	अपनी जीभसे
दुष्प्रेक्ष्य	देखा नहीं जाता था,	विलिहन्	चाट रहे थे,
व्यात्त आनन	फैले मुखकी	असृक् लव	रक्त छीटोंसे

केसर आननः	सटाके केश और मुख	द्विप हत्यया	हाथीको मारकर
आक्त	लथपथ होकर	हरिः	सिंह
अरुण	लाल हो रहे थे,	आन्त्रमाली	आँतोंकी माला
यथा	जैसे		पहिने हो ॥३०॥

नखाङ्कुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं
विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ।
अहन् समन्तान्नखशस्त्रपाणिभि-
र्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान् सहस्रशः ॥३१॥

नख अङ्कुर उत्पाटित हृत् सरोरुहं विसृज्य तस्य अनुचरान् उदायुधान् अहन् समन्तात् नखशस्त्र पाणिभिः दोर्दण्ड यूथः अनुपथान् सहस्रशः ॥३१॥

नख अङ्कुर	नखकी नोकसे	यूथः अनुपथान्	सेना-नायक
हृत् सरोरुहं	(उसके) हृदय-कमलको	अनुचरान्	सेवकोंको
उत्पाटित	उखाड़कर	नखशस्त्र	नख रूपी शस्त्र युक्त
विसृज्य	फेंक दिया	दोर्दण्ड	भुजाओं रूपी
तस्य उदायुधान्	उसके हथियार उठाये	पाणिभिः	सेनासे
		समन्तात् अहन्	चारों ओर खदेड़ कर मार दिया ॥३१॥
सहस्रशः	हजारों		

सटावधूता जलदाः परापतन्
ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ।
अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभु-
र्निर्ह्रादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥३२॥

सटा अवधूता जलदाः परापतन् ग्रहाः च तत् दृष्टि विमुष्ट रोचिषः अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभुः निर्ह्राद भीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥३२॥

सटा अवधूता	गर्दनके केश फट-कारनेसे
जलदाः	मेघ
परापतन्	तितर-बितर होने लगे,
च तत् दृष्टि	और उनकी दृष्टिसे
ग्रहाः	ग्रहोंकी
रोचिषः विमुष्ट	कान्ति फीकी पड़ गयी
श्वासहता	श्वासके आघातसे
अम्भोधयः	समुद्रमें
विचुक्षुभुः	क्षोभ होने लगा,
निर्ह्रादभीता	(उनकी) गर्जनासे डरकर
दिगिभा	दिग्गज
विचुक्रुशुः	चिल्लाने लगे ॥३२॥

द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसङ्कुला
प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदातिपीडिता ।
शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा
तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥३३॥

द्यौः तत् सटा उत्क्षिप्त विमान सङ्कुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदा अतिपीडिता शैलाः समुत्पेतुः अमुष्य रंहसा तत् तेजसा खं ककुभः न रेजिरे ॥३३॥

तत् सटा	उनके गरदनके बालोंसे
द्यौः सङ्कुला	आकाशमें भरे
विमान उत्क्षिप्त	(देवताओंके) विमान अस्त-व्यस्त हो गये,
पदा	चरणोंसे
अतिपीडिता	बहुत दबी
क्ष्मा प्रोत्सर्पत	पृथ्वी डगमगाने लगी,
अमुष्य रंहसा	उनके वेगसे
शैलाः समुत्पेतुः	पर्वत उड़ने लगे,
तत् तेजसा	उनके तेजसे
खं ककुभः	आकाश और दिशायें
न रेजिरे	नहीं दीखती थीं ॥३३॥

ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे
नृपासने संभृततेजसं विभुम् ।

अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं
प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥३४॥

ततः सभायां उपविष्टं उत्तमे नृप आसने संभृततेजसं विभुं अलक्षित द्वैरथं अति अमर्षणं प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥३४॥

ततः	तब	संभृततेजसं	तेजपूर्ण
द्वैरथं	शत्रुओंके	प्रचण्डवक्त्रं	भयानक मुख
अलक्षित	न दिखलायी देनेपर	विभुं	प्रभु नृसिंहकी
सभायां	सभामें	कश्चन	कोई भी
उत्तमे	श्रेष्ठ	बभाज	सेवा करने
नृप आसने	राजसिंहासनपर	न	नहीं गया ॥३४॥
उपविष्टं	बैठे हुए		

निशम्य लोकत्रयमस्तकज्वरं
तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ।
प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः
प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥३५॥

निशम्य लोकत्रय मस्तकज्वरं तं आदिदैत्यं हरिणा हतं मृधे प्रहर्ष-वेग उत्कलित आनना मुहुः प्रसूनवर्षैः ववृषुः सुरस्त्रियः ॥३५॥

लोकत्रय	तीनों लोकोंके	उत्कलित	खिले
मस्तकज्वरं	सिरकी पीड़ा स्वरूप	आनना	मुखवाली
तं आदिदैत्यं	उस आदिदैत्यको	सुरस्त्रियः	देवाङ्गनाएँ
हरिणा	भगवान् नृसिंह द्वारा	मुहुः	बार-बार
मृधे हतं	युद्धमें मारा गया	प्रसूनवर्षैः	पुष्प-राशियोंकी
निशम्य	सुनकर	ववृषुः	वर्षा करने लगीं ॥३५॥
प्रहर्ष-वेग	अत्यन्त हर्षावेशसे		

तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं
दिदृक्षतां सङ्कुलमास नाकिनाम् ।

सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे
गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥३६॥

तदा विमान अवलिभिः नभः तलं दिदृक्षतां सङ्कुलं आस नाकिनां सुर आनका दुन्दुभयः अथ जघ्निरे गन्धर्वमुख्याः ननृतुः जगुः स्त्रियः ॥३६॥

तदा	उस समय	**सुर आनका**	देवताओंके नगाड़ों
दिदृक्षतां	दर्शनार्थ आये	**अथ दुन्दुभयः**	और दुन्दुभियोंपर
नाकिनां	स्वर्गके देवताओंके	**जघ्निरे**	चोट पड़ने लगी
विमान	विमानोंके	**गन्धर्वमुख्याः**	प्रमुख गन्धर्व
अवलिभिः	झुंडोंसे	**स्त्रियः**	और उनकी स्त्रियां
नभः तलं	आकाश मण्डल	**ननृतुः जगुः**	नाचने, गाने लगे
सङ्कुलं आस	भर गया,		॥३६॥

तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः ।
ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ॥३७॥

तत्र उपव्रज्य विबुधा ब्रह्म इन्द्र गिरिश आदयः ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधर महोरगाः ॥३७॥

तत्र	वहाँ	**सिद्धा**	सिद्ध-लोग,
ब्रह्म इन्द्र	ब्रह्मा, इन्द्र,	**विद्याधर**	विद्याधर,
गिरिश आदयः	शंकर आदि	**महोरगाः**	महानाग
विबुधा	देवता,	**उपव्रज्य**	समीप आकर ॥३७॥
ऋषयः पितरः	ऋषिगण, पितर,		

मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः ।
यक्षाः किम्पुरुषास्तात वेतालाः सिद्धकिन्नराः ॥३८॥

मनवः प्रजानां पतयः गन्धर्वा, अप्सर, चारणाः, यक्षाः, किंपुरुषाः तात वेतालाः सिद्ध किन्नराः ॥३८॥

तात	तात युधिष्ठिर !	**चारणाः यक्षाः**	चारण, यथा,
मनवः	सब मनु	**किम्पुरुषाः**	किम्पुरुष,
प्रजानां पतयः	प्रजापतिगण,	**वेतालाः सिद्ध**	वेताल, सिद्ध,
गन्धर्वा अप्सर	गन्धर्व, अप्सराएँ	**किन्नराः**	किन्नर ॥३८॥

ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनन्दकुमुदादयः ।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम् ।
ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥३९॥

ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनन्द कुमुद आदयः मूर्ध्निबद्ध अञ्जलि-पुटा आसीनं तीव्रतेजसं ईडिरे नरशार्दूलं न अतिदूर चराः पृथक् ॥३९॥

ते सर्वे	वे सब	**आसीनं**	बैठे हुए
सुनन्द कुमुद	सुनन्द, कुमुद	**नरशार्दूलं**	नृसिंह भगवान्से
आदयः	आदि	**न अतिदूर**	बहुत दूर नहीं (थोड़ी दूर)
विष्णुपार्षदाः	विष्णुपार्षद		
अञ्जलि-पुटा	हाथ जोड़कर	**चराः**	रहते हुए
मूर्ध्निबद्ध	उसे सिरसे लगाये	**पृथक् ईडिरे**	अलग-अलग स्तुति करने लगे ॥३९॥
तीव्रतेजसं	उग्र तेजवाले		

ब्रह्मोवाच-

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये
विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान् गुणैः
स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥४०॥

नतः अस्मि अनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे विश्वस्य सर्गं स्थिति संयमान् गुणैः स्वलीलया संदधते अव्यय आत्मने ॥४०॥

दुरन्तशक्तये	जिनकी शक्तियोंका अन्त पाना कठिन है,	संयमान्	प्रलयको
		स्वलीलया	अपनी लीलासे
अनन्ताय	उन अनन्त	गुणैः संदधते	(सत्त्वादि) गुणोंके द्वारा सम्पन्न करते,
विचित्रवीर्याय	अद्भुत पराक्रम,		
पवित्रकर्मणे	पवित्रकर्मा,	अव्यय आत्मने	अविनाशी स्वरूपको
विश्वस्य	विश्वकी	नतः अस्मि	नमस्कार करता हूँ ॥४०॥
सर्ग स्थिति	सृष्टि, स्थिति,		

श्रीरुद्र उवाच—

कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ।
तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥४१॥

कोपकालः युगान्तः ते हतः अयं असुरः अल्पकः तत् सुतं पाहि उपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥४१॥

ते कोपकालः	आपके क्रोधका समय	भक्तवत्सल	भक्तवत्सल !
		उपसृतं	शरण आये
युगान्तः	युगोंके अन्तमें (प्रलयके समय) आवेगा	ते भक्तं	आपके भक्त
		तत् सुतं	उसके पुत्र (प्रह्लाद) की
अयं अल्पकः असुरः हतः	यह क्षुद्र असुर मार दिया गया,	पाहि	रक्षा कीजिए ॥४१॥

इन्द्र उवाच—

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा
दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ।
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते
मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥४२॥

प्रति आनीताः परम भवता त्रायता नः स्व भागा दैत्य आक्रान्तं हृदय-कमलं त्वत् गृहं प्रत्यबोधि कालग्रस्तं कियत् इदं अहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिः तेषां न हि बहुमता नारसिंह अपरैः किम् ॥४२॥

परम	परमपुरुष !
नः त्रायता	हम लोगोंकी रक्षा करते हुए
प्रति आनीताः	(ये) लौटाये गये
भागा	(यज्ञ) भाग तो
भवता स्व	आपके अपने ही हैं,
दैत्य आक्रान्तं	दैत्य (के आतङ्क) से ग्रस्त
हृदय-कमलं	(हमारे) हृदय-कमलको
प्रत्यबोधि	(आपने) प्रफुल्ल कर दिया
त्वत् गृहं	(वह) आपका निवास स्थान है,
नाथ ते	स्वामी ! आपको
शुश्रूषतां	सेवा करने वालोंके लिए
इदं कालग्रस्तं	यह (स्वर्गादि) कालका ग्रास
अहो कियत्	भला क्या महत्त्व रखता है।
हि	क्योंकि
नारसिंह	नृसिंह प्रभु !
तेषां मुक्तिः	उनके लिए मुक्ति भी
बहुमता न	आदरणीय नहीं है,
अपरैः किं	(फिर) अन्य भोगों-की तो बात ही क्या ॥४२॥

ऋषय ऊचुः

त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो
येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ।
तद् विप्रलुप्तममुनाद्य शरण्यपाल
रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥४३॥

त्वं नः तपः परमं आत्थ यत् आत्मतेजः येन इदं आदिपुरुष आत्मगतं ससर्ज तत् विप्रलुप्तं अमुना अद्य शरण्यपाल रक्षा गृहीत वपुषा पुनः अन्वमंस्थाः ॥४३॥

परमं	पुरुषोत्तम !
आदिपुरुष	आदिपुरुष !
येन	जिसके द्वारा
आत्मगतं	अपनेमें लीन
इदं ससर्ज	इस जगतकी (आपने) सृष्टिकी
आत्मतेजः तपः	उस अपने ही तेज-तपका
त्वं नः आत्थ	आपने हमको उपदेश किया था,
यत् अमुना	क्योंकि इस (दैत्य) ने
तत् विप्रलुप्तं	उसका उच्छेद कर दिया था
शरण्यपाल	शरणागत पालक !
रक्षा	उसकी रक्षाके लिए
वपुषा गृहीत	यह शरीर धारण करके
पुनः	(आपने) फिर
अन्वमंस्थाः	(उस तपका) अनुमोदन कर दिया ॥४३॥

पितर ऊचुः

श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजै-
र्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत् तिलाम्बु ।
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद् य आच्छत्
तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥४४॥

श्राद्धानि नः अधिबुभुजे प्रसभं तनूजैः दत्तानि तीर्थ समये अपि अपिबत् तिलाम्बु तस्य उदरात् नख विदीर्णः वपात् य आच्छत् तस्मै नमः नृहरये अखिल धर्म गोप्त्रे ॥४४॥

नः तनूजैः	हमारे पुत्रों द्वारा (हमारे लिए) किये गये
श्राद्धानि	श्राद्धोंको
प्रसभं	बलपूर्वक
अधिबुभुजे	खा लेता था और
तीर्थसमये	पवित्र समय (संक्रान्ति आदि) पर
दत्तानि	दिये गये
तिलाम्बु अपि	(तर्पणकी) तिलाञ्जलिको भी
अपिबत्	पी जाता था,
तस्य उदरात्	उसका पेट
नख विदीर्ण	नखसे फाड़कर
य वपात्	जिन्होंने वह सब
आच्छत्	लौटा दिया

तस्मै अखिल	उन सम्पूर्ण	गोप्त्रे नृहरये	रक्षक नृसिंह
धर्म	धर्मोंके		भगवान्‌को
		नमः	नमस्कार ॥४४॥

सिद्धा ऊचुः

यो नो गतिं योगसिद्धामसाधु-
रहार्षीद् योगतपोबलेन ।
नानादर्पं तं नखैर्निर्ददार
तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥४५॥

यः नः गतिं योगसिद्धां असाधुः अहार्षीत् योगतपः बलेन नाना दर्पं तं नखैः निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मः नृसिंह ॥४५॥

नः योगसिद्धां	हमारी योगसे सिद्ध हुई	तं नाना दर्पं	उस अनेक प्रकारसे घमंडीको
गतिं	गतिको	नखैः निर्ददार	नखोंसे फाड़ दिया,
यः असाधुः	जिस दुष्टने	तस्मै तुभ्यं	उस आप
योगतपः	योग और तपके	नृसिंह	नरहरिको
बलेन अहार्षीत्	बलसे छीन लिया था,	प्रणताः स्म	हम प्रणाम करते हैं ॥४५॥

विद्याधरा ऊचुः

विद्यां पृथग्धारणयानुराद्धां
न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ।
स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं
मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥४६॥

विद्यां पृथक् धारणया अनुराद्धां न्यषेधत् अज्ञः बल वीर्य दृप्तः स येन संख्ये पशुवत् हतः तं माया नृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥४६॥

पृथक् धारणया	(हमारी) विविध धारणाओंसे	स येन	वह जिसके द्वारा
अनुराद्धां विद्यां	प्राप्त की गयी विद्याओंको	संख्ये	युद्धमें
बल वीर्य दृप्तः	बल और वीरताके घमंडमें	पशुवत् हतः	पशुके समान मार दिया गया
अज्ञः न्यषेधत्	जिस मूर्खने रोक दिया,	तं माया नृसिंहं	उन मायासे नृसिंह बने भगवान्‌को
		नित्यं प्रणताः स्म	हम नित्य प्रणाम करते हैं ॥४६॥

नागा ऊचुः

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ।

तद्वक्षः पाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥४७॥

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः तद् वक्षः पाटनेन आसां दत्त आनन्द नमः अस्तु ते ॥४७॥

येन पापेन	जिस पापीने	पाटनेन	फाड़कर
नः रत्नानि	हमारे रत्न और	आसां	हम लोगोंको
स्त्रीरत्नानि	श्रेष्ठ सुन्दरी स्त्रियोंको	आनन्द दत्त	आनन्द देनेवाले
		ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार है ॥४७॥
हृतानि	छीन लिया था		
तद् वक्षः	उसकी छाती		

मनव ऊचुः

मनवो वयं तव निदेशकारिणो

दितिजेन देव परिभूतसेतवः ।

भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो

करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान् ॥४८॥

मनवः वयं तव निदेश कारिणः दितिजेन देव परिभूत सेतवः भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किं अनुशाधि किंकरान् ॥४८॥

देव	देव !
तव निदेश	आपके आदेशका
कारिणः	पालन करनेवाले
वयं मनवः	हम मनु हैं,
दितिजेन	इस दैत्यने
सेतवः परिभूत	(हमारी) धर्म-मर्यादा नष्ट कर दी थी,
स खलः	वह दुष्ट
भवता	आपके द्वारा
उपसंहृतः	समाप्त कर दिया गया,
प्रभो	प्रभो !
किंकरान्	हम सेवकोंको
अनुशाधि	आज्ञा दीजिये
ते किं करवाम	आपकी क्या सेवा करें ॥४८॥

प्रजापतय ऊचुः

प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा
न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ।
स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते
जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥४९॥

प्रजेशा वयं ते परेश अभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामः निषिद्धाः स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते जगत् मङ्गलं सत्त्वमूर्ते अवतारः ॥४९॥

परेश अभिसृष्टा	आप परमेश्वरके बनाये
वयं प्रजेशा	हम प्रजापति
येन वै	जिसके द्वारा निश्चित रूपसे
निषिद्धाः	रोक दिये जानेसे
प्रजा	प्रजाकी
सृजामः न	उत्पत्ति नहीं कर पाते थे
स एष	वही यह
त्वया भिन्नवक्षा	आपके द्वारा छाती-फाड़ देनेसे
नु शेते	सर्वदाको सो गया है,
सत्त्वमूर्ते	सत्त्वमय मूर्ति !
अवतारः	(आपका) अवतार
जगत् मङ्गलं	संसारके कल्याणके लिए है ॥४९॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं विभो ते नटनाट्यगायका
येनात्मसाद् वीर्यबलौजसा कृताः ।
स एष नीतो भवता दशामिमां
किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥५०॥

वयं विभो ते नटनाट्यगायका येन आत्मसात् वीर्य बल ओजसा कृताः स एष नीतः भवता दशां इमां किं उत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥५०॥

विभो ते	प्रभो ! आपके	**आत्मसात् कृताः**	(हमें) अपना (सेवक) बना लिया था,
नटनाट्य	नाचने, अभिनय करनेवाले,	**भवता स**	आपके द्वारा वह
गायका वयं	गानेवाले हम (सेवक) हैं,	**एष दशां**	इस दशामें
येन वीर्य बल	जिसने (अपने) वीर्य, बल	**नीतः**	पहुँचा दिया गया,
ओजसा	पराक्रमसे	**उत्पथस्थः**	कुमार्गपर चलने-वाला
		किं कुशलाय	क्या कुशलपूर्वक
		कल्पते	रह सकता है ॥५०॥

चारण ऊचुः

हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ।
यदेष साधुहृच्छयस्त्वयासुरः समापितः ॥५१॥

हरे तव अङ्घ्रि पङ्कजं भव अपवर्गं आश्रिताः यत् एष साधुहृत् छयः त्वया असुरः समापितः ॥५१॥

हरे	हरे !	**असुरः**	असुर
साधुहृत्	सत्पुरुषोंके हृदयको	**त्वया समापितः**	आपके द्वारा समाप्त कर दिया गया
छयः	कष्ट देनेवाला		

भव अपवर्ग	(अतः) संसारसे मोक्ष देनेवाले	अङ्घ्रि पङ्कजं	चरण-कमलोंके
तव	आपके	आश्रिताः	(हम) आश्रित हैं ॥५१॥

यक्षा ऊचुः

वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञै-
स्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।
स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते
नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥५२॥

वयं अनुचर मुख्याः कर्मभिः ते मनोज्ञैः त इह दिति सुतेन प्रापिता वाहकत्वं स तु जन परितापं तत् कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥५२॥

मनोज्ञैः	उत्तम	जन परितापं	अपने भक्तोंका संताप
कर्मभिः	कर्मोंके कारण	जानता	जानकर
वयं ते	हम लोग आपके	पञ्चविंश	पच्चीसवें (आत्म)
अनुचर मुख्या	सेवकोंमें प्रमुख हैं,		तत्त्व
त इह	वही यहां	ते नरहर	आप नृसिंहने
दिति सुतेन	दितिके पुत्र द्वारा	पञ्चतां	पञ्चत्व (मृत्यु) को
वाहकत्वं	(पालकी) ढोनेवाले	उपनीतः	प्राप्त करा दिया ॥५२॥
प्रापिता	बना दिये गये।		
स तु	वह तो		

किम्पुरुषा ऊचुः

वयं किम्पुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ।
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥५३॥

वयं किम्पुरुषाः त्वं तु महापुरुष ईश्वरः अयं कुपुरुषः नष्टः धिक्कृतः साधुभिः यदा ॥५३॥

वयं किम्पुरुषाः	हम किम्पुरुष हैं	यदा साधुभिः	जब सत्पुरुषों द्वारा
त्वं तु	आप तो	धिक्कृतः	धिक्कारा गया तो
ईश्वरः	सर्वसमर्थ	अयं कुपुरुषः	यह कुपुरुष
महापुरुष	महापुरुष हैं,	नष्टः	नष्ट हो गया ॥५३॥

वैतालिका ऊचुः

सभासु सत्रेषु तवामलं यशो
गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ।
यस्तां व्यनैषीद् भृशमेष दुर्जनो
दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽऽमयः ॥५४॥

सभासु सत्रेषु तव अमलं यशः गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे यः तां व्यनैषीत् भृशं एष दुर्जनः दिष्ट्या हतः ते भगवन् यथा आमयः ।.५४॥

सभासु	सभाओंमें तथा	दुर्जनः भृशं	दुष्टने पूर्णतः
सत्रेषु	ज्ञान-यज्ञोंमें	व्यनैषीत्	नष्ट कर दिया था,
तव अमलं	आपके निर्मल	दिष्ट्या	सौभाग्यवश
यशः गीत्वा	यशको गाकर	यथा आमयः	जैसे रोग हो वैसे
महतीं सपर्यां	बड़ी पूजा-भेंट	भगवन्	भगवान्
लभामहे	हम पाते थे	ते हतः	आपने उसे मार
तां एष	उसे इस		दिया ॥५४॥

किन्नरा ऊचुः

वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा
दितिजेन विष्टिममुनानु कारिताः ।
भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो
नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥५५॥

वयं ईश किन्नरगणाः तव अनुगा दितिजेन विष्टिं अमुना नु कारिताः भवता हरे स वृजिनः अवसादितः नरसिंह नाथ विभवाय नः भव ॥५५॥

ईश	स्वामी !
वयं	हम
तव अनुगा	आपके अनुगामी
किन्नरगणाः	किन्नरगण
अमुना दितिजेन	इस दैत्य द्वारा
विष्टि नु	बेगारमें हो
कारिताः	काममें लगाये जाते थे
हरे भवता	श्रीहरि आप द्वारा
स वृजिनः	वह पापी
अवसादिता	नष्ट कर दिया गया,
नाथ नरसिंह	स्वामी नृसिंह
नः विभवाय	(ऐसे ही) हमारा अभ्युदय करनेवाले
भव	(आप) हों ॥५५॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः

अद्यैतद्धरिनररुपमद्भुतं ते
दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्त-
स्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥५६॥

अद्य एतत् हरिनर रूपं अद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोक शर्म सः अयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तः तस्य इदं निधनं अनुग्रहाय विद्मः ॥५६॥

अद्य	आज
ते एतत्	आपका यह
अद्भुतं	अद्भुत
सर्वलोक	सब लोकोंको
शर्म	शान्ति देनेवाला
हरिनर रूपं	नृसिंह रूप
दृष्टं	देखा है
नः शरणद	हमको शरण देनेवाले
ईश	स्वामी !
विप्रशप्तः	ब्राह्मणों द्वारा प्रशप्त
अयं ते	यह आपका
विधिकर	आज्ञाकारी सेवक है
विद्मः	हम जानते हैं
तस्य इदं निधनं	उसकी यह मृत्यु
अनुग्रहाय	(उसपर) कृपा करनेके लिए है ॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते दैत्यराजवधे नृसिंहस्तवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

नारद उवाच–

एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः ।
नोपैतुमशकन्मन्युसंरम्भं सुदुरासदम् ॥१॥

एवं सुर आदयः सर्वे ब्रह्म रुद्र पुरः सराः न उपेतुं अशकन् मन्युं संरम्भं सुदुरासदम् ॥१॥

एवं	इस प्रकार	सुदुरासदं	अत्यन्त असह्य
ब्रह्म रुद्र	ब्रह्मा और रुद्रको	संरम्भं	आवेशपूर्ण
पुरः सराः	आगे करके चलने-वाले	मन्युं	(नृसिंहके) क्रोधको
		उपेतुं	दूर करनेमें
सर्वे सुर आदयः	सभी देवतादि	अशकन् न	समर्थ नहीं हुए ॥१॥

साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ।
अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् सा नोपेयाय शङ्किता ॥२॥

साक्षात् श्रीः प्रेषिता देवैः दृष्ट्वा तत् महत् अद्भुतं अदृष्ट अश्रुत पूर्व त्वात् सा न उपेयाय शङ्किता ॥२॥

देवैः	देवताओंने	पूर्व	पहिले (कभी)
साक्षात् श्रीः	साक्षात् लक्ष्मीजीको	अदृष्ट	अनदेखे
प्रेषिता	भेजा (किन्तु)	अश्रुत त्वात्	अनसुने होनेसे
तत् महत्	उस महान्	सा शङ्किता	वे आशंकाके कारण
अद्भुतं	अद्भुत (रूप) को	उपेयाय न	समीप नहीं गयीं ॥२॥
दृष्ट्वा	देखकर		

प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्मावस्थितमन्तिके ।
तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥३॥

प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्मा अवस्थितं अन्तिके तात प्रशमय उपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥३॥

अन्तिके	अपने समीप	**स्वपित्रे**	अपने पितापर
अवस्थितं	खड़े	**कुपितं**	क्रुद्ध
प्रह्लादं	प्रह्लादजीको	**प्रभुं**	प्रभुके
ब्रह्मा	ब्रह्माजीने	**उपेहि**	समीप जाओ,
प्रेषयामास	भेजा कि	**प्रशमय**	(उन्हें) शान्त करो
तात	'बेटा !		

तथेति शनकैः राजन्महाभागवतोऽर्भकः ।
उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृताञ्जलिः ॥४॥

तथा इति शनकैः राजन् महाभागवतः अर्भकः उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृत अञ्जलिः ॥४॥

राजन् !	राजन् !	**विधृत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
महाभागवतः	परम भगवद् भक्त	**कायेन**	शरीरसे
अर्भकः	(उस) बालकने	**भुवि ननाम**	पृथ्वीपर लोट गये ॥४॥
तथा इति	'जो आज्ञा' कहकर		
उपेत्य	समीप जाकर		

स्वपादमूले पतितं तमर्भकं
विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ।
उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात् कराम्बुजं
कालाहि वित्रस्तधियां कृताभयम् ॥५॥

स्वपादमूले पतितं तं अर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः उत्थाप्य तत् शीर्ष्णि अदधात् कराम्बुजं काल अहि वित्रस्तधियां कृत अभयम् ॥५॥

स्वपादमूले	अपने चरणोंके पास	काल अहि	कालरूपी सर्पसे
पतितं तं	पड़े हुए उस	वित्रस्तधियां	सन्त्रस्त बुद्धि लोगों-
अर्भकं विलोक्य	बालकको देखकर		को
देवः कृपया	श्रीनृसिंहदेव कृपासे	अभयं कृत	अभय देनेवाले
परिप्लुतः	भर गये	कराम्बुजं	अपना कर-कमल
उत्थाप्य	उठाकर	अदधात्	रख दिया ॥५॥
तत् शीर्ष्णि	उसके सिरपर		

स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः
सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ।
तत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ
हृष्यत्तनुः विलन्नहृदश्रुलोचनः ॥६॥

स तत् करस्पर्श धुत अखिल अशुभः सपदि अभिव्यक्त पर आत्म दर्शनः तत् पादपद्मं हृदि निर्वृतः दधौ हृष्यत् तनुः क्लिन्न हृत् अश्रुलोचनः ॥६॥

तत् करस्पर्श	उन भगवान्के हस्तस्पर्शसे	तत् पादपद्मं	उन भगवान्के चरण-कमलोंको
अखिल अशुभः	समस्त अशुभ संस्कार	निर्वृतः दधौ	आनन्द-मग्न होकर धारण किया
धुत स	धुले वे प्रह्लादजीको	तनुः हृष्यत्	शरीर रोमांचित हो गया,
सपदि	तत्काल	हृत् क्लिन्न	हृदय द्रवित हो गया
पर आत्म	परमात्म-तत्त्वका	अश्रुलोचनः	नेत्रोंसे आँसू बहने लगा ॥६॥
दर्शनः	साक्षात्कार		
अभिव्यक्त	हो गया		

अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः ।
प्रेमगद्गदया वाचा तन्नयस्तहृदयेक्षणः ॥७॥

अस्तौषीत् हरिं एकाग्र मनसा सुसमाहितः प्रेम गद्गदया वाचा तत् न्यस्त हृदय ईक्षणः ॥७॥

तत् हृदय	उन भगवान्में हृदय और	**प्रेम गद्गदया**	प्रेमके कारण गद्गद
ईक्षणः न्यस्त	दृष्टि लगाये	**वाचा हरिं**	वाणीसे नृसिंह भगवान्की
एकाग्र मनसा	एकाग्र मनसे	**अस्तौषीत्**	स्तुति करने लगे ॥७॥
सुसमाहितः	अत्यन्त संयत होकर		

प्रह्लाद उवाच–

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः
सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः
किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥८॥

ब्रह्मा आदयः सुरगणाः मुनयः अथ सिद्धाः सत्त्व एकतान मतयः वचसां प्रवाहैः न आराधितुं पुरुगुणैः अधुना अपि पिप्रुः किं तोष्टुं अर्हति स मे हरिः उग्रजातेः ॥८॥

सत्त्व एकतान	सदा सत्वगुणमें लगी	**अधुना अपि**	अब तक भी
मतयः	बुद्धिवाले	**आराधितुं**	(आपको) प्रसन्न करनेमें
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादिक	**पिप्रुः न**	समर्थ नहीं हुए (तब)
सुरगणाः मुनयः	देवता, मुनिजन,	**मे उग्रजातेः**	मुझ घोर (असुर) जातिमें उत्पन्नपर
अथ सिद्धाः	और सिद्ध लोग	**तोष्टुं अर्हति**	(आप) सन्तुष्ट होंगे
वचसां प्रवाहैः	वाणीकी धारासे तथा	**किं**	क्या ॥८॥
पुरुगुणैः	अपने बहुतसे गुणोंसे		

मन्ये धनाभिजनरूपतपः श्रुतौज-
स्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥६॥

मन्ये धन अभिजन रूप तपः श्रुत ओजः तेजः प्रभाव बल पौरुष बुद्धि योगाः न आराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसः भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ॥६॥

मन्ये	मानता हूँ कि	**परस्य पुंसः**	परमपुरुषको
धन अभिजन	धन, परिवार,	**आराधनाय**	प्रसन्न करनेके हेतु
रूप तपः	सौन्दर्य, तप,	**न भवन्ति**	नहीं होते;
श्रुत ओजः	विद्या, ओज,	**भगवान्**	भगवान् (आप)
तेजः प्रभाव	तेज, प्रभाव,	**हि भक्त्या**	क्योंकि भक्तिके द्वारा
बल पौरुष	बल, पुरुषार्थ,	**गजयूथपाय**	गजेन्द्रपर
बुद्धि योगाः	बुद्धि, साधन,	**तुतोष**	प्रसन्न हो गये ॥६॥

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥१०॥

विप्रात् द्विषट् गुण युतात् अरविन्दनाभ पादारविन्द विमुखात् श्वपचं वरिष्ठं मन्ये तत् अर्पित मनः वचन ईहित अर्थ प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥१०॥

द्विषट् गुण	बारह गुणोंसे	**विप्रात्**	ब्राह्मणसे
युतात्	युक्तपर	**श्वपचं वरिष्ठं**	चाण्डालको श्रेष्ठ
अरविन्दनाभ	भगवान् पद्मनाभके	**मन्ये**	मानता हूँ
पादारविन्द	चरण-कमलोंसे	**तत् अर्पित**	उन (भगवान्) को अर्पित
विमुखात्	विमुख		

मनः वचन	मन, वाणी,	पुनाति	पवित्र कर लेता है
ईहित अर्थ	कर्म, धन,	भूरिमानः	बडप्पनके अभिमान
प्राणं	प्राणवाला		वाला
स कुलं	कुल सहित (अपने) को	तु न	तो नहीं ॥१०॥

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो
मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥११॥

न एव आत्मनः प्रभुः अयं निजलाभ पूर्णः मानं जनात् अनिदुषः करुणः वृणीते यत् यत् जनः भगवते विदधीत मानं तत् च आत्मने प्रति-मुखस्य यथा मुखश्रीः ॥११॥

अयं	ये	यत्	क्योंकि
आत्मनः प्रभुः	जीवात्माओंके स्वामी	यथा	जैसे
		मुखश्रीः	मुखकी शोभा
निजलाभ	अपने स्वरूपो-पलब्धिसे ही	प्रति-मुखस्य	मुखके प्रतिविम्बकी होती है
पूर्णः	परिपूर्ण हैं,	जनः यत्	मनुष्य जो
अविदुषः जनात्	अज्ञानी लोगोंसे	भगवते मानं	भगवान्‌का सम्मान
मानं न एव	सम्मान नहीं ही	विदधीत	करता है
वृणीते	चाहते हैं	तत् च	वह तो
करुणः	कृपा करके ही (स्वीकार करते हैं)	आत्मने	अपने लिये ही होता है ॥११॥

तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य
सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।
नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः
पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥१२॥

तस्मात् अहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथा मनीषं नीचः अजया गुणविसर्गं अनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमान् अनुवर्णितेन ॥१२॥

तस्मात्	इसलिए	**येन अनुवर्णितेन**	जिसके बार-बार वर्णनसे
विगतविक्लव	व्याकुलता छोड़कर	**अजया**	मायाके द्वारा
अहं सर्वात्मना	मैं सम्पूर्ण मनसे	**गुणविसर्गं**	गुणोंकी सृष्टि (संसार) में
मनीषं यथा	अपनी बुद्धिके अनुसार	**अनुप्रविष्टः**	प्रवेश किया (पड़ा)
ईश्वरस्य महि	भगवान्‌की महिमा-का	**नीचः पुमान्**	नीच पुरुष भी
अहं गृणामि	मैं वर्णन कर रहा हूँ,	**पूयेत**	पवित्र हो जाता है ॥१२॥
हि	क्योंकि		

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य
विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥१३॥

सर्वे हि अमी विधिकराः तव सत्त्वधाम्नः ब्रह्मा आदयः वयं एश इव न च उद्विजन्तः क्षेमाय भूतय उत आत्म सुखाय च अस्य विक्रीडितं भगवतः रुचिर अवतारैः ॥१३॥

हि	क्योंकि		नहीं करते
अमी सर्वे	ये सब	**भगवतः**	भगवन् आपकी
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादिक (देवता)	**रुचिर अवतारैः**	सुन्दर अवतार धारण करके
सत्त्वधाम्नः	सत्त्वस्वरूप	**विक्रीडितं**	(की गयी) लीलाएँ
तव विधिकराः	आपके आज्ञाकारी हैं,	**अस्य**	इस संसारके
वयं एश इव	हम दैत्योंके समान	**क्षेमाय च**	कल्याणके लिए और
उद्विजन्तः च न	(आपसे) शत्रुता तो	**भूतय**	अभ्युदयके लिए

उत आत्म	अथवा आत्मानन्दकी	सुखाय	प्राप्ति करानेके लिए है ॥१३॥

तद् यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य
मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे
रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥१४॥

तत् यच्छ मन्युं असुरः च हतः त्वया अद्य मोदेत साधुः अपि वृश्चिक सर्प हत्या लोकाः च निर्वृतिं इताः प्रतियन्ति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥१४॥

त्वया अद्य	आपने आज	सर्वे लोकाः च	सब लोक भी
असुरः च	असुरको भी	निर्वृतिं इताः	शान्त हुए (आपकी)
हतः	मार दिया	प्रतियन्ति	प्रतीक्षा कर रहे हैं,
तत्	इसलिए	नृसिंह	नृसिंह (प्रभु)
मन्युं यच्छ	क्रोध त्याग दीजिये,	विभयाय	भयसे छूटनेके लिए
साधुः अपि	सत्पुरुष भी	जनाः रूपं	लोग (आपके) इस रूपका
वृश्चिक सर्प हत्या मोदेत	विच्छू, सांपको मार देनेसे प्रसन्न ही होते हैं,	स्मरन्ति	स्मरण किया करेंगे ॥१४॥

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य-
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्ण-
न्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥१५॥

न अहं बिभेमि अजित ते अति भयानक आस्य जिह्वा अर्कनेत्र भ्रुकुटी रभस उग्रदंष्ट्रात् आन्त्रस्रजः क्षतजकेसर शङ्कु कर्णात् निर्ह्राद भीत दिगिभात् अरिभिन्न नख अग्रात् ॥१५॥

अजित	अजित !
ते अति	आपके अत्यन्त
भयानक आस्य	भयानक मुख,
जिह्वा	जिह्वा,
अर्कनेत्र	सूर्यके समान नेत्र,
भ्रुकुटी रभस	भौंहोंके चढ़ने,
उग्रदंष्ट्रात्	घोर दाढ़ों,
आन्त्रस्रजः	आंतोंकी माला,
क्षतजकेसर	रक्त भींगे अयाल
शङ्कु कर्णात्	खूंटेसे खड़े कानों तथा
अरिभिन्न	शत्रुको फाड़ देनेवाले
नख अग्रात्	नखोंकी नोकसे
अहं न	मैं नहीं
बिभेमि	डरता ॥१५॥

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-
संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं
प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥१६॥

त्रस्तः अस्मि अहं कृपणवत्सल दुःसह उग्र संसारचक्र कदनात् ग्रसतां प्रणीतः बद्धः स्वकर्मभिः उशत्तम ते अङ्घ्रिमूलं प्रीतः अपवर्ग शरणं ह्वयसे कदा नु ॥१६॥

कृपणवत्सल	दीनवत्सल !
स्वकर्मभिः	अपने कर्मोंसे
बद्धः	बँधा,
उग्र दुःसह	घोर असह्य
संसारचक्र	संसारके (आवा-गमन) चक्रमें
प्रणीतः	डाला हुआ
ग्रसतां	उससे निगला जाता
कदनात्	रौंदे जानेसे
अहं त्रस्तः	मैं भयभीत
अस्मि	हूँ,
उशत्तम	पुरुषोत्तम !
ते अङ्घ्रि मूलं	आपके चरणोंमें
अपवर्ग शरणं	मोक्ष-शरणके लिए
प्रीतः	प्रसन्न होकर
नु कदा	भला कब (आप)
ह्वयसे	पुकारेंगे ॥१६॥

यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म-
शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।

दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं
भूमन्भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥१७॥

यस्मात् प्रिय अप्रिय वियोग संयोग जन्म शोक अग्निना सकल योनिषु दह्यमानः दुःख औषधं तत् अपि दुःखं अतत् धिया अहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्य योगम् ॥१७॥

भूमन्	सर्वव्यापक प्रभु !	दुःख औषधं	(वहां जो) दुःखकी दवा है
यस्मात्	क्योंकि	तत् अपि दुःखं	वह भी दुःखदायी है,
प्रिय अप्रिय	प्रिय-अप्रियके	अतत् धिया	अतथ्य बुद्धि
वियोग-संयोग	वियोग-मिलनसे	अहं भ्रमामि	मैं भटक रहा हूँ,
जन्म	होनेवाली	तव दास्य	आप अपनी सेवाका
शोक-अग्निना	शोकाग्निसे	योगं वद	उपाय बतलाइये ॥१७॥
सकल योनिषु	सब योनियोंमें		
दह्यमानः	जलता रहा हूँ,		

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया
लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो
दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥१८॥

सः अहं प्रियस्य सुहृदः पर देवताया लीला कथाः तव नृसिंह विरिञ्चगीताः अञ्जः तितर्मि अनुगृणन् गुण विप्रमुक्तः दुर्गाणि ते पद युग आलय हंस सङ्गः ॥१८॥

सः अहं	वह मैं (अपने)	तव लीला कथाः	आपके अवतार चरितोंका
प्रियस्य सुहृदः	प्रिय हितैषी	अनुगृणन्	बार-बार गान करता हुआ
पर देवताया	परम आराध्य देव	गुण विप्रमुक्तः	गुणों (संसार) से छूटकर
नृसिंह	भगवान् नृसिंह !		
विरिञ्चिगीताः	ब्रह्माजी द्वारा वर्णित		

ते पद युग	आपके चरणद्वयमें	अञ्जः	सरलतासे
आलय हंस	रहनेवाले हंस (महापुरुषों) के	दुर्गाणि	कठिनाइयोंसे
		तितर्मि	पार हो जाऊँगा
सङ्गः	संगसे		॥१८॥

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट-
स्तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥१९॥

बालस्य न इह शरणं पितरौ नृसिंह न आर्तस्य च अगदं उदन्वति मज्जतः नौः तप्तस्य तत् प्रतिविधिः य इह अञ्जसा इष्टः तावत् विभो तनुभृतां त्वत् उपेक्षितानाम् ॥१९॥

नृसिंह	नृसिंह प्रभो !	उदन्वति	जलाशयमें
त्वत्	आपके द्वारा	मज्जतः नौः	डूबते हुएकी नौका
उपेक्षितानां	उपेक्षा किये गये	तप्तस्य	संतप्तका
तनुभृतां	शरीर धारियोंके लिए	तत् प्रतिविधिः	वह कोई प्रतिकार
		य इह	जो यहाँ
तावत्	तब तक	अञ्जसा इष्टः	सरलतासे अभीष्ट हो
न बालस्य	न बालकी		
पितरौ	माता-पिता,	शरणं न	रक्षक नहीं है ॥१९॥
च आर्तस्य अगदं	और रोगीकी दवा,		

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्
यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ।
भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः
सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥२०॥

यस्मिन् यतः यर्हि येन च यस्य यस्मात् यस्मै यथा यत् उत यः तु स्वपरः परः वा भावः करोति विकरोति पृथक् स्वभावः सञ्चोदितः तत् अखिलं भवतः स्वरूपम् ॥२०॥

पृथक् स्वभावः	भिन्न-भिन्न स्वभावके
परः वा	श्रेष्ठ (ब्रह्मादि) अथवा
स्वपरः	(कालादि) अपने ही स्वरूपवाले
यस्मिन्	जिस आधारमें
यतः	जिस निमित्तसे,
येन	जिन (पञ्च भूतादि) उपकरणोंसे
च यस्य	तथा जिस (जीव) का
यस्मात्	जिन साधनोंसे
यस्मै	जिस प्रयोजनके लिए
यथा	जिस विधिसे
यत्	जिस कारण
यः भावः	जो भाव उत्पन्न
करोति	करते हैं,
उत वा यत्	अथवा जो कुछ
विकरोति	रूपान्तरित करते हैं,
तत् सञ्चोदितः	उनके द्वारा प्रेरित
अखिलं	सब कुछ
भवतः स्वरूपं	आपका स्वरूप है ॥२०॥

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः
कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ।
छन्दोमयं यदजयार्पितषोडशारं
संसारचक्रमज कोऽतितरेऽत् त्वदन्यः ॥२१॥

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन चोदित गुण अनुमतेन पुंसः छन्दः मयं यत् अजया अर्पित षोडश अरं संसार चक्रं अज कः अतितरेत् त्वत् अन्यः ॥२१॥

पुंसः अनुमतेन	पुरुषकी अनुमतिसे
कालेन चोदित	काल द्वारा प्रेरित (क्षोभित)
गुण माया	गुणवाली माया
कर्ममयं बलीयः	कर्ममय बलवान
मनः सृजति	मन (लिङ्ग-शरीर) को उत्पन्न करती है,
यत् अजया	यह जो माया द्वारा
अर्पित	दिया गया
छन्दः मयं	वेदमय
षोडश	सोलह (मन, दस इन्द्रिय, पंच तन्मात्र) रूप
अरं	आरोंका
संसार चक्र	संसार-चक्र है,
अज	अजन्मा प्रभु !

त्वत् अन्यः	आपसे पृथक रहकर	कः अतितरेत्	कौन पारकर सकता है ॥२१॥

स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना
कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ।
चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे
निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥२२॥

स त्वं हि नित्यविजित आत्मगुणः स्वधाम्ना कालः वशीकृत विसृज्य विसर्ग शक्तिः चक्रे विसृष्टं अजय ईश्वर षोडश अरे निष्पीड्यमानं उपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥२२॥

हि	क्योंकि	विसर्ग शक्तिः	सृष्टि करनेवाली शक्ति मायाको
अजय ईश्वर	अजेय, सर्वसमर्थ,	विसृज्य	त्यागकर
विभो	प्रभो !	षोडश अरे	सोलह अरोंवाले
स त्वं	वे आप	चक्रे विसृष्टं	चक्रमें डालकर
स्वधाम्ना	अपने चित् प्रकाशसे	निष्पीड्यमानं	कुचले जाते हुए
आत्मगुणः	बुद्धिके गुणोंको	(मां) प्रपन्नं	मुझ शरणागतको
नित्यविजित	सदा जीते हुए हैं,	उपकर्ष	(अपने पास) खींच लीजिये ॥२२॥
कालः वशीकृत	कालको वशमें किये हैं,		

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना-
मायुः श्रियो विभव इच्छति यानजनोऽयम् ।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रू-
विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥२३॥

दृष्टा मया दिवि विभो अखिल धिष्ण्यपानां आयुः श्रियः विभव इच्छति यान् जनः अयं ये अस्मत् पितुः कुपित हास विजृम्भित भ्रू विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥२३॥

विभो	प्रभो !
दिवि	स्वर्गमें
अखिल	सब
धिष्ण्यपानां	लोकपालोंकी
आयु श्रियः	आयु, लक्ष्मी,
विभव	वैभव
यान् अयं जनः	जिनको ये (संसारी) लोग
इच्छति	(पानेकी) इच्छा करते हैं,
ये अस्मत्	जो मेरे
पितुः कुपित	पिताके क्रोध करके
हास	हँसी सहित
भ्रू विजृम्भित	भौंह टेढ़ी करके
विस्फूर्जितेन	संकेत करने मात्रसे
लुलिताः	लूट ली जाती थीं
स तु ते	उनको तो आपने
निरस्तः	मार दिया
मया दृष्टा	यह मैंने देख लिया ॥२३॥

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण
कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥२४॥

तस्मात् अमूः तनुभृतां अहं आशिषः ज्ञः आयुः श्रियं विभवं ऐन्द्रियं आविरिञ्चात् न इच्छामि ते विलुलितान् उरु विक्रमेण कालात्मनः उपनय मां निजभृत्य पार्श्वम् ॥२४॥

तस्मात्	इसलिए
अमूः तनुभृतां	इन शरीर धारियों-की
आशिषः	अभिलाषाएँ
आविरिञ्चात्	ब्रह्मलोक तककी
आयुः श्रियं	आयु, लक्ष्मी,
विभवं ऐन्द्रियं	वैभव, ऐन्द्रिक भोग (की वास्तविकता)
अहं ज्ञः	मैं जानता हूँ,
ते उरु विक्रमेण	आप अनन्त पराक्रम
कालात्मनः	कालस्वरूप द्वारा
विलुलितान्	नष्ट की गयी उनकी
इच्छामि न	इच्छा नहीं करता,
निजभृत्य	अपने सेवकोंकी
पार्श्वं मां	सन्निधिमें मुझे
उपनय	ले चलिये ॥२४॥

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः
क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।

निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्
कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥२५॥

कुत्र आशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः क्व इदं कलेवरं अशेष रुजां विरोहः निर्विद्यते न तु जनः यत् अपि इति विद्वान् काम अनलं मधुलवैः शमयन् दुरापैः ॥२५॥

श्रुतिसुखा	सुननेमें ही सुखद लगनेवाली	**यत् इति**	क्योंकि इस प्रकार
आशिषः	(भोग-सुखकी) अभिलाषाएँ जो	**विद्वान् अपि**	जानते हुए भी
मृगतृष्णिरूपाः	मृगतृष्णके समान हैं,	**जनः दुरापैः**	लोग दुष्प्राप्य
कुत्र	कहां और	**मधुलवैः**	मधु-कणों (भोगों) से
अशेष रुजां	सम्पूर्ण रोगोंका	**काम अनलं**	कामाग्निको
विरोहः	उत्पत्ति स्थान	**शमयन्**	शान्त करनेमें (लगे रहकर)
इदं कलेवरं क्व	यह शरीर कहां,	**निर्विद्यते न तु**	विरक्त नहीं ही होते ॥२५॥

क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन्
जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥२६॥

क्व अहं रजःप्रभव ईश तमः अधिके अस्मिन् जातः सुर इतर कुले क्व तव अनुकम्पा न ब्रह्मणः न तु भवस्य न वै रमाया यत् मे अर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥२६॥

ईश	स्वामी !	**रजःप्रभव**	रजोगुण प्रधान
तमः अधिके	तमोगुण प्रधान	**क्व अहं**	कहां मैं
अस्मिन्	इस	**क्व तव**	कहां आपकी (यह)
सुर इतर कुले	असुर-कुलमें	**अनुकम्पा**	कृपा !
जातः	उत्पन्न	**यत् प्रसादः**	जो कृपा

ब्रह्मणः न	ब्रह्माजीको नहीं,	मे शिरसि	मेरे मस्तकपर
भवस्य तु न	शंकरजी को भी नहीं,	पद्मकरः	(आपने अपना) कमलकर
वै रमाया न	अरे लक्ष्मीको भी नहीं (कह)	अर्पितः	रखा ॥२६॥

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्या-
ज्जन्तोर्यथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथापि ।
संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः
सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥२७॥

न एषा पर अवर मतिः भवतः ननु स्यात् जन्तोः यथा आत्म सुहृदः जगतः तथा अपि संसेवया सुरतरोः इव ते प्रसादः सेवा अनुरूपं उदयः न परअवर त्वम् ॥२७॥

जन्तोः यथा	सामान्य जनोंके समान	संसेवया	सेवा (भजन) करनेसे
एषा पर अवर	यह बड़े-छोटीकी	ते प्रसादः	आपकी कृपा होती है,
मतिः भवतः	बुद्धि आपमें	सेवा अनुरूपं	सेवाके अनुसार
ननु न स्यात्	निश्चय नहीं है,	उदयः	(कृपाका) प्राकट्य होता है,
जगतः	सम्पूर्ण विश्वके आप		
आत्म सुहृदः	आत्मा और सुहृद हैं	त्वं पर अवर	आपको (कोई) बड़ा या छोटा
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी		
सुरतरोः इव	कल्प-वृक्षके समान	न	नहीं है ॥२७॥

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे
कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसङ्गात् ।
कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः
सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥२८॥

एवं जनं निपतितं प्रभव अहि कूपे काम अभिकामं अनु यः प्रपतन् प्रसङ्गात् कृत्वा आत्मसात् सुर्षिणा भगवन् गृहीतः सः अहं कथं नु विसृजे तव भृत्य सेवाम् ॥२८॥

एवं जनं	इस प्रकार लोग	**सुर्षिणा**	देवर्षिने
अहि प्रभव	(काल) सर्पके प्रभाववाले	**आत्मसात्**	अपना
		कृत्वा	बना कर
कूपे	कुएँमें	**गृहीतः**	बचा लिया,
कामं अनु	एक कामनाके पीछे	**सः अहं**	वह मैं
अभिकामं	दूसरी कामनासे	**तव भृत्य**	आपके सेवककी
यः निपतितं	जो गिरे हुए हैं	**सेवां नु कथं**	सेवा भला कैसे
प्रसङ्गात्	उनके संसर्गसे	**विसृजे**	छोड़ सकता हूँ
प्रपतन्	गिरते हुए (मुझे)		॥२८॥

मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च
मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ।
खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सु-
स्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥२९॥

मत् प्राण रक्षणं अनन्त पितुः वधः च मन्ये स्वभृत्य ऋषि वाक्यं ऋतं विधातुं खड्गं प्रगृह्य यत् अवोचत् असत् विधित्सुः त्वां ईश्वरः मत् अपरः अवतु कं हरामि ॥२९॥

अनन्त	अनन्त !	**विधातुं**	करनेके लिए (आपने किया)
मन्ये	(मैं) मानता हूँ कि	**यत्**	क्योंकि (मेरे पिताने)
मत् प्राण	मेरे प्राणकी	**खड्गं प्रगृह्य**	तलवार लेकर
रक्षणं च	रक्षा और	**असत् विधित्सुः**	अन्याय करनेकी इच्छासे
पितुः वधः	मेरे पिताका वध	**अवोचत्**	बोला
स्वभृत्य ऋषि	अपने सेवक सनकादि ऋषियोंके	**मत् अपरः**	'मुझसे भिन्न
वाक्यं ऋतं	वचन सच		

ईश्वरः	कोई ईश्वर है तो	कं हरामि	सिर काटता हूँ।'
त्वं अवतु	तेरी रक्षा करें (मैं तेरा)		॥२६॥

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत् त्व-
माद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं
नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥३०॥

एकः त्वं एव जगत् एतत् अमुष्य यत् त्वं आदि अन्तयोः पृथक् अवस्यसि मध्यतः च सृष्ट्वा गुण व्यतिकरं निजमायया इदं नाना इव तैः अवसितः तत् अनु प्रविष्टः ॥३०॥

एतत् जगत्	यह जगत्	इदं गुण	इस गुणोंके
एकः त्वं एव	एकमात्र आप ही हैं,	व्यतिकरं	विकार (विश्व) को
		निजमायया	अपनी मायासे
यत्	क्योंकि	सृष्ट्वा	निर्मित करके
अमुष्य आदि	इसकी आदि,	तैः नाना इव	उनके द्वारा नानाकी भांति
अन्तयोः	अन्तमें		
च मध्यतः च	तथा मध्यमें भी	अवसितः	प्रतीत होते हुए
पृथक्	इससे पृथक	तत् अनु	उन सबमें
अवस्यसि	रहते हैं,	प्रविष्टः	प्रविष्ट हैं ॥३०॥

त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो
माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ।
यद् यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च
तद् वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥३१॥

त्वं वा इदं सत् असत् ईश भवान् ततः अन्यः माया यत् आत्म पर बुद्धिः इयं हि अपार्था यत् यस्य जन्म निधनं स्थितिः ईक्षणं च तद् वै तत् एव वसु काल वत् अष्टि तर्वोः ॥३१॥

ईश	स्वामी	जन्म-निधनं	जन्म, लय,
त्वं	आप	स्थितिः	स्थिति
वा इदं	अथवा यह संसार	च ईक्षणं	और प्रकाश होता है,
सत् असत्	कारण-कार्य		
ततः अन्यः	और उससे भिन्न भी	तद् वै	वह निश्चय ही
भवान्	आप ही हैं,	तत् एष	वही है
हि यत् इयं	क्योंकि यह जो	तर्वोः	वृक्षके
आत्म पर	अपना-पराया	अष्टि	गन्ध तन्मात्राकी
बुद्धिः	बुद्धि है		दृष्टिसे
अपार्था	तथ्यहीन है,	वसु काल	फल और वृक्षके
यत् यस्य	क्योंकि जिससे जिसकी	वत्	समान ॥३१॥

न्यस्येदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमध्ये
शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ।
योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्र-
स्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्ते ॥३२॥

न्यस्य इदं आत्मनि जगत् विलय अम्बु मध्ये शेषे आत्मना निज सुख अनुभवः निरीहः योगेन मीलित दृक् आत्मनि पीत निद्रः तुर्ये स्थितः न तु तमः न गुणान् च युङ्क्ते ॥३२॥

इदं जगत्	इस विश्वको	निरीहः शेषे	निष्क्रिय सोते हैं,
आत्मनि न्यस्य	अपनेमें लीन करके	आत्मनि	अपने स्वरूपमें
विलय अम्बु	प्रलय पयोधि	पीत निद्रः	निद्राको पीकर
मध्ये	के भीतर	तुर्ये स्थितः	तुरीय (ब्रह्मपद) में स्थित
निज सुख	आत्मानन्दका		
अनुभवः	अनुभव करते हुए	न तु तमः	न तो तमोगुणसे
आत्मना योगेन	अपने योगसे	च न गुणान्	और न विषयोंको ही
मीलित दृक्	दृष्टि बन्द करके	युङ्क्ते	उपभोग करते ॥३२॥

तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या
सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ।
अम्भस्यनन्तशयनाद् विरमत्समाधे-
र्नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥३३॥

तस्य एव ते वपुः इदं निजकाल शक्त्या सञ्चोदितः प्रकृतिधर्मण आत्मगूढं अम्भसि अनन्त शयनात् विरमत् समाधेः नाभेः अभूत् स्वकणिका वट वत् महाब्जम् ॥३३॥

अम्भसि	(प्रलय) समुद्र जलमें	**आत्मगूढं**	अपनेमें लीन
अनन्त शयनात्	शेष-शय्यापर सोये	**वट स्वकणिका**	वटके अपने बीजके
समाधेः विरमत्	आपकी समाधि टूटनेपर	**वत्**	समान
		नाभेः	नाभिसे
निजकाल	अपनी काल	**महाब्जं**	ब्रह्माण्ड कमल
शक्त्या	शक्तिसे	**अभूत्**	उत्पन्न हुआ
सञ्चोदितः	प्रेरित	**तस्य ते**	उसी आपका
प्रकृति धर्मण	प्रकृतिके धर्म (गुणों) से	**इदं वपुः**	यह (ब्रह्माण्ड) शरीर है ॥३३॥

तत्सम्भवः कविरतोऽन्यदपश्यमान-
स्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य ।
नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो
जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ॥३४॥

तत् सम्भवः कविः अतः अन्यत् अपश्यमानः त्वां बीजं आत्मनि ततं स्व बहिः विचिन्त्य न अविन्दत् अब्द शतं अप्सु निमज्जमानः जाते अङ्कुरे कथं उह उपलभेत बीजम् ॥३४॥

तत् सम्भवः	उस (नाभि-कमल) से उत्पन्न	**अतः अन्यत्**	उस (कमल) से भिन्न दूसरेको
कविः	बुद्धिमान ब्रह्माजीने	**अपश्यमानः**	न देखकर

आत्मनि ततं	अपनेमें व्याप्त	न अविन्दत्	नहीं पा सके
त्वां बहिः	आपको बाहर	शङ्कुरे जाते	अङ्कुर उत्पन्न हो जानेपर
विचिन्त्य	सोचकर		
शतं अब्दं	सौ वर्ष तक	उह कथं	अरे भला कैसे
अप्सु	(प्रलय) जलमें	बीजं उपलभेत	बीज पाया जा सकता है ॥३४॥
निमज्जमानः	डुबकी लगानेपर भी		

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं
कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ।
त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं
भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श ॥३५॥

स तु आत्मयोनिः अतिविस्मित आस्थितः अब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्ध भावः त्वां आत्मनि ईश भुवि गन्धं इव अतिसूक्ष्मं भूत इन्द्रिय आशयमये विततं ददर्श ॥३५॥

स आत्मयोनिः	वे स्वयम्भू (ब्रह्मा)	भुवि गन्धं इव	पृथ्वीमें गन्धके समान
तु	तो		
अतिविस्मित	बहुत चकित होकर	आत्मनि	अपने भीतर
अब्जं आस्थितः	(उसी) कमलपर बैठ गये,	ईश त्वां	स्वामी आपको
		अतिसूक्ष्मं	अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे
तीव्रतपसा	कठोर तपस्यासे	विततं	व्याप्त
कालेन	दीर्घकालमें	भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रिय,
परिशुद्ध भावः	हृदय शुद्ध होनेपर	आशयमये	अन्तःकरणमय
		ददर्श	देखा ॥३५॥

एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरु-
नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ।
मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं
दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः ॥३६॥

एवं सहस्रवदन अङ्घ्रि शिरः कर उरु नासा आस्य कर्ण नयन आभरण आयुध आढ्यं मायामयं सत् उपलक्षित सन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषं आप मुदं विरिञ्चः ॥३६॥

एवं	इसी प्रकार
सहस्रवदन	हजारों मुख,
अङ्घ्रि शिरः	पैर, सिर,
कर उरु	हाथ, जांघें,
नासा आस्य	नाक मुँह,
कर्ण नयन	नाक, कान वाले,
आभरण	आभूषण,
आयुध	आयुधोंसे
आढ्यं	सम्पन्न
सत् उपलक्षित	सत् कहे जानेवाले
मायामयं	मायामय
महापुरुषं	विराट् पुरुषको
दृष्ट्वा	देखकर
विरिञ्चः	ब्रह्माजीको
मुदं आप	आनन्द प्राप्त हुआ ॥३६॥

तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्
वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ।
हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च
सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥३७॥

तस्मै भवान् हयशिरः तनुवं च बिभ्रत् वेद द्रुहाः अतिबलौ मधु कैटभ आख्यौ हत्वा अनयत् श्रुतिगणान् तु रजः तमः च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुं आमनन्ति ॥३७॥

तस्मै	उसी (प्रलय-समुद्र) में
भवान्	आपने
हयशिरः	हयग्रीव
तनुवं च	शरीर भी
बिभ्रत्	धारण करके
रजः तमः	रजोगुण और तमोगुण रूप
अतिबलौ	अत्यन्त बलवान
वेद द्रुहाः	वेद-द्रोही
मधु कैटभ	मधु-कैटभ
आख्यौ	नामवाले (असुरों) को
हत्वा	मारकर
श्रुति गणान् तु	वेदोंको तो
अनयत्	ले आये (ब्रह्माको दिया)
सत्त्वं तव	सत्त्वगुणको आपका
प्रियतमां तनुं	अत्यन्त प्रिय शरीर
आमनन्ति	माना जाता है ॥३७॥

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥३८॥

इत्थं नृ तिर्यक् ऋषि देव झषअवतारैः लोकान् विभावयसि हंसि जगत् प्रतीपान् धर्मं महापुरुष पासि युग अनुवृत्तं छन्नः कलौ यत् अभवः त्रियुगः अथ स त्वम् ॥३८॥

महापुरुष	पुरुषोत्तम !	हंसि	संहार करते हैं,
इत्थं	इसी प्रकार	युग अनुवृत्तं	युगानुरूप
नृ तिर्यक्	मनुष्य, पशु-पक्षी,	धर्मं पासि	धर्मकी रक्षा करते हैं,
ऋषि देव	ऋषि, देवता तथा	अथ यत्	फिर क्योंकि
झषअवतारैः	मत्स्यावतार लेकर	स त्वं त्रियुगः	वह आप त्रियुग हैं,
लोकान्	लोकोंका	कलौ छन्नः	कलियुगमें छिपे
विभावयसि	पालन और		रहते हैं ॥३८॥
जगत् प्रतीपान्	विश्व द्रोहियोंका		

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ
सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं
तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३९॥

न एतत् मनः तव कथासु विकुण्ठनाथ सम्प्रीयते दुरित दुष्टं असाधु तीव्रं काम आतुरं हर्ष शोक भय ईषणा आर्तं तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३९॥

विकुण्ठनाथ	वैकुण्ठनाथ !	काम आतुरं	कामातुर,
दुरित दुष्टं	पाप कलुषित,	हर्ष शोक	हर्ष-शोक
तीव्रं असाधु	अत्यन्त दुष्ट,	भय ईषणा	भय, चिन्तासे

आर्तं	व्याकुल	दीनः तस्मिन्	विवश मैं उसमें
एतत् मनः	यह (मेरा) मन	तव गतिं	आपके स्वरूपका
तव कथासु	आपकी चर्चामें	कथं विमृशामि	कैसे विचार करूँगा
सम्प्रीयते न	प्रसन्न नहीं होता,		॥३९॥

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥४०॥

जिह्वा एकतः अच्युत विकर्षति मा अवितृप्ता शिश्नः अन्यतः त्वक् उदरं श्रवणं कुतश्चित् घ्राणः अन्यतः चपल दृक् क्व च कर्मशक्तिः बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥४०॥

अच्युत	अच्युत !	दृक्	नेत्र
अवितृप्ता	कभी तृप्त न होने-वाली	अन्यतः च कर्मशक्तिः	किसी और ओर, और क्रिया-शक्ति
जिह्वा	जीभ	क्व मा	कहीं मुझे
एकतः	एक ओर	विकर्षति	खींचती है,
अन्यतः शिश्नः	दूसरी ओर उपस्थ	बह्व्यः	बहुत-सी ये
त्वक् उदरं	स्पर्शेन्द्रिय, पेट,	सपत्न्य इव	सौतोंके समान
श्रवणं	कर्ण	गेहपतिं	गृहस्वामी (जीव) को
कुतश्चित्	किसी भिन्न ओर,		
घ्राणः चपल	नासिका, चंचल	लुनन्ति	लूट लेती हैं ॥४०॥

एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्या-
मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।
पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं
हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥४१॥

एवं स्वकर्म पतितं भववैतरण्यां अन्योन्य जन्म मरण अशन भीत भीतं पश्यन् जनं स्व पर विग्रह वैरं मैत्रं हन्त इति पारचर पीपृहि मूढं अद्य ॥४१॥

एवं	इस प्रकार	**विग्रह**	आग्रह करके
स्वकर्म	अपने कर्मोंसे	**वैरं मैत्रं**	शत्रुता-मित्रता करते
भववैतरण्यां	संसार रूपी वैतरिणी नदीमें	**इति हन्त**	इस प्रकार हाय,
		जनं पश्यन्	लोगोंको देखता हूँ
पतितं	गिरे हुए	**पारचर**	इससे पार रहनेवाले प्रभु !
जन्म मरण	जन्म, मृत्यु,		
अन्योन्य	एक दूसरे द्वारा	**अद्य मूढं**	अब इन अज्ञानियों-
अशन भीत	खालिये जानेके डरसे		को
भीतं	भयभीत	**पीपृहि**	पार लगा दीजिए ॥४१॥
स्व पर	अपना-परायाका		

कोन्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास
उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः ।
मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो
किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥४२॥

कः नु अत्र ते अखिलगुरो भगवन् प्रयास उत्तारणे अस्य भव सम्भव लोप हेतोः मूढेषु वै महत् अनुग्रह आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनान् अनुसेवतां नः ॥४२॥

आर्तबन्धो	दीनबन्धु !	**भगवन् अत्र**	भगवन् इसमें (सबका उद्धार कर देनेमें)
अस्य भव	इस विश्वकी		
सम्भव लोप	उत्पत्ति-प्रलयके		
हेतोः ते	कारण आप	**नु कः प्रयासः**	भला कौन-सा प्रयत्न करना है
अखिलगुरो	समस्त विश्वके गुरुको		

नः मूढेषु	लेकिन अज्ञानी जनोंपर	अनुसेवतां	बराबर सेवा करनेवाले
महत् अनुग्रह	(यह) महती कृपा होगी,	नः तेन किं	हमें उस (अनुग्रह) का क्या प्रयोजन है ॥४२॥
ते प्रियजनान्	आपके प्रिय भक्तोंकी		

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्या-
स्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-
मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥४३॥

न एव उद्विजे पर दुरत्यय वैतरण्याः त्वत् वीर्य गायन महा अमृत मग्न चित्तः शोचे ततः विमुख चेतस इन्द्रिय अर्थ माया सुखाय भरं उद्वहतः विमूढान् ॥४३॥

पर	परमपुरुष !	ततः विमुख	उस (आपके सुयश गानसे) विमुख
त्वत् वीर्य	आपके पराक्रमोंके	चेतस	चित्त
गायन	गायन रूपी	इन्द्रिय अर्थ	इन्द्रियोंके लिए
महा अमृत	महा अमृतमें	माया सुखाय	मायिक सुखोंको पानेके लिए
मग्न चित्तः	निमग्न चित्त (मैं)	भरं उद्वहतः	भार ढोनेवाले
दुरत्यय	(इस भव) दुष्पार	विमूढान्	अज्ञानियोंके लिए
वैतरण्याः	वैतरणीसे	शोचे	चिन्ता करता हूँ ॥४३॥
उद्विजे न एव	(मैं) उद्विग्न नहीं ही होता हूँ,		

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥४४॥

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्ति कामा मौनं चरन्ति विजने न पर अर्थ निष्ठाः न एतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एकः न अन्यं त्वत् अस्य शरणं भ्रमतः अनुपश्ये ॥४४॥

देव	देव !	**विहाय एकः**	छोड़कर (मैं) अकेले
प्रायेण मुनयः	प्रायः मुनिगण	**विमुमुक्ष न**	मुक्त नहीं होना चाहता,
स्वविमुक्ति	अपने मोक्षकी		
कामा विजने	इच्छासे निर्जन वनमें	**अस्य भ्रमतः**	इन भटकते लोगोंके लिए
मौनं चरन्ति	मौन धारण कर लेते हैं,	**त्वत् अन्यः**	आपके अतिरिक्त
पर अर्थ	दूसरोंकी भलाईकी	**अनु शरणं**	पीछे शरण देनेवाला
निष्ठाः न	लगनवाले नहीं होते,	**अन्यं न अनुपश्ये**	दूसरा नहीं देखता हूँ ॥४४॥
एतान् कृपणान्	इन विचारे लोगोंको		

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः
कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥४५॥

यत् मैथुन आदि गृहमेधि सुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोः इव दुःख-दुःखं तृप्यन्ति न इह कृपणा बहुदुःखभाजः कण्डूतिवत् मनसिजं विषहेत धीरः ॥४५॥

हि	क्योंकि	**बहुदुःखभाजः**	बहुत दुःख भोगकर भी
यत् गृहमेधि	जो गृहस्थोंका		
तुच्छं मैथुन	तुच्छ स्त्री सहवास	**कृपणा**	बेचारे (अज्ञानी)
आदि	आदि	**इह**	इस संसारमें
सुखं	सुख है,	**तृप्यन्ति न**	तृप्त नहीं होते,
करयोः	दादको	**धीरः**	धीर-पुरुष
कण्डूयनेन इव	खुजलानेके समान	**कण्डूतिवत्**	खुजलाहटके समान
दुःखदुःखं	क्रिया तथा परिणाम दोनोंमें दुखदायी है,	**मनसिजं**	कामवेगको
		विषहेत	सह ले ॥४५॥

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥४६॥

मौन व्रत श्रुत तपः अध्ययन स्वधर्म व्याख्या रहः जप समाधय आपवर्ग्याः प्रायः परं पुरुष ते तु अजित इन्द्रियाणां वार्ता भवन्ति उत न वा तु अत्र दाम्भिकानाम् ॥४६॥

परं पुरुष	पुरुषोत्तम !	**प्रायः ते तु**	प्रायः ये (साधन) तो
मौन व्रत	मौन, ब्रह्मचर्य-व्रत,	**इन्द्रियाणां**	इन्द्रिय
श्रुत तपः	शास्त्र-श्रवण, तपस्या,	**अजित**	न जीतने वालोंके लिए
अध्ययन	वेदाध्ययन	**वार्ता**	जीविकाके साधन (व्यापार)
स्वधर्म	अपने धर्मका पालन,	**भवन्ति**	बन जाते हैं,
व्याख्या रहः	शास्त्र व्याख्या, एकान्त सेवन	**अत्र तु**	किन्तु यहां
जप समाधय	जप और समाधि (ये)	**दाम्भिकानां**	पाखण्डियोंके लिए
आपवर्ग्याः	मोक्षके साधन हैं	**उत वा न**	(जीविका) देते भी हैं अथवा नहीं देते ॥४६॥

रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे
बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ।
युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां
योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥४७॥

रूपे इमे सत् असती तव वेद सृष्टे बीज अङ्कुराः इव न च अन्यत् अरूप कस्य युक्ताः समक्षं उभय अत्र विचिन्वते त्वां योगेन वह्निम् इव दारुषु न अन्यतः स्यात् ॥४८॥

तव इमे	आपके ये
सत् असती	कारण-कार्य
रूपे वेद सृष्टे	रूप वेद प्रतिपादित हैं,
बीज	बीज और
अङ्कुराः इव	अंकुरके समान,
अरूपकस्य	निराकारको (जाननेका)
च अन्यत् न	और दूसरा उपाय नहीं है,
अत्र उभय	यहां ये दोनों (रूप)
समक्षं	प्रत्यक्ष हैं
दारुषु	काष्टोंसे
अन्यतः न स्यात्	पृथक न होनेपर
वह्निः इव	अग्निके समान
त्वां युक्ताः	आपको युक्तजन
योगेन	योग
विचिन्वते	(उपायों) से ढूँढ़ते हैं ॥४७॥

त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः
प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ।
सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥४८॥

त्वं वायुः अग्निः अवनिः वियत् अम्बु मात्राः प्राण इन्द्रियाणि हृदयं चित् अनुग्रहः च सर्वं त्वं एव सगुणः विगुणः च भूमन् न अन्यत् त्वत् अस्ति अपि मनः वचसा निरुक्तम् ॥४८॥

भूमन्	अनन्त !
त्वं	आप ही
वायुः अग्निः	वायु, अग्नि,
अवनिः वियत्	पृथ्वी, आकाश,
अम्बु मात्राः	जल, तन्मात्रा,
प्राण इन्द्रियाणि	प्राण, इन्द्रिय,
हृदयं चित्	मन, चित्त,
च अनुग्रहः	और अहंकार हो,
त्वं एव सर्वं	आप ही सब
सगुणः च	सगुण और
विगुणः	निर्गुण हो,
मनः वचसा	मन और वाणीसे
निरुक्तं	निरूपित
त्वत् अन्यत्	आपसे पृथक
अस्ति अपि न	कुछ भी नहीं है ॥४८॥

नेते गुणा न गुणिनो महदादयो ये
सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ।

आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वा-
मेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥४९॥

न एते गुणा न गुणिनः महत् आदयः ये सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेव मर्त्याः आदि अन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वां एवं विमृश्य सुधियः विरमन्ति शब्दात् ॥४९॥

एते गुणा	ये (सत्त्वादि) गुण
न ये गुणिनः	न जो इन गुणों के परिणाम
महत् आदयः	महत्तत्त्वादि
सर्वे मनःप्रभृतयः	सब मन आदि
देवसह मर्त्याः	देवताओंके साथ मनुष्य
हि	क्योंकि
आदि अन्तवन्त	आदि अन्तवाले हैं
उरुगाय	अनन्त कीर्ति
त्वां विदन्ति न	आपको जानते नहीं हैं,
एवं विमृश्य	ऐसा विचार करके
सुधियः	बुद्धिमान
शब्दात्	शब्दोंसे
विरमन्ति	उपरत हो जाते हैं ॥४९॥

तत् तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः
कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥५०॥

तत् ते अर्हत्तम नमः स्तुति कर्म पूजाः कर्म स्मृतिः चरणयोः श्रवणं कथायां संसेवया त्वयि विना एति षट् अङ्गया किं भक्ति जनः परमहंसगतौ लभेत ॥५०॥

अर्हत्तम	परमपूज्य
तत् ते	उस आपकी
संसेवया	सेवाकी
षट् अंगया	छः अंगों वाली
नमः	नमस्कार,
स्तुति	स्तुति,
कर्म पूजा	पूजादि कर्म,
कर्म	कर्मोंका समर्पण
चरणयोः स्मृतिः	श्रीचरणोंका चिन्तन,
कथायां श्रवणं	कथाका श्रवण
विना किं	(इनके) बिना क्या

त्वयि भक्ति	आपमें भक्ति	परमहंस गतौ	परमहंस गतिको
एति	होती है,	लभेत	प्राप्त कर लेता है
जनः	(इनके द्वारा) भक्त		॥५०॥

नारद उवाच–

एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ।
प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥५१॥

एतावत् वर्णित गुणः भक्त्या भक्तेन निर्गुणः प्रह्लादं प्रणतं प्रीतः यतमन्युः अभाषत ॥५१॥

भक्त्या भक्तेन	भक्ति पूर्वक भक्तके द्वारा	यतमन्युः	क्रोध शान्त हुए
		निर्गुणः	निर्गुण भगवान्
एतावत्	इतने ही	प्रीतः	प्रसन्न होकर
गुणः वर्णित	गुणोंका वर्णन करके	अभाषत	बोले ॥५१॥
प्रणतं प्रह्लादं	प्रणाम करते प्रह्लादसे		

श्रीभगवानुवाच–

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम ।
वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥५२॥

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतः अहं ते असुर उत्तम वरं वृणीष्व अभिमतं कामपूरः अस्मि अहं नृणाम् ॥५२॥

असुर उत्तम	असुरश्रेष्ठ	वृणीष्व	मांग लो,
भद्रं प्रह्लाद	भद्र प्रह्लाद !	अहं नृणां	मैं मनुष्योंकी
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,	कामपूरः अस्मि	कामनाओंको पूर्ण करनेवाला हूँ ॥५२॥
अभिमतं वरं	अभीष्ट वरदान		

मामप्रीणत आयुष्मन्दर्शनं दुर्लभं हि मे ।
दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥५३॥

मां अप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे दृष्ट्वा मां न पुनः जन्तुः आत्मानं तप्तुं अर्हति ॥५३॥

आयुष्मन्	आयुष्मन् !	मां दृष्ट्वा	मेरा दर्शन करके
हि	क्योंकि	पुनः जन्तुः	फिर कोई प्राणी
मां अप्रीणत	मुझे प्रसन्न किए बिना	आत्मानं तप्तुं	अपनेको संतप्त करने
मे दर्शनं	मेरा दर्शन	अर्हति न	योग्य नहीं रहता ॥५३॥
दुर्लभं	दुर्लभ है		

प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ।
श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम् ॥५४॥

प्रीणन्ति हि अथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासां आशिषां पतिम् ॥५४॥

धीराः साधवः	जितेन्द्रिय, सत्पुरुष,	सर्वासां आशिषां	समस्त अभिलाषाओंका
महाभागाः	महाभाग	पतिं	स्वामी हूँ,
श्रेयस्कामा	कल्याण चाहनेवाले	अथ मां	अतः मुझे
सर्वभावेन	सम्पूर्ण वृत्तियोंसे	प्रीणन्ति	प्रसन्न करते हैं ॥५४॥
हि	क्योंकि		

नारद उवाच—*

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ।
एकान्तित्वाद् भगवति नैच्छत् तानसुरोत्तमः ॥५५॥

एवं प्रलोभ्यमानः अपि वरैः लोक प्रलोभनैः एकान्तित्वात् भगवति न इच्छत् तान् असुर उत्तमः ॥५५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एवं	इस प्रकार	**भगवति**	भगवान्‌के
लोक प्रलोभनैः	लोगोंको लोभमें डालनेवाले	**एकान्तित्वात्**	अनन्य भक्त होनेसे
वरैः	वरदानों द्वारा	**असुर उत्तमः**	असुर श्रेष्ठ प्रह्लादने
प्रलोभ्यमानः	ललचाये जानेपर	**तान् इच्छत् न**	उनकी इच्छा नहीं-की ॥५५॥
अपि	भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

नारद उवाच–

भक्तियोगस्य तत् सर्वमन्तरायतयार्भकः ।
मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥१॥

भक्तियोगस्य तत् सर्वं अन्तरायतया अर्भकः मन्यमानः हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥१॥

अर्भकः	बालक (प्रह्लाद)ने	**मन्यमानः**	मानकर
तत् सर्वं	उस सब (वरदानों)-को	**हृषीकेशं**	भगवान् नृसिंहसे
		स्मयमान	मुस्कराते हुए
भक्तियोगस्य	भक्तियोगका	**ह उवाच**	निश्चित स्वरमें कहा ॥१॥
अन्तरायतया	विघ्नरूप		

प्रह्लाद उवाच–

मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः ।
तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥२॥

मा मां प्रलोभय उत्पत्त्या आसक्तं कामेषु तैः वरैः तत् सङ्ग भीतः निर्विण्णः मुमुक्षुः त्वां उपाश्रितः ॥२॥

मां प्रलोभय मा	मुझे ललचाइये मत,	**भीतः निर्विण्णः**	डरकर विरक्त होकर
तैः कामेषु	उन भोगोंको		
वरैः उत्पत्त्या	पानेके लिए जन्मसे ही	**मुमुक्षुः**	छूटनेकी इच्छासे
		त्वां उपाश्रितः	आपकी शरण आया हूँ ॥२॥
आसक्तं	आसक्त हूँ,		
तत् सङ्गः	उनकी आसक्तिसे		

भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ।
भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥ ३ ॥

भृत्यलक्षण जिज्ञासुः भक्तं कामेषु अचोदयत् भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥३॥

प्रभो	प्रभो !	**हृदयग्रन्थिषु**	हृदयकी गांठ दृढ़ करनेवाले
भृत्यलक्षण	सेवककी योग्यता	**कामेषु**	भोगोंके लिए
जिज्ञासुः	जाननेकी इच्छासे	**अचोदयत्**	प्रेरित किया है ॥३॥
भवान्	आपने		
संसारबीजेषु	संसार (आवागमन) के बीज		

नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ।
यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥४॥

न अन्यथा ते अखिलगुरो घटेत करुण आत्मनः यः त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥४॥

अन्यथा ते	नहीं तो आप	**आशास्ते**	पूरी करना चाहता है
करुण आत्मनः	दयामूर्ति		
अखिलगुरो	जगद्गुरुके लिए	**स भृत्यः न**	वह सेवक नहीं है
घटेत न	यह शक्य नहीं है,	**वै स वणिक्**	निश्चय वह बनिया हैं ॥४॥
यः त आशिष	जो उन कामनाओं-को		

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥५॥

आशासानः न वै भृत्यः स्वामिनि आशिष आत्मनः न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यं इच्छन् यः राति च आशिषः ॥५॥

स्वामिनि	स्वामीसे	भृत्यतः यः	सेवकसे जो,
आत्मनः	अपनी	स्वाम्यं इच्छन्	स्वामित्व चाहता हुआ
आशिषः	कामनाएँ (जो)		
आशासानः	(पूरी होनेकी) आशा करता है	आशिषः च	उसकी कामनाएँ भी
		राति	प्रदान करता है
वै भृत्यः न	वह निश्चय सेवक नहीं है,	स्वामी न	वह स्वामी नहीं है ॥५॥

अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥६॥

अहं तु अकामः त्वत् भक्तः त्वं च स्वामि अनपाश्रयः न अन्यथा इह आवयोः अर्थः राजसेवकयोः इव ॥६॥

अहं तु त्वत्	मैं तो आपका	इव	समान
अकामः भक्तः	निष्काम भक्त हूँ,	इह आवयोः	यहां हम दोनोंका
च त्वं	और आप	अन्यथा अर्थः	भिन्न प्रकारका प्रयोजन
अनपाश्रयः	निरपेक्ष		
स्वामि	स्वामी हैं	न	नहीं है ॥६॥
राजसेवकयोः	राजा और सेवकके		

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥७॥

यदि रासि ईश मे कामान् वरान् त्वं वरद ऋषभ कामानां हृदि असंरोहं भवतः तु वृणे वरम् ॥७॥

वरद ऋषभ	वरदानि शिरोमणि !	तु भवतः	तो आपसे
ईश	स्वामी !	हृदि कामनां	हृदयमें कामनाओंका
यदि मे	यदि मेरी	असंरोहं	उत्पन्न न होना
कामान् वरान्	इच्छानुसार वरदान	वरं वृणे	वरदानके रूपमें मांगता हूँ ॥७॥
त्वं रासि	आप देना चाहते हैं		

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥८॥

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मः धृतिः मतिः ह्रीः श्रीः तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥८॥

यस्य जन्मना	जिस (कामनाके) उत्पन्न होनेसे	**मतिः ह्रीः**	बुद्धि, लज्जा,
इन्द्रियाणि मनः	इन्द्रियाँ, मन	**तेजः स्मृतिः**	तेज, स्मृति और
प्राण आत्मा	प्राण, शरीर	**सत्यं नश्यन्ति**	सत्य नष्ट हो जाते हैं ॥८॥
धर्मः धृतिः श्रीः	धर्म, धैर्य, श्री		

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥९॥

विमुञ्चति यदा कामान् मानवः मनसि स्थितान् तर्हि एव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥९॥

पुण्डरीकाक्ष	कमल-नयन !	**विमुञ्चति**	छोड़ देता है
मानवः यदा	मनुष्य जब	**तर्हि एव**	उसी समय
मनसि स्थितान्	मनमें रहनेवाली	**भगवत्त्वाय**	भगवत्स्वरूप
कामान्	कामनाओंको	**कल्पते**	हो जाता है ॥९॥

नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ।
हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥१०॥

नमः भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने हरये अद्भुत सिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥१०॥

तुभ्यं महात्मने	आप महान् आत्मा	**परमात्मने**	परमात्मा
पुरुषाय भगवते	परमपुरुष भगवान्	**हरये नमः**	श्रीहरिको नमस्कार ॥१०॥
अद्भुत सिंहाय	अद्भुत सिंह रूप,		
ब्रह्मणे	परम ब्रह्म		

श्रीभगवानुवाच—*

नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष
आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ।
अथापि मन्वन्तरमेतदत्र
दैत्येश्वराणामनुभुङ्क्ष्व भोगान् ॥११॥

न एकान्तिनः मे मयि जातु इह आशिषः आशासते अमुत्र च ये भवत् विधाः अथ अपि मन्वन्तरं एतत् अत्र दैत्येश्वराणां अनुभुङ्क्ष्व भोगान् ॥११॥

ये भवत् विधाः	जो तुम्हारे समान	**अथ अपि**	फिर भी
मे एकान्तिनः	मेरे अनन्य भक्त हैं	**एतत् मन्वन्तरं**	इस मन्वन्तरमें
इह अमुत्र	इस लोक और परलोक सम्बन्धी	**इह**	इस लोकमें
		दैत्येश्वराणां	सभी दैत्यपतियोंके
मयि जातु	मुझसे कोई	**भोगान्**	भोगोंको
आशिषः	अभिलाषा	**अनुभुङ्क्ष्व**	भोगो ॥११॥
आशासते न	पाना नहीं चाहते,		

कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्व-
मावेश्य मामात्मनि सन्तमेकम् ।
सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं
यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥१२॥

कथा मदीया जुषमाणः प्रियाः त्वं आवेश्य मां आत्मनि सन्तं एकं सर्वेषु भूतेषु अधियज्ञं ईशं यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥१२॥

सर्वेषु भूतेषु	समस्त प्राणियोंमें	**सन्तं एकं**	विराजमान अद्वितीय
अधियज्ञं ईशं	अधियज्ञ ईश्वर रूपसे	**मां आत्मनि**	मुझमें चित्त

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहां 'नृसिंह उवाच' है ।

आवेश्य	लगाकर	त्वं योगेन	तुम योगके द्वारा
मदीया प्रियाः	मेरी प्रिय	कर्म हिन्वन् च	प्रारब्ध क्षय करते हुए ही
कथा जुषमाणः	कथाका आस्वादन करते,	यजस्व	यजन करो ॥१२॥

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं
कलेवरं कालजवेन हित्वा ।
कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां
बिताय मामेष्यसि मुक्तबन्धः ॥१३॥

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा कीर्तिं विशुद्धां सुरलोक गीतां बिताय मां एष्यसि मुक्तबन्धः ॥१३॥

भोगेन पुण्यं	भोगके द्वारा पुण्य व	सुरलोक गीतां	देवताओं द्वारा गायी जानेवाली
कुशलेन	निष्काम-कर्मों द्वारा	कीर्तिं बिताय	कीर्तिका विस्तार करके
पापं	पापोंका	मुक्तबन्धः	कर्म-बन्धनसे छूटकर
कालजवेन	कालके वेगसे (समयपर)	मां एष्यसि	मेरे पास आ जाओगे ॥१३॥
कलेवरं	शरीरको		
हित्वा	त्यागकर		

य एतत् कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः ।
त्वां च मां च स्मरन्काले कर्मबन्धात् प्रमुच्यते ॥१४॥

यः एतत् कीर्तयेत् मह्यं त्वया गीतं इदं नरः त्वां च मां च स्मरेत् काले कर्मबन्धात् प्रमुच्यते ॥१४॥

यः नरः	जो मनुष्य	च मां स्मरेत्	तथा मेरा स्मरण करेगा,
त्वया गीतं	तुम्हारे द्वारा की गयी	काले	समयपर
मह्यं इदं	मेरी इस स्तुतिका	कर्मबन्धात्	कर्मोंके बन्धनसे
कीर्तयेत्	कीर्तन करेगा	प्रमुच्यते	छूट जायगा ॥१४॥
च त्वं	और तुम्हारा		

प्रह्लाद उवाच—

वरं वरय एतत् ते वरदेशान्महेश्वर ।
यदनिन्दत् पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम् ॥१५॥

वरं वरय एतत् ते वरद ईशात् महेश्वर यत् अनिन्दत् पिता मे त्वां अविद्वान् तेज ऐश्वरम् ॥१५॥

महेश्वर	महेश्वर !
ते वरद ईशात्	आप वरदाता-स्वामीसे
एतत् वरं	यह वरदान
वरय	मांगता हूँ
यत् मे पिता	क्योंकि मेरे पिताने
तेज ऐश्वरं	आपके ईश्वरीय तेजको
अविद्वान्	न जानकर
त्वां अनिन्दत्	आपकी निन्दा की ॥१५॥

विद्धामर्षाशयः साक्षात् सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ।
भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान् ॥१६॥

विद्ध अमर्ष आशयः साक्षात् सर्वलोक गुरुं प्रभुं भ्रातृहा इति मृषा दृष्टिः त्वत् भक्ते मयि च अघवान् ॥१६॥

अमर्ष विद्ध	असहनशीलतासे ग्रस्त
आशयः	चित्त (होनेसे)
भ्रातृहा	'भाईको मारने वाला है'
इति	इस प्रकारकी
मृषा दृष्टिः	मिथ्या समझसे
सर्वलोक गुरुं	सब लोकोंमें सर्व-श्रेष्ठ
साक्षात् प्रभुं	साक्षात् सर्वेश्वरसे
च त्वत्	तथा आपके भक्त
मयि अघवान्	मुझसे द्रोह किया ॥१६॥

तस्मात् पिता मे पूयेत दुरन्ताद् दुस्तरादघात् ।
पूतस्तेऽपाङ्गसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥१७॥

तस्मात् पिता मे पूयेत दुरन्तात् दुस्तरात् आघात् पूतः ते अपाङ्ग संदृष्टः तदा कृपणवत्सल ॥१७॥

कृपणवत्सल	दीनवत्सल !	**मे पिता**	मेरे पिता
ते अपाङ्ग	आपने तिरछी दृष्टिसे	**तस्मात्**	उस
		दुरन्तात्	कठिनाईसे समास होनेवाले
संदृष्टः तदा	देखा तभी	**दुस्तरात् अघात्**	दुस्तर पापसे
पूतः	पवित्र हो गये (फिर भी)	**पूयेत**	पवित्र हो जाय ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच–

त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ।
यत् साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥१८॥

त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह ते अनघ यत् साधु अस्य गृहे जातः भवान् वै कुल पावनः ॥१८॥

अनघ	निष्पाप प्रह्लाद !	**गृहे वै**	घरमें तो
त्रिः सप्तभिः	इक्सीस	**भवान्**	तुम (जैसा)
पितृभिः सह	पीढ़ियोंके साथ	**कुल पावनः**	कुलको पवित्र करने वाला
ते पिता	तुम्हारे पिता		
पूतः	पवित्र हो गये	**साधुः जातः**	सत्पुरुष उत्पन्न हुआ ॥१८॥
यत् अस्य	क्योंकि इनके		

यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ।
साधवः समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः ॥१९॥

यत्र यत्र च मद् भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः साधवः समुद आचाराः ते पूयन्ति अपि कीकटाः ॥१९॥

प्रशान्ताः	अत्यन्त शान्त,	**समुद आचाराः**	प्रसन्नता पूर्वक सदाचारका पालन करनेवाले
समदर्शिनः	समदर्शी,		

मद् भक्ताः	मेरे भक्त	ते कीकटाः	वे कीकट प्रदेश
साधवः	सत्पुरुष	अपि पूयन्ति	भी पवित्र हो जाते
यत्र यत्र च	जहां-जहां भी (रहते हैं)		हैं ॥१६॥

सर्वात्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किञ्चन ।
उच्चावचेषु दैत्येन्द्र मद्भावेन गतस्पृहाः ॥२०॥

सर्व आत्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किञ्चन उच्च अवचेषु दैत्येन्द्र मद् भावेन गत स्पृहाः ॥२०॥

दैत्येन्द्र	दैत्यराज !	किञ्चन	किसीको भी
मद् भावेन	मेरी भावनासे	सर्व आत्मना	सम्पूर्ण हृदयसे
गत स्पृहाः	स्पर्धा नष्ट हुए जन	हिंसन्ति न	पीड़ा नहीं देते ॥२०॥
उच्च अवचेषु	बड़े-छोटे		
भूत ग्रामेषु	प्राणि-समूहोंमें		

भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ।
भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥२१॥

भवन्ति पुरुषाः लोके मद् भक्ताः त्वां अनुव्रताः भवान् मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥२१॥

लोके	संसारमें	खलु भवान्	अरे, तुम
मद् भक्ताः	मेरे भक्त	मे सर्वेषां	मेरे सभी
पुरुषाः	पुरुष	भक्तानां	भक्तोंके
त्वां अनुव्रताः	तुम्हारा अनुकरण करनेवा ले	प्रतिरूपधृक्	आदर्श स्वरूप होगे ॥२१॥
भवन्ति	होंगे		

कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः ।
मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥२२॥

कुरु त्वं प्रेत कर्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः मत् अङ्ग स्पर्शनेन अङ्ग लोकान् यास्यति सुप्रजाः ॥२२॥

अङ्ग	प्रिय प्रह्लाद !	कर्याणि	क्रिया
मत् अङ्ग	मेरे शरीरके	त्वं कुरु	तुम करो,
स्पर्शनेन	स्पर्शसे	सुप्रजाः	(तुम्हारे जैसे) उत्तम
सर्वशः पूतस्य	सर्वथा पवित्र हो गये		पुत्र होनेसे
		लोकान् यास्यति	उत्तम लोकमें
पितुः प्रेत	पिताकी मरणोत्तर		जायँगे ॥२२॥

पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ।
मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥२३॥

पित्र्यं च स्थानं आतिष्ठ यथा उक्तं ब्रह्मवादिभिः मयि आवेश्य मनः तात कुरु कर्माणि मत् परः ॥२३॥

तात	तात !	मत् परः	मेरे परायण रहकर
पित्र्यं स्थानं च	पिताके पदपर भी	ब्रह्मवादिभिः	वेदवादी (ब्राह्मण)
आतिष्ठ	बैठो,	यथा उक्तं	जैसे आज्ञा दें (उस
मनः मयि	मनको मुझमें		प्रकार)
आवेश्य	लगाकर	कर्माणि कुरु	कर्म करो ॥२३॥

नारद उवाच—

प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्साम्परायिकम् ।
यथाऽऽह भगवान् राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥२४॥

प्रह्लादः अपि तथा चक्रे पितुः यत् साम्परायिकं यथा आह भगवान् राजन् अभिषिक्तः द्विज उत्तमैः ॥२४॥

राजन्	राजन् !	द्विज उत्तमैः	श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा

राजन्	राजन् !	प्रह्लादः अपि	प्रह्लादजीने भी
द्विज उत्तमैः	श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा	पितुः यत्	पिताकी जो
अभिषिक्तः	अभिषेक हो जानेपर*	साम्परायिकं	मरणोत्तर क्रिया
भगवान् यथा	भगवान्ने जैसी		थी,
आह तथा	आज्ञा दी थी, उसके अनुसार	चक्रे	सम्पन्न की ॥२४॥

प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ।
स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥२५॥

प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिं स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिः वृतः ॥२५॥

नरहरिं हरिं	नृसिंह रूपधारी श्रीहरिको	ब्रह्मा	ब्रह्माजी
प्रसादसुमुखं	कृपापूर्ण प्रसन्न मुख	पवित्राभिः	पवित्र
दृष्ट्वा	देखकर	वाग्भिः	वाणीसे
देवादिभिः वृतः	देवतादिसे घिरे	स्तुत्वा प्राह	स्तुति करके बोले ॥२५॥

ब्रह्मोवाच–

देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज ।
दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसन्तापनोऽसुरः ॥२६॥

देवदेव अखिल अध्यक्ष भूतभावन पूर्वज दिष्ट्या ते निहतः पापः लोक सन्तापनः असुरः ॥२६॥

देवदेव	देवताओं के आराध्यदेव,	अखिल अध्यक्ष	सर्वेश्वर,
		भूतभावन	जीवोंके पालक,

---

* मूर्धाभिषिक्त राजाको सूतक नहीं लगता, अतः कंस वधके पश्चात् श्रीकृष्णने उग्रसेनका पहिले अभिषेक किया । (भगवान वासुदेव)

पूर्वज	आदिपुरुष !	पापः असुरः	पापी दैत्यको
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि	ते निहतः	आपने मार दिया ॥२६॥
लोक सन्तापनः	समस्त लोकोंको पीड़ा देनेवाले		

योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ।
तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥२७॥

यः असौ लब्ध वरः मत्तः न वध्यः मम सृष्टिभिः तपः योगबल उन्नद्धः समस्त निगमान् अहन् ॥२७॥

यः असौ	जो यह	तपः योगबल	तपस्या और योगके बलसे
मत्तः	मुझसे	उन्नद्धः	उच्छृंखल होकर
वरः लब्ध	वरदान पाकर	समस्त निगमान्	सभी मर्यादाओंका
मम सृष्टिभिः	मेरे उत्पन्न किये (किसी) से	अहन्	उच्छेद कर दिया था ॥२७॥
वध्यः न	मारा नहीं जा सकता था,		

दिष्ट्यास्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः ।
त्वयाविमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥२८॥

दिष्ट्या अस्य तनयः साधुः महाभागवतः अर्भकः त्वया विमोचितः मृत्योः दिष्ट्या त्वां समितः अधुना ॥२८॥

दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि	विमोचितः	छुड़ा लिया,
अस्य तनयः	इसके पुत्र	दिष्ट्या	(यह भी) सौभाग्य-की बात है कि
साधुः	सत्पुरुष	अधुना	इस समय (वह)
महाभागवतः	परम भगवद् भक्त	त्वां समितः	आपकी शरणमें है ॥२८॥
अर्भकः	बालकको		
त्वया मृत्योः	आपने मृत्युसे		

एतद् वपुस्ते भगवन्ध्यायतः प्रयतात्मनः ।
सर्वतो गोप्तृ संत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥२९॥

एतत् वपुः ते भगवन् ध्यायतः प्रयत आत्मनः सर्वतः गोप्तृ संत्रासात् मृत्योः अपि जिघांसतः ॥२९॥

भगवन्	भगवन् !	**सर्वतः**	सब ओरसे
प्रयत आत्मनः	एकाग्र चित्तसे	**संत्रासात्**	भयोंसे और
ध्यायतः	ध्यान करनेवालेको	**जिघांसतः**	मारने आयी
ते एतत्	आपका यह	**मृत्योः अपि**	मृत्युसे भी
वपुः	श्रीविग्रह	**गोप्तृ**	रक्षा करेगा ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच—*

मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसम्भवः ।
वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥३०॥

मा एवं वरः असुराणां ते प्रदेयः पद्म सम्भवः वरः क्रूर निसर्गाणां अहीनां अमृतं यथा ॥३०॥

पद्म सम्भवः	कमलोद्भव ब्रह्मा !	**वरः**	वरदान (वैसा ही है)
ते एवं	तुम्हें ऐसा	**यथा**	जैसे
वरः असुराणां	वरदान असुरोंको	**अहीनां अमृतं**	सर्पोंको अमृत ॥३०॥
मा प्रदेयः	नहीं देना चाहिए		
क्रूर निसर्गाणां	स्वभावसे क्रूरोंके लिए		

नारद उवाच—

इत्युक्त्वा भगवान्राजंस्तत्रैवान्तर्दधे हरिः ।
अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥३१॥

---

* गीताप्रेसकी प्रतिमें यहां 'नृसिंह उवाच' है ।

इति उक्त्वा भगवान् राजन् तत्र एव अन्तर्दधे हरिः अदृश्यः सर्व-भूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥३१॥

राजन्	राजन् !	**सर्वभूतातां**	सब प्राणियोंके लिए
परमेष्ठिना	ब्रह्माजी द्वारा	**अदृश्यः**	अदृश्य होकर
पूजितः	पूजित होकर,	**तत्र एव**	वहीं
भगवान् हरिः	भववान् श्रीहरि	**अन्तर्दधे**	अन्तर्धान हो गये
इति उक्त्वा	इतना कहकर		॥३१॥

ततः सम्पूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम् ।
भवं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥३२॥

ततः सम्पूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनं भवं प्रजापतीन् देवान् प्रह्लादः भगवत् कलाः ॥३२॥

ततः	तब	**देवान् सम्पूज्य**	देवताओंका सत्कार करके
भगवत् कलाः	भगवत्स्वरूप	**शिरसा ववन्दे**	मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥३२॥
प्रह्लादः	प्रह्लादने		
परमेष्ठिनं	ब्रह्माजी,		
भवं प्रजापतीन्	शंकरजी, प्रजा-पतियों,		

ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः ।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत् पतिम् ॥३३॥

ततः काव्य आदिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादं अकरोत् पतिम् ॥३३॥

ततः काव्य	फिर शुक्राचार्य	**दैत्यानां च**	दैत्यों और
आदिभिः	आदि	**दानवानां**	दानवोंका
मुनिभिः सार्धं	मुनियोंके साथ	**प्रह्लादं**	प्रह्लादको
कमलासनः	ब्रह्माजीने	**पतिं अकरोत्**	स्वामी बनाया ॥३३॥

प्रतिनन्द्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः ।
स्वधामानि ययू राजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥३४॥

प्रतिनन्द्य ततः देवाः प्रयुज्य परम आशिषः स्वधामानि ययू राजन् ब्रह्मा आद्याः प्रति पूजिताः ॥३४॥

राजन्	राजन् !	**ब्रह्मा आद्याः**	ब्रह्मा आदि
ततः प्रतिनन्द्य	तब उनका अभि-	**देवाः प्रति**	देवता फिर
	नन्दन करके	**पूजिताः**	पूजित होकर
परम आशिषः	महान् आशीर्वाद	**स्वधामानि**	अपने धामोंको
प्रयुज्य	देकर	**ययू**	चले गये ॥३४॥

एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः ।
हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥३५॥

एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापि तौ दितेः हृदि स्थितेन हरिणा वर भावेन तौ हतौ ॥३५॥

एवं तौ	इस प्रकार वे दोनों	**हृदि स्थितेन**	हृदयमें स्थित
विष्णोः पार्षदौ	विष्णुके पार्षद	**हरिणा तौ हतौ**	श्रीहरि द्वारा वे
दितेः पुत्रत्वं	दितिके पुत्रत्वको		दोनों मारे गये
प्रापि तौ	पहुँचाये जाकर		॥३५॥
वैर भावेन	वैर भावसे		

पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥३६॥

पुनः च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः कुम्भकर्ण दशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥३६॥

विप्रशापेन	ब्राह्मणों (सनकादि)	**कुम्भकर्ण**	कुम्भकर्ण
	के शापसे	**दक्षग्रीवौ**	दशग्रीव (रावण)
पुनः च तौ	फिरसे वे दोनों		नामके

राक्षसौ बभूवतुः	राक्षस हो गये	तौ रामविक्रमैः	वे दोनों श्रीरामके पराक्रमसे
		हतौ	मारे गये ॥३६॥

शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः ।
तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥३७॥

शयानौ युधि निर्भिन्न हृदयौ रामसायकैः तत् चित्तः जहतुः देहं यथा प्राक्तन जन्मनि ॥३७॥

रामसायकैः	श्रीरामके बाणोंसे	जन्मनि तत्	उन (श्रीराम) में तन्मय
युधि हृदयौ	युद्धमें हृदयके	चित्तः	चित्त
निर्भिन्न शयातौ	फट जानेसे सोये	देहं जहतुः	शरीर त्याग दिया ॥३७॥
यथा प्राक्तन	जैसे पहिले		

ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ ।
हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥३८॥

ताः इह अथ पुनः जातौ शिशुपाल करूषजौ हरौ वैर अनुबन्धेन पश्यतः ते समीयतुः ॥३८॥

अथ ताः इह	अब वही दोनों	हरौ वैर	श्रीहरिमें शत्रुताके द्वारा
शिशुपाल	शिशुपाल और		
करूषजौ	करूष देशमें उत्पन्न दन्तवक्त्र	अनुबन्धेन	बँधे होनेसे
		ते पश्यतः	तुम्हारे देखते
पुनः जातौ	(रूपमें) फिर उत्पन्न हुए थे	समीयतुः	(उनमें) लीन हो गये ॥३८॥

एनः पूर्वकृतं यत् तद् राजानः कृष्णवैरिणः ।
जहुस्त्वन्ते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥३९॥

एनः पूर्व कृतं यत् तत् राजानः कृष्ण वैरिणः जहुः तु अन्ते तत् आत्मानः कीटः पेशस्कृतः यथा ॥३९॥

यथा पेशस्कृतः	जैसे भृंगी द्वारा
कीटः	(पकड़ा) कीड़ा (उसका रूप भयसे पा लेता है
कृष्ण वैरिणः	श्रीकृष्णके शत्रु
राजानः	राजा लोग भी
अन्ते	अन्त समयमें
तत् आत्मानः	उनमें चित्त लगे होनेसे
यत् पूर्वं	जो पहिले
एनः कृतं	पाप किया था
तत् जहुः	उससे छूट गये ॥३९॥

यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाभिदा ।
नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥४०॥

यथा यथा भगवतः भक्त्या परमया अभिदा नृपाः चैद्य आदयः सात्म्यं हरेः तत् चिन्तया ययुः ॥४०॥

यथा यथा	जैसे-जैसे
भगवतः	भगवान्‌की
परमया	परम
अभिदा भक्त्या	भेदभाव रहिता भक्तिसे
तत् चिन्तया	(वैसे ही) उनके चिन्तनसे
चैद्य आदयः	शिशुपाल आदि
नृपाः हरेः	राजालोग श्रीहरिके
सात्म्यं ययुः	स्वरूपको प्राप्त हुए ॥४०॥

आख्यातं सर्वमेतत् ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ।
दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥४१॥

आख्यातं सर्वं एतत् ते यत् मां त्वं परिपृष्टवान् दमघोष सुत आदीनां हरेः सात्म्यं अपि द्विषाम् ॥४१॥

दमघोष सुत	दमघोषके पुत्र शिशुपाल
आदीनां	आदिका
द्विषां अपि	द्वेष करनेवाले होनेपर भी
हरेः सात्म्यं	श्रीहरिकी स्वरूपत्व प्राप्ति
यत् मां	जो मुझसे
त्वं परिपृष्टवान्	तुमने पूछा था,
एतत् सर्वं	यह सब
ते आख्यातं	तुमसे कह दिया ॥४१॥

एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ।
अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ॥४२॥

एषा ब्रह्मण्य देवस्य कृष्णस्य च महात्मनः अवतार कथा पुण्या वधः यत्र आदिदैत्ययोः ॥४२॥

एषा	यह	**अवतार कथा**	अवतार-कथा है,
ब्रह्मण्ड देवस्य	ब्राह्मणोंको देवता माननेवाले	**यत्र**	जिसमें
महात्मनः	पुरुषोत्तम	**आदिदैत्ययोः**	आदिदैत्य हिरण्य-कशिपुका
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी	**वधः**	वध (वर्णित) है ॥४२॥
च पुण्या	ही पवित्र		

प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च ।
भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः ॥४३॥

प्रह्लादस्य अनुचरितं महाभागवतस्य च भक्तिः ज्ञानं विरक्तिः च याथात्म्यं च अस्य वै हरेः ॥४३॥

अस्य	इस प्रसंगमें	**भक्तिः ज्ञानं**	भक्ति, ज्ञान
महाभागवतस्य	परम भगवद्-भक्त	**च विरक्तिः**	एवं वैराग्य
प्रह्लादस्य	प्रह्लादका	**च वै हरेः**	और निश्चयपूर्वक श्रीहरिसे
अनुचरितं	चरित भी साथ ही है	**याथात्म्यं**	तादात्म्य कर लेना है ॥४३॥
च अस्य	तथा इनकी		

सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् ।
परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥४४॥

सर्ग स्थिति अप्यय ईशस्य गुण कर्म अनुवर्णनं पर अवरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययः महान् ॥४४॥

सर्ग स्थिति	सृष्टि, स्थिति,	**स्थानानां**	स्थानोंका
अव्यय ईशस्य	प्रलयके स्वामीके	**कालेन महान्**	कालक्रमसे हुए महान्
गुण कर्म	गुण, चरितोंका		
अनुवर्णनं	वर्णन है,	**व्यत्यय**	उलटफेरका (भी वर्णन है) ॥४४॥
पर अवरेषां	श्रेष्ठ-कनिष्ठ (देव-दैत्यों) के		

धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते ।
आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥४५॥

धर्मः भागवतानां च भगवान् येन गम्यते आख्याने अस्मिन् समानाम्नातं आध्यात्मिकं अशेषतः ॥४५॥

येन भगवान्	जिसके द्वारा भगवान्की	**आध्यात्मिकं**	आध्यात्मिक तथ्य
		अस्मिन्	इस
गम्यते	प्राप्ति होती है (वह)	**आख्याने**	आख्यानमें
भागवतानां	भगवद्-भक्तोंका	**समाम्नातं**	भली प्रकार कहे गये हैं ॥४५॥
धर्मः	धर्म		
च अशेषतः	तथा सम्पूर्ण रूपसे		

य एतत् पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् ।
कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैर्विमुच्यते ॥४६॥

यः एतत् पुण्यं आख्यानं विष्णोः वीर्यं उपबृंहितं कीर्तयेत् श्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैः विमुच्यते ॥४६॥

विष्णोः वीर्यं	भगवान् विष्णुके पराक्रमसे	**यः श्रद्धया**	जो श्रद्धापूर्वक
		श्रुत्वा कीर्तयेत्	सुनकर वर्णन करता है
उपबृंहितं	परिपूर्ण		
एतत् पुण्यं	इस पवित्र	**कर्मपाशैः**	(वह) कर्म-बन्धनसे
आख्यानं	आख्यानको	**विमुच्यते**	छूट जाता हूँ ॥४६॥

एतद् य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां
दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयतः पठेत ।
दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं
श्रुत्वानुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥४७॥

एतत् यः आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां दैत्येन्द्र यूथप वधं प्रयतः पठेत दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं श्रुत्वा अनुभावं अकुतः भयं एति लोकम् ॥४७॥

यः एतत्	जो इस	च सतां प्रवरस्य	तथा सज्जनोत्तम
आदिपुरुषस्य	आदिपुरुषके	दैत्यात्मजस्य	दैत्यपुत्र प्रह्लादका
दैत्येन्द्र यूथप	दैत्य-नायकोंके अध्यक्ष हिरण्य-कशिपुका	पुण्यं अनुभावं	पवित्र प्रभाव
		श्रुत्वा	सुनकर
		अकुतः भयं	जहां कहींसे भय नहीं उस
वधं	वध रूप		
मृगेन्द्रलीलां	नृसिंह-चरित	लोकं एति	लोकमें जाता है ॥४७॥
प्रयतः पठेत	एकाग्र होकर पढ़ता है		

यूयं नृलोके बत भूरिभागा
लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद्
गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥४८॥

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयः अभियन्ति येषां गृहान् आवसति इति साक्षात् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥४८॥

नृलोके	मनुष्य लोकमें	मनुष्यलिङ्गं	मनुष्य रूपमें
बत यूयं	अहो तुम लोग	गूढं साक्षात्	छिपे साक्षात्
भूरिभागा	बड़भागी हो,	परं ब्रह्म इति	परमब्रह्म इस प्रकार
येषां गृहान्	जिनके घरोंमें		

आवसति	रहते हैं (इसीसे)	अभियन्ति	चारों ओरसे (तुम्हारे यहां) आते हैं ॥४८॥
लोकं पुनाना	लोकोंको पवित्र करनेवाले		
मुनयः	मुनिगण		

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्य-
कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय
आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च ॥४९॥

स वा अयं ब्रह्म महत् विमृग्य कैवल्य निर्वाण सुख अनुभूतिः प्रियः सुहृत् वः खलु मातुलेयः आत्मा अर्हणीयः विधिकृत् गुरुः च ॥४९॥

महत् विमृग्य	महापुरुषों द्वारा ढूंढ़े जाते,	प्रियः सुहृत्	प्रिय सुहृद
कैवल्य निर्वाण	कैवल्य-मोक्ष	खलु मातुलेयः	अरे, मामाके पुत्र,
सुख अनुभूतिः	सुखानुभव स्वरूप	आत्मा	आत्मा,
स ब्रह्म वा	वह ब्रह्म निश्चय	अर्हणीयः	पूज्य,
वः अयं	तुम लोगोंके ये	विधिकृत्	आदेश पालक
		च गुरुः	और गुरु भी हैं ॥४९

न यस्य साक्षाद् भवपद्मजादिभी
रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ।
मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः
प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥५०॥

न यस्य साक्षात् भव पद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतया उपवर्णितं मौनेन भक्त्या उपशमेन पूजितः प्रसीदतां एष स सात्वतां पतिः ॥५०॥

भव पद्मजादिभी	शिव-ब्रह्मा आदि भी	धिया	बुद्धि लगाकर भी
यस्य	जिसके	वस्तुतया	ठीक तथ्यके रूपमें
साक्षात् रूपं	साक्षात् रूपका	उपवर्णितं च	वर्णन नहीं कर पाते

स एष	वे ये	उपशमेन	संयमके द्वारा
सात्वतां पतिः	भक्तोंके स्वामी	पूजितः	पूजित होकर
मौनेन भक्त्या	मौन होनेसे, भक्तिसे,	प्रसीदतां	प्रसन्न हों ॥५०॥

स एष भगवान्राजन्व्यतनोद् विहतं यशः ।
पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानन्तमायिना ॥५१॥

स एष भगवान् राजन् व्यतनोत् विहतं यशः पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेन अनन्त मायिना ॥५१॥

राजन्	राजन् !	यशः विहतं	यशमें बाधा देनेपर
पुरा अनन्त	पहिले अनन्त	स एष भगवान्	उन इन्हीं भगवान्ने
मायिना	मायावी	व्यतनोत्	उस (यश) का
मयेन	मयके द्वारा		विस्तार किया ॥५१॥
रुद्रस्य देवस्य	रुद्रदेवके		

युधिष्ठिर उवाच—*

कस्मिन् कर्मणि देवस्य मयोऽहञ्जगदीशितुः ।
यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम् ॥५२॥

कस्मिन् कर्मणि देवस्य मयः अहन् जगदीशितुः यथा च उपचिता कीर्तिः कृष्णेन अनेन कथ्यताम् ॥५२॥

मयः	मय	कृष्णेन कीर्तिः	श्रीकृष्ण द्वारा वह
कस्मिन् कर्मणि	किस कर्ममें		कीर्ति
जगदीशितुः	जगदीश शिवकी	उपचिता	बचायी गयी
अहन्	(कीर्ति) नष्ट कर	कथ्यतां	(इसका) वर्णन
	रहा था ।		कीजिए ॥५२॥
यथा अनेन	जैसे इन		

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है ।

नारद उवाच–

निर्जिता असुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः ।
मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः ॥५३॥

निर्जिता असुरा देवैः युधि अनेन उपबृंहितैः मायिनां परमाचार्यं मयं शरणं आययुः ॥५३॥

अनेन	इन भगवान्	परमाचार्यं	परमाचार्य
उपबृंहितैः	द्वारा संवर्धित	मयं शरणं	मय दानवकी शरणमें
देवैः युधि	देवताओंसे युद्धमें	आययुः	आये ॥५३॥
निर्जिता असुरा	जीते गये असुर		
मायिनां	मायावियोंके		

स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः ।
दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥५४॥

स निर्माय पुरः तिस्रः हैमी रौप्य आयसीः विभुः दुर्लक्ष्य अपाय संयोगा दुर्वितर्क्य परिच्छदाः ॥५४॥

स विभुः	उस समर्थने	दुर्लक्ष्य	कठिनाईसे दीखता था,
हैमी रौप्य	सोनेकी, चांदीकी	दुर्वितर्क्य	अनुमानमें कठिनाईसे आवें इतनी
आयसीः तिस्रः	लोहेकी तीन	परिच्छदाः	सामग्रियां उनमें थीं ॥५४॥
पुरः निर्माय	पुरियां (विमान) बनाये,		
अपाय संयोगा	(उनका) जाना-आना		

ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन् सेश्वरान् नृप ।
स्मरन्तो नाशयाञ्चक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥५५॥

ताभिः ते असुर सेनान्यः लोकान् त्रीन् स ईश्वरान् नृप स्मरन्तः नाशयान् चक्रुः पूर्व वैरं अलक्षिताः ॥५५॥

नृप	राजन् !	अलक्षिताः	अदृश्य रहकर
ताभिः ते	उन (पुरों) के द्वारा वे	स ईश्वरान्	लोकपालों सहित
		त्रीन् लोकान्	तीनों लोकोंका
असुर सेनान्यः	असुर-सेना-नायक	नाशयान् चक्रुः	नाश करने लगे ॥५५॥
पूर्व वैरं	पहिलेकी शत्रुताका		
स्मरन्तः	स्मरण करके		

ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो ।
त्राहि नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥५६॥

ततः ते स ईश्वरा लोकाः उपासाद्य ईश्वरं विभो त्राहि नः तावकान् देव विनष्टान् त्रिपुर आलयैः ॥५६॥

ततः ते	तब वे	विभो देव	प्रभो, महादेव !
स ईश्वरा	अपने स्वामियोंके साथ	त्रिपुर आलयैः	त्रिपुरोंमें रहनेवालों द्वारा
लोकाः	सब लोक	विनष्टान्	नष्ट किये जाते
ईश्वरं उपासाद्य	शंकरजीके पास जाकर (बोले)	नः तावकान्	हम अपनोंकी,
		त्राहि	रक्षा कीजिए ॥५६॥

अथानुगृह्य भगवान्मा भैष्टेति सुरान्विभुः ।
शरं धनुषि सन्धाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुञ्चत ॥५७॥

अथ अनुगृह्य भगवान् मा भैष्ट इति सुरान् विभुः शरं धनुषि सन्धाय पुरेषु अस्त्रं व्यमुञ्चत ॥५७॥

अथ विभुः	तब समर्थ	धनुषि शरं	धनुषपर बाण
भगवान्	भगवान्ने	सन्धाय	चढ़ाकर
अनुगृह्य	अनुग्रह करके	पुरेषु	(उन) त्रिपुरोंपर
'मा भैष्ट'	'डरो मत'	अस्त्रं व्यमुञ्चत	अस्त्र छोड़ा ॥५७॥
इति सुरान्	इस प्रकार देवताओं-से (कहकर)		

ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् ।
यथा मयूखसंदोहा नादृश्यन्त पुरो यतः ॥५८॥

ततः अग्निवर्णाः इषवः उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् यथा मयूख सन्दोहाः न अदृश्यन्त पुरः यतः ॥५८॥

ततः	तब	**इषवः उत्पेतुः**	बाण गिरने लगे
सूर्यमण्डलात्	सूर्य-मण्डलसे	**यतः पुरः**	जिससे वे पुरियां
यथा मयूख	जैसे किरणोंके	**न अदृश्यन्त**	नहीं दीखती थीं
सन्दोहाः	समान हों		॥५८॥
अग्निवर्णाः	अग्नि वर्णके		

तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः ।
तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥५९॥

तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुर ओकसः तान् आनीय महायोगी मयः कूपरसे अक्षिपत् ॥५९॥

तैः स्पृष्टा	उन (बाणों) के लगनेसे	**स्म**	थे ।
पुर ओकसः सर्वे	उन पुरियोंमें रहने-वाले सब	**महायोगी मयः**	महायोगी मयने
		तान् आनीय	उनको लाकर
		कूपरसे	कुएँके रसमें
व्यसवः निपेतुः	निष्प्राण होकर गिर पड़े	**अक्षिपत्**	डाल दिया ॥५९॥

सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः ।
उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥६०॥

सिद्ध अमृत रस स्पृष्टा वज्रसारा महा ओजसः उत् तस्थुः मेघ-दलना वैद्युता इव वह्नयः ॥६०॥

सिद्ध अमृत रस	(उस) सिद्ध अमृत-रसका	**स्पृष्टा**	स्पर्श करके
		महा ओजसः	अत्यन्त तेजस्वी

वज्रसारा	वज्रसार (फौलाद) के समान	वैद्युता वह्नयः इव	बिजलीकी आगके समान
मेघदलना	बादलोंको चीरकर निकला	उत् तस्थुः	उठ खड़े हुए ॥६०॥

विलोक्य भग्नसंकल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ।
तदायं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥६१॥

विलोक्य भग्न संकल्पं विमनस्कं वृषध्वजं तदा अयं भगवान् विष्णुः तत्र उपायं अकल्पयत् ॥६१॥

वृषध्वजं	(इससे) शंकरजीको	तदा अयं	तब इन
भग्न संकल्पं	संकल्प टूट जानेसे	भगवान् विष्णुः	भगवान् विष्णुने
विमनस्कं	उदास हुआ	तत्र उपायं	उस विषयमे उपाय
विलोक्य	देखकर	अकल्पयत्	सोच लिया ॥६१॥

वत्स आसीत्तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरयं हि गौः ।
प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामृतं पपौ ॥६२॥

वत्स आसीत् तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुः अयं हि गौः प्रविश्य त्रिपुरं काले रस कूप अमृतं पपौ ॥६२॥

हि	क्योंकि	काले त्रिपुरं	(मध्याह्नके) समय त्रिपुरमें
तदा ब्रह्मा	उस समय ब्रह्मा	प्रविश्य	प्रवेश करके
वत्स आसीत्	बछड़ा हो गये	कूप रस अमृतं	कुएँका रसरूप अमृत
अयं स्वयं	ये स्वयं	पपौ	पी गये ॥६२॥
विष्णुः गौः	विष्णु गाय (बनकर)		

तेऽसुरा ह्यपि पश्यन्तो न न्यषेधन्विमोहिताः ।
तद् विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ ॥६३॥

ते असुरा हि अपि पश्यन्तः न न्यषेधन् विमोहिताः तद् विज्ञाय महायोगी रसपालान् इदं जगौ ॥६३॥

ते असुरा	वे असुर	तद् विज्ञाय	यह जानकर
पश्यन्तः अपि	देखते हुए भी	महायोगी	महायोगी (मय) ने
हि विमोहिताः	क्योंकि बहुत मोहित किये गये थे*	रसपालान्	रस-रक्षकोंसे
		इदं जगौ	यह कहा ॥६३॥
न्यषेधन् न	(उन्होंने) रोका नहीं		

स्वयं विशोकः शोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं च ताम् ।
देवोऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ॥६४॥

स्वयं विशोकः शोक आर्तान् स्मरन् दैवगतिं च तां देवः असुरः नरः अन्यः वा न ईश्वरः अस्ति इह कश्चन ॥६४॥

स्वयं विशोकः	(वह) स्वयं शोक-हीन था ।	देवः असुरः	'देवता, असुर,
		नरः अन्यः	मनुष्य या कोई दूसरा
शोक आर्तन्	शोकसे दुःखी (रक्षकोंसे)	इह कश्चन	इस जगतमें कोई भी
तां दैवगतिं	उस दैवकी गति	ईश्वरः न	समर्थ नहीं है ॥६४॥
च स्मरन्	को भी स्मरण करके (बोला)		

आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुंद्वयोः ।
अथासौ शक्तिभिः स्वाभिः शम्भोः प्राधनिकं व्यधात् ॥६५॥

आत्मनः अन्यस्य वा दिष्टं दैवेन अपोहितं द्वयोः अथ असौ शक्तिभिः स्वाभिः शम्भोः प्राधनिकं व्यधात् ॥६५॥

दैवेन आत्मनः	दैवने अपना	द्वयोः दिष्टं	दोनोंका जो प्रारब्ध (बना दिया)
वा अन्यस्य	अथवा दूसरेका		

*'शिव-चरित' में त्रिपुर-दलनकी कथामें पूरा विस्तार है ।

अपोहितं	(उसे) मिटा देनेमें (समर्थ नहीं)	शक्तिभिः	शक्तियोंसे
		शम्भोः	शंकरजीकी
अथ असौ	फिर इन (भगवान्) ने	प्राधनिकं	युद्ध-सामग्री
		व्यधात्	बनायी ॥६५॥
स्वाभिः	अपनी		

धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः ।
रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्म शरादि यत् ॥६६॥

धर्म ज्ञान विरक्ति ऋद्धि तपः विद्या क्रिया आदिभिः रथं सूतं ध्वजं वाहान् धनुः वर्म शरादि यत् ॥६६॥

धर्मं रथं	धर्मसे रथ	क्रिया आदिभिः	क्रिया आदि शक्तियोसे
ज्ञान सूतं	ज्ञानसे सारथि		
विरक्ति ध्वजं	वैराग्यसे ध्वजा,	यत् शरादि	जो बाण आदि (आवश्यक थे बनाये) ॥६६॥
ऋद्धि वाहान्	ऐश्वर्यसे घोड़े,		
तपः धनुः	तपस्यासे धनुष,		
विद्या वर्म	विद्यासे कवच		

सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे ।
शरं धनुषि सन्धाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ॥६७॥

सन्नद्धः रथं आस्थाय शरं धनुः उप आददे शरं धनुषि सन्धाय मुहूर्ते अभिजिति ईश्वरः ॥६७॥

अथ सन्नद्धः	तब कवच धारण करके	अभिजिति	अभित
		मुहूर्ते	मुहूर्तमें
रथं आस्थाय	रथपर बैठकर	ईश्वरः	शंकरजीने
धनुः शरं	धनुष बाण	धनुषि शरं	धनुषपर बाण
उप आददे	उठाया	सन्धाय	चढ़ाकर ॥६७॥

ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप ।
दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसङ्कुलाः ॥६८॥

ददाह तेन दुर्भेद्या हरः अथ त्रिपुरः नृप दिवि दुन्दुभयः नेदुः विमान शत सङ्कुलाः ॥६८॥

नृप	राजन् !	अथ विमान शत	तब सैकड़ों विमानों-
तेन हरः	उसके द्वारा शंकर-		से
	जीने	सङ्कुलाः दिवि	भरे स्वर्गमें
दुर्भेद्या त्रिपुरः	दुर्भेद्य तीनों पुरोंको	दुन्दुभयः नेदुः	दुन्दुभियां बजने
ददाह	भस्म कर दिया,		लगीं ॥६८॥

देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः ।
अवाकिरञ्जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६९॥

देव ऋषि पितृ सिद्धेशा जय इति कुसुम उत्करैः अवाकिरन् जगुः हृष्टा ननृतुः च अप्सरः गणाः ॥६९॥

देव ऋषि	देवता, ऋषि,	कुसुम	पुष्प
पितृ सिद्धेशा	पितर, सिद्धेश	अवाकिरन्	बिखेरने लगे,
जय इति जगुः	'जय हो' यह कहने	च हृष्टाः	और प्रसन्न होकर
	लगे,	अप्सरः गणाः	अप्सराओंका वर्ग
उत्करैः	हाथ उठाकर	ननृतुः	नाचने लगा ॥६९॥

एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप ।
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥७०॥

एवं दग्ध्वा पुरः तिस्रः भगवान् पुरहा नृप ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रति अपद्यत ॥७०॥

नृप	राजन् !	स्तूयमानः	स्तुति किये जाते
एवं तिस्रः	इस प्रकार तीनों	भगवान् पुरहा	भगवान् पुरारि
पुरः दग्ध्वा	पुरियां भस्म करके	स्वधाम प्रति	अपने धामको
ब्रह्मादिभिः	ब्रह्मा आदि द्वारा	अपद्यत	चले गये ॥७०॥

एवंविधान्यस्य हरेः स्वमायया
विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ।

वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरो-
र्लोकान् पुनानान्यपरं वदामि किम् ॥७१॥

एवं विधानि अस्य हरेः स्वमायया विडम्बमानस्य नृलोकं आत्मनः वीर्याणि गीतानि ऋषिभिः जगद्गुरोः लोकान् पुनानानि अपरं वदामि किम् ॥७१॥

नृलोकं	मनुष्य लोकमें	**लोकान्**	लोकोंको
स्वमायया	अपनी मायासे	**पुनानानि**	पवित्र करने वाले
आत्मनः	अपनी	**वीर्याणि**	पराक्रम
विडम्बमानस्य	लीलाएँ करते हुए	**ऋषिभिः**	ऋषियों द्वारा
अस्य जगद्गुरोः	इन जगद्गुरु श्रीहरिकी	**गीतानि**	गाये गये हैं।
		अपरं किं	और क्या
एवं विधानि	इस प्रकारके	**वदामि**	कहूँ ॥७१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं
महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ।
युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदा युतः
पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयम्भुवः ॥१॥

श्रुत्वा ईहितं साधु सभा सभाजितं महत्तम अग्रण्य उरुक्रम आत्मनः युधिष्ठिरः दैत्यपतेः मुदा युतः पप्रच्छ भूयः तनयं स्वयम्भुवः ॥१॥

साधु सभा	सत्पुरुषोंके समाजमें	ईहितं	चेष्टा (चरित)
सभाजितं	सम्मानित	श्रुत्वा	सुनकर
महत्तम	महापुरुषोंके	मुदा युतः	प्रसन्न होकर
अग्रण्य	अग्रणी	युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरने
उरुक्रम आत्मनः	अनन्त पराक्रम भगवन्मय चित्त	स्वयम्भुवं तनयं	ब्रह्माजीके पुत्र नारदजीसे
दैत्यपतेः	दैत्यराज प्रह्लादकी	भूयः पप्रच्छ	फिर पूछा ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच–

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ।
वर्णाश्रमाचारयुतं यत् पुमान्विन्दते परम् ॥२॥

भगवन् श्रोतुं इच्छामि नृणां धर्मं सनातनं वर्ण आश्रम आचारयुतं यत् पुमान् विन्दते परम् ॥२॥

भगवन्	भगवन् !	वर्ण आश्रम	वर्ण-आश्रमके
नृणां	मनुष्योंका	आचारयुतं	आचार वाला

सनातनं धर्मं	सनातन धर्म	परं विन्दते	परमात्माको पा
श्रोतुं इच्छामि	सुनना चाहता हूँ,		लेता है ॥२॥
पुमान् यत्	पुरुष जिसके द्वारा		

भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः ।
सुतानां सम्मतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः ॥३॥

भवान् प्रजापतेः साक्षात् आत्मजः परमेष्ठिनः सुतानां सम्मतः ब्रह्मन् तपः योग समाधिभिः ॥३॥

भवान् साक्षात्	आप साक्षात्	योग समाधिभिः	योग तथा एकाग्रता-
प्रजापतेः	प्रजापति		के कारण
परमेष्ठिनः	ब्रह्माजीके	सुतानां सम्मतः	(उनको) पुत्रोंमें
आत्मजः	पुत्र हैं		सबसे प्रिय हैं ॥३॥
ब्रह्मन् तपः	(और) ब्रह्मन् ! तपस्या,		

नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः ।
करुणाः साधवः शान्तास्त्वद्विधा न तथापरे ॥४॥

नारायण परा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः करुणाः साधवः शान्ताः त्वद्विधा न तथा अपरे ॥४॥

त्वद्विधा	आपके समान	परं गुह्यं धर्मं	परम रहस्यमय
नारायण परा	नारायण परायण,		धर्मको
करुणाः साधवः	दयालु, सत्पुरुष,	विदुः तथा	जानते हैं, वैसा
शान्ताः विप्रा	शान्त ब्राह्मण	अपरे न	दूसरे नहीं (जानते) ॥४॥

नारद उवाच—

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे ।
वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥५॥

नत्वा भगवते अजाय लोकानां धर्महेतवे वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायण मुखात् श्रुतम् ॥५॥

भगवते अजाय	भगवान् अजन्माको	मुखात्	मुखसे
नत्वा लोकानां	नमस्कार करके, लोकोंको	श्रुतं सनातनं	सुने सनातन (शाश्वत)
धर्महेतवे	धर्ममें स्थित रखनेके लिए	धर्मं वक्ष्ये	धर्मका वर्णन करूँगा ॥५॥
नारायण	ऋषि नारायणके		

योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः ।
लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे ॥६॥

यः अवतीर्य आत्मनः अंशेन दाक्षायण्यां तु धर्मत लोकानां स्वस्तये अध्यास्ते तपः बदरिकाआश्रमे ॥६॥

यः आत्मः	जो अपने	लोकानां	लोकोंके
अंशेन	अंश (नर) सहित	स्वस्तय	कल्याणके लिए
धर्मतः	धर्मसे (उनकी पत्नी)	बदरिका आश्रमे	बदरीनाथमें
दाक्षायण्यां तु	दक्षकन्या मूर्तिमें तो	तपः अध्यास्ते	तपस्या कर रहे हैं ॥६॥
अवतीर्य	अवतार लेकर		

धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयो हरिः ।
स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति ॥७॥

धर्ममूलं हि भगवान् सर्व वेदमयः हरिः स्मृतं च तत् विदां राजन् येन च आत्मा प्रसीदति ॥७॥

राजन्	राजन् !	स्मृतं	स्मृतियां,
सर्व वेदमयः	सर्व वेदमय	च येन	तथा जिससे
हरिः	श्रीहरि,	आत्मा प्रसीदति	चित्त निर्मल हो
च तत् विदां	और उन (वेदों) को जाननेवाले (ऋषियों) की	हि धर्ममूलं	यही धर्मका मूल हैं ॥७॥

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥८॥

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षा ईक्षा शमः दमः अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥८॥

सत्यं दया	सत्य, दया,	**अहिंसा**	अहिंसा,
तपः शौचं	तप, पवित्रता,	**ब्रह्मचर्यं**	ब्रह्मचर्य,
तितिक्षा ईक्षा	तितीक्षा, विवेक,	**त्यागः**	त्याग,
शमः दमः	मनकी शान्ति, इन्द्रियोंका दमन,	**स्वाध्याय च आर्जवं**	स्वाध्याय तथा सरलता ॥८॥

सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥९॥

सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्य ईहा उपरमः शनैः नृणां विपर्यय इह ईक्षा मौनं आत्म विमर्शनम् ॥९॥

सन्तोषः समदृक् सेवा	सन्तोष, समदर्शिता, सेवा	**इह नृणां**	इस संसारमें मनुष्योंकी
शनैः ग्राम्य ईहा	धीरे-धीरे सांसारिक भोगोंकी चेष्टासे	**विपर्यय ईक्षा**	उलटी दशा देखना,
उपरमः	उपरामता,	**मौनं**	मौन
		आत्म विमर्शनं	आत्म-तत्त्वका विचार ॥९॥

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥१०॥

अन्न आदि आदेः संविभागः भूतेभ्यः च यथा अर्हतः तेषु आत्म देवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥१०॥

पाण्डव	युधिष्ठिर !	**अर्हतः**	योग्य
भूतेभ्यः यथा	प्राणियोंमें यथा	**अन्न आदि**	अन्न आदिको

आदेः संविभागः च तेषु सुतरां नृषु आत्म	पहिले ही बाँट देना, तथा उनमें विशेषतः मनुष्योंमें अपने	देवता बुद्धिः	इष्टदेवका भाव ॥१०॥

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥११॥

श्रवणं कीर्तनं च अस्य स्मरणं महतां गतेः सेवा इज्या अवनतिः दास्यं सख्यं आत्मसमर्पणम् ॥११॥

अस्य महतां गतेः	इन महापुरुषोंके परम गति भगवान्‌का	स्मरणं सेवा इज्या अवनतिः	स्मरण, सेवा, पूजा, बन्दन,
श्रवणं कीर्तनं	(यश-चरित) श्रवण, कीर्तन,	दास्यं सख्यं आत्मसमर्पणं	दास्य, सख्य, आत्मसमर्पण ॥११॥

नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान्राजन्सर्वात्मा येन तुष्यति ॥१२॥

नृणां अयं परः धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः त्रिंशत् लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥१२॥

राजन्	राजन् !	सर्वेषां	सबके लिए
अयं नृणां	यह मनुष्योंका	समुदाहृतः	कहा गया है
त्रिंशत्	तीस	येन सर्वात्मा	जिससे सर्वात्मा
लक्षणवान्	लक्षणोंवाला		भगवान्
परः धर्मः	परम धर्म	तुष्यति	सन्तुष्ट होते हैं ॥१२॥

संस्कारा यदविच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगाद यम् ।
इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ।
जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥१३॥

संस्कारा यत् अविच्छिन्नाः स द्विजः अजः जगाद यं इज्या अध्ययन दानानि विहितानि द्विजन्मनां जन्मकर्म अवदातानां क्रियाः च आश्रम चोदिताः ॥१३॥

अजः यं	ब्रह्माजीने जिनको	**अवदातानां**	शुद्ध
जगाद	(संस्कार) बतलाये	**द्विजन्मनां**	द्विजोंके लिए
यत् अविच्छिन्नाः	क्योंकि (उनसे ही) अखण्ड रूपसे	**इज्या अध्ययन दानानि च**	यज्ञ, वेदाध्ययन, दान और
संस्कारा	संस्कार (चलते) आ रहे हैं	**आश्रम**	आश्रमोंके लिए
स द्विजः	वे द्विज हैं	**चोदिताः**	बतलायी गयी
जन्मकर्म	जन्म तथा कर्मसे	**क्रियाः**	कर्मोंका
		विहितानि	विधान है ॥१३॥

विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः ।
राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद् वा करादिभिः ॥१४॥

विप्रस्य अध्ययन आदीनि षट् अन्यस्य अप्रतिग्रहः राज्ञः वृत्तिः प्रजागोप्तुः अविप्रात् वा कर आदिभिः ॥१४॥

विप्रस्य	ब्राह्मणके लिए	**अप्रतिग्रहः**	दान लेना नहीं है ।
अध्ययन	अध्ययन	**वा प्रजागोप्तुः**	तथा प्रजाके रक्षक
आदीनि षट्	आदि (अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना) ये छः	**राज्ञः वृत्तिः**	राजाकी जीविका
		अविप्रात्	ब्राह्मणको छोड़कर
		कर आदिभिः	कर आदिसे (चलाना) है ॥१४॥
अन्यस्य	दूसरों (क्षत्रिय-वैश्य) के लिए		

वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः ।
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥१५॥

वैश्यः तु वार्ता वृत्तिः च नित्यं ब्रह्मकुल अनुगः शूद्रस्य द्विज शुश्रूषा वृत्तिः च स्वामिनः भवेत् ॥१५॥

वैश्यः तु	वैश्यको तो
नित्यं ब्रह्मकुल	सदा ब्राह्मण कुलोंका
अनुगः	अनुगामी होकर
च वार्ता	तथा व्यापारसे
वृत्तिः	जीविका करनी चाहिए
शूद्रस्य	शूद्रका (कर्तव्य)
द्विज शुश्रूषा	द्विजोंकी सेवा है,
च वृत्तिः	और आजीविका
स्वामिनः भवेत्	उसके स्वामीसे होती है ॥१५॥

वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम् ।
विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥१६॥

कर्ता विचित्रा शालीन यायावर शिल उञ्छनं विप्रः वृत्तिः चतुर्धा इयं श्रेयसी च उत्तर उत्तरा ॥१६॥

विप्रः विचित्रा	ब्राह्मणकी विचित्र
इयं चतुर्धा	यह चार प्रकारकी
वृत्तिः	आजीविका है,
कर्ता	कर्ता (यज्ञादि कराकर)
शालीन	बिना मांगे जो मिले उसे लेकर,
यायावर	प्रतिदिन उसी दिन-के लिए मांग लाना
शिल उञ्छनं	फसल कट जानेपर गिरे दाने या अन्न पड़े दाने उठ जानेपर बाजार चुन लाना,
उत्तर उत्तरा च	पीछे-पीछेकी (वृत्तियां)
श्रेयसी च	कल्याण कारिणी हैं ॥१६॥

जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः ।
ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ॥१७॥

जघन्यः न उत्तमां वृत्तिं अनापदि भजेत् नरः ऋते राजन्यं आपत्सु सर्वेषां अपि सर्वशः ॥१७॥

राजन्यं ऋते	राजाको छोड़कर
अनापदि	आपत्ति-काल न होनेपर
जघन्यः नरः	निम्न वर्णका पुरुष
उत्तमां वृत्तिं	अपनेसे श्रेष्ठ वर्णकी जीविका
न भजेत्	न अपनावे
आपत्सु	आपत्ति-कालमें
सर्वेषां अपि	सब लोगोंके लिए ही
सर्वशः	सभी (आजीविकाएँ) हैं ॥१७॥

ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥१८॥

ऋतां अमृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा सत्य अनृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥१८॥

ऋतां	ऋता,	**श्ववृत्त्या**	किन्तु कुत्तेकी वृत्तिसे
अमृताभ्यां	अमृतासे	**कथञ्चन**	कभी भी
मृतेन	मृतसे,	**न जीवेत**	जीवन न चलावे
प्रमृतेन वा	प्रमृतसे अथवा		॥१८॥
सत्य अनृताभ्यां	सत्य अनृतासे		

ऋतमुञ्छशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितम् ।
मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात् प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥१९॥

ऋतं उञ्छ शिलं प्रोक्तं अमृतं यत् अयाचितं मृतं तु नित्य याञ्चा स्यात् प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥१९॥

उञ्छ शिलं	बाजार या खेतमें से उनके उठ जानेपर दाने बीन लेना	**अमृतं**	अमृत है,
		मृतं तु	मृत तो
		नित्य	रोज
ऋतं प्रोक्तं	ऋत कहा गया है,	**याञ्चा स्यात्**	मांगना है,
यत् अयाचितं	जो बिना मांगे मिल जाय	**कर्षणं प्रमृतं**	खेतीको प्रमृत
		स्मृतं	कहा गया है ॥१९॥

सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम् ।
वर्जयेत् तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम् ।
सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥२०॥

सत्य अनृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिः नीच सेवनं वर्जयेत् तां सदा विप्रः राजन्यः च जुगुप्सिताम् सर्ववेदमयः विप्रः सर्वदैवमयः नृपः ॥२०॥

सत्य अनृतं तु	सत्य अनृता तो
वाणिज्यं	व्यापार है,
श्ववृत्तिः	कुत्ते की वृत्ति
नीच सेवनं	अपनेसे निम्न वर्ण-की सेवा है,
तां जुगुप्सितां	उस निन्दिता (वृत्ति) को
सदा विप्रः	सदा ब्राह्मण
च राजन्यः	तथा राजा
वर्जयेत्	त्याग दे (क्योंकि)
विप्रः	ब्राह्मण
सर्ववेदमयः	सब वेदमय है,
नृपः सर्वदेवमयः	राजा सब देवतामय है ॥२०॥

शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम् ।

ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥२१॥

शमः दमः तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिः आर्जवं ज्ञानं दया अच्युत आत्मत्वं सत्यं च ब्रह्म लक्षणम् ॥२१॥

शमः दमः	शम, दम,
तपः शौचं	तप, शौच,
सन्तोषः क्षान्तिः	सन्तोष, क्षमा-शीलता,
आर्जवं ज्ञानं	सरलता, ज्ञान,
दया अच्युत	दया, भगवान्में
आत्मत्वं च	चित्त लगाना और
सत्यं	सत्य बोलना
ब्रह्म लक्षणं	ब्राह्मणका लक्षण है ॥२१॥

शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा ।

ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥२२॥

शौर्यं वीर्यं धृतिः तेजः त्यागः आत्मजयः क्षमा ब्रह्मण्यता प्रसादः च रक्षा च क्षत्र लक्षणम् ॥२२॥

शौर्यं वीर्यं	शूरता, पराक्रम,
धृतिः तेजः	धैर्य, तेजस्विता,
त्यागः	त्याग,
आत्मजयः	मनको जीतना,
क्षमा ब्रह्मण्यता	क्षमा, ब्राह्मण-भक्ति,
च प्रसादः	और कृपा करना
च रक्षा	तथा रक्षा करना
क्षत्र लक्षणं	क्षत्रियका लक्षण है ॥२२॥

देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ।
आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम् ॥२३॥

देव गुरु अच्युते भक्तिः त्रिवर्ग परिपोषणं आस्तिक्यं उद्यमः नित्यं नैपुण्यं वैश्य लक्षणम् । २३॥

देव गुरु	देवता, गुरु,	आस्तिक्यं	आस्तिकता,
अच्युते	भगवान्में	नित्यं उद्यमः	सदा उद्योग करना,
भक्तिः	भक्ति,	नैपुण्यं	निपुण होना,
त्रिवर्ग	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) को	वैश्य लक्षणं	वैश्यका लक्षण है ॥२३॥
परिपोषणं	भली प्रकार पुष्ट करना,		

शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥२४॥

शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिनि अमायया अमन्त्र यज्ञः हि अस्तेयं सत्यं गोविप्र रक्षणम् ॥२४॥

शूद्रस्य	शूद्रके (लक्षण) हैं	हि अस्तेयं	निश्चय ही चोरी न करना,
संनतिः शौचं	विनम्रता, पवित्रता,	सत्यं गोविप्र	सत्य, गाय-ब्राह्मणों-
अमायया	छलहीन		की
स्वामिनि सेवा	स्वामीकी सेवा,	रक्षणं	रक्षा करना ॥२४॥
अमन्त्र यज्ञः	वैदिक मन्त्रोंसे रहित यज्ञ,		

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता ।
तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥२५॥

स्त्रीणां च पति देवानां तत् शुश्रूषा अनुकूलता तत् बन्धुषु अनुवृत्तिः च नित्यं तत् व्रत धारणम् ॥२५॥

पति देवानां	पतिको परमेश्वर माननेवाली	तत् बन्धुषु अनुवृत्तिः	उसके सम्बन्धियोंके अनुकूल व्यवहार करना,
स्त्रीणां च	स्त्रियोंके भी (लक्षण हैं)	च नित्यं	तथा सदा
तत् शुश्रूषा	उस (पति) की सेवा,	तत् व्रत धारणं	उसके नियमोंकी रक्षा करना ॥२५॥
अनुकूलता	उसके अनुकूल रहना,		

संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः ।
स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥२६॥

सम्मार्जन उपलेपाभ्यां गृह मण्डल वर्तनैः स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्ट परिच्छदा ॥२६॥

सम्मार्जन	झाड़ने,	नित्यं मण्डिता	सदा अलंकृत रखना
उपलेपाभ्यां	लीपने तथा	परिच्छदा	सामग्रियोंको
मण्डल वर्तनैः	चौक पूरने आदिसे	परिमृष्ट	स्वच्छ रखना ॥२६॥
गृह च स्वयं	घरको तथा अपने-को भी		

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च ।
वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम् ॥२७॥

कामैः उच्च अवचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम् ॥२७॥

काले काले	समय-समयपर	सत्यैः प्रियैः	सत्य और प्रिय
उच्च अवचैः	बड़े-छोटे	वाक्यैः प्रेम्णा	वचनोंसे प्रेमपूर्वक
कामैः	कार्यों में योग देकर	साध्वी पतिं	पतिव्रता स्त्री पतिकी
प्रश्रयेण च	नम्रता तथा		
दमेन	इन्द्रिय संयमसे	भजेत्	सेवा करे ॥२७॥

संतुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ।
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥२८॥

संतुष्टा अलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रिय सत्यवाक् अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं तु अपतितं भजेत् ॥२८॥

सन्तुष्टा	सन्तोषी,	**अप्रमत्ता**	असावधान न रहने-वाली,
अलोलुपा	लालच न करने-वाली,	**शुचिः स्निग्धा**	पवित्र, स्नेहमयी (स्त्री)
दक्षा धर्मज्ञा	कार्य निपुणा, धर्म जाननेवाली,	**तु अपतितं पतिं भजेत्**	यदि पतित न हो तो पतिसे सहवास करें ॥२८॥
प्रिय सत्यवाक्	प्रिय सत्य बोलने-वाली,		

या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा ।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥२९॥

या पतिं हरि भावेन भजेत् श्रीः इव तत् परा हरि आत्मना हरेः लोके पत्या श्रीः इव मोदते ॥२९॥

या हरि आत्मना	जो भगवत् चित्ता	**पतिं भजेत्**	पतिकी सेवा करती है,
श्रीः इव	लक्ष्मीकी भांति	**हरेः लोकं**	वह श्रीहरिके धाममें
हरि भावेन	भगवान् मानकर	**पत्या**	पतिके साथ
तत् परा	उसके परायणा होकर	**श्रीः इव**	लक्ष्मीकी भाँति
		मोदते	आनन्दित होती है ॥२९॥

वृत्तिः सङ्करजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत् ।
अचौराणामपापानामन्त्यजान्तेऽवसायिनाम् ॥३०॥

वृत्तिः सङ्कर जातीनां तत् तत् कुल कृता भवेत् अचौराणां अपापानां अन्त्यज अन्ते अवसायिनाम् ॥३०॥

अचौराणां	चोरी न करनेवाले,	सङ्कर जातीनां	वर्ण-सङ्कर जातियों-
अपापानां	पाप न करनेवाले,		की
अन्त्यज	अन्त्यज तथा	वृत्तिः	आजीविका
अन्ते	अन्ते	तत् तत् कुल	उनके अपने कुलके
अवसायिनां	अवसायी (बस्तीके	कृता	अनुसार
	बाहर रहनेवाले)	भवेत्	होती है ॥३०॥

प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे ।
वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रत्य चेह च शर्मकृत् ॥३१॥

प्रायः स्वभाव विहितः नृणां धर्मः युगे युगे वेददृक्भिः स्मृतः राजन् प्रेत्य च इह च शर्मकृत् ॥३१॥

राजन्	राजन् !	नृणां प्रेत्य च	मनुष्योंके लिए
वेददृक्भिः	वेददर्शी (मुनियों) ने		मरनेके बाद
युगे युगे	प्रत्येक युगमें	च इह शर्मकृत	और इस लोकमें
प्रायः स्वभाव	प्रायः स्वभावके		भी वह कल्याणकारी
विहितः	अनुसार		है ॥३१॥
धर्मः स्मृतः	धर्म बतलाया है		

वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् ।
हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ॥३२॥

वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् हित्वा स्वभावजं कर्म शनैः निर्गुणतां इयात् ॥३२॥

स्वभावकृतया	स्वभावके द्वारा	शनैः	धीरे-धीरे
	मिली	स्वभावजं कर्म	स्वाभाविक कर्मको
वृत्त्या वर्तमानः	वृत्तिसे चलता हुआ	हित्वा	त्यागकर
स्वकर्मकृत्	अपना कर्तव्य पालन	निर्गुणतां	गुणातीत
	करनेवाला	इयात्	हो जाता है ॥३२॥

उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात् ।
न कल्पते पुनः सूत्यै उप्तं बीजं च नश्यति ॥३३॥

उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतां इयात् न कल्पते पुनः सूत्यै उप्तं बीजं च नश्यति ॥३३॥

मुहुः उप्यमानं	बार-बार बोनेसे	कल्पते न	योग्य नहीं रहता,
क्षेत्रं स्वयं	खेत स्वतः	उप्तं बीजं च	बोया गया बीज भी
निर्वीर्यतां	शक्तिहीन	नश्यति	नष्ट हो जाता है
इयात्	हो जाता है,		॥३३॥
सूत्यै पुनः	उत्पादनके फिर		

एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया ।
विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत् कामबिन्दुभिः ॥३४॥

एवं काम आशयं चित्तं कामानां अतिसेवया विरज्येत यथा राजन् न आग्निवत् काम बिन्दुभिः ॥३४॥

राजन्	राजन् !	अतिसेवया	बहुत अधिक सेवन
एवं	इसी प्रकार		करनेसे
काम आशयं	कामनाओंका	यथा विरज्येत	जैसा ऊब जाता है
	निवास	आग्निवत्	अग्निके समान
चित्तं कामानां	चित्त विषयोंका	काम बिन्दुभिः	भोगोंकी बूँदोंसे
		न	नहीं ॥३४॥

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत् ॥३५॥

यस्य यत् लक्षणं प्रोक्तं पुंसः वर्णं अभिव्यञ्जकं यत् अन्यत्र अपि दृश्येत् तत् तेन एव विनिर्दिशेत् ॥३५॥

पुंसः वर्ण	पुरुषोंका वर्ण	यत् अन्यत्र	यदि दूसरेमें
अभिव्यञ्जकं	सूचित करनेवाले	अपि	भी
यस्य यत्	जिसके जो	दृश्येत् तत्	दीखें तो उसे भी
लक्षणं प्रोक्तं	लक्षण बतलाये गये हैं	तेन एव	उसी वर्णका
		विनिर्दिशेत्	बतलावे ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारद उवाच–

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम् ।
आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥१॥

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन् दान्तः गुरोः हितं आचरन् दासवत् नीचः गुरौ सुदृढ सौहृदः ॥१॥

गुरुकुले वसन्	गुरुकुलमें रहते हुए	**गुरौ सुदृढ**	गुरुमें सुदृढ़
ब्रह्मचारी दान्तः	ब्रह्मचारी इन्द्रियों-को वशमें रखे,	**सौहृदः**	प्रीति रखकर
		गुरोः हितं	गुरुकी भलाई
दासवत् नीचः	दासके समान विनम्र रहे	**आचरन्**	करता रहे ॥१॥

सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् ।
उभे सन्ध्ये च यतवाग् जपन्ब्रह्म समाहितः ॥२॥

सायं प्रातः उपासीत गुरु अग्नि अर्क सुर उत्तमान् उभे सन्ध्ये च यत वाक् जपन् ब्रह्म समाहितः ॥२॥

सायं प्रातः	शाम-सुबह	**च उभे सन्ध्ये**	तथा दोनों सन्ध्या समय
गुरु अग्नि	गुरु, अग्नि,		
अर्क सुर	सूर्य तथा प्रधान	**यत वाक्**	मौन तथा एकाग्र
उत्तमान्	देवताओंकी	**समाहितः**	चित्त होकर
उपासीत	उपासना करे,	**ब्रह्म जपन्**	गायत्री जप करे ॥२॥

छन्दांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत् सुयन्त्रितः ।
उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥३॥

छन्दांसि अधीयीत गुरोः आहूतः चेत् सुयन्त्रितः उपक्रमे अवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥३॥

चेत् गुरोः	यदि गुरुदेव	**उपक्रमे च**	उसके प्रारम्भमें तथा
आहूतः	बुलावें।	**अवसाने**	अन्तमें
सुयन्त्रितः	तो उनके अनुशासन-में रहकर	**चरणौ शिरसा**	(गुरुदेवके) चरणों-पर मस्तक रखकर
छन्दांसि	वेदोंका	**नमेत्**	प्रणाम करे ॥३॥
अधीयीत	अध्ययन करें,		

मेखलाजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून् ।
बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम् ॥४॥

मेखला अजिन वासांसि जटा दण्ड कमण्डलून् बिभृयात् उपवीतं च दर्भपाणिः यथा उदितम् ॥४॥

यथा उदितं	शास्त्रीय विधानके अनुसार	**दण्ड कमण्डलून्**	दण्ड, कमण्डलु,
मेखला अजिन	मेखला, मृग चर्म.	**उपवीतं च**	यज्ञोपवीत तथा
वासांसि जटा	वस्त्र, जटा,	**दर्भपाणिः**	हाथमें कुश,
		बिभृयात्	धारण करे ॥४॥

सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत् ।
भुञ्जीत यद्यनुज्ञातो नो चेदुपवसेत् क्वचित् ॥५॥

सायं प्रातः चरेत् भैक्षं गुरवेतत् निवेदयेत् भुञ्जीत यत् अनुज्ञातः नो चेत् उपवसेत् क्वचित् ॥५॥

सायं प्रातः	शाम-सुबह	**भुञ्जीत**	तो भोजन करें,
भैक्षं चरेत्	भिक्षा मांग लावे,	**क्वचित् नो चेत्**	कभी यदि आज्ञा न दें,
तत् गुरवे	उसे गुरुको	**उपवसेत्**	तो उपवास कर ले ॥५॥
निवेदयेत्	निवेदन कर दे,		
यत् अनुज्ञातः	यदि वे आज्ञा दें		

सुशीलो मितभुग् दक्षः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
यावदर्थं व्यवहरेत् स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥६॥

सुशीलः मितभुक् दक्षः श्रद्दधानः जितेन्द्रियः यावत् अर्थं व्यवहरेत् स्त्रीषु स्त्री निर्जितेषु च ॥६॥

सुशीलः	सदाचारी रहे,	स्त्रीषु च	स्त्रियोंसे तथा
मितभुक्	थोड़ा खाय,	स्त्री निर्जितेषु	स्त्रियोंके वशमें रहनेवालोंसे
दक्षः श्रद्दधानः	कर्म निपुण बने, श्रद्धालु रहे,	यावत् अर्थं	जितना प्रयोजन हो उतना ही
जितेन्द्रियः	इन्द्रियोंको वशमें रखे,	व्यवहरेत्	व्यवहार करे ॥६॥

वर्जयेत् प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्त्यपि यतेर्मनः ॥७॥

वर्जयेत् प्रमदागाथां अगृहस्थः बृहत् व्रतः इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति अपि यतेः मनः ॥७॥

अगृस्थः	जो गृहस्थ नहीं है	प्रमाथीनि	मथ देनेवाली है,
बृहत् व्रतः	वह ब्रह्मचारी	यतेः अपि	ये यत्न शीलका भी
प्रमदागाथां	स्त्री-चर्चासे	मनः हरन्ति	मन हरण कर लेती हैं ॥७॥
वर्जयेत्	पृथक रहे,		
इन्द्रियाणि	इन्द्रियां		

केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिकम् ।
गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनो युवा ॥८॥

केश प्रसाधन उन्मर्द स्नपन अभ्यञ्जन आदिकं गुरु स्त्रीभिः युवतिभिः कारयेत् न आत्मनः युवा ॥८॥

युवा आत्मनः	युवा (ब्रह्मचारी) अपना	केश प्रसाधन	बाल सुलझवाना,
		उन्मर्द	उबटन लगवाना,

अभ्यञ्जन	शरीर मलवाना	गुरु स्त्रीभिः	गुरु-पत्नीसे
आदिकं	आदि	न कारयेत्	न करवाये ॥८॥
युवतिभिः	युवती		

नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान् ।
सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ॥९॥

ननु अग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भ समः पुमान् सुतां अपि रहः जह्यात् अन्यदा यावत् अर्थ कृत् ॥९॥

ननु प्रमदा नाम	निश्चय स्त्री नामक	अन्यदा	अन्नयथा (जब वह एकान्तमें न हो)
अग्निः पुमान्	अग्नि है और पुरुष	यावत् अर्थ	प्रयोजन मात्रका ही
घृतकुम्भ समः	घीके घड़ेके समान है	कृत्	(व्यवहार) करें ॥९॥
सुतां अपि	अतः पुत्रीको भी		
रहः जह्यात्	एकान्तमें (साथ रखना) छोड़ दें,		

कल्पयित्वाऽऽत्मना यावदाभासमिदमीश्वरः ।
द्वैतं तावन्न विरमेत् ततो ह्यस्य विपर्ययः ॥१०॥

कल्पयित्वा आत्मना यावत् आभासं इदं ईश्वरः द्वैतं तावत् न विरमेत् ततः हि अस्य विपर्ययः ॥१०॥

यावत् आत्मना	जब तक आत्मामें	न विरमेत्	(यह कल्पना) नहीं मिटती
इदं आभासं	यह आभास	हि	क्योंकि
द्वैतं	द्वैत (स्त्री-पुरुष भेद) की	ततः	उसी (स्त्री-पुरुष भाव) से
कल्पयित्वा	कल्पना बनी है	अस्य विपर्ययः	इसकी उलटी स्थिति (नित्य मुक्तका बन्धन) है ॥१०॥
तावत् ईश्वरः	तब तक समर्थ होनेपर भी		

एतत् सर्वं गृहस्थस्य समाम्नातं यतेरपि ।
गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥११॥

एतत् सर्वं गृहस्थस्य सम आम्नातं यतेः अपि गुरुवृत्तिः विकल्पेन गृहस्थस्य ऋतुगामिनः ॥११॥

एतत् सर्वं	ये सब (शील-रक्षादि)	विकल्पेन	वैकल्पिक (ऐच्छिक है)
गृहस्थस्य	गृहस्थके लिए तथा	गृहस्थस्य	गृहस्थके लिए
यतेः अपि	संन्यासीके लिए भी	ऋतुगामिनः	ऋतु-गमन करना विहित है ॥११॥
सम आम्नातं	शास्त्र विहित हैं		
गुरुवृत्तिः	गुरुकी सेवा (इनके लिए)		

अञ्जनाभ्यञ्जनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषं मधु ।
स्रग्गन्धलेपालंकारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ॥१२॥

अञ्जन अभ्यञ्जन उन्मर्द स्त्र्यवलेख आमिषं मधु स्रक् गन्धलेप अलंकारान् त्यजेयुः ये धृत व्रताः ॥१२॥

ये धृतव्रताः	जो व्रतधारी (ब्रह्मचारी) हैं उन्हें	आमिषं मधु	मांस, शराब,
		स्रक् गन्धलेप	माला, चन्दन लगाना,
अञ्जन	सुरमा या		
अभ्यञ्जन	तेल लगाना,	अलंकारान्	आभूषण
उन्मर्द	उबटन लगाना,	त्यजेयुः	छोड़ देने चाहिए ॥१२॥
स्त्र्यवलेख	स्त्रियोंके चित्र बनाना,		

उषित्वैवं गुरुकुले द्विजोऽधीत्यावबुध्य च ।
त्रयीं साङ्गोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम् ॥१३॥

उषित्वा एवं गुरुकुले द्विजः अधीत्य अवबुध्य च त्रयीं साङ्ग उपनिषदं यावत् अर्थं यथा बलम् ॥१३॥

एवं गुरुकुले	इस प्रकार गुरुकुलमें	साङ्ग	(छः) अंग (कल्प,
उषित्वा	रहकर		शिक्षा, व्याकरण,
यावत् अर्थं	जितना प्रयोजन हो,		ज्योतिष, निरुक्त,
यथा बलं	जितनी अपनेमें		छन्द, सहित
	शक्ति हो (उसके	च उपनिषदं	तथा उपनिषदोंका
	अनुसार)	अधीत्य	अध्ययन करके
द्विजः त्रयीं	द्विजाति वेदोंका	अवबुध्य	उन्हें समझकर

॥१३॥

दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः ।
गृहं वनं वा प्रविशेत् प्रव्रजेत् तत्र वा वसेत् ॥१४॥

दत्त्वा वरं अनुज्ञातः गुरोः कामं यत् ईश्वरः गृहं वनं वा प्रविशेत् प्रव्रजेत् तत्र वा वसेत् ॥१४॥

यत् ईश्वरः	यदि सामर्थ्य हो तो	गृहं वा वनं	गृहस्थाश्रम अथवा
गुरोः कामं	गुरुको (उनकी)		वानप्रस्थमें
	इच्छानुसार	प्रविशेत्	प्रवेश करे
वरं दत्त्वा	दक्षिणा देकर	प्रव्रजेत्	संन्यासी हो जाय
अनुज्ञातः	(उनकी) अनुमति	वा तत्र वसेत्	अथवा (नैष्ठिक
	लेकर		ब्रह्मचारी होकर)
			वहीं रह जाय ॥१४॥

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् ।
भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥१५॥

अग्नौ गुराः आत्मनि च सर्व भूतेषु अधोक्षजं भूतैः स्वधामभिः पश्येत् अप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥१५॥

अग्नौ गुराः	अग्निमें, गुरुदेवमें,	प्रविष्टवत्	प्रवेश किये के
आत्मनि च	अपनेमें भी		समान
सर्व भूतेषु	सब प्राणियोंमें	अधोक्षजं पश्येत्	अन्तर्यामी भगवान्-
स्वधामभिः	अपने तेजसे		को देखें ॥१५॥
अप्रविष्टं	प्रवेश न करनेपर		
	भी		

एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ।
चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१६॥

एवं विधः ब्रह्मचारी वानप्रस्थः यतिः गृही चरन् विदित विज्ञानः परं ब्रह्म अधिगच्छति ॥१६॥

एवं विधः चरन्	इस प्रकार आचरण करके	**विदित विज्ञानः**	विज्ञानको जानकर
		परं ब्रह्म	परंब्रह्मका
ब्रह्मचारी	ब्रह्मचारी,	**अधिगच्छति**	अनुभव कर लेते हैं ॥१६॥
वानप्रस्थः	वानप्रस्थ,		
यतिः गृही	संन्यासी और गृहस्थ		

वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसम्मतान् ।
यानातिष्ठन् मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहाञ्जसा ॥१७॥

वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान् मुनिसम्मतान् यान् आतिष्ठन् मुनिः गच्छेत् ऋषिलोकं इह अञ्जसा ॥१७॥

मुनिसम्मतान्	ऋषियोंके मतानुसार	**आतिष्ठन्**	ठीक-ठीक पालन करनेसे
वानप्रस्थस्य	वानप्रस्थाश्रमके		
नियमान्	नियम	**मुनिः अञ्जसा**	वानप्रस्थी सरलतासे
वक्ष्यामि	बतलाता हूँ	**ऋषिलोकं**	ऋषि-लोक
यान् इह	जिनका इस लोकमें	**गच्छेत्**	जाता है ॥१७॥

न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः ।
अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुताहरेत् ॥१८॥

न कृष्टपच्यं अश्नीयात् अकृष्टं च अपि अकालतः अग्नि पक्वं अथ आमं वा अर्कपक्वं उत आहरेत् ॥१८॥

कृष्टपच्यं	खेतीसे उत्पन्न	**अकृष्टं च अपि**	बिना जोती भूमिमें भी हुए,
अकालतः	असमयमें		

अग्निपक्वं	आगमें पकाये	उत अर्कपक्वं	केवल सूर्यकी धूपसे पके
वा आमं	अथवा कच्चे ही		
न अश्नीयात्	न खावे,	आहरेत्	(कन्द, मूल, फल) भोजन करे ॥१८॥

वन्यैश्चरुपुरोडाशान् निर्वपेत् कालचोदितान् ।
लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥१९॥

वन्यैः चरु पुरोडाशान् निर्वपेत् काल चोदितान् लब्धे नवे नवे अन्न आद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥१९॥

वन्यैः	वनमें (अपने आप) हुए	निर्वपेत्	हवन करे ।
		अन्न आद्ये	अन्न (बीज आदि)
काल चोदितान्	समयानुसार प्राप्तसे	नवे नवे लब्धे	नये-नये मिलनेपर
चरु पुरोडाशान्	चरु और पुरोडाश-का*	पुराणं तु	पुरानोंको तो
		परित्यजेत्	त्याग दे ॥१९॥

अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाद्रिकन्दराम् ।
श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयम् ॥२०॥

अग्नि अर्थं एव शरणं उटजं वा अद्रिकन्दरां श्रयेत हिम वायु अग्नि वर्षा अर्क आतप षाट् स्वयम् ॥२०॥

अग्नि शरणं	अग्निकी रक्षा	स्वयं हिम वायु	स्वयं सर्दी, आंधी,
अर्थं एव	के लिए ही	अग्नि वर्षा	अग्नि, वर्षा
उटजं वा	कुटिया या	अर्क आतप	सूर्यकी धूप
अद्रिकन्दरां	पर्वतकी गुफाका	षाट्	सहन करे ॥२०॥
श्रयेत	आश्रय ले		

केशरोमनखश्मश्रु मलानि जटिलो दधत् ।
कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥२१॥

---

*कन्द, मूल, फलका हवन सम्भव नहीं है, अतः जंगली सावांको दो आदि तृण बीज हवनके लिए संग्रह करनेका विधान है ।

केश रोम नख श्मश्रु मलानि जटिलः दधत् कमण्डलु अजिने दण्ड वल्कल अग्नि परिच्छदान् ॥२१॥

जटिलः केश	जटाधारी, केश,	दण्ड वल्कल	दण्ड, वल्कल,
रोम	रोम,	अग्नि	अग्नि-
नख श्मश्रु	नख, दाढ़ी-मूँछ,	परिच्छदान्	होत्रकी सामग्री
मलानि	(शरीरका) मैल	दधत्	पास रखे ॥२१॥
कमण्डलु अजिने	कमण्डलु, मृग-चर्म,		

चरेद् वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः ।
द्वावेकं वा यथा बुद्धिर्न विपद्येत कृच्छ्रतः ॥२२॥

चरेत् वने द्वादश अब्दान् अष्टौ वा चतुरो मुनिः द्वाः एकं वा यथा बुद्धिः न विपद्येत कृच्छ्रतः ॥२२॥

यथा कृच्छ्रतः	जैसे कष्ट भोगनेसे	वा चतुरः द्वाः	अथवा चार, दो,
बुद्धिः न	बुद्धि न	वा एकं अब्दान्	या एक वर्ष
विपद्येत	बिगड़ जाय (वैसे)	चरेत्	(इन नियमोंका)
मुनिः वने	वानप्रस्थी वनमें		पालन करें ॥२२॥
द्वादश अष्टौ	बारह, आठ,		

यदाकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाथवा ।
आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकम् ॥२३॥

यदा अकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिः जरया अथवा आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यात् अनशन आदिकम् ॥२३॥

स्वक्रियायां	अपनी क्रियाओंमें	व्याधिभिः	रोगसे
वा	अथवा	अथवा	अथवा
आन्वीक्षिक्यां	आत्मदर्शनकी	जरया	बुढ़ापेसे
विद्यायां	विद्या (तत्त्व-विचार) में	यदा अकल्पः	जब असमर्थ हो जाय

अनशन आदिकं अनशन आदि । कुर्यात् करें ॥२३॥*

आत्मन्यग्नीन् समारोप्य संन्यस्याहंममात्मताम् ।
कारणेषु न्यसेत् सम्यक् संघातं तु यथार्हतः ॥२४॥

आत्मनि अग्नीन् समारोप्य संन्यस्य अहंमम आत्मतां कारणेषु न्यसेत् सम्यक् संघातं तु यथा अर्हतः ॥२४॥

अग्नीन्	(आवहनीय आदि) अग्नियोंको	संघातं तु	शरीरके तत्त्वोंको तो
आत्मनि	आत्मामें	यथा अर्हतः	यथा योग्य
समरोप्य	आरोपित करके	कारणेषु	उनके कारणोंमें
अहंमम	'मैं-मेरा'	सम्यक्	ठीक-ठीक
आत्मतां	भाव	न्यसेत्	लीन करें ॥२४॥
संन्यस्य	त्यागकर		

खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् ।
अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम् ॥२५॥

खे खानि वायौ निःश्वासान् तेजसि उष्माणं आत्मवान् अप्सुः असृक श्लेष्म पूयानि क्षितौ शेषं यथा उद्भवम् ॥२५॥

आत्मवान्	धैर्यशाली	तेजसि उष्माणं	तेज तत्त्वमें (शरीरकी) गर्मी,
यथा उद्भवं	जो जिससे उत्पन्न हुए हैं,	अप्सु श्लेष्म	जलमें कफ,
खानि खे	महाकाशमें देहाकाश,	असृक	पीब
वायौ	वायुमें	पूयानि	रक्तादि,
निश्वासान्	श्वास वायु,	शेषं क्षितौ	शेष (हड्डी आदि) पृथ्वीमें (लय करे) ॥२५॥

*यहां ध्यान देनेकी विशेष बात है कि वानप्रस्थको रोगके कारण नियम-त्यागकी अनुमति नहीं है। अनशन करके देह त्याग करनेका आदेश है।

वाचमग्नौ सवक्तव्यामिन्द्रे शिल्पं करावपि ।
पदानि गत्या वयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥२६॥

वाचां अग्नौ सवक्तव्यां इन्द्रे शिल्पं कराः अपि पदानि गत्या वयसि रत्या उपस्थं प्रजापतौ ॥२६॥

सवक्तव्यां वाचां	वक्तृत्व शक्तिके साथ वाणीको	**गत्या पदानि**	गति-क्रिया सहित पैरोंको
अग्नौ	(उसके अधिष्ठान) अग्निमें	**वयसि**	आकाशमें
शिल्पं	कला-कौशल सहित	**रत्या उपस्थं**	रति-क्रिया सहित उपस्थको
कराः अपि	हाथोंको भी	**प्रजापतौ**	प्रजापतिमें ॥२६॥
इन्द्रे	इन्द्रमें,		

मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत् ।
दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचम् ॥२७॥

मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत् दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शं अध्यात्मनि त्वचम् ॥२७॥

पायुं विसर्गं च	पायु इन्द्रिय और मलत्याग क्रियाको	**सनादेन श्रोत्रं**	शब्द सहित कर्णेन्द्रियको
मृत्यौ	मृत्युमें	**दिक्षु**	दिशाओंमें,
यथास्थानं	उनके अधिष्ठान स्थानके अनुसार	**स्पर्शं त्वचं**	स्पर्श सहित त्वक् इन्द्रियको
विनिर्दिशेत्	लीन करनेकी भावना करे	**अध्यात्मनि**	वायुमें ॥२७॥

रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतिष्यभिनिवेशयेत् ।
अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत् ॥२८॥

रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतिषि अभिनिवेशयेत् अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैः घ्राणं क्षितौ न्यसेत् ॥२८॥

राजन्	राजन् !	अप्सु	जलमें,
रूपाणि चक्षुषा	रूपोंको नेत्रोंके साथ	घ्रेयैः घ्राणं	गन्धोंके साथ नासिकाको
ज्योतिषि	ज्योतिमें	क्षितौ न्यसेत्	पृथ्वीमें न्यास करें ॥२८॥
अभिनिवेशयेत्	प्रवेश करावे,		
प्रचेतसा जिह्वां	रसोंके साथ रसनेन्द्रियको		

मनो मनोरथैश्चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे ।
कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममताक्रिया ।
सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे ॥२९॥

मनः मनोरथैः चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे कर्माणि अध्यात्मना रुद्रे यत् अहं ममता क्रिया सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैः वैकारिकं परे ॥२९॥

मनोरथैः मनः	मनोरथोंके साथ मनको	अध्यात्मना	उस अहंकारको
चन्द्रे	चन्द्रमामें	रुद्रे	रुद्रमें
बोध्यैः बुद्धिं	विचारोंके साथ बुद्धिको	सत्त्वेन चित्तं	चेतना सहित चित्तको
परे कवौ	परम बुद्धिमान ब्रह्ममें,	क्षेत्रज्ञे	जीवमें,
यत् अहं ममता	जिससे अहंता ममता रूप	गुणैः वैकारिकं	गुणोंके कारण विकारवान् (लगते जीव) को
क्रिया	क्रिया होती है	परे	परमात्मामें ॥२९॥

अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुम् ।
कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तत् ॥३०॥

अप्सु क्षितिं अपः ज्योतिषि अदः वायौ नभसि अमुं कूटस्थे तत् च महति तत् अव्यक्ते अक्षरे च तत् ॥३०॥

क्षितिं अप्सुः	पृथ्वीको जलमें,	अदः वायौ	उसको वायुमें,
अपः ज्योतिषि	जलको ज्योतिमें,	अमुं नभसि	इसको आकाशमें;

च तत् कूटस्थे	और उसको कूटस्थ अहंकारमें,	तत् अव्यक्ते च अक्षरे	उसे अव्यक्त प्रकृतिमें और अविनाशी परमात्मामें ॥३०॥
च तत् महति	उसे महत्तत्त्वमें;		

इत्यक्षरतयाऽऽत्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ।
ज्ञात्वाद्वयोऽथ विरमेद् दग्धयोनिरिवानलः ॥३१॥

इति अक्षरतया आत्मानं चिन् मात्रं अवशेषितं ज्ञात्वा अद्वयः अथ विरमेत् दग्धयोनिः इव अनलः ॥३१॥

इति	इस प्रकार	इव	जैसे
अक्षरतया	अविनाशी रूपसे	दग्धयोनिः	जिस (काष्ठ) में प्रगट हुआ उसके जल जानेपर
चिन् मात्रं	ज्ञान मात्र		
अवशेषितं	बचे हुएको		
अद्वयः ज्ञात्वा	अद्वितीय जानकर	अनलः	अग्नि (शान्त हो जाता है) ॥३१॥
अथ विरमेत्	फिर शान्त हो जाय		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

नारद उवाच–

कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ।
ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥१॥

कल्पः तु एवं परिव्रज्य देहमात्र अवशेषितः ग्राम एक रात्र विधिना निरपेक्षः चरेत् महीम् ॥१॥

तु एवं कल्पः	यदि (वानप्रस्थीमें) इस प्रकारकी (विचार) सामर्थ्य हो तो	ग्राम एक रात्र विधिना	एक ग्राममें एक रात रहनेका नियम करके
परिव्रज्य	संन्यास लेकर	निरपेक्षः	सब अपेक्षा त्यागकर
देहमात्र अवशेषितः	शरीर मात्र बचाकर	महीं चरेत्	पृथ्वीमें विचरण करे ॥१॥

बिभृयाद् यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ।
त्यक्तं न दण्डलिङ्गादेरन्यत् किञ्चिदनापदि ॥२॥

बिभृयात् यदि असौ वासः कौपीन आच्छादनं परं त्यक्तं न दण्ड लिङ्ग आदेः अन्यत् किञ्चित् अनापदि ॥२॥

यदि असौ वासः बिभृयात्	यदि यह वस्त्र पहिने तो	अनापदि	आपत्ति काल न हो तो
कौपीन आच्छादनं	कौपीनको ढकलेनेवाला	दण्ड लिङ्ग आदेः	दण्ड तथा आश्रम चिह्नोंको
परं	दूसरा वस्त्र रखे,	त्यक्तं अन्यत् किञ्चित् न	छोड़कर दूसरा कुछ भी न रखें ॥२॥

एक एव चरेद् भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः ।
सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥३॥

एक एव चरेत् भिक्षुः आत्मारामः अनपाश्रयः सर्वभूत सुहृत् शान्तः नारायण परायणः ॥३॥

भिक्षुः	संन्यासी	**शान्तः**	शान्त
आत्मारामः	आत्मामें ही संतुष्ट	**नारायण**	नारायण
अनपाश्रयः	बिना किसीका आश्रय लिए	**परायणः**	परायण होकर
		एक एव	अकेला ही
सर्वभूत सुहृत्	सब प्राणियोंका हितैषी,	**चरेत्**	विचरण करें ॥३॥

पश्येदात्मदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये ।
आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥४॥

पश्येत् आत्मनि अदः विश्वं परे सत् असत् अव्यये आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सत् असत् मये ॥४॥

अदः विश्वं	इस विश्वको	**सर्वत्र**	सर्वत्र
सत् असत् परे	कारण-कार्यातीत	**सत् असत् मये**	कारण-कार्यमय
अव्यये आत्मनि	अविनाशी आत्मामें	**परं ब्रह्म**	परम ब्रह्म (स्वरूप
पश्येत्	देखे		देखे) ॥४॥
च आत्मानं	और आत्माको		

सुप्तप्रबोधयोः सन्धावात्मनो गतिमात्मदृक् ।
पश्यन्बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥५॥

सुप्त प्रबोधयोः सन्धाः आत्मनः गतिं आत्मदृक् पश्यन् बन्धं च मोक्षं च माया मात्रं न वस्तुतः ॥५॥

आत्मदृक्	आत्मदर्शी	**सुप्त प्रबोधयोः**	निद्रा और जागरण-की

सन्धाः आत्मनः	सन्धिमें आत्माके	माया मात्रं	केवल माया हैं,
गतिं पश्यन्	स्वरूपका अनुसन्धान करे,	वस्तुतः न	वास्तविक नहीं हैं ॥५॥
च बन्धं च मोक्षं	और बन्धन तथा मोक्ष तो		

नाभिनन्देद् ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वास्य जीवितम् ।
कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥६॥

न अभिनन्देत् ध्रुवं मृत्युं अध्रुवं वा अस्य जीवितं कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभव अप्ययम् ॥६॥

अस्य ध्रुवं मृत्युं	इस शरीरकी निश्चित मृत्युका	अप्ययं परं	तथा मारनेवाले कारण
वा जीवितं	अथवा जीवनका	कालं प्रतीक्षेत	कालकी प्रतीक्षा करें ॥६॥
अभिनन्देत् न	अभिनन्दन न करें,		
भूतानां प्रभव	प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले		

नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् ।
वादवादांस्त्यजेत् तर्कान्पक्षं कंच न संश्रयेत् ॥७॥

न असत् शास्त्रेषु सज्जेत न उपजीवेत जीविकां वाद वादान् त्यजेत् तर्कान् पक्षं कंच न संश्रयेत् ॥७॥

असत् शास्त्रेषु	अनात्म वस्तुओंके प्रतिपादक शास्त्रोंमें	वाद वादान्	केवल बाद-विवादके लिए
सज्जेत न	आसक्ति न करें,	तर्कान् त्यजेत्	तर्क करना छोड़ दे,
जीविकां	कोई आजीविका करके	कंच पक्षं	किसी भी पक्षका
उपजीवेत न	जीवन निर्वाह न करे,	संश्रयेत् न	समर्थन न करें ॥७॥

न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद् बहून् ।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित् ॥८॥

न शिष्यान् अनुबध्नीत ग्रन्थान् न एव अभ्यसेत् बहून् न व्याख्यां उपयुञ्जीत न आरम्भान् आरभेत् क्वचित् ॥८॥

शिष्यान्	शिष्योंको	**व्याख्यां**	(शास्त्र) व्याख्या का
अनुबध्नीत न	अपने साथ बांधे न रखे,	**उपयुञ्जीत न**	उपयोग न करे,
बहून् ग्रन्थान्	बहुतसे ग्रन्थोंका	**क्वचित्**	कभी भी (नवीन)
न एव अभ्यसेत्	नहीं ही अभ्यास करे,	**आरभान्**	बड़े कार्योंका
		आरभेत न	(स्वयं) प्रारम्भ न करे ॥८॥

न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः ।
शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत् ॥९॥

न यतेः आश्रमः प्रायः धर्महेतुः महात्मनः शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयात् उत वा त्यजेत् ॥९॥

शान्तस्य	शान्त	**धर्महेतु**	धर्मका कारण
समचित्तस्य	समदर्शी	**न**	नहीं है ।
महात्मनः	महात्माके लिए	**उत**	इसे
यतेः	संन्यासीका	**बिभृयात्**	धारण करे
आश्रमः	आश्रम	**वा**	अथवा
प्रायः	प्रायः	**त्यजेत्**	छोड़ दे ॥९॥

अव्यक्तलिङ्गो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् ।
कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम् ॥१०॥

अव्यक्त लिङ्गः व्यक्त अर्थः मनीषी उन्मत्त बालवत् कविः मूकवत् आत्मानं स दृष्टया दर्शयेत् नृणाम् ॥१०॥

अव्यक्त लिङ्गः	कोई आश्रमका चिह्न भले न हो,	**कविः बालवत्**	चतुर होकर भी बालक जैसा
व्यक्त अर्थः	किन्तु प्रयोजन (आत्म-चिन्तन) स्पष्ट हो,	**मूकवत्**	गूंगेके समान
मनीषी उन्मत्त	बुद्धिमान होकर भी पागल-सा	**स दृष्ट्या नृणां आत्मानं वर्शयेत्**	मनुष्योंकी दृष्टिमें अपनेको दिखलावे ॥१०॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥११॥

अत्र अपि उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं प्रह्लादस्य च संवादं मुनेः आजगरस्य च ॥११॥

अत्र अपि	इस विषयमें भी	**प्रह्लादस्य च**	यह प्रह्लादका और
इमं पुरातनं	इस पुराने	**आजगरस्य**	अजगर वृत्तिसे रहनेवाले
इतिहासं	इतिहासका	**मुनेः च संवादं**	मुनिका भी संवाद है ॥११॥
उदाहरन्ति	उदाहरण दिया जाता है		

तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ।
रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥१२॥

तं शयानं धरा उपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि रजस्वलैः तनू देशैः निगूढ अमल तेजसम् ॥१२॥

सह्यसानुनि	सह्य पर्वतकी तल-हटीमें	**अमल तेजसं**	(अपने) निर्मल तेजको
कावेर्यां	कावेरी नदीके किनारे	**देशैः निगूढ**	प्रगट होनेसे छिपाकर
रजस्वलैः तनू	धूलिध सरित शरीरसे	**धरा उपस्थे तं शयानं**	पृथ्वीके ऊपर उनके लेटे रहनेपर ॥१२॥

ददर्श लोकान्विचरँल्लोकतत्त्वविवित्सया ।
वृतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥१३॥

ददर्श लोकान् विचरन् लोकतत्त्व विवित्सया वृतः अमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादः भगवत् प्रियः ॥१३॥

भगवत् प्रियः	भगवान्‌के प्रेमी	**लोकतत्त्व**	लोगोंके हृदयकी बात
प्रह्लादः	प्रह्लादजीने	**विवित्सया**	जाननेके लिए
कतिपयैः	कुछ	**लोकान् विचरन्**	लोकोंमें घूमते हुए
अमात्यैः वृतः	मन्त्रियोंसे घिरे	**ददर्श**	उन्हें देखा ॥१३॥

कर्मणाऽऽकृतिभिर्वाचा लिङ्गैर्वर्णाश्रमादिभिः ।
न विदन्ति जना यं वै सोऽसाविति न वेति च ॥१४॥

कर्मणा आकृतिभिः वाचा लिङ्गैः वर्ण आश्रम आदिभिः न विदन्ति जना यं वै सः असाः इति न वा इति च ॥१४॥

कर्मणा	कर्मसे,	**सः असाः इति**	'वह यह हैं' इस प्रकार
आकृतिभिः	आकृतिसे,	**वा न इति**	अथवा 'ये' ऐसे नहीं हैं' इस प्रकार
वाचा	बोलनेसे,	**जना यं**	लोग जिनको
वर्ण आश्रम	वर्ण-आश्रम	**वै न विदन्ति**	ठीक-ठीक नहीं जान पाते ॥१४॥
आदिभिः	आदिके		
लिङ्गैः	चिह्नोंसे		

तं नत्वाभ्यर्च्य विधिवत् पादयोः शिरसा स्पृशन् ।
विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥१५॥

तं नत्वा अभ्यर्च्य विधिवत् पादयोः शिरसा स्पृशन् विवित्सुः इदं अप्राक्षीत् महाभागवतः असुरः ॥१५॥

तं नत्वा	उनको प्रणाम करके	**अभ्यर्च्य**	अर्चन करके
विधिवत्	विधि पूर्वक	**पादयोः शिरसा**	चरणोंका मस्तकसे

स्पृशन्	स्पर्श करते हुए	असुरः विवित्सुः	असुर प्रह्लादजीने जाननेकी इच्छासे
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त	इदं अप्राक्षीत्	यह पूछा ॥१५॥

प्रह्लाद उवाच—*

बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान्यथा ।
वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह ।
भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा ॥१६॥

बिभर्षि कायं पीवानं स उद्यमः भोगवान् यथा वित्तं च एव उद्यमवतां भोगः वित्तवतां इह भोगिनां खलु देहः अयं पीवा भवति न अन्यथा ॥१६॥

पीवानं कायं	मोटा शरीर	इह वित्तवतां	इस संसारमें धनी-को ही
बिभर्षि यथा	आप धारण करते हैं जैसा	भोगः	भोग भी मिलते हैं,
स उद्यमः	उद्योगी	खलु भोगिनां	अरे भोगियोंका ही
भोगवान्	भोगियोंका होता है,	अयं देहः	यह (स्थूल) शरीर
उद्यमवतां	उद्योग करनेवालोंके पास ही	पीवा भवति	मोटा होता है
वित्तं च एव	धन भी होता है,	अन्यथा न	दूसरा कोई (उपाय) नहीं है ॥१६॥

न ते शयानस्य निरुद्यमस्य
ब्रह्मन् नु हार्थो यत एव भोगः ।
अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः
पीवा यतस्तद्वद नः क्षमं चेत् ॥१७॥

न ते शयानस्य निः उद्यमस्य ब्रह्मन् नु ह अर्थः यत एव भोगः अभोगिनः अयं तव विप्र देहः पीवा यतः तत् वद नः क्षमं चेत् ॥१७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
निः उद्यमस्य	उद्योग रहित
शयानस्य ते	सोते हुए आपके पास
नु ह अर्थः न	क्योंकि निश्चय धन नहीं है
यत एव भोगः	जिस (धन) से ही भोग मिलते हैं,
विप्र	ब्राह्मण देव !
तव अयं देहः	आपका यह शरीर
अभोगिनः	भोग न मिलनेपर भी
यतः पीवा	जिससे मोटा है
चेत् नः क्षमं	यदि हम सुनने योग्य हों तो
तत् वद	वह (कारण) बतलाइये ॥१७॥

कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः ।
लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षितापि वा ॥१८॥

कविः कल्पः निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तत् वीक्षिता अपि वा ॥१८॥

कविः कल्पः	(आप) विद्वान्, समर्थ,
निपुणदृक्	चतुर दृष्टिवाले,
चित्रप्रियकथः	विचित्र प्रिय बातें करनेवाले हैं
लोकस्य कर्म	लोगोंको कर्म
कुर्वतः वीक्षिता	करते हुए देखते हैं
वा अपि समः	फिर भी समभावसे
शेषे तत्	पड़े हैं इसका कारण क्या है ॥१८॥

नारद उवाच—

स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः ।
स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयन्त्रितः ॥१९॥

स इत्थं दैत्य पतिना परिपृष्टः महामुनिः स्मयमानः तं अभ्याह तत् वाक् अमृत यन्त्रितः ॥१९॥

इत्थं दैत्य पतिना	इस प्रकार दैत्यराज प्रह्लाद द्वारा
परिपृष्टः	पूछे जानेपर

तत् वाक् अमृत	उनकी अमृतमयी वाणीसे	**महामुनिः**	महामुनि
यन्त्रितः स	प्रेरित होकर वे	**स्मयमानः**	मुस्कराते हुए
		तं अभ्याह	उनसे बोले ॥१९॥

ब्रह्मणउवाच–

वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान् नन्वार्यसम्मतः ।
ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥२०॥

वेद इदं असुरश्रेष्ठ भवान् ननु आर्यसम्मतः ईहा उपरमः यः नृणां पदानि अध्यात्म चक्षुषा ॥२०॥

असुरश्रेष्ठ	असुरोत्तम !	**नृणां ईहा**	मनुष्योंकी काम-
ननु भवान्	निश्चय तुम		नाओंकी
आर्यसम्मतः	श्रेष्ठ पुरुषोंसे सम्मानित हो	**पदानि उपरमः**	स्थिति और उनसे उपरामता
यः	जो	**इदं वेद**	इसे (स्वयं) जानते
अध्यात्म	आध्यात्मिक		हो ॥२०॥
चक्षुषा	दृष्टिसे		

यस्य नारायणो देवो भगवान्हृद्गतः सदा ।
भक्त्या केवलयाज्ञानं धुनोति ध्वान्तमर्कवत् ॥२१॥

यस्य नारायणः देवः भगवान् हृद्गतः सदा भक्त्या केवलया अज्ञानं धुनोति ध्वान्तं अर्कवत् ॥२१॥

यस्य केवलया	जिनकी अनन्य	**ध्वान्तं अर्कवत्**	अन्धकारको सूर्यके
भक्त्या	भक्तिसे		समान
सदा हृद्गतः	सदा हृदयमें विराजमान	**अज्ञानं धुनोति**	अज्ञानको नष्ट करते रहते हैं ॥२१॥
देवः नारायणः	भगवान् नारायण		

अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन्यथाश्रुतम् ।
सम्भावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम् ॥२२॥

अथ अपि ब्रूमहे प्रश्नात् तव राजन् यथा श्रुतं सम्भावनीयः हि भवान् आत्मनः शुद्धिं इच्छताम् ॥२२॥

राजन्	राजन् !	**ब्रूमहे**	दूंगा ।
अथ अपि	फिर भी	**हि भवान्**	क्योंकि तुम
तव प्रश्नात्	तुम्हारे प्रश्नोंका (उत्तर)	**आत्मनः शुद्धिं**	अपने चित्तकी शुद्धि
		इच्छतां	चाहने वालोंके लिए
यथा श्रुतं	जैसा मैंने सुना है	**सम्भावनीयः**	आदरणीय हो ॥२२॥

तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया ।
कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः ॥२३॥

तृष्णया भव वाहिन्या योग्यैः कामैः अपूरया कर्माणि कार्यमाणः अहं नाना योनिषु योजितः ॥२३॥

योग्यैः कामैः	भरपूर भोगोंसे भी	**तृष्णया**	तृष्णाके द्वारा
अपूरया	पूरी (तृप्त) न होनेवाली	**अहं कार्यमाणः**	मैं कराया जाता हुआ
भव वाहिन्या	संसार-प्रवाहको चलानेवाली	**नाना योनिषु**	अनेक योनियोंमें
		योजितः	डाला गया ॥ ३।

यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् ।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥२४॥

यदृच्छया लोकं इमं प्रापितः कर्मभिः भ्रमन् स्वर्ग अपवर्गयोः द्वारं तिरश्चां पुनः अस्य च ॥२४॥

कर्मभिः भ्रमन्	कर्मोंके कारण भटकता हुआ	**पुनः अस्य**	फिर इसी (योनि) के
		द्वारं इमं	द्वार इस
यदृच्छया	संयोगवश	**लोकं प्रापितः**	(मनुष्य) लोकमें पहुँचा ॥२४॥
स्वर्ग अपवर्गयोः	स्वर्ग मोक्ष		
तिरश्चां च	पशु-पक्षी आदि तथा		

अत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये ।
कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥२५॥

अत्र अपि दम्पतीनां च सुखाय अन्य अपनुत्तये कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तः अस्मि विपर्ययम् ॥२५॥

अत्र अपि	यहां भी	**कर्माणि कुर्वतां**	कर्म करते हुए
दम्पतीनां	दम्पतियोंका	**विपर्ययं दृष्ट्वा**	उलटा फल होते देखकर
सुखाय च	सुखपानेके लिए तथा	**निवृत्तः अस्मि**	मैं (कर्मसे) निवृत्त हो गया हूँ ॥२५॥
अन्य अपनुत्तये	दूसरे (दुःख) को दूर करनेके लिए		

सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः ।
मनः संस्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन् ॥२६॥

सुखं अस्य आत्मनः रूपं सर्व ईहा उपरतिः तनुः मनः संस्पर्श जान् दृष्ट्वा भोगान् स्वप्स्यामि संविशन् ॥२६॥

सुखं अस्य	सुख तो इस	**मनः संस्पर्श**	मनके संस्पर्श (कल्पना) से
आत्मनः रूपं	आत्माका स्वरूप है	**जान्**	उत्पन्न
सर्व ईहा	सब चेष्टाओंसे	**दृष्ट्वा संविशन्**	देखकर चुपचाप बैठाया
उपरतिः तनुः	उपरामता (उसका) शरीर है,	**स्वप्स्यामि**	सोता (पड़ा) रहता हूँ ॥२६॥
भोगान्	भोगोंको		

इत्येतदात्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान् ।
विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम् ॥२७॥

इति एतत् आत्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान् विचित्रां असति द्वैते घोरां आप्नोति संसृतिम् ॥२७॥

इति एतत्	इस प्रकारके इस	वै विस्मृत्य	निश्चय इसे भूलकर
आत्मनः स्वार्थं	अपने (सच्चे) स्वार्थके	द्वैते असति	द्वैतके न होनेपर भी
सन्तं पुमान्	सुलभ होनेपर भी पुरुष	विचित्रां घोरां संसृतिं आप्नोति	विचित्र और घोर जन्म-मृत्युका क्रम पाता है ॥२७॥

जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाज्ञो जलकाम्यया ।
मृगतृष्णामुपाधावेद् यथान्यत्रार्थदृक् स्वतः ॥२८॥

जलं तत् उद्भवैः छन्नं हित्वा अज्ञः जल काम्यया मृगतृष्णां उपाधावेत् यथा अन्यत्र अर्थदृक् स्वतः । २८॥

यथा अज्ञः	जैसे (कोई) अज्ञानी	मृगतृष्णां	मृग-तृष्णाकी ओर
तत् उद्भवैः	उसीसे उत्पन्न (कोई आदि) से	उपाधावेत्	दौड़े
छन्नं जलं	ढके जलको	स्वतः अन्यत्र	अपनेसे पृथक
हित्वा जल	छोड़कर जलकी	अर्थदृक्	स्वार्थ देखनेवाला (वैसा ही है ।) ॥२८॥
काम्यया	इच्छासे		

देहादिभिर्दैवतन्त्रैरात्मनः सुखमीहतः ।
दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः ॥२९॥

देवादिभिः दैवतन्त्रैः आत्मनः सुखं ईहतः दुःख अत्ययं च अनीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः ॥२९॥

दैवतन्त्रैः	प्रारब्धाधीन	ईहतः क्रिया	चाहते हुए किये गये कर्म
अनीशस्य	असमर्थ द्वारा		
देवादिभिः	इन्द्रियादिसे	कृताः कृताः	बार-बार करनेपर भी
आत्मनः सुखं	अपने लिए सुख		
च दुःख अत्ययं	तथा दुःख दूर करना	मोघाः	व्यर्थ हो जाते हैं ॥२९॥

आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित् ।
मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥३०॥

आध्यात्मिक आदिभिः दुःखैः अविमुक्तस्य कर्हिचित् मर्त्यस्य कृच्छ्र उपनतैः अर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥३०॥

आध्यात्मिक	आध्यात्मिक	**कर्हिचित्**	किसी समय
आदिभिः	आदि	**कृच्छ्र उपनतैः**	कष्टसे पाये गये
दुःखैः	दुःखोंसे	**अर्थैः कामैः**	धन और भोगोंका
अविमुक्तस्य	बिना छूटे	**क्रियेतकिं**	करना भी क्या है
मर्त्यस्य	मरणधर्माको		॥३०॥

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ।
भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ॥३१॥

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानां अजित आत्मनां भयात् अलब्ध निद्राणां सर्वतः अभिविशङ्किनाम् ॥३१॥

लुब्धानां	लोभी,	**अभिविशङ्किनां**	सभीके प्रति शङ्कित रहनेवाले,
अजित आत्मनां	अजितेन्द्रिय	**धनिनां क्लेशं**	धनियोंका कष्ट
भयात्	भयके कारण	**पश्यामि**	देखता हूँ ॥३१॥
अलब्ध निद्राणां	निद्रा न पानेवाले,		
सर्वतः	सब ओरसे		

राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः ।
अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ॥३२॥

राजतः चोरतः शत्रोः स्वजनात् पशु पक्षितः अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मात् नित्यं प्राण अर्थवत् भयम् ॥३२॥

प्राण अर्थवत्	प्राणके समान धन मानने वालोंके लिए	**शत्रोः स्वजनात्**	शत्रुओंसे, स्वजनोंसे
		पशु पक्षितः	पशु-पक्षियोंसे,
राजतः चोरतः	शासकसे, चोरोंसे,	**अर्थिभ्यः**	याचकोंसे,

कालतः	समय परिवर्तनसे	नित्यं भयं	सदा ही भय है
स्वस्मात्	अपनेसे भी		॥३२॥

शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः ।
यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात् स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ॥३३॥

शोक मोह भय क्रोध राग क्लैब्य श्रम आदयः यत् मूलाः स्युः नृणां जह्यात् स्पृहां प्राण अर्थयोः बुधः ॥३३॥

यत् मूलाः	जिसकी जड़से	नृणां स्युः	मनुष्यको होते हैं,
शोक मोह	शोक मोह,	बुधः प्राण	बुद्धिमान उस
भय क्रोध	भय, क्रोध,		जीवन और
राग क्लैब्य	राग, कायरता,	अर्थयोः	धनकी
श्रम आदयः	श्रम आदि	स्पृहां जह्यात्	स्पृहा त्याग दे ॥३३॥

मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्मे गुरूत्तमौ ।
वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥३४॥

मधुकार महासर्प लोके अस्मिन् गुरु उत्तमौ वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यत् शिक्षया वयं ॥३४॥

अस्मिन् लोके	इस लोकमें	यत् शिक्षया वयं	जिनकी शिक्षासे मैंने।
मधुकार	मधुमक्खी और	वैराग्यं च	वैराग्य और
महासर्प	अजगर	परितोषं	सन्तोष
गुरु उत्तमौ	(मेरे) श्रेष्ठ गुरु हैं,	प्राप्ता	पाया है ॥३४॥

विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् ।
कृच्छ्राप्तं मधुवद् वित्तं हत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥३५॥

विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितः मे मधुव्रतात् कृच्छ्र आप्तं मधुवत् वित्तं हत्वा अपि अन्यः हरेत् पतिम् ॥३५॥

सर्वकामेभ्यः	सब भोगोंसे	पतिं हत्वा अपि	स्वामीको मारकर भी
विरागः मे	वैराग्य मैंने	अन्यः हरेत्	दूसरे छीन लेते हैं ॥३५॥
मधुव्रतात्	मधुमक्खीसे		
शिक्षितः	सीखा है		
मधुवत् वित्तं	शहदकी भांति धनको		

अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् ।
नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान् ॥३६॥

अनीहः परितुष्ट आत्मा यदृच्छया उपनतात् अहं नो चेत् शये बहु अहानि महा अहिः इव सत्त्ववान् ॥३६॥

यदृच्छया	संयोगवश	महा अहिः इव	अजगरके समान
उपनतात् अहं	प्राप्त हुएसे मैं	सत्त्ववान्	धैर्य पूर्वक
परितुष्ट आत्मा	सन्तुष्ट चित्त रहता हूँ,	बहु अहानि	बहुत दिनों तक
		अनीहः	बिना चेष्टा,
चेत् नो	यदि कुछ न मिले,	शये	पड़ा रहता हूँ ॥३६॥

क्वचिदल्पं क्वचिद् भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा ।
क्वचिद् भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित् ॥३७॥

क्वचित् अल्पं क्वचित् भूरि भुञ्जे अन्नं स्वादु अस्वादु वा क्वचित् भूरि गुण उपेतं गुणहीनं उत क्वचित् ॥३७॥

क्वचित् अल्पं	कभी थोड़ा,	गुणहीनं	गुण रहित
क्वचित् भूरि	कभी बहुत,	स्वादु वा	स्वादिष्ट अथवा
क्वचित् भूरि	कभी बहुत	अस्वादु	स्वादहीन
गुण उपेतं	गुण युक्त	अन्नं भुञ्जे	आहार खा लेता हूँ ॥३७॥
उत क्वचित्	या कभी		

श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम् ।
भुञ्जे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद् दिवा नक्तं यदृच्छया ॥३८॥

श्रद्धया उपाहृतं क्वापि कदाचित् मान वर्जितं भुञ्जे भुक्त्वा अथ कस्मिन् चित् दिवा नक्तं यदृच्छया ॥३८॥

क्वापि श्रद्धया	कभी श्रद्धापूर्वक
उपाहृतं	लाया हुआ
कदाचित्	तथा कभी
मान वर्जितं	कभी अपमानके साथ,
कस्मिन् चित्	कभी तो
यदृच्छया	संयोगवश प्राप्त
दिवा नक्तं	दिन या रातको
भुक्त्वा अथ	भोजन करनेपर भी (दुबारा कभी)
भुञ्जे	खा लेता हूँ ॥३८॥

क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा ।
वसेऽन्यदपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम् ॥३९॥

क्षौमं दुकूलं अजिनं चीरं वल्कलं एव वा वसे अन्यत् अपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्ट धीः अहम् ॥३९॥

दिष्टभुक्	प्रारब्ध भोगता
अहं तुष्ट धीः	मैं सन्तुष्ट बुद्धि
क्षौमं दुकूलं	रेशमी या सूती वस्त्र,
अजिनं चीरं	मृग-चर्म, चिथड़े,
वल्कलं एव	छाल हो
वा अन्यत् अपि	अथवा दूसरा कुछ भी
सम्प्राप्तं वसे	मिलनेपर पहिन लेता हूँ ॥३९॥

क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु ।
क्वचित् प्रासादपर्यङ्के कशिपौ वा परेच्छया ॥४०॥

क्वचित् शये धरा उपस्थे तृण पर्ण अश्म भस्मसु क्वचित् प्रासाद पर्यङ्के कशिपौ वा पर इच्छया ॥४०॥

क्वचित् धरा	कभी पृथ्वीके
उपस्थे	ऊपर
तृण पर्ण अश्म	तिनके, पत्ते, पत्थर
भस्मसु वा	भस्ममें अथवा
पर इच्छया	दूसरोंकी इच्छाएँ
प्रासाद पर्यङ्के	महलमें पलंगपर
क्वचित् कशिपौ	कभी गद्दे पर
शये	सोता हूँ ॥४०॥

क्वचित् स्नातोऽनुलिप्ताङ्गः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ।
रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद् विभो ॥४१॥

क्वचित् स्नातः अनुलिप्त अङ्गः सुवासाः स्रक् अलंकृतः रथ इभ अश्वैः चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवत् विभो ॥४१॥

विभो	दैत्यराज !
क्वचित् स्नातः	कभी स्नान करके
अनुलिप्त अङ्गः	शरीरमें अंगराग लगाकर
सुवासाः स्रक् अलङ्कृतः	उत्तम वस्त्र, माला, आभूषण पहिनकर
रथ इभ अश्वैः	रथ, हाथी या घोड़े-पर
चरे क्वापि	विचरण करता हूँ और कभी
ग्रहवत्	पिशाचकी भांति
दिग्वासा	दिगम्बर (घूमता हूँ) ॥४१॥

नाहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् ।
एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥४२॥

न अहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावं विषमं जनं एतेषां श्रेय आशासे उत ऐकात्म्यं महात्मनि ॥४२॥

जनं स्वभावं विषमं	मनुष्य स्वभावसे भिन्न प्रकारके (होते ही हैं,)
अहं न निन्दे	मैं न (उनकी) निन्दा करता,
च न स्तौमि	और न प्रशंसा करता
एतेषां श्रेय	इन सबका कल्याण
उत महात्मनि	अथवा परमात्मासे
ऐकात्म्यं	एकात्मता
आशासे	चाहता हूँ ॥४२॥

विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे ।
मनो वैकारिके हुत्वा तन्मायायां जुहोत्यनु ॥४३॥

विकल्पं जुहुयात् चित्तौ तां मनसि अर्थ विभ्रमे मनः वैकारिके हुत्वा तत् मायायां जुहुयात् अनु ॥४३॥

विकल्पं	भेद प्रतीतिको	मनसि	मनमें
चित्तौ जुहुयात्	चित्तवृत्तिमें हवन कर दे,	मनः वैकारिके	मनको सात्त्विक अहंकारमें
तां	उन (वृत्तियों) को	हुत्वा अनु	हवन करके पीछे
अर्थं विभ्रमे	पदार्थोंके विषयमें भ्रम उत्पन्न करनेवाले	तत् मायायां	उसे मायामें
		जहुयात्	हवन कर दे ॥४३॥

आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात् सत्यदृङ्मुनिः ।
ततो निरीहो विरमेत् स्वानुभूत्याऽऽत्मनि स्थितः ॥४४॥

आत्म अनुभूतौ तां मायां जुहुयात् सत्यदृक् मुनिः ततः निरीहः विरमेत् स्वअनुभूत्या आत्मनि स्थितः ॥४४॥

सत्यदृक् मुनिः	सत्यद्रष्टा मुनि	स्वअनुभूत्या	आत्मानुभव करके
तां मायां	उस मायाको	आत्मनि स्थितः	आत्मामें स्थित
आत्म अनुभूतौ	आत्मानुभवमें	निरीहः विरमेत्	चेष्टाहीन उपरत हो जाय ॥४४॥
जुहुयात्	हवन कर दे,		
ततः	तब		

स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ।
व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत्परः ॥४५॥

स्व आत्मवृत्तं मया इत्थं ते सुगुप्तं अपि वर्णितं व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत् परः ॥४५॥

हि भवान्	क्योंकि तुम	अपि	भी
भगवत् परः	भगवान्के परायण हो	स्व आत्मवृत्तं	अपने आचरणका रहस्य
लोक-	लोकाचार और	इत्थं ते	इस प्रकार तुमसे
शास्त्राभ्यां	शास्त्रसे	मया वर्णितं	मैंने बतला दिया ॥४५॥
व्यपेतं सुगुप्तं	परे अत्यन्त छिपा होनेपर		

नारद उवाच—

धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वासुरेश्वरः ।
पूजयित्वा ततः प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥४६॥

धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वा असुरेश्वरः पूजयित्वा ततः प्रीतः आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥४६॥

असुरेश्वरः	दैत्यराज प्रह्लादने	**ततः पूजयित्वा**	तब उनकी पूजा करके
वै मुनेः	निश्चय मुनियोंको	**आमन्त्र्य**	अनुमति लेकर
पारमहंस्यं	परमहंस	**प्रीतः गृहं प्रययौ**	प्रसन्न होकर घर लौट गये ॥४६॥
धर्मं श्रुत्वा	धर्म सुनकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे यतिधर्मे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

युधिष्ठिर उवाच–

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा ।
याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥१॥

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन च अञ्जसा याति देवऋषे ब्रूहि मादृशः गृहमूढधीः ॥१॥

देवऋषे	देवर्षि !	**येन विधिना च**	जिस विधिसे तो
मादृशः	मेरे जैसा	**अञ्जसा याति**	सरलतापूर्वक पाता है
गृहमूढधीः	गृहमें मूढ बुद्धि	**ब्रूहि**	(वह) बतलाइये ॥१॥
गृहस्थ एतां	गृहस्थ इस (परमहंस)		
पदवीं	पदको		

नारद उवाच–

गृहेष्ववस्थितो राजन्क्रियाः कुर्वन्गृहोचिताः ।
वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥२॥

गृहेषु अवस्थितः राजन् क्रियाः कुर्वन् गृह उचिताः वासुदेव अर्पणं साक्षात् उपासीत महामुनीन् ॥२॥

राजन्	राजन् !	**कुर्वन्**	करते हुए
गृहेषु अवस्थितः	घरमें रहता हुआ	**साक्षात्**	प्रत्यक्ष (जीवित)
गृह उचिताः	गृहस्थ धर्मोचित	**महामुनीन्**	महात्माओंकी
क्रियाः	कर्म	**उपासीत**	सेवा-पूजा करे ॥२॥
वासुदेव अर्पणं	भगवान् वासुदेवको अर्पित		

शृण्वन्भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथामृतम् ।
श्रद्दधानो यथाकालमुपशान्तजनावृतः ॥३॥

शृण्वन् भगवतः अभीक्ष्णं अवतार कथा अमृतं श्रद्दधानः यथा कालं उपशान्त जन आवृतः ॥३॥

यथा काल	समयानुसार	**भगवतः**	भगवान्की
श्रद्दधानः	श्रद्धा सहित	**अवतार कथा**	अवतार कथा-
उपशान्त जन	शान्त लोगोंके	**अमृतं**	सुधा
आवृतः	साथ	**शृण्वन्**	सुनता रहे ॥३॥
अभीक्ष्णं	बार-बार		

सत्सङ्गाच्छनकैः सङ्गमात्मजायात्मजादिषु ।
विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥४॥

सत्सङ्गात् शनकैः सङ्गं आत्म जाया आत्मज आदिषु विमुच्येत् मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवत् उत्थितः ॥४॥

उत्थितः	जागनेपर	**सङ्गं स्वयं**	आसक्ति स्वयं
स्वप्नवत्	स्वप्नके समान	**सत्सङ्गात्**	सत्संगके द्वारा
मुच्यमानेषु	छोड़ ही देनेवाले	**शनकैः**	धीरे-धीरे
आत्म जाया	शरीर, पत्नी,	**विमुच्येत्**	छोड़ दे ॥४॥
आत्मज जादिषु	पुत्रादिमें		

यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पण्डितः ।
विरक्तो रक्तवत् तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥५॥

यावत् अर्थं उपासीनः देहे गेहे च पण्डितः विरक्तः रक्तवत् तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥५॥

पण्डितः यावत्	बुद्धिमान व्यक्ति	**देहे च गेहे**	शरीर और घरकी
अर्थं	प्रयोजन मात्र	**उपासीनः**	सेवा करे,

तत्र विरक्तः	इनसे विरक्त रहकर	नरतां न्यसेत्	मनुष्योचित व्यवहार
नृलोके	मानव समाजमें		करे ॥५॥
रक्तवत्	आसक्तकी भांति		

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे ।
यद् वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥६॥

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदः अपरे यत् वदन्ति यत् इच्छन्ति च अनुमोदेत निर्ममः ॥६॥

ज्ञातयः पितरौ	जातिके लोग, माता-पिता,	च यत् इच्छन्ति	और जो चाहते हैं,
पुत्रा भ्रातरः	पुत्र, भाई,	निर्ममः	ममताहीन होकर
अपरे सुहृदः	दूसरे सबन्धी मित्र	अनुमोदेत	उसका समर्थन करे ॥६॥
यत् वदन्ति	जो कहते हैं,		

दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् ।
तत् सर्वमुपभुञ्जान एतत् कुर्यात् स्वतो बुधः ॥७॥

दिव्यं भौमं च अन्तरिक्षं वित्तं अच्युत निर्मितं तत् सर्वं उपभुञ्जान एतत् कुर्यात् स्वतः बुधः ॥७॥

दिव्यं	(वर्षादि) दैवी कृपासे प्राप्त,		बनाया है,
भौमं	पृथ्वी (खान आदि) से मिले,	बुधः तत् सर्वं	बुद्धिमान उस सबका
च अन्तरिक्षं	तथा आकाशसे (वरदान आदि रूपसे) प्राप्त	उपभुञ्जानः	उपभोग करता हुआ
		स्वतः	स्वयं (बिना किसीके कहे)
वित्तं	(सब) धन	एतत् कुर्यात्	एतत् (यह कथा, साधु-सेवादि) करे ॥७॥
अच्युत निर्मितं	भगवान्‌का ही		

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥८॥

यावत् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनां अधिकं यः अभिमन्येत स स्तेनः दण्डं अर्हति ॥८॥

यावत् जठरं	जितनेसे पेट	**यः अधिकं**	जो अधिकको
भ्रियेत	भर जाय	**अभिमन्येत**	अपना मानता है,
तावत् देहिनां	उतने तक शरीर धारियोंका	**स स्तेनः**	वह चोर है
		दण्डं अर्हति	दण्ड पाने योग्य है ॥८॥
स्वत्वं	अधिकार है,		
हि	क्योंकि		

मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृत्खगमक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत्तैरेषामन्तरं कियत् ॥९॥

मृग उष्ट्र खर मर्क आखु सरीसृप् खग मक्षिकाः आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैः एषां अन्तरं कियत् ॥९॥

मृग उष्ट्र	हिरण, ऊँट,	**पश्येत्**	देखे
खर मर्क	गधे, बन्दर,	**तैः एषां**	उनमें और इन (पुत्रों) में
आखु सरीसृप्	चूहे, सर्पादि,	**अन्तरं कियत्**	अन्तर ही क्या है ॥९॥
खग मक्षिकाः	पक्षी, मक्खियोंको		
आत्मनः पुत्रवत्	अपने पुत्रोंके समान		

त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि ।
यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥१०॥

त्रिवर्गं न अति कृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्य अपि यथा देशं यथा कालं यावत् दैव उपपादितम् ॥१०॥

गृहमेध्य अपि	गृहस्थ होनेपर भी	**अति कृच्छ्रेण**	बहुत कष्ट उठाकर
त्रिवर्गं	अर्थ, धर्म कामका	**भजेत न**	सेवन न करे

यथा देशं	देशके अनुसार,	**उपपादितं**	जो प्राप्त हो जाय
यथा कालं	समयके अनुसार,		(उसीसे सन्तोष करे
यथा दैव	प्रारब्धके अनुसार		॥१०॥

आश्वाघान्तेऽवसायिभ्यः कामान्संविभजेद् यथा ।
अप्येकामात्मनो दारां नृणां सत्वग्रहो यतः ॥११॥

आश्व अघ अन्ते अवसायिभ्यः कामान् संविभजेत् यथा अपि एकात्मनः दारां नृणां सत्व ग्रहः यतः ॥११॥

कामान्	भोग पदार्थोंको	**सत्व ग्रहः**	अधिकार प्राप्त है
आश्व अघ	कुत्ते, पतित,	**एकात्मनः**	उस अभिन्न चित्त
	चाण्डाल पर्यन्त	**दारां अपि**	स्त्रीको भी (दूसरों-
यथासंविभजेत्	(सब प्राणियोंको)		की सेवामें लगावे)
	यथा योग्य बांटे		॥११॥
नृणां यतः	मनुष्यको जिसपर		

जह्याद् यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद् वा पितरं गुरुम् ।
तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः ॥१२॥

जह्यात् यत् अर्थे स्व प्राणान् हन्यात् वा पितरं गुरुं तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्यात् यः तेन हि अजितः जितः ॥१२॥

यत् अर्थे	जिसके लिए	**स्त्रियां यः**	स्त्रीको जो
स्व प्राणान्	अपने प्राण	**जह्यात् तेन**	त्याग सके उसके
जह्यात्	त्याग देता है		द्वारा
वा पितरं	अथवा माता-पिता,	**अजितः जितः**	अजित भगवान् भी
गुरुं हन्यात्	या गुरुको मार देता		जीत लिए जाते हैं
	है		॥१२॥
मस्यां स्वत्वं	उस अपने अधिकार		
	रूपा		

कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तं क्वेदं तुच्छं कलेवरम् ।
क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः ॥१३॥

कृमि विट् भस्मनिष्ठा अन्तं क्व इदं तुच्छं कलेवरं क्व तदीय रतिः भार्या क्वायं आत्मा नभः छदिः ॥१३॥

अन्तं	अन्तमें	**भार्या रतिः**	पत्नीसे प्रीति और
कृमि विट्	कीड़े, विष्ठा या	**क्व इदं**	कहां यह
भस्मनिष्ठा	भस्म हो जानेवाला	**नभः**	आकाशको भी
क्व इदं	कहां यह	**छदिः आत्मा**	ढक लेनेवाला
तुच्छं कलेवरं	तुच्छ शरीर,		आत्मा ॥१३॥
क्व तदीय	कहां उसी (शरीर) की		

सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद् वृत्तिमात्मनः ।
शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात् ॥१४॥

सिद्धैः यज्ञ अवशिष्ट अर्थैः कल्पयेत् वृत्तिं आत्मनः शेषे स्वत्वं त्यजन् प्राज्ञः पदवीं महतां इयात् ॥१४॥

सिद्धैः	प्रारब्ध प्राप्त	**प्राज्ञः शेषे**	प्रज्ञावान् बचे
यज्ञ अवशिष्ट	पञ्चमहायज्ञादिसे बचे		(पदार्थ) पर
		स्वत्वं त्यजन्	अपना अधिकार
अर्थैः	धनसे		छोड़कर
आत्मनः वृत्तिं	अपनी जीविका	**महतां पदवीं**	महापुरुषोंका पद
कल्पयेत्	चलावे	**इयात्**	प्राप्त कर लेता है ॥१४॥

देवानृषीन् नृभूतानि पितॄनात्मानमन्वहम् ।
स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥१५॥

देवान् ऋषीन् नृ भूतानि पितॄन् आत्मानं अनु अहं स्व वृत्त्या त्याग वित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥१५॥

स्ववृत्त्या	अपनी (वर्ण-आश्रम विहिता) वृत्तिसे (प्राप्त)	नृ भूतानि	मनुष्य (अतिथि) अन्य प्राणी,
वित्तेन त्याग	धनसे त्याग पूर्वक	पितृन्	पितर और
अनु अहं	प्रतिदिन	आत्मानं	अपनी (पूजा)
देवान् ऋषीन्	देवता, ऋषि,	पृथक् पुरुषं	भिन्न-भिन्न रूपमें परमपुरुषकी पूजा है ॥१५॥

यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसम्पदः ।
वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ॥१६॥

यर्हि आत्मनः अधिकार आद्याः सर्वाः स्युः यज्ञ सम्पदः वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्र आदिना यजेत् ॥१६॥

यर्हि आत्मनः	यदि अपना	वैतानिकेन	महायज्ञोंके
अधिकार	अधिकार	विधिना	विधानसे
आद्याः	आदि	अग्निहोत्र	हवन आदि
सर्वाः यज्ञ	सब यज्ञके लिए	आदिना	करके
सम्पदः	आवश्यक धनादि हो तो	यजेत्	(भगवान्का) यजन करे ॥१६॥

न ह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान्सर्वयज्ञभुक् ।
इज्येत हविषा राजन्यथा विप्रमुखे हुतैः ॥१७॥

न हि अग्नि मुखतः अयं वै भगवान् सर्वयज्ञभुक् इज्यते हविषा राजन् यथा विप्रमुखे हुतैः ॥१७॥

राजन्	राजन् !	न इज्यते	नहीं आराधित होते,
वै अयं	निश्चय ये	यथा विप्रमुखे	जैसा ब्राह्मणके मुखमें
सर्वयज्ञभुक्	सर्व यज्ञ भोक्ता		
भगवान् हि	भगवान् क्योंकि	हुतैः	आहुति (आहार) देनेसे ॥१७॥
अग्नि मुखतः	अग्नि रूपी मुखमें		
हविषा	हविष्यसे वैसे		

तस्माद् ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः ।
तैस्तैः कामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु ॥१८॥

तस्मात् ब्राह्मण देवेषु मर्त्यादिषु यथा अर्हतः तैः तैः कामैः यजस्व एनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणा ननु ॥१८॥

तस्मात्	इसलिए	**तैः तैः कामैः**	उन-उन भोगों द्वारा
ब्राह्मण देवेषु	ब्राह्मणों, देवताओं,	**एनं यजस्व**	इनकी आराधना करो
मर्त्य आदिषु	मनुष्यादिकोंकी		
यथा अर्हतः	जो जिस, क्रमसे पूज्य हैं	**ननु क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणा**	निश्चय इनमें प्रधान ब्राह्मण हैं ॥१८॥

कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः ।
श्राद्धं पित्रोर्यथावित्तं तद्बन्धूनां च वित्तवान् ॥१९॥

कुर्यात् अपर पक्षीयं मासि प्रौष्ठ पदे द्विजः श्राद्धं पित्रोः यथा वित्तं तद् बन्धूनां च वित्तवान् ॥१९॥

वित्तवान् द्विजः	धनवान द्विजाति	**पित्रोः**	माता-पिताका
यथा वित्तं	अपने धनके अनुसार	**च तद् बन्धूनां**	और उनके बन्धु बान्धवोंका
प्रौष्ठ पदे मासि	आश्विन मासमें		
अपर पक्षीयं	कृष्णपक्षमें (महालयमें)	**श्राद्धं कुर्यात्**	श्राद्ध करे ॥१९॥

अयने विषुवे कुर्याद् व्यतीपाते दिनक्षये ।
चन्द्रादित्योपरागे च द्वादशीश्रवणेषु च ॥२०॥

अयने बिषुवे कुर्यात् व्यतीपाते दिनक्षये चन्द्र आदित्य उपरागे च द्वादशी श्रवणेषु च ॥२०॥

अयने	(कर्क एवं मकर संक्रान्ति) अयन-परिवर्तनके समय,	**विषुवे**	(सूर्यके) विषुवत् रेखाके समय (तुला एवं मेषकी संक्रान्ति-पर)

व्यतीपाते	व्यतिपात योगमें	उपरागे	ग्रहण लगनेपर
दिनक्षये	तिथिक्षय होनेपर,	च द्वादशी	द्वादशी तिथिको,
चन्द्र आदित्य	चन्द्र-सूर्यको	श्रवणेषु	श्रवण नक्षत्रमें ॥२०॥

तृतीयायां शुक्लपक्षे नवम्यामथ कार्तिके ।
चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा ॥२१॥

तृतीयायां शुक्ल पक्षे नवम्यां अथ कार्तिके चतसृषु अपि अष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा ॥२१॥

शुक्ल	(वैशाख) शुक्ल	हेमन्ते तथा	हेमन्त तथा
पक्षे	पक्षकी	शिशिरे	शिशिर ऋतुकी
तृतीयायां	तृतीया (अक्षय तृतीया) को	चतसृषु	चारों (मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन) महीनोंकी
अथ कार्तिके	और कार्तिक (शुक्ल)	अष्टकासु अपि	अष्टमी तिथियोंको, भी ॥२१॥
नवम्यां	नवमीको		

माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे ।
राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि ॥२२॥

माघे च सित सप्तम्यां मघा राका समागमे राकया च अनुमत्या वा मास ऋक्षाणि युतानि अपि ॥२२॥

माघे च	माघ महीनेमें तो	अनुमत्या	चन्द्रमा पूर्ण हों या नहीं,
सित सप्तम्यां	शुक्ल पक्षकी सप्तमीको,	मास ऋक्षाणि	उस महीनेके नक्षत्र (जैसे ज्येष्ठका ज्येष्ठा)
मघा राका	जब पूर्णिमाको	युतानि अपि	से युक्त (पूर्णिमा) होनेपर भी ॥२२॥
समागमे	मघा नक्षत्र मिलता हो		
वा राकया	अथवा पूर्णिमाको		

द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्र उत्तराः ।
तिसृष्वेकादशी वाऽऽसु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् ॥२३॥

द्वादश्यां अनुराधा स्यात् श्रवणः तिस्र उत्तराः तिसृषु एकादशी वा आसु जन्म ऋक्ष श्रोण योग युक् ॥२३॥

द्वादश्यां	द्वादशी तिथिको	**वा एकादशी**	अथवा एकादशी तिथिका
अनुराधा श्रवणः	अनुराधा, श्रवण	**तिसृषु**	तीनों (उत्तरामें-से) किसीसे
तिस्र उत्तराः	तीनोंमें कोई उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा या उत्तर भाद्रपदा)	**आसु जन्म ऋक्ष**	अपने जन्म नक्षत्रसे या
		श्रोण योग युक्	श्रवण नक्षत्रसे योग होता हो ॥२३॥
स्यात्	होवे,		

ए एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः ।
कुर्यात् सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः ॥२४॥

त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयः विवर्धनाः कुर्यात् सर्व आत्मना एतेषु श्रेयः अमोघं तत् आयुषः ॥२४॥

एते त श्रेयसः	इतने ये सब कल्याणकारी	**सर्व आत्मना**	सम्पूर्ण चित्तसे
काला नृणां	समय मनुष्योंके	**श्रेयः कुर्यात्**	शुभ कर्म करे
श्रेयः विवर्धनाः	मंगलकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं;	**तत् आयुषं**	यही जीवनकी
		अमोघं	अव्यर्थता (सफलता) है ॥२४॥
एतेषु	इन (समयों) में		

एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्विजार्चनम् ।
पितृदेवनृभूतेभ्यो यद् दत्तं तद्धयनश्वरम् ॥२५॥

एषु स्नानं जपः होमः व्रतं देव द्विज अर्चनं पितृ देव नृ भूतेभ्यः यत् दत्तं तत् हि अनश्वरम् ॥२५॥

एषु हि	इन (समयों) में क्योंकि	पितृ देव नृ भूतेभ्यः	पितर, देवता, मनुष्य तथा दूसरे प्राणियोंको
स्नानं जपः	स्नान, जप,	यत् दत्तं	जो दिया जाता है
होमः व्रतं	हवन, व्रत,	तत् अनश्वरं	उसका फल अक्षय होता है ॥२५॥
देव द्विज अर्चनं	देवता-ब्राह्मणोंकी पूजा		

संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा ।
प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप ॥२६॥

संस्कारकालः जायाया याः अपत्यस्य आत्मनः तथा प्रेतसंस्था मृत अहः च कर्मणि अभ्युदये नृप ॥२६॥

नृप	राजन् !	मृत अहः	किसी (माता-पितादिकी) मरण तिथिको,
जायायाः	स्त्रीके (पुंसवनादि)	च अभ्युदये	तथा किसी उत्सव-मय
अपत्यस्य	पुत्रके (जात कर्म, यज्ञोपवीतादि)	कर्मणि	कर्मके समय (श्राद्ध, देव पूजादि करे) ॥२६॥
तथा आत्मनः	और अपने		
संस्कारकालः	संस्कारके समय		
प्रेतसंस्था	शवदाहके दिन,		

अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेयआवहान् ।
स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥२७॥

अथ देशान् प्रवक्ष्यामि धर्म आदि श्रेय आवहान् स वै पुण्यतमः देशः सत् पात्रं यत्र लभ्यते ॥२७॥

अथ धर्म आदि	अब धर्म आदि	वै स	निश्चय वह
श्रेय आवहन्	कल्याण धारक	पुण्यतमः देशः	पवित्रतम स्थान है
देशान्	स्थानोंको	यत्र सत् पात्रं	जहां सत्पात्र
प्रवक्ष्यामि	बतलाता हूँ	लभ्यते	मिलते हों ॥२७॥

विम्बं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम् ।
यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपोविद्यादयान्वितम् ॥२८॥

विम्बं भगवतः यत्र सर्वं एतत् चर अचरं यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपः विद्या दया अन्वितम् ॥२८॥

एतत्	जिनमें यह	**यत्र ह**	जहां कि
सर्वं चर अचरं	सब जंगम-स्थावर जगत है,	**तपः विद्या**	तपस्या, विद्या,
भगवतः विम्बं	उन भगवान्‌की मूर्ति	**दया अन्वितम्**	दया युक्त
यत्र	जहां है,	**ब्राह्मणकुलं**	ब्राह्मण-परिवार हैं ॥२८॥

यत्र यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम् ।
यत्र गङ्गादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥२९॥

यत्र यत्र हरेः अर्चा स देशः श्रेयसां पदं यत्र गङ्गा आदयः नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥२९॥

यत्र यत्र	जहां-जहां	**गङ्गा आदयः**	गङ्गा आदि
हरेः अर्चा	श्रीहरिकी पूजा होती हो	**नद्यः**	नदियाँ हों
		स देशः	वह स्थान
च पुराणेषु	तथा पुराणोंमें	**श्रेयसां पदं**	कल्याण धाम है
विश्रुताः	प्रसिद्ध		॥२९॥

सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत ।
कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः ॥३०॥

सरांसि पुष्कर आदीनि क्षेत्राणि अर्ह आश्रितानि उत कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलह आश्रमः ॥३०॥

पुष्कर आदीनि पुष्कर आदि । **सरांसि** सरोवर,

अर्हं आश्रितानि	पूज्य (ऋषियोंके)	गयशिरः	गया,
क्षेत्राणि	सेवित क्षेत्र,	प्रयागः	प्रयाग,
कुरुक्षेत्रं	कुरुक्षेत्र,	पुलह आश्रमः	पुलह आश्रम ॥३०॥

नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली ।
वाराणसी मधुपुरी पम्पा बिन्दुसरस्तथा ॥३१॥

नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासः अथ कुशस्थली वाराणसी मधुपुरी पम्पा विन्दुसरः तथा ॥३१॥

नैमिषं	नैमिषारण्य	मधुपुरी	मथुरा
फाल्गुनं	फाल्गुन क्षेत्र	पम्पा	पम्पा (हम्पी)
सेतुः	सेतुबन्ध (रामेश्वर)	तथा	तथा
प्रभासः	प्रभास (पोरबन्दर)	विन्दुसरः	विन्दु सरोवर (सिद्धपुर) ॥३१॥
अथ कुशस्थली	और द्वारिका		
वाराणसी	वाराणसी		

नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः ।
सर्वे कुलाचला राजन्महेन्द्रमलयादयः ॥३२॥

नारायण आश्रमः नन्दा सीताराम आश्रम आदयः सर्वे कुल अचला राजन् महेन्द्र मलय आदयः ॥३२॥

राजन्	राजन् !	महेन्द्र	महेन्द्र गिरि,
नारायण आश्रमः	बदरीनाथ,	मलय आदयः	मलय पर्वत आदि
नन्दा	नन्दा गिरि	सर्वे कुल अचला	सब कुल पर्वत ॥३२॥
सीताराम	सीतारामके		
आश्रम आदयः	आश्रम आदि (अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी)		

एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये ।
एतान्देशान् निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ।
धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥३३॥

एते पुण्यतमा देशा हरेः अर्चा आश्रिताः च ये एतान् देशान् निषेवेत श्रेयः कामः हि अभीक्ष्णशः धर्मः हि अत्र ईहितः पुंसां सहस्र अधि फल उदयः ॥३३॥

आश्रिताः ये	जहां हैं वे,	निषेवेत	सेवन करे
एते देशा	ये स्थान	हि	क्योंकि
पुण्यतमा	परम पवित्र हैं,	पुंसां	पुरुषों द्वारा
श्रेयः कामः	कल्याणेच्छु (पुरुष)	अत्र धर्मः	यहां धर्म
अभीक्ष्णशः	बार-बार	ईहितः	करनेपर
एतान् देशान्	इन स्थानोंका	सहस्र अधि	सहस्र गुना अधिक
हि	ही	फल उदयः	फल देता है ॥३३॥

पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ।
हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥३४॥

पात्रं तु अत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्र वित्तमैः हरिः एव एक उर्वीश यत् मयं वै चर अचरम् ॥३४॥

उर्वीश	भूपते !	वै	निश्चय है
अत्र	इस विषयमें	एक एव हरिः	एक मात्र श्रीहरि ही को
पात्र वित्तमैः	पात्रको समझने-वालोंमें श्रेष्ठोंने	पात्रं तु वै	पात्रके रूपमें निश्चय पूर्वक
यत् मयं	जिनका स्वरूप	निरुक्तं	निरूपण किया है ॥३४॥
चर अचरं	जगम-स्थावर (पूरा जंगत)		

देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु ।
राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाच्युतः ॥३५॥

देव ऋषि अर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्म आत्मज आदिषु राजन् यत् अग्रपूजायां मतःपात्र तया अच्युतः ॥३५॥

राजन्	राजन् ! (अभी तुम्हारे इसी यज्ञमें)	तत्र सत्सु	वहां रहते हुए
वै अर्हत्सु	निश्चित रूपसे पूजनीय	यत्	क्योंकि
देव ऋषि	देवता, ऋषि,	अग्रपूजायां	प्रथम पूजाके
ब्रह्म आत्मज	ब्रह्माके पुत्र (सनक)	पात्रतया	अधिकारीके रूपमें
आदिषु	आदिके	अच्युतः मतः	अच्युत श्रीकृष्ण माने गये ॥३५॥

जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो महान् ।
तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥३६॥

जीवराशिभिः आकीर्ण आण्डकोश अङ्घ्रिपः महान् तत् मूलत्वात् अच्युत ईज्या सर्वजीव आत्म तर्पणम् ॥३६॥

जीवराशिभिः	जीव-समूहोंसे	अच्युत ईज्या	भगवान् अच्युतकी पूजा
आकीर्ण	भरा हुआ		
आण्डकोश	यह ब्रह्माण्ड	सर्वजीव	सब जीवोंको
महान्	महा	आत्म	और अपनेको भी
अङ्घ्रियः	वृक्ष है	तर्पणं	तृप्त करनेवाली है ॥३६॥
तत् मूलत्वात्	उसकी जड़ होनेसे		

पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः ।
शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥३७॥

पुराणि अनेन सृष्टानि नृ तिर्यक् ऋषि देवताः शेते जीवेनरूपेण पुरेषु पुरुषः हि असौ ॥३७॥

अनेन	इन भगवान्ने	पुरेषु	उन पुरोंमें
नृ तिर्यक	मनुष्य, पशु-पक्षी,	जीवेनरूपेण	जीव रूपमें
ऋषि देवताः	ऋषि-देवतादि	शेते	सोते हैं
पुराणि सृष्टानि	पुरोंकी रचना करके	पुरुषः	(इसलिए इनका नाम) पुरुष है ॥३७॥
हि असौ	क्योंकि यही		

तेष्वेषु भगवान्राजंस्तारतम्येन वर्तते ।
तस्मात् पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥३८॥

तेषु एषु भगवान् राजन् तारतम्येन वर्तते तस्मात् पात्रं हि पुरुषः यावान् आत्मा यथा ईयते ॥३८॥

हि राजन्	क्योंकि राजन् !	**पात्रं पुरुषः**	मनुष्य पात्र है,
तेषु एषु	उन इन (पुरों) में	**आत्मा यावान्**	(उसमें भी) आत्मा-
भगवान्	भगवान्		का जितना
तारतम्येन	न्यूनाधिक रूपमें	**यथा ईयते**	जैसा प्रकाश है (वह
वर्तते	प्रकाशित होते हैं,		वैसा श्रेष्ठ है)
तस्मात्	इसलिए		॥३८॥

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप ।
त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥३९॥

दृष्ट्वा तेषां मिथः नृणां अवज्ञान् आत्मतां नृप त्रेता आदिषु हरेः अर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥३९॥

त्रेता आदिषु	त्रेता आदि युगोंमें	**कविभिः**	बुद्धिमानोंने
नृणां मिथः	मनुष्योंको परस्पर	**तेषां क्रियायै**	उनकी (उपासना)
आत्मतां	एक दूसरेका		क्रियाके लिए
अवज्ञान्	अपमान करते	**हरेः आर्चा कृता**	श्रीहरिकी मूर्ति
दृष्ट्वा	देखकर		प्रतिष्ठा की ॥३९॥

ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया ।
उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥४०॥

ततः अर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया उपासत उपास्ता अपि न अर्थदा पुरुष द्विषाम् ॥४०॥

ततः केचित्	तबसे कुछ लोग	**संश्रद्धाय**	श्रद्धा करके
अर्चायां	मूर्तिमें	**सपर्यया**	पूजा-सामग्रीसे

उपासत	पूजा करते हैं	अर्थदा न	प्रयोजन पूरा करने-
पुरुष द्विषां	(किन्तु) लोगोंसे द्वेष		वाली नहीं होता
	करनेवालोंको		॥४०॥
उपास्ता अपि	उपासना करनेपर		
	भी (मूर्ति)		

पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ।
तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥४१॥

पुरुषेषु अपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेः तनुम् ॥४१॥

राजेन्द्र	महाराज !	तुष्ट्या	संतोषसे
पुरुषेषु अपि	मनुष्योंमें भी	हरेः वेदं तनुम्	श्रीहरिके वेदमय
सुपात्रं ब्राह्मणं	उत्तम पात्र ब्राह्मण		शरीरको
विदुः	जाना गया है	धत्ते	धारण करता है
	(क्योंकि वह)		॥४१॥
तपसा विद्यया	तपस्या, विद्या,		

नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः ।
पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥४२॥

ननु अस्य ब्राह्मणा राजन् कृष्णस्य जगत् आत्मनः पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥४२॥

राजन्	राजन् !	पादरजसा	(वे) अपनी चरण-
ननु अस्य	निश्चय इन		रजसे
जगत् आत्मनः	विश्वात्मा	त्रिलोकीं पुनन्तः	तीनों लोकोंको
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		पवित्र करते हैं
ब्राह्मणा	ब्राह्मण		॥४२॥
महत् दैवतं	परमाराध्य हैं		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

नारद उवाच–

कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठा नृपापरे ।
स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥१॥

कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित् तपः निष्ठा नृप अपरे स्वाध्याये अन्ये प्रवचने ये केचित् ज्ञान योगयोः ॥१॥

नृप	राजन्	**प्रवचने**	प्रवचन करनेमें,
केचित् द्विजाः	कोई ब्राह्मण	**ये केचित्**	कुछ थोड़े
कर्मनिष्ठा	कर्ममें निष्ठा रखते हैं,	**ज्ञान योगयोः**	ज्ञान या योगमें
		निष्ठा	निष्ठा वाले होते हैं ॥१॥
अपरे तपः	दूसरे तपस्यामें,		
अन्ये स्वाध्याये	अन्य स्वाध्यायमें या		

ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता ।
दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्यो यथार्हतः ॥२॥

ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यानि आनन्त्यं इच्छता दैवे च तत् अभावे स्यात् इतरेभ्यः यथा अर्हतः ॥२॥

आनन्त्यं	अनन्त	**स्यात् तत्**	यदि वह न
इच्छता	फल चाहनेवालेको	**अभावे**	मिलता हो तो
कव्यानि	श्राद्धका भाग	**यथा अर्हतः**	पूज्योंके तारतम्यके अनुसार
दैवे च	देव-पूजनका भी (भाग)	**इतरेभ्यः**	दूसरोंको (देना चाहिए) ॥२॥
ज्ञाननिष्ठाय	ज्ञाननिष्ठको		
देयानि	देना चाहिए		

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥३॥

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीन् एक एक उभयत्र वा भोजयेत् सुसमृद्धः अपि श्राद्धे कुर्यात् न विस्तरम् ॥३॥

दैवे द्वौ	देव (कार्य) में दो तथा	भोजयेत्	भोजन करावे
पितृकार्ये त्रीन्	पितर-कार्यमें तीन	सुसमृद्धः अपि	बहुत सम्पन्न होने-पर भी
वा उभयत्र	अथवा दोनोंमें	श्राद्धे विस्तरं	श्राद्धमें विस्तार
एक एक	एक-एक (ब्राह्मणों-को)	न कुर्यात्	नहीं करे ॥३॥

देशकालोचितश्रद्धाद्रव्यपात्रार्हणानि च ।
सम्यग् भवन्ति नैतानि विस्तरात् स्वजनार्पणात् ॥४॥

देशकाल उचित श्रद्धा द्रव्य पात्र अर्हणानि च सम्यक् भवन्ति न एतानि विस्तरात् स्वजन अर्पणात् ॥४॥

विस्तरात्	विस्तार करनेसे तथा	पात्र च	पात्र तथा
स्वजन अर्पणात्	सगे-सम्बन्धियोंको देनेसे	अर्हणानि	पूजन आदि
देशकाल उचित	देशकालोचित	एतानि	ये सब
श्रद्धा द्रव्य	श्रद्धा, पदार्थ,	सम्यक् न	ठीक-ठीक नहीं
		भवन्ति	होते ॥४॥

देशे काले च सम्प्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् ।
श्रद्धया विधिवत् पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयम् ॥५॥

देशे काले च सम्प्राप्ते मुनि अन्नं हरि दैवतं श्रद्धया विधिवत् पात्रे न्यस्तं कामधुक् अक्षयम् ॥५॥

देशे च काले	देश और कालके	**पात्रे**	पात्रको
सम्प्राप्ते	प्राप्त होनेपर	**श्रद्धया**	श्रद्धा सहित
मुनि अन्नं	मुनियोंके भोजन योग्य आहार	**विधिवत् न्यस्तं**	विधिपूर्वक दिया हुआ
हरि दैवतं	श्रीहरिको इष्टदेव माननेवाले (वैष्णव)	**अक्षयं कामधुक्**	अक्षय अभीष्ट देने-वाला होता है ॥५॥

देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च ।
अन्नं संविभजन्पश्येत् सर्वं तत् पुरुषात्मकम् ॥६॥

देव ऋषि पितृ भूतेभ्यः आत्मने स्वजनाय च अन्नं संविभजन् पश्येत् सर्वं तत् पुरुष आत्मकम् ॥६॥

देव ऋषि	देवता, ऋषि,	**अन्नं संविभजन्**	आहार बांटते समय
पितृ भूतेभ्यः	पितर तथा प्राणियों-को	**तत् सर्वं**	उन सबको
		पुरुष आत्मकं	भगवत्स्वरूप
आत्मने	अपने आपको,	**पश्येत्**	देखे ॥६॥
च स्वजनाय	तथा सम्बन्धियोंको		

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद् धर्मतत्त्ववित् ।
मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥७॥

न दद्यात् आमिषं श्राद्धे न च अद्यात् धर्मतत्त्ववित् मुनि अन्नैः स्यात् परा प्रीतिः यथा न पशु हिंसया ॥७॥

धर्मतत्त्ववित्	धर्मके तत्त्वको जाननेवाला	**यथा परा**	जैसी परम
		प्रीतिः	प्रसन्नता
श्राद्धे आमिषं	श्राद्धमें मांस	**स्यात्**	होती है,
न दद्यात्	न देवे	**पशु हिंसया**	पशु-बधसे
च न अद्यात्	और न खावे,	**न**	नहीं होती ॥७॥
मुनि अन्नैः	हविष्यान्नसे		

नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ।
न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥८॥

न एतादृशः परः धर्मः नृणां सत् धर्मं इच्छतां न्यासः दण्डस्य भूतेषु मनः वाक् कायजस्य यः ॥८॥

भूतेषु	प्राणियोंको	सत् धर्मं	उत्तम धर्म
मनः वाक्	मन, वाणी,	इच्छतां	चाहनेवाले
कायजस्य	शरीर द्वारा दिये जानेवाले	नृणां	मनुष्योंके लिए
		एतादृशः परः	इसके समान परम
यः दण्डस्य	जो दण्डको	धर्मः	धर्म
न्यासः	छोड़ देता है	न	नहीं है ॥८॥

एके कर्ममयान् यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः ।
आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥९॥

एके कर्ममयान् यज्ञान् ज्ञानिनः यज्ञवित्तमाः आत्मसंयमने अनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥९॥

एके	कोई	अनीहा	निश्चेष्टता (रूप अग्निमें)
यज्ञवित्तमाः	यज्ञ-तत्त्वके श्रेष्ठ ज्ञाता	कर्ममयान्	कर्मात्मक
ज्ञानिनः	तत्त्व-ज्ञानी लोग	यज्ञान जुह्वति	यज्ञोंका हवन कर देते हैं ॥९॥
आत्मसंयमने	चित्त-संयमरूप		
ज्ञानदीपिते	ज्ञानसे प्रज्वलित		

द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति ।
एष माकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृप् ध्रुवम् ॥१०॥

द्रव्य यज्ञैः यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति एष मा करुणः हन्यात् अतज्ज्ञः हि असुतृप् ध्रुवं ॥१०॥

द्रव्ययज्ञै:	द्रव्यमय यज्ञोंसे	अतज्ज्ञ:	तत्त्व न जाननेवाला
यक्ष्यमाणं	यज्ञ करते हुएको	हि असृतृप्	क्योंकि (अपने)
दृष्ट्वा	देखकर		प्राणोंको ही तृप्त
भूतानि	प्राणी		करनेवाला है,
बिभ्यति	डर जाते हैं कि	ध्रुवं मा	निश्चय हमें
एष अकरुण:	यह निर्दय	हन्यात्	मार देगा ॥१०॥

तस्माद् दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ।
सन्तुष्टोऽहरह: कुर्यान्नित्यनैमित्तिकी: क्रिया: ॥११॥

तस्मात् दैव उपपन्नेन मुनि अन्नेन अपि धर्मवित् सन्तुष्ट: अहर अह: कुर्यात् नित्य नैमित्तिकी: क्रिया: ॥११॥

तस्मात्	इसलिए	अहर अह:	प्रतिदिन
धर्मवित्	धर्मज्ञ-पुरुष	नित्य	नित्य और
दैव उपपन्नेन	प्रारब्ध प्राप्त	नैमित्तिकी:	नैमित्तिकी
मुनि अन्नेन	हविष्यान्नसे	क्रिया: कुर्यात्	क्रिया (सम्पन्न) करे
अपि	ही		॥११॥
सन्तुष्ट:	सन्तुष्ट होकर		

विधर्म: परधर्मश्च आभास उपमा छल: ।
अधर्मशाखा: पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत् त्यजेत् ॥१२॥

विधर्म: परधर्म: च आभास उपमा छल: अधर्मशाखा: पञ्च इमा धर्मज्ञ: अधर्मवत् त्यजेत् ॥१२॥

विधर्म:	विधर्म,	अधर्मशाखा:	अधर्मकी शाखाएँ हैं
परधर्म:	परधर्म,	धर्मज्ञ:	धर्मको जाननेवाला
आभास उपमा	आभास, उपमा,		(इन्हें)
च छल:	तथा छल	अधर्मवत्	अधर्मके समान
इमा पञ्च	ये पांच	त्यजेत्	त्याग दे ॥१२॥

धर्मबाधो विधर्मः स्यात् परधर्मोऽन्यचोदितः ।
उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा शब्दभिच्छलः ॥१३॥

धर्मबाधः विधर्मः स्यात् परधर्मः अन्य चोदितः उपधर्मः तु पाखण्डः दम्भः वा शब्दभिः छलः ॥१३॥

धर्मबाधः	(जो अपने) धर्ममें बाधा डाले	पाखण्डः	पाखण्ड (या उपमा)
विधर्मः स्यात्	(वह) विधर्म है,	वा दम्भः	अथवा दम्भ है,
अन्य चोदितः	(अपने धर्मसे भिन्न) दूसरेके द्वारा प्रेरित	शब्दभिः	शब्दों द्वारा (शास्त्र वचनका दूसरे प्रकारका अर्थकर देना)
परधर्मः	परधर्म है,		
उपधर्मः तु	उपधर्म तो	छलः	छल है ॥१३॥

यस्त्विच्छया कृतःपुम्भिराभासो ह्याश्रमात् पृथक् ।
स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशान्तये ॥१४॥

यः तु इच्छया कृतः पुम्भिः आभासः हि आश्रमात् पृथक् स्वभाव-विहितः धर्मः कस्य न इष्टः प्रशान्तये ॥१४॥

पुम्भिः यः तु	मनुष्य द्वारा जो भी	स्वभावविहितः	अपने स्वभावके अनुकूल
आश्रमात् पृथक्	अपने आश्रम-धर्मसे भिन्न	धर्मः कस्य	धर्म किसको
इच्छया कृतः	स्वेच्छा पूर्वक किया जाता है	प्रशान्तये	शान्ति पानेके लिए
आभासः	वह धर्माभास है ।	इष्टः न	अभीष्ट नहीं होगा ॥१४॥
हि	क्योंकि		

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम् ।
अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥१५॥

धर्मं अर्थं अपि न ईहेत यात्रा अर्थं वा अधनः धनं अनीहा अनीह-मानस्य महा अहेः इव वृत्तिदा ॥१५॥

अधनः	निर्धन (पुरुष)	महा अहेः इव	अजगरके समान
धर्म अर्थं अपि	धर्मके लिए भी	अनीहमानस्य	चेष्टा न करनेवाले-की
वा यात्रा अर्थं	अथवा जीविकाके लिए	अनीहा वृत्तिदा	निश्चेष्टता ही जीविका देती है ॥१५॥
धनं न ईहेत	धन पानेकी चेष्टा न करे,		

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत् सुखम् ।
कुतस्तत् कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥१६॥

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्व आत्मारामस्य यत् सुखं कुतः तत् कामलोभेन धावता अर्थ ईहया दिशः ॥१६॥

सन्तुष्टस्य	सन्तुष्ट,	अर्थ ईहया	धन पानेके प्रयत्नमें
निरीहस्य	निश्चेष्ट,	दिशः धावता	दिशाओंमें दौड़ने-वालेको
स्व	अपने		
आत्मारामस्य	आत्मारामको	तत् कुतः	वह (सुख) कहां ॥१६॥
यत् सुखं	जो सुख (प्राप्त) है,		
कामलोभेन	भोगोंके लोभसे		

सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥१७॥

सदा सन्तुष्ट मनसः सर्वाः सुखमया दिशः शर्करा कण्टक आदिभ्यः यथा उपानत् पदः शिवम् ॥१७॥

सदा सन्तुष्ट	सदा सन्तुष्ट	उपानत्	जूता है,
मनसः	चित्तवालेके लिए	शकर्रा कण्टक	कंकड़ी-काटों
सर्वाः दिशः	सब दिशाएँ	आदिभ्यः	आदिसे (उसकी)
सुखमया	सुखपूर्ण ही हैं ।	शिवं	सुरक्षा है ॥१७॥
यथा पदः	जैसे जिसके पैरमें		

सन्तुष्टः केन वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा ।
औपस्थ्यजैह्वचकार्पण्याद् गृहपालायते जनः ॥१८॥

सन्तुष्टः केन वा राजन् न वर्तेत अपि वारिणा औपस्थ्य जैह्वच्य कार्पण्यात् गृहपालायते जनः ॥१८॥

राजन्	राजन् !	**औपस्थ्य**	जननेन्द्रियके और
केन वा	न जानें क्यों	**जैह्वच्य**	जिह्वाके (फेरमें
जनः वारिणा	मनुष्य केवल जलसे		पड़ कर) इनके द्वारा
अपि	भी	**कार्पण्यात्**	विचारा (वेवश)
सन्तुष्टः	सन्तोष करके		बनकर
वर्तेत न	अपना निर्वाह नहीं कर पाता	**गृहपालायते**	कुत्तेके समान बन जाता है ॥१८॥

असन्तुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः ।
स्रवन्तीन्द्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥१९॥

असन्तुष्टस्य विप्रस्य तेजः विद्या तपः यशः स्रवति इन्द्रिय लौल्येन ज्ञानं च एव अवकीर्यते ॥१९॥

असन्तुष्टस्य	असन्तोषी	**स्रवति**	चू जाता (नष्ट हो
विप्रस्य	ब्राह्मणका		जाता) है ।
तेजः विद्या	तेज, विद्या,	**ज्ञानं च**	विवेक भी
तपः यशः	तप, यश	**अवकीर्यते**	बिखर जाता है
इन्द्रिय लौल्येन	इन्द्रियोंकी लोलुपतासे		॥१९॥

कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात् ।
जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥२०॥

कामस्य अन्तं च क्षुत् तृट्भ्यां क्रोधस्य एतत् फल उदयात् जनः याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशः भुवः ॥२०॥

क्षुत् तृट्भ्यां	भूख-प्याससे	**च**	और
कामस्य अन्तं	भोग-वासनाका अन्त हो जाता है	**क्रोधस्य**	क्रोधका (अन्त)
		एतत् फल	उसका फल

उदयात्	प्रकट होनेपर (हो जाता है, किन्तु)	जनः लोभस्य न याति	मनुष्य लोभका पार नहीं पाता ॥२०॥
भुवः दिशः जित्वा भुक्त्वा	पृथ्वीकी सब दिशाएँ जीतकर और भोगकर भी		

पण्डिता बहवो राजन्बहुज्ञाः संशयच्छिदः ।
सदस्पतयोऽप्येके असन्तोषात् पतन्त्यधः ॥२१॥

पण्डिता बहवः राजन् बहुज्ञाः संशयच्छिदः सदः पतयः अपि एके असन्तोषात् पतन्ति अधः ॥२१॥

राजन्	राजन् !	एके सदः	कोई उनमें विद्वानोंकी सभाके
बहवः पण्डिता	बहुतसे शास्त्रोंके विद्वान हैं	पतयः अपि	सभापति भी हैं, किन्तु
बहुज्ञाः	अनेक विषयोंके ज्ञाता हैं,	असन्तोषात्	असन्तोषके कारण
संशयच्छिदः	शंकाओंका समाधान करनेवाले हैं	पतन्ति अधः	उनका अधःपतन होता है ॥२१॥

असङ्कल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥२२॥

असङ्कल्पात् जयेत् कामं क्रोधं काम विवर्जनात् अर्थात् अनर्थ ईक्षया लोभं भयं तत्त्व अवमर्शनात् ॥२२॥

असङ्कल्पात्	संकल्पका त्याग करके	ईक्षया	देखकर
कामं क्रोधं	कामको और क्रोधको	लोभं	लोभको तथा
काम विवर्जनात्	काम त्यागके द्वारा,	तत्त्व अवमर्शनात्	आत्मतत्त्वका विचार करके
अर्थान् अनर्थ	सम्पत्तियोंमें अनर्थ	भयं जयेत्	भयको जीत ले ॥२२॥

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया ।
योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ॥२३॥

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महत् उपासया योग अन्तरायान् मौनेन हिंसां कायात् अनीहया ॥२३।

आन्वीक्षिक्या	अध्यात्म-विद्यासे	अन्तरायान्	विघ्नोंपर
शोकमोहौ	शोक और मोहपर	मौनेन	मौनके द्वारा
महत् उपासया	महापुरुषोंकी उपासनासे	कायात्	शरीरसे
		अनीहया	निःचेष्ट होकर
दम्भं	दम्भपर	हिंसां	हिंसाको (जीत ले)
योग	योगके		॥२३॥

कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना ।
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥२४॥

कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥२४॥

भूतजं दुःखं	आधिभौतिक दुःख	योगवीर्येण	योग बलसे और
कृपया	(प्राणियोंपर) कृपा- के द्वारा,	निद्रां	निद्राको
		सत्त्वनिषेवया	सात्विक (आहारादि) के सेवनसे
दैवं	आधिदैविक (दुःख)		
समाधिना	समाधिके द्वारा,	जह्यात्	त्याग देना चाहिए
आत्मजं	आध्यात्मिक (दुःख)		॥२४॥

रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च ।
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ॥२५॥

रजः तमः च सत्त्वेन सत्त्वं च उपशमेन च एतत् सर्वं गुरौः भक्त्या पुरुषः हि अञ्जसा जयेत् ॥२५॥

रजः च तमः	रजोगुण और तमोगुणको	च एतत् सर्वं	तथा इन सबको
सत्त्वेन	सत्त्व गुणसे,	हि	क्योंकि
च सत्त्वं	और सत्त्वगुणको	पुरुषः अञ्जसा	पुरुष सरलतासे
उपशमेन	उपरतिके द्वारा	गुरौः भक्त्या	गुरुमें भक्ति होनेसे
		जयेत्	जीत लेता है ॥२५॥

यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥२६॥

यस्य साक्षात् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ मर्त्य असत् धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥२६॥

ज्ञानदीपप्रदे	ज्ञानका प्रदीप देने-वाले	तस्य सर्वं श्रुतं	उसका सब शास्त्र श्रवण
साक्षात्	साक्षात	कुञ्जरशौचवत्	हाथीके स्नानके समान (व्यर्थ) है ॥२६॥
भगवति	भगवान्		
गुरौ यस्य	गुरुदेवमें जिसकी		
मर्त्य असत् धीः	मनुष्य माननेकी दुर्बुद्धि		

एष वै भगवान्साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ।
योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको यं मन्यते नरम् ॥२७॥

एष वै भगवान् साक्षात् प्रधान पुरुष ईश्वरः योगेश्वरैः विमृग्य अङ्घ्रिः लोकः यं मन्यते नरम् ॥२७॥

योगेश्वरैः	योगेश्वरों द्वारा	साक्षात्	साक्षात्
विमृग्य अङ्घ्रिः	जिनके चरण ढूंढ़े जाते हैं	भगवान्	भगवान् हैं
प्रधान पुरुष ईश्वरः	प्रकृति और जीवके स्वामी	यं लोकः नरं मन्यते	जिनको लोग मनुष्य मानते हैं ॥२७॥
वै एष	निश्चय ये (श्रीकृष्ण)		

षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः ।
तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ॥२८॥

षड्वर्ग संयम ऐकान्ताः सर्वाः नियम चोदनाः तत् अन्ता यदि नः योगा न आवहेयुः श्रमावहाः ॥२८॥

नियम सर्वाः	(शास्त्रोंकी) नियम सम्बन्धी सब	**संयम**	नियन्त्रित करनेके लिए है,
चोदनाः	प्रेरणा	**यदि नः योगा**	यदि हमारे साधन
ऐकान्ताः	एकमात्र	**तत् अन्ता**	उनका अन्त
षड्वर्ग	छः वर्ग (काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर) को	**यदि न आवहेयुः**	यदि न ला सकें तो
		श्रमावहाः	(तब तो वे) केवल परिश्रम करानेवाले हैं ॥२८॥

यथा वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति ।
अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्टं तथासतः ॥२९॥

यथा वार्ता आदयः हि अर्था योगस्य अर्थं न बिभ्रति अनर्थाय भवेयुः ते पूर्तं इष्टं तथा असतः ॥२९॥

यथा वार्ता आदयः	जैसे व्यापार (खेती) आदि	**पूर्वं**	(कुआं आदि बनवाना) परोपकारके कर्म
अर्था हि	प्रयोजन तो		
योगस्य अर्थं	योगका प्रयोजन (भगवत् प्राप्ति)	**इष्टं**	और देवाराधन, यज्ञादि
न बिभ्रति	नहीं धारण करते,	**ते अनर्थाय**	वे भी अनर्थके कारण
तथा असतः	वैसे ही दुष्ट पुरुष द्वारा किये	**भवेयुः**	होते हैं ॥२९॥

यश्चित्तविजये यत्तः स्यान्निःसङ्गोऽपरिग्रहः ।
एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥३०॥

यः चित्त विजये यत्तः स्यात् निः सङ्गः अपरिग्रहः एकः विविक्तः शरणः भिक्षुः भिक्षा मित अशनः ॥३०॥

यः चित्त विजये	जो चित्तको जीतने-के लिए	**विविक्तः शरणः**	एकान्तमें रहना चाहिए,
यत्तः स्यात्	प्रयत्न करता हो (उसे)	**भिक्षुः**	संन्यास लेकर
निः सङ्गः	आसक्तिहीन,	**भिक्षा**	भिक्षा मांगकर
अपरिग्रहः	संग्रह रहित	**मित अशनः**	थोड़ा खाना चाहिए ॥३०॥
एकः	अकेले		

देशे शुचौ समे राजन्संस्थाप्यासनमात्मनः ।
स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वङ्ग ओमिति ॥३१॥

देशे शुचौ समे राजन् संस्थाप्य आसनं आत्मनः स्थिरं समं सुखं तस्मिन् आसीत् ऋजु अङ्ग ओम् इति ॥३१॥

राजन्	राजन् !	**स्थिरं समं**	स्थिर, समान,
शुचौ समे देशे	पवित्र और समतल स्थानमें	**ऋजु अंग**	शरीरको सीधा करके
आत्मनः आसनं	अपना आसन	**ओम इति**	ओंकारका जप करते हुए
संस्थाप्य	स्थापित करके		
तस्मिन् सुखं	उसपर सुखपूर्वक	**आसीत्**	बैठे ॥३१॥

प्राणापानौ सन्निरुन्ध्यात् पूरकुम्भकरेचकैः ।
यावन्मनस्त्यजेत् कामान् स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥३२॥

प्राण अपानौ सन्निरुन्ध्यात् पूर कुम्भक रेचकैः यावत् मनः त्यजेत् कामान् स्वनासाग्र निरीक्षणः ॥३२॥

यावत् मनः	जब तक मन	**स्वनासाग्र**	अपनी नाकके अग्र-भागको (भ्रूमध्य)
कामान् त्यजेत्	कामना (संकल्प-विकल्प) न छोड़ दे,	**निरीक्षणः**	देखता हुआ

पूर कुम्भक	पूरक, कुम्भक,	प्राण अपानौ	प्राण अपानको
रेचकैः	रेचक द्वारा	सन्निरुन्ध्यात्	रोक दे ॥३२॥

यतो यतो निःसरति मनः कामहतं भ्रमत् ।
ततस्तत उपाहृत्य हृदि रुन्ध्याच्छनैर्बुधः ॥३३॥

यतः यतः निःसरति मनः कामहतं भ्रमत् ततः तत उप आहृत्य हृदि रुन्ध्यात् शनैः बुधः ॥३३॥

कामहतं भ्रमत्	कामनाओंसे मारा घूमता	उप आहृत्य	पास खींचकर
		बुधः शनैः	बुद्धिमान पुरुष धीरे-धीरे
मनः यतः यतः	मन जहां-जहां		
निःसरति	निकल कर जाता है	रुन्ध्यात्	उसका निरोध करे ॥३३॥
ततः तत	वहां-वहांसे		

एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः ।
अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिन्धनवह्निवत् ॥३४॥

एवं अभ्यसतः चित्तं कालेन अल्पीयसा यतेः अनिशं तस्य निर्वाणं याति अनिन्धन वह्निवत् ॥३४॥

एवं यतेः	इस प्रकार प्रयत्न-शील (साधक) के	अनिन्धन वह्निवत्	बिना ईंधनके आगके समान
अनिशं	निरन्तर	तस्य निर्वाणं	उस (चित्त) का निर्वाण (निरोध)
अभ्यसतः	अभ्यास करनेपर		
अल्पीयसा	थोड़े ही	याति	हो जाता है ॥३४॥
कालेन	समयमें		

कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिलवृत्ति यत् ।
चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥३५॥

काम आदिभिः अनाविद्धं प्रशान्त अखिल वृत्ति यत् चित्तं ब्रह्मसुख-स्पृष्टं न एव उत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥३५॥

काम आदिभिः	काम आदि (वासनाओं) द्वारा
अनाविद्धं	जब बींधा नहीं जाता और
यत् अखिल	क्योंकि समस्त
वृत्ति प्रशान्त	वृत्तियां शान्त हो गयी हैं
ब्रह्मसुखंस्पृष्टं	ब्रह्मसुखमें निमग्न
चित्तं कर्हिचित्	चित्तका कभी भी
न एव	नहीं ही
उत्तिष्ठेत	उत्थान होता ॥३५॥

यः प्रव्रज्य गृहात् पूर्वं त्रिवर्गावपनात् पुनः ।
यदि सेवेत तान्भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ॥३६॥

यः प्रव्रज्य गृहात् पूर्वं त्रिवर्ग अवपनात् पुनः यदि सेवेत तान् भिक्षुः स वै वान्ताशि अपत्रपः ॥३६॥

यः त्रिवर्ग	जो त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) के
अवपनात् गृहात्	बोनेके स्थान गृहस्थाश्रमसे
पूर्वं प्रव्रज्य	पहिले संन्यास लेकर
भिक्षुः यदि	संन्यासी यदि
पुनः तान् सेवेत	फिर उनका सेवन करे तो
वै स	निश्चय वह
अपत्रपः	निर्लज्ज
वान्ताशि	वमन करके खानेवाला (कुत्ता) है ॥३६॥

यैः स्वदेहः स्मृतो नात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात् ।
त एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः ॥३७॥

यैः स्वदेहः स्मृतः न आत्मा मर्त्यः विट् कृमि भस्मसात् त एनं आत्मसात् कृत्वा श्लाघयन्ति हि असत्तमाः ॥३७॥

यैः स्वदेहः	जिस अपने देहको
आत्मा न स्मृतः	आत्मा नहीं है यह समझ लिया,
मर्त्यः	मरणधर्मा है,
विट् कृमि	विष्ठा, कीड़ा या
भस्मसात्	भस्म होनेवाला है,
हि असत्तमाः	क्योंकि बहुत दुर्जन हैं, इससे
त एनं	वे इस (देह) को
आत्मसात्	अपना स्वरूप
कृत्वा	मानकर
श्लाघयन्ति	(इसकी) प्रशंसा करते हैं ॥३६॥

गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो वटोरपि ।
तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलोलता ॥३८॥

गृहस्थस्य क्रियात्यागः व्रतत्यागः वटोः अपि तपस्विनः ग्रामसेवा भिक्षोः इन्द्रिय लोलता ॥३८॥

गृहस्थस्य	गृहस्थका	**तपस्विनः**	तपस्वी (वानप्रस्थ) का
क्रियात्यागः	(नित्य नैमित्तिक) कर्म त्याग देना	**ग्रामसेवा**	ग्राम (बस्ती) में रहना तथा
वटोः अपि	ब्रह्मचारीका भी	**भिक्षोः**	संन्यासीकी
व्रतत्यागः	ब्रह्मचर्य-व्रत छोड़ देना,	**इन्द्रिय लोलता**	इन्द्रिय-लोलुपता ॥३८॥

आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडम्बकाः ।
देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेतानुकम्पया ॥३९॥

आश्रमा अपसदा हि एते खलु आश्रम विडम्बकाः देवमाया विमूढान् तान् उपेक्षेत् अनुकम्पया ॥३९॥

हि एते	क्योंकि ये	**देवमाया**	भगवान्‌की मायासे
आश्रमा	आश्रमोंके	**विमूढान् तान्**	मोहग्रस्त उनपर
अपसदा	कलंक हैं	**अनुकम्पया**	तरस खाकर
खलु आश्रम	व्यर्थ आश्रमकी	**उपेक्षेत्**	(उनकी) उपेक्षा कर दे ॥३९॥
विडम्बकाः	बिडाम्बना करने-वाले हैं		

आत्मानं चेद् विजानीयात् परं ज्ञानधुताशयः ।
किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः ॥४०॥

आत्मानं चेत् विजानीयात् परं ज्ञानधुत आशयः किं इच्छन् कस्य वा हेतोः देहं पुष्णाति लम्पटः ॥४०॥

ज्ञानधुत	तत्त्व-ज्ञानसे स्वच्छ	किं इच्छन्	किस (विषय) की
आशयः	अन्तःकरण होकर		इच्छासे
चेत् आत्मानं	यदि अपनेको	वा कस्य हेतोः	अथवा किस कारणसे
परं	(देहादिसे) परे	लम्पटः	इन्द्रिय लोलुप होकर
विजानीयात्	जान लिया है तो	देहं पुष्णाति	शरीरका पोषण करता है ॥४०॥

आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि
हयानभीषून् मन इन्द्रियेशम् ।
वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं
सत्त्वं बृहद् बन्धुरमीशसृष्टम् ॥४१॥

आहुः शरीरं रथं इन्द्रियाणि हयान् अभीषून मन इन्द्रिय ईशं वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहत् बन्धुरं अमी ईश सृष्टम् ॥४१॥

आहुः	(उपनिषदोंमें) कहा गया है कि	च धिषणां सूतं	और बुद्धि सारथी है,
शरीरं रथं	शरीर रथ है,	ईश सृष्टं	ईश्वर द्वारा निर्मित
इन्द्रियाणि	इन्द्रियां	अमी सत्त्वं	ये चित्त आदि
हयान्	घोड़े हैं,	बृहत् बन्धुरं	(बाँधनेवाली) विशाल रस्सी है ॥४१॥
इन्द्रिय ईशं	इन्द्रियोंका स्वामी		
मन अभीषून	मन लगाम है		
मात्रा वर्त्मानि	(रूप-रसादि) तन्मात्राएँ मार्ग हैं		

अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ
चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम् ।
धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति
शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ॥४२॥

अक्षं दश प्राणं अधर्म धर्मौ चक्रे अभिमानं रथिनं च जीवं धनुः हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परं एव लक्ष्यम् ॥४२॥

दश प्राणं अक्षं	दस प्राण धुरी हैं•
अधर्म धर्मौ	अधर्म और धर्म
चक्रे च	पहिए हैं तथा
अभिमानं जीवं	अभिमानी जीव
रथिनं	रथी है
हि तस्य धनुः	क्योंकि उसका धनुष
प्रणवं पठन्ति	प्रणव कहा गया है
जीवः तु शरं	जीव ही वाण है,
परं एव लक्ष्यं	परमात्मा ही लक्ष्य है ॥४२॥

रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः ।
मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः ॥४३॥

रागः, द्वेषः च, लोभः च, शोकः, मोहः भयं, मदः मानः अवमानः, असूया च, माया, हिंसा च, मत्सरः ॥४३॥*

रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादयः ।
रजस्तमःप्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥४४॥

रजः प्रमादः क्षुत् निद्रा शत्रवः तु एवं आदयः रजः तमः प्रकृतयः सत्त्व प्रकृतयः क्वचित् ॥४४॥

रजः प्रमादः	रजोगुण, असावधानी,
क्षुत् निद्रा	भूख, नींद
आदयः तु	आदि तो
एवं शत्रवः	इस प्रकारके (मनुष्यके) शत्रु हैं,
रजः तमः	ये रजो गुण, तमोगुण
प्रकृतयः	स्वभावके
क्वचित्	कभी कोई
सत्त्व प्रकृतयः	सत्त्वगुण स्वभावके भी होते हैं ॥४४॥

यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं
धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ।

•दस प्राणोंमें पांच सामान्य-१-प्राण २-अपान ३-उदान ४-यान ५-समान और पांच योगोपयोगी-१-नाग २-कूर्म ३-कृकल ४-देवदत्त ५-धन भय ।

*केवल दुर्गुणोंके नाम हैं—अतः अर्थ अनावश्यक है ।

ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रुः
स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ॥४५॥

यावत् नृ काय रथं आत्मवश उपकल्पं धत्ते गरिष्ठ चरण अर्चनया निशातं ज्ञान असिं अच्युत बलः दधदः त शत्रुः स्वाराज्य तुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ॥४५॥

यावत् नृ काय	जब तक मनुष्य शरीर रूपी	**अर्चनया निशातं**	अर्चनासे तीक्ष्ण की गयी
रथं आत्मवश	रथ अपने वशमें है और	**ज्ञान असिं**	ज्ञानकी तलवारसे
उपकल्पं धत्ते	इसके (इन्द्रियादि) उपकरण ठीक है (तभी तक)	**अच्युत बलः**	भगवान्‌के बलसे
		त शत्रुः	उन शत्रुओंको
		दधदः	मारकर
गरिष्ठ चरण	गुरुदेवके चरणोंकी	**उपशान्त**	अत्यन्त शान्त भावसे
		इदं विजह्यात्	इस (शरीर) को छोड़े ॥४५॥

नो चेत् प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता
नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपन्ति ।
ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोऽन्धे
संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ॥४६॥

नो चेत् प्रमत्तं असत् इन्द्रिय वाजिसूता नीत्वा उत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपन्ति ते दस्यवः सहय सूतं अमुं तमः अन्धे संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ॥४६॥

नो चेत्	नहीं तो	**वाजिसूत**	घोड़े सारथी सहित इसे
प्रमत्तं	असावधान होते ही	**उत्पथं नीत्वा**	कुमार्गमें ले जाकर
असत् इन्द्रिय	दुष्ट इन्द्रियरूपी		

विषयदस्युषु	विषय रूपी डाकुओं-में	तमः अन्धे	घोर अन्धकारसे पूर्ण
निक्षिपन्ति	फेंक देते हैं	उरुमृत्युभये	भयानक मृत्यु भय-वाले
ते दस्यवः	वे डाकू	संसारकूपं	संसाररूपी कुएँमें
सहय सूतं अमुं	सारथीके साथ इसे	क्षिपन्ति	फेंक देते हैं ॥४६॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।
आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥४७॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकं आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेन अश्नुते अमृतम् ॥४७॥

वैदिकं कर्म	वेद प्रतिपादित कर्म	आवर्तेत	(जन्म-मृत्युमें) घूमता रहता है,
प्रवृत्तं च	प्रवृत्ति परक और	निवृत्तेन	निवृत्तिपरकसे
निवृत्तं च	निवृत्ति परक भी	अमृतं	अमृतत्त्वका
द्विविधं	दो प्रकारके हैं,	अश्नुते	उपभोग करता है ॥४७॥
प्रवृत्तेन	प्रवृत्ति परक (कर्म) से		

हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशान्तिदम् ।
दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥४८॥

हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यं अग्निहोत्रादि अशान्तिदं दर्शः च पूर्ण मासः च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥४८॥

द्रव्यमयं	पदार्थोंसे होनेवाले	चातुर्मास्यं	चातुर्मास्य,
काम्यं	सकाम	हिंस्रम् पशुः सुतः	हिंसा प्रधान पशु याग
अग्निहोत्रादि	अग्नि होत्रादि,	अशान्तिदं	अशान्तिदायी हैं ॥४८॥
च दर्शः	और दर्श,		
च पूर्णमासः	और पूर्णमास,		

एतदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च ।
पूर्तं सुरालयारामकूपाजीव्यादिलक्षणम् ॥४९॥

एतत् इष्टं प्रवृत्ति आख्यं हुतं प्रहुतं एव च पूर्तं सुरालय आराम कूप आजीव्य आदिलक्षणम् ॥४९॥

एतत् प्रवृत्ति आख्यं	ये प्रवृत्तिपरक कहे जानेवाले	आजीव्य	उसमें जीविका लगा देना,
हुतं च प्रहुतं एव	हवनात्मक तथा बड़े यज्ञरूप	आराम कूप	बगीचा लगाना, कुआं बनवाना
इष्टं	ही 'इष्ट' कहे जाते हैं;	आदिलक्षणं	आदि रूपका (धर्म)
सुरालय	देवमन्दिर बनवाना,	पूर्तं	पूर्त (कहा जाता) है ॥४९॥

द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः ।
अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः ॥५०॥

द्रव्यसूक्ष्म विपाकः च धूमः रात्रिः अपक्षयः अयनं दक्षिणं सोमः दर्श औषधिवीरुधः ॥५०॥

द्रव्यसूक्ष्म	(प्रवृत्ति-परायण यज्ञीय हवन किये) द्रव्योंके सूक्ष्म		क्रमसे)
		सोमः	चन्द्रमा तक जाता है (फिर)
विपाकः च	परिणामसे बना (शरीर धारण) करके ही	दर्श	(भोग क्षीण होनेपर) अमावस्यासे
		औषधिवीरुधः	(वृष्टिमें आकर) औषधि या पौधे होता है ॥५०॥
धूमः रात्रिः	धूम्र, रात्रि,		
अपक्षयः	कृष्णपक्ष,		
दक्षिणं अयनं	दक्षिणायन (के		

अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनर्भवः ।
एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥५१॥

अन्नं रेत इति क्षमेश पितृयानं पुनः भवः एक एकशः अनेन अनुपूर्वं भूत्वा भूत्वा इह जायते ॥५१॥

क्षमेश	राजन् !	अनेन	इस मार्गसे होता
अन्नं	(फिर) अन्न (आहार बनकर)	अनुपूर्वं एक	पहिलेके क्रमसे
रेत	वीर्य बनता है,	एकशः	एक-एकमें
इति	इस प्रकार	भूत्वा भूत्वा	बार-बार जाता हुआ
पितृयानं	पितृयान (मार्ग) से गया	इह जायते	इस संसारमें उत्पन्न होता है ॥५१॥
पुनः भवः	फिर संसारमें आ जाता है,		

निषेकादिश्मशानान्तैः संस्कारैः संस्कृतो द्विजः ।
इन्द्रियेषु क्रियायज्ञान् ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥५२॥

निषेक आदि श्मशान अन्तैः संस्कारैः संस्कृतः द्विजः इन्द्रियेषु क्रियायज्ञान् ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥५२॥

निषेक आदि	गर्भाधानसे लेकर		क्रियामय यज्ञों (इष्ट और पूर्त) को
श्मशान अन्तैः	श्मशानके अन्त्येष्टि तक	ज्ञानदीपेषु	(विषयोंका) ज्ञान करानेवाली
संस्कारैः संस्कृतः	संस्कारोंसे सम्पन्न	इन्द्रियेषु	इन्द्रियोंमें
द्विजः	द्विज कहा जाता है,	जुह्वति	हवन कर देते हैं ॥५२॥
क्रियायज्ञान्	(उनमें कुछ)		

इन्द्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचि वैकारिकं मनः ।
वाचं वर्णसमाम्नाये तमोङ्कारे स्वरे न्यसेत् ।
ओङ्कारं बिन्दौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम् ॥५३॥

इन्द्रियाणि मनसि ऊर्मौ वाचि वैकारिकं मनः वाचं वर्ण समाम्नाये तं ओङ्कारे स्वरे न्यसेत् ओङ्कारं बिन्दौ नादे तं तं तु प्राणे महति अमुं ॥५३॥

इन्द्रियाणि	इन्द्रियोंको	स्वरे	स्वर अ, उ, ममें
मनसि ऊर्मौ	मनकी लहरों (संकल्प) में,	ओङ्कारं बिन्दौ	ओंकारको बिन्दुमें
		तं नादे	उसे नादमें,
वैकारिकं मनः	विकारवान मनको	तं तु प्राणे	उस (नाद) को तो प्राणमें
वाचि	परावाणीमें,		
वाचं वर्णं	वाणीको अक्षर	अमुं महति	इस (प्राण) को महान् ब्रह्ममें
समाम्नाये	समूहमें		
तं ओङ्कारे	उन्हें ओंकारके	न्यसेत्	न्यास कर दे ॥५३॥

अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् ।
विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात् ॥५४॥

अग्निः सूर्यः दिवा प्राह्णः शुक्लः राका उत्तरं स्वराट् विश्वः च तैजसः प्राज्ञः तुर्य आत्मा सम अन्वयात् ॥५४॥

अग्निः	(इस क्रमसे जाने वाला) अग्नि,	विश्वः	(वहांसे) विराट्,
		तैजसः प्राज्ञ	तैजस, प्राज्ञ (रूपसे स्थित होता)
सूर्यः दिवा	सूर्य, दिन,		
प्राह्णः शुक्लः	सायंकाल, शुक्ल-पक्ष,	च	और
		तुर्य आत्मा	तुरीयतत्त्व आत्मासे
राका उत्तरं	पूर्णिमा, उत्तरायण (होता)	सम अन्वयात्	समन्वित हो जाता है ॥५४॥
स्वराट्	ब्रह्मलोक जाता है,		

देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वानुपूर्वशः ।
आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते ॥५५॥

देवयानं इदं प्राहुः भूत्वा भूत्वा अनुपूर्वशः आत्मयाजि उपशान्त आत्मा हि आत्मस्थः न निवर्तते ॥५५॥

इदं देवयानं	इसे देवयान मार्ग	भूत्वा भूत्वा	एक दूसरी स्थितिमें होता
प्राहुः	कहते हैं,		
अनुपूर्वशः	पहिले-पहिलेके क्रमसे	हि	क्योंकि
		आत्मयाजि	आत्मयज्ञ करनेवाला

उपशान्त आत्मा	निवृत्त चित्त है	न निवर्तते	(अतः संसारमें)
आत्मस्थः	आत्मामें ही स्थित है		नहीं लौटता ॥५५॥

य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते ।
शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति ॥५६॥

य एते पितृदेवानां अयने वेदनिर्मिते शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थः अपि न मुह्यति ॥५६॥

य एते	जो इन	वेद	जानता है (वह)
वेदनिर्मिते	वेद सम्मत	जनस्थः अपि	लोगोंमें रहता हुआ भी
पितृ-	पितृयान और		
देवानां अयने	देवयानको	मुह्यति न	मोहमें नहीं पड़ता ॥५६॥
शास्त्रेण चक्षुषा	शास्त्र रूपी नेत्रोंसे		

आदावन्ते जनानां सद् बहिरन्तः परावरम् ।
ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम् ॥५७॥

आदाः अन्ते जनानां सत् बहिः अन्तः पर अवरं ज्ञानं ज्ञेयं वचः वाच्यं तमः ज्योतिः तु अयं स्वयम् ॥५७॥

जनानां	उत्पन्न होनेवाले सबके	ज्ञानं ज्ञेयं	ज्ञान तथा ज्ञेय रूपमें,
आदाः	आदिमें (कारण रूपसे)	वचः वाच्यं	वाणी और वर्णनीय रूपमें
अन्ते	अन्तमें (परिणाम-अवधिरूपसे)	तमः ज्योति तु	अन्धकार और प्रकाश रूपमें तो
सत्	(वर्तमानमें) सत्ता रूपसे;	अयं स्वयं	यह स्वयं है (अतः इसे मोह कैसे होगा।) ॥५७॥
बहिः अन्तः	बाहर-भीतर,		
पर अवरं	बड़े-छोटे		

आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः ।
दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥५८॥

आबाधितः अपि हि आभासः यथा वस्तुतया स्मृतः दुर्घटत्वात् ऐन्द्रियकं तद्वत् अर्थ विकल्पितम् ॥५८॥

आभासः	प्रतिबिम्ब	ऐन्द्रियक	इन्द्रियोंसे प्रतीत होनेवाला संसार
आबाधितः अपि	(विचारसे) बाधित होनेपर भी	दुर्घटत्वात्	(विचारसे) असम्भव होनेसे
हि	क्योंकि	अर्थ	पदार्थके रूपमें
यथा वस्तुतया	जैसे वस्तुके रूपमें	विकल्पितं	कल्पित हुए हैं ॥५८॥
स्मृतः	समझा जाता है		
तद्वत्	उसीके समान		

क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि ।
न संघातो विकारोऽपि न पृथङ् नान्वितो मृषा ॥५९॥

क्षिति आदीनां इह अर्थानां छाया न कतमा अपि हि न संघातः विकारः अपि न पृथक् न अन्वितः मृषा ॥५९॥

इह	यहां संसारमें	अपि विकारः	या विकार हैं,
क्षिति आदीनां	पृथ्वी आदि	न पृथक्	न अलग-अलग हैं,
अर्थानां	पदार्थोंकी	न अन्वितः	न एक दूसरेमें मिले हैं,
हि	क्योंकि	मृषा	असत् प्रतीति हैं ॥५९॥
कतमा	कहीं		
छाया अपि न	छाया भी नहीं है		
न संघातः	(अतः) न ये समूह हैं,		

धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना ।
न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽन्ततः ॥६०॥

धातवः अवयवित्वात् च तन्मात्रा अवयवैः विना न स्युः हि सति अवयवित् असत् अवयवः अन्ततः ॥६०॥

धातवः	(पृथ्वी आदि) मूल धातुएँ	हि	क्योंकि
अवयवित्वात्	मूल आंगवान होनेसे	अवयवित्	अंगवान मूल धातुएँ
तन्मात्रा	तन्मात्रा रूप	असत् सति	असत् हैं (अतः)
अवयवैः	अंगोंके	अन्ततः	अन्ततः
विना न स्युः	बिना नहीं हो सकते	अवयवः	अंग भी असत् हैं ॥६०॥

स्यात् सादृश्यभ्रमस्तावद् विकल्पे सति वस्तुनः ।
जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता ॥६१॥

स्यात् सादृश्य भ्रमः तावत् विकल्पे सति वस्तुनः जाग्रत् स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधि निषेधता ॥६१॥

जाग्रत स्वापौ	जाग्रत और स्वप्न दशामें	यथा वस्तुनः	जैसा वस्तुओंकी (समानता होती है)
सादृश्य	समानताका	स्वप्ने तथा	स्वप्नमें भी वैसे ही
भ्रमः स्यात्	भ्रम हो	विधि निषेधता	विधि-निषेधपना भी होता है ॥६१॥
तावत् विकल्पे	तो भी दोनोंके विकल्पमें		

भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथाऽऽत्मनः ।
वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्नान्धुनुते मुनिः ॥६२॥

भाव अद्वैतं क्रिया अद्वैतं द्रव्य अद्वैतं तथा आत्मनः वर्तयन् स्वानु भूत्या इह त्रीन् स्वप्नान् धुनुते मुनि ॥६२॥

भाव अद्वैतं	भाव अद्वैत	त्रीन्	तीनों (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) के
क्रिया अद्वैत	क्रिया अद्वैत	स्वप्नान्	स्वप्नोंको
तथा आत्मनः	तथा अपने	धुनुते	नष्ट कर देता है ॥६२॥
द्रव्य अद्वैतं	द्रव्यसे अद्वैत		
वर्तयन्	व्यवहार करते हुए		
मुनिः	मननशील (ज्ञानी)		

कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत् ।
अवस्तुत्वाद् विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥६३॥

कार्यकारण वस्तु ऐक्य मर्शनं पट तन्तुवत् अवस्तुत्वात् विकल्पस्य भाव अद्वैतं तत् उच्यते ॥६३॥

पट तन्तुवत्	वस्त्र और सूतके समान	विकल्पस्य	भेदका
		अवस्तुत्वात्	असत् होनेके कारण (निश्चय)
कार्यकारण	कार्य और उसके कारण	तत्	उसे
वस्तु ऐक्यं	वस्तुकी एकताका	भाव अद्वैतं	भावाद्वैत
मर्शनं	विचार,	उच्यते	कहा जाता है ॥६३॥

यद् ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्मसमर्पणम् ।
मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥६४॥

यत् ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्म समर्पणं मनः वाक् तनुभिः पार्थ क्रिया अद्वैतं तत् उच्यते ॥६४॥

पार्थ	युधिष्ठिर !	सर्वकर्म	सब कर्मोंका
यत् साक्षात्	जो साक्षात्	समर्पणं	समर्पण है,
परे ब्रह्मणि	परमब्रह्ममें	तत् क्रिया	उसे क्रिया
मनः वाक्	मन, वाणी	अद्वैतं	अद्वैत
तनुभिः	शरीरसे हुए	उच्यते	कहा जाता है ॥६४॥

आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् ।
यत् स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥६५॥

आत्म जाया सुत आदीनां अन्येषां सर्वदेहिनां यत् स्व अर्थ कामयोः ऐक्यं द्रव्य अद्वैतं तत् उच्यते ॥६५॥

आत्म जाया सुत आदीनां	अपने शरीर, स्त्री, पुत्र आदिका और	सर्वदेहिनां	सब शरीर धारियों-का
अन्येषां	दूसरे	यत् स्व	जो अपने

अर्थ कामयोः	धन और भोगोंमें	द्रव्य अद्वैतं	द्रव्याद्वैत
ऐक्यं तत्	एकत्व है उसे	उच्यते	कहा जाता है ॥६५॥

यद् यस्य वानिषिद्धं स्याद् येन यत्र यतो नृप ।
स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥६६॥

यत् यस्य वा अनिषिद्धं स्यात् येन यत्र यतः नृप स तेन ईहेत कर्माणि नरः न अन्यः अनापदि ॥६६॥

नृप	राजन् !	स नरः तेन	वह पुरुष उसी (धन) से
यत् यस्य	जो जिसके लिये	कर्माणि ईहेत	कर्मोंको करे
येन यत्र	जिस उपायसे, जहां	अनापदि	आपत्तिकाल न होनेपर
वा यतः	अथवा जिससे	अन्यः न	दूसरा वैसा न करे ॥६६॥
अनिषिद्धं स्यात्	शास्त्राज्ञासे निषिद्ध न हो,		

एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः ।
गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद् राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः ॥६७॥

एतैः अन्यैः च वेद उक्तैः वर्तमानः स्वकर्मभिः गृहे अपि अस्य गतिं यायात् राजन् तत् भक्ति भाङ् नरः ॥६७॥

एतैः च अन्यैः	इन और दूसरे भी	भक्ति	(परमात्माकी) भक्तिका
वेद उक्तैः	वेद वर्णित (साधनों) से	भाङ्नरः	भाजन पुरुष
स्वकर्मभिः	अपना कर्तव्य कर्म करते हुए	राजन्	राजन् !
गृहे अपि	घरमें भी	तत् गतिं	उसकी गतिको
वर्तमानः	रहते हुए	यायात्	जाता है ॥६७॥

यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजा-
दापद्गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः ।
यत्पादपङ्केरुहसेवया भवा-
नहार्षीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥६८॥

यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्य जात् आपत् गणात् उत्तरत आत्मनः प्रभोः यत् पादपङ्केरुह सेवया भवान् अहार्षीत् निर्जित दिग्गजः क्रतून् ॥६८॥

नृपदेव	महाराज !	यत्	जिनके
हि यथा यूयं	क्योंकि जैसे तुम लोग	पादपङ्केरुह	चरण-कमलोंकी
		सेवया भवान्	सेवासे तुमने
आत्मनः प्रभोः	अपने स्वामी श्रीकृष्णके द्वारा	दिग्गजः	दिग्गजों (पूरे भूमण्डल) को
दुस्त्य	दुष्पार	निर्जित	जीतकर
आपत् गणात्	आपत्तियोंसे	क्रतून अहार्षीत	(बड़े-बड़े) यज्ञ किये ॥६८॥
उत्तरतः	पार हो गये और		

अहं पुराभवं कश्चिद् गन्धर्व उपबर्हणः ।
नाम्नातीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मतः ॥६९॥

अहं पुराभवं कश्चित् गन्धर्व उपबर्हणः नाम्ना अतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मतः ॥६९॥

अतीते	बीते हुए	सुसम्मतः	अत्यन्त सम्मानित
महाकल्पे	महाकल्पमें	कश्चित्	कोई
पुराभवं	पूर्व जन्ममें	उपबर्हणः	उपबर्हण
अहं	मैं	नाम्ना गन्धर्व	नामका गन्धर्व था ॥६९॥
गन्धर्वाणां	गन्धर्वोंमें		

रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शनः ।
स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः ॥७०॥

रूप पेशल माधुर्य सौगन्ध्य प्रियदर्शनः स्त्रीणां प्रियतमः नित्यं मत्तः तु पुरुलम्पटः ॥७०॥

रूप पेशल	सौन्दर्य, सुकुमारता,	नित्यं स्त्रीणां	सदा स्त्रियोंका
माधुर्य	मधुरता,	प्रियतमः	बहुत प्यारा था,
सौगन्ध्य	सुगन्धिसे	तु मत्तः	किन्तु प्रमादी और
प्रियदर्शनः	देखनेमें बहुत प्यारा था	पुरुलम्पटः	बहुत लम्पट था ॥७०॥

एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ॥७१॥

एकदा देवसत्रे तु गन्धर्व अप्सरसां गणाः उपहूता विश्वसृक्भिः हरिगाथा उपगायने ॥७१॥

एकदा	एक बार	अप्सरसां गणाः	अप्सराओंका समूह
देवसत्रे तु	देवताओंके ज्ञान यज्ञमें तो	हरिगाथा उपगायने	भगवच्चरित गानेके लिए
विश्वसृक्भिः	ब्रह्माजी द्वारा	उपहूता	बुलाये गये ॥७१॥
गन्धर्व	गन्धर्वों और		

अहं च गायंस्तद्विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतो गतः ।
ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ।
याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥७२॥

अहं च गायन् तत् विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतः गतः ज्ञात्वा विश्वसृजः तत् मे हेलनं शेपुः ओजसा याहि त्वं शूद्रतां आशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥७२॥

अहं च तत्	मैं भी उस	परिवृतः	घिरा हुआ
गायन् विद्वान्	गायनके उद्देश्यको जानता हुआ	गत	वहां गया,
स्त्रीभिः	स्त्रियोंसे	तत् मे हेलनं	वह मेरी अवहेलना

ज्ञात्वा ओजसा	जानकर तेजसे	नष्टश्रीः	शोभा नष्ट हुआ;
विश्वसृजः शेपुः	ब्रह्माजीने शाप दिया	त्वं आशु	तुम शीघ्र
		शूद्रतां याहि	शूद्रत्वको जाओ ॥७२॥
कृतहेलनः	अवहेलना करनेके कारण		

तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् ।
शुश्रूषयानुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥७३॥

तावत् दास्यां अहं जज्ञे तत्र अपि ब्रह्मवादिनां शुश्रूषया अनुषङ्गेण प्राप्तः अहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥७३॥

तावत् अहं	तब मैं	शुश्रूषया	सेवाके प्रभावसे
दास्यां जज्ञे	दासीसे उत्पन्न हुआ	अहं ब्रह्मपुत्रतां	मुझे ब्रह्माजीका पुत्रत्व
तत्र अपि	वहां भी		
अनुषङ्गेण	प्रसंगवश	प्राप्तः	प्राप्त हो गया ॥७३॥
ब्रह्मवादिनां	ब्रह्मज्ञानियोंकी		

धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः ।
गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामियात् ॥७४॥

धर्मः ते गृहमेधीयः वर्णितः पापनाशनः गृहस्थः येन पदवीं अञ्जसा न्यासिनां इयात् ॥७४॥

ते गृहमेधीयः	तुमसे गृहस्थके	अञ्जसा	सरलतापूर्वक
पापनाशनः	पाप नाशक	न्यासिनां पदवीं	संन्यासियोंकी गति-को
धर्मः वर्णितः	धर्मका वर्णन कर दिया	इयात्	प्राप्त कर लेता है ॥७४॥
येन गृहस्थः	जिसके द्वारा गृहस्थ		

यूयं नृलोके बत भूरिभागा
लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ।

येषां गृहानावसतीति साक्षाद्
गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥७५॥

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयः अभियन्ति येषां गृहान् आवसति इति साक्षात् गूढं परम् ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥७५॥

नृलोके यूयं	मनुष्य-लोकमें तुम लोग	गूढं आवसति	छिपकर रहते हैं
बत भूरिभागा	अहो बड़भागी हो	इति लोकं	इसलिए तीनों लोकोको
येषां गृहान्	जिनके घरोंमें	पुनाना मुनयः	पवित्र करनेवाले मुनिगण
साक्षात्	साक्षात्		
परम् ब्रह्म	परमब्रह्म	अभियन्ति	चारों ओरसे यहां आते हैं ॥७५॥
मनुष्यलिङ्गं	मनुष्यरूपमें		

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं
कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय
आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च ॥७६॥

स वा अयं ब्रह्म महत् विमृग्यं कैवल्य निर्वाण सुख अनुभूतिः प्रियः सुहृत् वः खलु मातुलेय आत्मा अर्हणीयः विधिकृत् गुरुः च ॥७६॥

स वा अयं	वह निश्चय यही	सुहृत् खलु	सुहृद अरे,
महत् विमृग्यं	महापुरुषों द्वारा अन्वेषणीय	मातुलेय	मामाके लड़के,
		आत्मा	आत्मा,
कैवल्य निर्वाण	कैवल्य मोक्षके	अर्हणीयः	पूजनीय,
सुख अनुभूतिः	सुखानुभव स्वरूप	विधिकृत्	आज्ञापालक
ब्रह्म	ब्रह्म	च गुरुः	और गुरु भी हैं ॥७६॥
वः प्रियः	तुम लोगोंके प्रिय		

न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी
रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ।

मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः
प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥७७॥

न यस्य साक्षात् भव पद्मज आदिभिः रूपं धिया वस्तुतया उपवर्णितं मौनेन भक्त्या उपशमेन पूजितः प्रसीदतां एष स सात्वतां पतिः ॥७७॥

भव पद्मज	शंकर-ब्रह्मादि
आदिभिः	द्वारा भी
वस्तुतया	वास्तविक रूपमें
यस्य साक्षात्	जिनके साक्षात्
रूपं	रूपको
धिया	बुद्धिसे
उपवर्णितं न	वर्णन नहीं हो सका है
स एष	वे ये
सात्वतां पतिः	भक्तोंके स्वामी
मौनेन भक्त्या	मौनसे, भक्तिसे और
उपशमेन	वैराग्यके द्वारा
पूजितः	पूजित होकर
प्रसीदतां	प्रसन्न हो जायँ ॥७७॥

श्रीशुक उवाच–

इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः ।
पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥७८॥

इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरत ऋषभः पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥७८॥

इति	इस प्रकार
देवर्षिणा प्रोक्तं	देवर्षिकी बातको
निशम्य	सुनकर
भरत ऋषभः	भरत वंशमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने
प्रेमविह्वलः	प्रेमसे विह्वल होकर
कृष्णं च	श्रीकृष्णकी भी
पूजयामास	पूजा की ॥७८॥

कृष्णपार्थावुपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः ।
श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥७९॥

कृष्ण पार्थाः उपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मिताः ॥७९॥

पूजितः मुनिः	पूजित होकर मुनि नारदजी	कृष्णं	श्रीकृष्णको
		परं ब्रह्म श्रुत्वा	परमब्रह्म सुनकर
कृष्ण पार्थाः	श्रीकृष्ण तथा पाण्डवोंसे	पार्थः	पाण्डव
		परमविस्मिताः	बहुत विस्मित हुए ॥७६॥
उपामन्त्र्य	अनुमति लेकर		
प्रययौ	प्रस्थान कर गये,		

इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ।
देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥८०॥

इति दाक्षायणीनां ते पृथक् वंशाः प्रकीर्तिताः देव असुर मनुष्याद्या लोका यत्र चर अचराः ॥८०॥

इति	इस प्रकार	लोका	लोक उत्पन्न हुए (उन)
यत्र	जिनसे		
देव असुर	देवता, असुर,	दाक्षायणीनां	दक्ष-कन्याओंका
मनुष्याद्य	मनुष्य आदि,	पृथक वंशाः	अलग-अलग वंश
चर अचराः	जंगम स्थावर	ते प्रकीर्तिताः	तुमसे वर्णन कर दिया ॥८०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादश साहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारद संवादे सदाचारनिर्णयो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

॥ इति सप्तमः स्कन्धः समाप्तः ॥

हरि ॐ तत्सत्

॥ अष्टम स्कन्ध ॥

अष्टमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच—

स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ।
यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः ॥१॥

स्वायम्भुवस्य इह गुरो वंशः अयं विस्तरात् श्रुतः यत्र विश्वसृजां सर्गः मनून् अन्यान् वदस्व नः ॥१॥

गुरो	गुरुवर !	**विस्तरात्**	विस्तारसे
इह	इस लोकमें	**श्रुतः**	सुन लिया
स्वायम्भुवस्य	स्वायम्भुव मनुका	**अन्यान् मनून्**	(अब) दूसरे मनुओं-का
अयं वंशः यत्र	यह वंश जिसमें	**नः वदस्व**	मुझसे वर्णन कीजिए ॥१॥
विश्वसृजां	प्रजापतियोंकी		
सर्गः	वंश-परम्परा चली		

यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ।
गृणन्ति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥२॥

यत्र यत्र हरेः जन्म कर्माणि च महीयसः गृणन्ति कवयः ब्रह्मन् तानि नः वद शृण्वताम् ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**कर्माणि**	(चरित्रों) कर्मोंका
यत्र यत्र	जिस-जिस प्रसंगमें	**कवयः गृणन्ति**	कवि लोग वर्णन करते हैं
महीयसः	महामहिम		
हरेः जन्म च	श्रीहरिके अवतार और	**नः शृण्वतां**	हम सुननेवालोंसे
		तानि वद	उनको कहिए ॥२॥

यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः ।
कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥३॥

यत् यस्मिन् अन्तरे ब्रह्मन् भगवान् विश्वभावनः कृतवान् कुरुते कर्ता हि अतीते अनागते अद्य वा ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**अनागते वा अद्य**	आनेवाले या वर्तमान
विश्वभावनः	विश्वरक्षक	**अन्तरे कृतवान्**	मन्वन्तरोंमें किया है,
भगवान्	भगवान्ने	**कर्ता कुरुते**	करेंगे या कर रहे हैं ॥३॥
यत् यस्मिन्	जो जिसमें		
अतीते	बीते हुए		

श्रीशुक उवाच*

मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट् कल्पे स्वायम्भुवादयः ।
आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च सम्भवः ॥४॥

मनवः अस्मिन् व्यतीताः षट् कल्पे स्वायम्भुव आदयः आद्यः ते कथितः यत्र देव आदीनां च संभवः ॥४॥

अस्मिन् कल्पे	इस कल्पमें	**देव आदीनां च**	देवतादिकोंकी भी
स्वायम्भुव	स्वायम्भुव	**संभवः आद्यः**	उत्पत्ति हुई वह पहिले मन्वन्तरका
आदयः	आदि	**ते कथितः**	वर्णन तुमसे कर दिया ॥४॥
षट् मनवः	छः मन्वन्तर		
व्यतीताः	बीत चुके हैं		
यत्र	जिसमें		

आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ।
धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥५॥

आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोः तस्य वै मनोः धर्मज्ञान उपदेश अर्थं भगवान् पुत्रतां गतः ॥५॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'ऋषिरुवाच' है ।

मनोः दुहित्रोः	स्वायम्भुव मनुकी पुत्री
आकूत्यां च	आकूति और
देवहूत्यां	देवहूतिसे
वै तस्य	निश्चय उनको
धर्मज्ञान उपदेश अर्थं	धर्म तथा ज्ञानका उपदेश करनेके लिए
भगवान्	भगवान् उनके
पुत्रतां गतः	पुत्र रूपमें अवतीर्ण हुए ॥५॥

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ।
आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥६॥

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्य अनुवर्णितं आख्यास्ये भगवान् यज्ञः यत् चकार कुरुद्वह ॥६॥

कुरुद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !
भगवतः	(इनमें) भगवान्
कपिलस्य	कपिलका
कृतं पुरा	किया (चरित) पहिले
अनुवर्णितं	वर्णन कर चुका हूँ,
भगवान् यज्ञः	(अब आकूति नन्दन) भगवान् यज्ञने
यत् चकार	जो किया,
आख्यास्ये	उसका वर्णन करूँगा ॥६॥

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ।
विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥७॥

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपा पतिः प्रभुः विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यः वनं आविशत् ॥७॥

शतरूपा पतिः	शतरूपाके पति स्वायम्भुव मनु
कामभोगेषु	कामना और भोगों-से
विरक्तः	विरक्त होकर
प्रभुः राज्यं	स्वामी होने पर भी राज्यको
विसृज्य	छोड़कर
सभार्यः तपसे	पत्नीके साथ तपके लिये
वनं आविशत्	वनमें प्रवेश कर गये ॥७॥

सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् ।
तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥८॥

सुनन्दायां वर्षशतं पदा एकेन भुवं स्पृशन् तप्यमानः तपः घोरं इदं अनु आह भारत ॥८॥

भारत	परीक्षित !	**घोरं तपः**	उग्र तप
सुनन्दायां	सुनन्दा नदीके किनारे	**तप्यमानः**	तपते (करते) हुए
एकेन पदा	एक पैरसे	**इदं अनु आह**	इसका बार-बार पाठ करते थे ॥८॥
भुवं स्पृशन्	पृथ्वीको छूते हुए		

मनुरुवाच—

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥९॥

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यं यः जागर्ति शयाने अस्मिन् न अयं तं वेद वेद सः ॥९॥

विश्वं येन चेतयते	विश्व जिसके द्वारा चेतना प्राप्त करता है; किन्तु	**शयाने**	(प्रलय-निद्रामें) सो जानेपर भी
		जागर्ति	जागता रहता है,
यं विश्वं चेतयते न	जिसे विश्व चेतना नहीं दे पाता,	**अयं वेद न तं**	यह जगत उसको नहीं जानता
यः अस्मिन्	जो इस जगतके	**सः वेद**	वह (सबको) जानता है ॥९॥

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥१०॥

आत्मा आवास्यं इदं विश्वं यत् किञ्चित् जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वित् धनम् ॥१०॥

जगत्यां यत्	संसारमें जो	तेन त्यक्तेन	उसीके दिये (प्रसाद) का
किञ्चित्	कुछ	भुञ्जीथा	उपभोग करो
जगत्	उत्पत्तिशील प्राणि समुदाय है	कस्यस्वित् धनं	किसीके भी धनके
इदं विश्वं	यह सब विश्व	गृधः मा	गीध (लोभी) मत बनो ॥१०॥
आत्मा आवास्यं	आत्मासे व्याप्त है,		

यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥११॥

यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुः यस्य न रिष्यति तं भूतनिलयं देवं सुपर्णं उपधावत ॥११॥

यं पश्यन्तं	जिन द्रष्टाको	तं भूतनिलयं	उस सर्वान्तर्यामी
न पश्यति	कोई देख नहीं पाता	सुपर्णं देवं	असंग परमात्माका
यस्य चक्षुः	जिसका ज्ञान	उपधावत	भजन करो ॥११॥
रिष्यति न	क्षीण नहीं होता		

न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः ।
विश्वस्यामूनि यद् यस्माद् विश्वं च तदृतं महत् ॥१२॥

न यस्य आदि अन्तौ मध्यं च स्वः परः न अन्तरं बहिः विश्वस्य अमूनि यत् यस्मात् विश्वं च तत् ऋतं महत् ॥१२॥

यस्य आदि	जिसका आदि	विश्वस्य	जो संसारका है,
अन्तौ मध्यं	अन्त, मध्य	च यस्मात्	तथा इसीसे
च स्वः परः न	तथा अपना-पराया नहीं है,	विश्वं	विश्व उत्पन्न है,
अन्तरं बहिः न	भीतर-बाहर नहीं है,	तत् ऋतं महत्	वही सत्य ब्रह्म है ॥१२॥
यत् अमूनि	क्योंकि ये (आदि-अन्त, भीतर-बाहर)		

स विश्वकायः पुरुहूत ईशः
सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ।
धत्तेऽस्य जन्माद्यजयाऽऽत्मशक्त्या
तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥१३॥

स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयं ज्योतिः अजः पुराणः धत्ते अस्य जन्म आदि अजया आत्म शक्त्या तां विद्यया उदस्य निरीह आस्ते ॥१३॥

स विश्वकायः	वह विश्वरूप,
पुरुहूत	अनन्त नामा
ईशः सत्यः	ईश्वर, सत्य,
स्वयंज्योतिः	स्वयंप्रकाश,
अजः पुराणः	अजन्मा और पुरातन
आत्म शक्त्या	अपनी शक्ति
अजया आत्म	मायासे इस जगतका
जन्म आदि धत्ते	जन्म आदि धारण करता है
तां विद्यया	फिर उस (माया) को ज्ञानशक्तिसे
उदस्य	त्यागकर
निरीह आस्ते	निश्चेष्ट स्थित रहता है ॥१३॥

अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे ।
ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥१४॥

अथ अग्रे ऋषयः कर्माणि ईहन्ते अकर्म हेतवे ईहमानः हि पुरुषः प्रायः अनीहां प्रपद्यते ॥१४॥

अथ अग्रे	इसलिए पहिले
अकर्म हेतवे	नैष्कर्म्म सिद्धिके लिए
ऋषयः कर्माणि	ऋषि लोग भी कर्मोंको
ईहन्ते	करते हैं
हि ईहमानः	क्योंकि चेष्टा करता हुआ
पुरुषः प्रायः	पुरुष प्रायः (थककर)
अनीहां प्रपद्यते	निश्चेष्टिताकी शरण लेता है ॥१४॥

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते ।
आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम् ॥१५॥

ईहते भगवान् ईशः न हि तत्र विषज्जते आत्म लाभेन पूर्ण अर्थः न अवसीदन्ति ये अनु तम् ॥१५॥

ईशः भगवान्	सर्वसमर्थ भगवान् भी	**पूर्ण अर्थः**	पूर्ण प्रयोजन हैं,
ईहते तत्र	चेष्टा करते हैं; किन्तु उसमें	**ये तं अनु**	जो उनके पीछे चलते हैं वे
विषज्जते न हि	आसक्त नहीं होते	**अवसीदन्ति न**	कष्ट नहीं पाते ॥१५॥
आत्म लाभेन	आत्मलाभसे ही वे		

तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं
निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ।
नृज् शिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं
प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥१६॥

तं ईहमानं निः अहंकृतं बुधं निःआशिषं पूर्णं अनन्य चोदितं नृज् शिक्षयन्तं निजवर्त्म संस्थितं प्रभुं प्रपद्ये अखिल धर्म भावनम् ॥१६॥

तं निः अहंकृतं	उन अहंकारहीन	**निजवर्त्म**	अपने मार्गपर
बुधं निःआशिषं	ज्ञानघन, निष्काम,	**संस्थितं**	स्थित होकर
पूर्णं	परिपूर्ण,	**ईहमानं**	कर्म करनेवाले
अनन्य चोदितं	अन्यसे प्रेरित न होनेवाले,	**अखिल धर्म भावनं**	समस्त धर्मोंके प्रवर्तक
नृज् शिक्षयन्तं	मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिए	**प्रभुं प्रपद्ये**	प्रभुकी मैं शरण लेता हूँ ॥१६॥

श्रीशुकउवाच—

इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् ।
दृष्ट्वासुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन् क्षुधा ॥१७॥

इति मन्त्र उपनिषदं व्याहरन्तं समाहितं दृष्ट्वा असुरा यातुधाना जग्धुं अभ्यद्रवन् क्षुधा ॥१७॥

इति	इस प्रकार	**असुरा**	असुर और
मन्त्र उपनिषदं	मन्त्रात्मक उपनिषद्- का	**यातुधाना**	राक्षस
		क्षुधा जग्धुं	भूखसे व्याकुल (उन्हें) खानेके लिए
व्याहरन्तं	(उनको) उच्चारण करते	**अभ्यद्रवन्**	उनकी ओर दौड़े ॥१७॥
दृष्ट्वा	देखकर		

तांस्तथावसितान् वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः ।
यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाशासत् त्रिविष्टपम् ॥१८॥

तान् तथा अवसितान् वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतः हरिः यामैः परिवृतः देवैः हत्वा अशासत् त्रिविष्टपम् ॥१८॥

सर्वगतः हरिः	सर्वव्यापक श्रीहरि	**परिवृतः हत्वा**	घिरे हुए वहां आकर उनको मार- कर
यज्ञः तान्	यज्ञने उनको		
तथा अवसितान्	ऐसा निश्चय करते		
वीक्ष्य	देखकर	**त्रिविष्टपं**	स्वर्गका
यामैः देवैः	याम नामक देव- ताओंसे	**अशासत्**	शासन किया ॥१८॥

स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् ।
द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥१९॥

स्वारोचिषः द्वितीयः तु मनुः अग्नेः सुतः अभवत् द्युमत् सुषेण रोचिष्मत् प्रमुखाः तस्य च आत्मजाः ॥१९॥

अग्नेः सुतः	अग्निके पुत्र	**द्युमत् सुषेण च रोचिष्मत् तस्य**	द्युमत्, सुषेण और रोचिष्मान् उनके
स्वारोचिषः	स्वारोचिष		
द्वितीयः तु मनुः	दूसरे ही मनु	**प्रमुखाः**	मुख्य
अभवत्	हुए	**आत्मजाः**	पुत्र हुए ॥१९॥

तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासीद् देवाश्च तुषितादय: ।
ऊर्जस्तम्भादय: सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिन: ॥२०॥

तत्र इन्द्र: रोचन: तु आसीत् देवा: च तुषित आदय: ऊर्जस्तम्भ आदय: सप्त ऋषय: ब्रह्म वादिन: ॥२०॥

तत्र रोचन: तु	उस मन्वन्तरमें रोचन तो	**ऊर्जस्तम्भ आदय:**	ऊर्जस्तम्भ आदि
इन्द्र: आसीत्	इन्द्र था,	**ब्रह्म वादिन:**	वेदवादी
च देवा:	और देवता	**सप्त ऋषय:**	सप्तर्षि हुए ॥२०॥
तुषित आदय:	तुषित आदि थे,		

ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत् ।
तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुत: ॥२१॥

ऋषे: तु वेद शिरस: तुषिता नाम पत्नि अभूत् तस्यां जज्ञे तत: देव: विभु: इति अभिविश्रुत: ॥२१॥

वेदशिरस: ऋषे: तु	वेदशिरा ऋषिकी तो	**विभु: इति अभिविश्रुत:**	विभु इस नामसे अत्यन्त प्रसिद्ध
तुषिता नाम	तुषिता नामकी		
पत्नि अभूत्	पत्नी थी,	**जज्ञे**	अवतार लिया ॥२१॥
तत: तस्यां देव:	उस युगमें उससे भगवान्ने		

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रता: ।
अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिण: ॥२२॥

अष्ट अशीति सहस्राणि मुनय: ये धृतव्रता: अन्वशिक्षन् व्रतं तस्य कौमार ब्रह्म चारिण: ॥२२॥

कौमार	कुमारावस्थासे	ये मुनयः	जो मुनि
ब्रह्मचारिणः	ब्रह्मचारी	धृतव्रताः	व्रतधारी थे (उन्होंने)
अष्ट अशीति	अट्ठासी	तस्य व्रतं	उनके ही व्रतसे
सहस्राणि	हजार	अन्वशिक्षन्	शिक्षा ली थी ॥२२

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ।
पवनः सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥२३॥

तृतीय उत्तमः नाम प्रियव्रतसुतः मनुः पवनः सृञ्जयः यज्ञहोत्र आदयः तत् सुता नृप ॥२३॥

नृप	राजन् !	पवनः सृञ्जयः	पवन, सृंजय,
प्रियव्रतसुतः	प्रियव्रतके पुत्र	अग्निहोत्र	अग्निहोत्र
उत्तमः नाम	उत्तम नामके	आदयः	आदि
तृतीय मनुः	तीसरे मनु हुए	तत् सुता	उनके पुत्र थे ॥२३॥

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयः ।
सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥२४॥

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमद आदयः सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रः तु सत्यजित् ॥२४॥

वसिष्ठतनयाः	वशिष्ठजीके पुत्र	भद्रा देवा	भद्र ये देवता हुए,
प्रमद आदयः	प्रमद आदि	सत्यजित् तु	सत्यजित् तो
सप्त ऋषयः	सप्तर्षि हुए,	इन्द्रः	इन्द्र हुए ॥२४॥
सत्या वेदश्रुता	सत्य, वेदश्रुत,		

धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ।
सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥२५॥

धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान् पुरुषोत्तमः सत्यसेन इति ख्यातः जातः सत्यव्रतैः सह ॥२५॥

भगवान्	भगवान्	सत्यव्रतैः सह	सत्यव्रतोंके साथ
पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तम,	सत्यसेन	सत्यसेन
धर्मस्य तु	धर्मकी तो (पत्नी)	इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध
सूनृतायां	सूनृतासे	जातः	उत्पन्न हुए ॥२५॥

सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् ।
भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत् सत्यजित्सखः ॥२६॥

सः अनृतव्रत दुःशीलान् असतः यक्ष राक्षसान् भूतद्रुहः भूतगणान् तु अवधीत् सत्यजित् सखः ॥२६॥

सत्यजित् सखः	देवराज सत्यजित्के मित्र होकर	राक्षसान्	राक्षस तथा
		भूतद्रुहः	प्राणियोंके द्रोही
अनृतव्रत	असत्य परायण,	भूतगणान् तु	भूतगणोंको तो
दुःशीलान्	दुराचारी	सः अवधीत्	उन्होंने मार दिया
असतः यक्ष	दुष्ट यक्ष		॥२६॥

चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ।
पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥२७॥

चतुर्थ उत्तम भ्राता मनुः नाम्ना च तामसः पृथुः ख्यातिः नरः केतुः इति आद्या दश तत् सुताः ॥२७॥

तामसः नाम्ना	तामस नामके	नरः केतुः	नर, केतु
उत्तम भ्राता	उत्तमके भाई	आद्या इति	आदि इस प्रकार
चतुर्थ मनुः	चौथे मनु हुए	तत् दश सुताः	उनके दस पुत्र थे
च पृथुः ख्यातिः	तथा पृथु, ख्याति,		॥२७॥

सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ।
ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥२८॥

सत्यका हरयः वीरा देवाः त्रिशिख ईश्वरः ज्योतिः धाम आदयः सप्त ऋषयः तामसे अन्तरे ॥२८॥

तामसे अन्तरे	तामस मन्वन्तरमें	**त्रिशिख ईश्वरः**	त्रिशिख इन्द्र था,
सत्यका हरयः	सत्यका, हरि,	**ज्योतिः धाम**	ज्योतिधाम
वीरा	वीर,	**आदयः**	आदि
देवाः	ये देवगण थे,	**सप्त ऋषयः**	सप्तर्षि थे ॥२८॥

देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप ।
नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥२९॥

देवा वैधृतयः नाम विधृतेः तनया नृप नष्टाः कालेन यैः वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥२९॥

नृप	राजन ! (उस समय)	**यैः स्वेन तेजसा**	जिन्होंने अपने तेजसे
विधृतेः तनया	विधृतिके पुत्र	**कालेन नष्टाः**	बहुत समय बीतने-से लुप्त हुए
वैधृतयः नाम देवा	वैधृति नामके (कुछ और) देवता हुए	**वेदा विधृताः**	वेदोंकी रक्षा की ॥२९॥

तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ।
हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात् ॥३०॥

तत्र अपि जज्ञे भगवान् हरिण्यां हरिमेधसः हरिः इति आहृतः येन गजेन्द्रः मोचितः ग्रहात् ॥३०॥

तत्र अपि	उस मन्वन्तरमें भी	**आहृतः**	नामसे प्रसिद्ध
हरिमेधसः	हरिमेधा ऋषिकी पत्नी	**भगवान् जज्ञे**	भगवान् अवतीर्ण हुए,
हरिण्यां	हरिणीसे	**येन गजेन्द्रः**	जिन्होंने गजेन्द्रको
हरिः इति	हरि इस	**ग्रहात् मोचितः**	ग्राहसे छुड़ाया ॥३०॥

राजोवाच—

बादरायण एतत् ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥३१॥

बादरायण एतत् ते श्रोतुं इच्छामहे वयं हरिः यथा गजपतिं ग्राह-ग्रस्तं अमूमुचत् ॥३१॥

बादरायण	शुकदेवजी !	**हरिः अमूमुचत्**	श्रीहरिने छुड़ा दिया
यथा ग्राहग्रस्तं	जैसे मगर द्वारा पकड़े	**एतत् ते**	यह आपसे
		वयं श्रोतुं	हम सब सुनना
गजपतिं	गजेन्द्रको	**इच्छामहे**	चाहते हैं ॥३१॥

तत्कथा सुमहत् पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ।
यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान्गीयते हरिः ॥३२॥

तत् कथा सु महत् पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभं यत्र यत्र उत्तम श्लोकः भगवान् गीयते हरिः ॥३२॥

यत्र यत्र	जहां-जहां	**महत् पुण्यं**	बहुत पुण्यप्रद,
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिका	**धन्यं स्वस्त्ययनं**	धन्य, कल्याणकारी
गीयते तत्	वर्णन होता है, वह	**शुभं**	शुभ है ॥३२॥
कथा सु	कथा तो		

सूत उवाच–

परीक्षितैवं स तु बादरायणिः
प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ।
उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं
मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥३३॥

परीक्षिता एवं स तु बादरायणिः प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥३३॥

विप्राः	विप्रगणो !	**प्रायोपविष्टेन**	निर्जल व्रत करके बैठे

परीक्षिता	परीक्षित द्वारा	**सदसि स्म**	सभामें ही
एवं कथासु	इस प्रकार कथाके लिए	**शृण्वतां**	सबके सुनते हुए
		पार्थिवं	राजाका
चोदितः	प्रेरित किये जानेपर	**प्रतिनन्द्य**	अभिनन्दन करके
स तु	तो उन	**मुदा उवाच**	प्रसन्नतासे कहा ॥३३॥
बादरायणिः	शुकदेवजीने		
मुनीनां	मुनियोंकी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायांअष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुचरिते प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

आसीद् गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥१॥

आसीत् गिरिवरः राजन् त्रिकूट इति विश्रुतः क्षीरोदेन आवृतः श्रीमान् योजन अयुतं उच्छ्रितः ॥१॥

राजन्	राजन् !	श्रीमान्	शोभा सम्पन्न
क्षीरोदेन	क्षीरसागरसे	त्रिकूट इति	त्रिकूट इस नामसे
आवृतः	घिरा,	विश्रुतः	प्रसिद्ध
योजन अयुतं	दस हजार योजन	गिरिवरः	श्रेष्ठपर्वत
उच्छ्रितः	ऊँचा	आसीत्	था ॥१॥

तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् ।
दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥२॥

तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिं दिशः खं रोचयन् आस्ते रौप्य आयस हिरण्मयैः ॥२॥

पर्यक् तावता	चारों ओर उतना ही	पयोनिधिं	क्षीरसागर,
विस्तृतः	फैला हुआ था,	दिशः खं	दिशाओं तथा आकाशको
रौप्य आयस	चांदी, लोहे,	रोचयन् आस्ते	सुशोभित करता
हिरण्मयैः	स्वर्णमय		था ॥२॥
त्रिभिः शृङ्गैः	तीनों शिखरोंसे		

अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥३॥

अन्यैः च ककुभः सर्वा रत्न धातु विचित्रितैः नाना द्रुम लता गुल्मः निर्घोषैः निर्झर अम्भसाम् ॥३॥

रत्न धातु	रत्न-धातुओंके	लता गुल्मैः	लता, झुरमुटोंसे
विचित्रितैः	अनेक प्रकारके		तथा
अन्यैः सर्वा	दूसरे सब	निर्झर अम्भसां	झरनोंके जलकी
ककुभः च	शिखरोंसे भी	निर्घोषैः	ध्वनिसे (गूंजता
	(युक्त था)		था) ॥३॥
नाना द्रुम	(उसपर) अनेक		
	प्रकारके वृक्ष,		

स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात् पयउर्मिभिः ।
करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥४॥

स च अवनिज्यमान अङ्घ्रिः समन्तात् पयउर्मिभिः करोति श्यामलां भूमिं हरिन् मरकत अश्मभिः ॥४॥

पयउर्मिभिः	क्षीरसागरकी	हरिन् मरकत	हरे रंगकी मरकत
	लहरोंसे	अश्मभिः	शिलाओंसे
समन्तात्	चारों ओरसे	स च भूमिं	वह तो पृथ्वीको
अङ्घ्रिः	निचला भाग	श्यामलां	सांवली
अवनिज्यमान	सींचे जाते हुए	करोति	बनाता था ॥४॥

सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥५॥

सिद्ध चारण गन्धर्व विद्याधर महा उरगैः किन्नरैः अप्सरः भिः च क्रीडत् भिः जुष्ट कन्दरः ॥५॥

क्रीडद्भिः	खेलते हुए	किन्नरैः च	किन्नरों तथा
सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,	अप्सरः भिः	अप्सराओं द्वारा
गन्धर्व विद्याधर	गन्धर्व, विद्याधर	कन्दरः जुष्ट	(उसकी) गुफाएँ
महा उरगैः	महा नाग,		भरी रहती थीं ॥५॥

यत्र संगीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ।
अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥६॥

यत्र संगीत सन्नादैः नदत् गुहं अमर्षया अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥६॥

यत्र संगीत	जहां संगीतके	परशङ्कया	दूसरे (सिंह) की
सन्नादैः नदत्	उच्च ध्वनिसे		आशङ्कासे
	गूंजती	श्लाघिनः	गरबीले
गुहं अमर्षया	गुफाओंकी असहि-	हरयः	सिंह
	ष्णुतासे,	अभिगर्जन्ति	बार-बार गर्जना
			करते थे ॥६॥

नानारण्यपशुव्रातसङ्कुलद्रोण्यलङ्कृतः ।
चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥७॥

नाना अरण्य पशुव्रात संकुल द्रोणि अलंकृतः चित्रद्रुम सुरउद्यान कलकण्ठ विहङ्गमः ॥७॥

नाना अरण्य	अनेक प्रकारके	चित्रद्रुम	अनेक प्रकारके
	जंगली		वृक्षोंके
पशुव्रात	पशुओंके झुण्डोंसे	सुरउद्यान	देवोद्यानमें
संकुल द्रोणि	भरी हुई घाटी	कलकण्ठ	मधुर स्वरवाले
अलंकृतः	सुशोभित थी,	विहङ्गमः	पक्षी थे ॥७॥

सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः ।
देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्बुनिलैर्युतः ॥८॥

सरित् सरोभिः अच्छोदैः पुलिनैः मणिवालुकैः देवस्त्री मज्जन आमोद सौरभ अम्बु अनिलैः युतः ॥८॥

अच्छोदैः	स्वच्छ जलवाले	देवस्त्री मज्जन	देवियोंके स्नान करनेसे
मणिवालुकैः	मणिमय रेतवाले	आमोद सौरभ	सुगन्धसे सुवासित
पुलिनैः	पुलिनोंसे युक्त	अम्बु अनिलैः	जलसे चलती वायुसे
सरित् सरोभिः	नदियों, सरोवरोंमें	युतः	युक्त था ॥८॥

तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ।
उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥९॥

तस्य द्रोण्यां भगवतः वरुणस्य महात्मनः उद्यानं ऋतुमत् नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥९॥

तस्य द्रोण्यां	उसकी घाटीमें	आक्रीडं	क्रीडा-स्थान
महात्मनः	महामना	ऋतुमत् नाम	ऋतुमत् नामका
वरुणस्य	वरुणका	उद्यानं	क्रीडोद्यान था ॥९॥
सुरयोषितां	देवस्त्रियोंका		

सर्वतोऽलङ्कृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः ।
मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ॥१०॥

सर्वतः अलंकृतं दिव्यैः नित्यं पुष्पफल द्रुमैः मन्दारैः पारिजातैः च पाटल अशोक चम्पकैः ॥१०॥

नित्यं पुष्पफलैः	सदा पुष्प, फलवाले	पारिजातैः	पारिजात,
दिव्यैः द्रुमैः	दिव्य वृक्षोंसे	च पाटल,	तथा गुलाब,
सर्वतः अलंकृतं	चारों ओरसे सुसज्जित था,	अशोक	अशोक
मन्दारैः	मन्दार,	चम्पकैः	चम्पासे ॥१०॥

चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ।
क्रमुकैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥११॥

चूतैः प्रियालैः पनसैः आम्रैः आम्रातकैः अपि क्रमुकैः नालिकेरैः च खर्जूरैः बीज पूरकैः ॥११॥*

चूतैः	स्वयं पककर टपकने-वाला आम,	क्रमुकैः	सुपारी
		नालिकेरैः	नारियल,
प्रियालैः	पयाल, कटहल	च खर्जूरैः	तथा खजूर,
पनसैः	आम	बीज पूरकैः	बिजौरा ॥११॥
आम्रैः			
आम्रातकैः अपि	आमड़ा,		

मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ।
अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥१२॥

मधूकैः (महुआ) साल, (साखू) तालैः (ताड) च तमालैः असन, अर्जुनैः, अरिष्ट (बहेड़ा) उदुम्बर (गूलर) प्लक्षैः (पाकर) वटैः (बरगद) किंशुक (पलाश) चन्दनैः ॥१२॥

पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः ।
द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥१३॥

पिचुमन्दैः (नीम) कोविदारैः (कचनार) सरलैः (साल) सुरदारुभिः (देवदार) द्राक्षा (मुनक्का) इक्षुः (ईख) अम्भा (केला) जम्बूभिः (जामुन) बदरी (बेर) यक्षा (बहेड़ा) अभया (हर्र) आमलैः (आंवला) ॥१३॥

बिल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ।
तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥१४॥

---

* दिव्य सुरोद्यानका वर्णन है, अतः वहां पृथ्वीके सब प्रदेशोंके वृक्ष हैं। वृक्षोंके सब नाम परिचित नहीं हैं। जो परिचित हैं उनके नाम आगे कोष्टकमें हैं।

बिल्वैः (बेल) कपित्थैः (कैथ) जम्बीरैः (नीबू) वृतः भल्लातक (भिलावा) आदिभिः तस्मिन् सरः सुविपुलं लसत् काञ्चन पङ्कजम् ॥१४॥

काञ्चन पङ्कजं	स्वर्ण-कमलसे	सुविपुलं सरः	बहुत बड़ा सरोवर
लसत् तस्मिन्	शोभित उसमें		था ॥१४॥

कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ।
मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥१५॥

कुमुद उत्पल कह्लार शतपत्र श्रिया उर्जितं मत्तषट्पद निर्घुष्टं शकुन्तैः च कलस्वनैः ॥१५॥

कुमुद	कुमुदिनी,	मत्तषट्पद	मतवाले भौंरे
उत्पल	श्वेत-कमल,	निर्घुष्टं	गुंजार करते थे।
कह्लार	लाल कमल	च कलस्वनैः	तथा मधुर स्वरवाले
शतपत्र	शतदल कमलसे	शकुन्तैः	पक्षी भी थे ॥१५॥
श्रिया उर्जितं	बहुत शोभा हो गयी थी।		

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ।
जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥१६॥

हंस कारण्डव आकीर्णं चक्राह्वैः सारसैः अपि जलकुक्कुट कोयष्टिः आत्यूहकुल कूजितम् ॥१६॥

हंस कारण्डव	हंस, टिटिहरी,	जलकुक्कुट	जलमुर्गे
चक्राह्वैः	चकोरों,	कोयष्टिः	कोयल तथा
सारसैः अपि	सारसोंसे भी	आत्यूहकुल	पपीहोंके समूहसे
आकीर्णं	भरा हुआ था,	कूजितं	कूजित था ॥१६॥

मत्स्यकच्छपसञ्चारचलत्पद्मरजःपयः ।
कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैर्वृतम् ॥१७॥

मत्स्य कच्छप संचार चलत् पद्मरजः पयः कदम्ब वेतस नल नीप वञ्जुलकैः वृतम् ॥१७॥

मत्स्य	मछलियों तथा	कदम्ब वेतस	कदम्ब, बेत,
कच्छप	कछुओंके	नल नीप	नरकुल, नीप,
संचार चलत्	चलनेसे हिलते	वञ्जुलकैः वृतं	बकुलसे घिरा था ॥१७॥
पद्मरज पयः	कमल परागसे जल युक्त था,		

कुन्दैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेङ्गुदैः ।
कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥१८॥

कुन्दैः कुरबक अशोकैः शिरीषैः कुटज इङ्गुदैः कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिः नाग पुन्नाग जातिभिः ॥१८॥

कुन्दैः कुरबक	कुन्द, कुरबक,	स्वर्णयूथीभिः	सोनजुहीसे,
अशोकैः शिरीषैः	अशोक, सिरस,	नाग पुन्नाग	नाग, पुन्नाग
कुटज इङ्गुदैः	कुटज, इंगुदी,	जातिभिः	जाती (कुन्दी) से ॥१८॥
कुब्जकैः	बेला,		

मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ।
शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥१९॥

मल्लिका शतपत्रैः च माधवी जालक आदिभिः शोभितं तीरजैः च अन्यैः नित्य ऋतुभिः अलं द्रुमैः ॥१९॥

मल्लिका च	चमेली तथा	तीरजैः	किनारेके
शतपत्रैः	शतपत्र,	नित्य ऋतुभिः	सभी ऋतुओंके
माधवी जालक	माधवी, मोगरा	द्रुमैः अलं	वृक्षोंसे बहुत
आदिभिः	आदिसे	शोभितं	शोभित था ॥१९॥
अन्यैः च	दूसरे भी		

तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः
करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ।
सकण्टकान् कीचकवेणुवेत्रवद्
विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥२०॥

तत्र एकदा तद् गिरिकानन आश्रयः करेणुभिः वारण यूथपः चरन् सकण्टकान् कीचक वेणु वेत्रवत् विशाल गुल्मं प्ररुजन् वनस्पतीन् ॥२०॥

तत्र एकदा	वहां एक बार	वेत्रवत्	बेंतोवाले
तद्	उस	विशाल गुल्मं	बड़े झुरमुटोंके
गिरिकानन्	पर्वतके वनमें	वनस्पतीन्	पौधोंको
आश्रयः	रहनेवाला	प्ररुजन्	रौदता
वारण यूथपः	यूथपति गजराज	करेणुभिः चरन्	हथिनियोंके साथ घूमता था
सकण्टकान्	कांटेवाले		
कीचक वेणु	कीचक बांस तथा		

यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा
व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः ।
महोरगाश्चापि भयाद् द्रवन्ति
सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥२१॥

यत् गन्धमात्रात् हरयः गजेन्द्रा व्याघ्रआदयः व्याल मृगाः सखड्गाः महोरगाः च अपि भयात् द्रवन्ति स गौर कृष्णाः शरभाः चमर्यः ॥२१॥

यद्	जिसकी	महोरगाः	अजगर
गन्धमात्रात्	गन्धमात्रसे	अपि	भी
हरयः गजेन्द्रा	सिंह, दूसरे गजराज,	स गौर कृष्णाः	गौर, (भूरे) काले
व्याघ्र आदयः	बाघ आदि	शरभाः चमर्यः	सांभर और चमरी (याक)
मृगाः	जंगली पशु	भयात् द्रवन्ति	भयसे भाग जाते थे ॥२१॥
सखड्गाः	गैंडेके साथ		
व्याल च	सर्प और		

वृका वराहा महिषर्क्षशल्या
गोपुच्छसालावृकमर्कटाश्च ।
अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादय-
श्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥२२॥

वृका वराहा महिष ऋक्ष शल्या गोपुच्छ सालावृक मर्कटाः च अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शश आदयः चरन्ति अभीता यत् अनुग्रहेण ॥२२॥

यत् अनुग्रहेण	जिसकी कृपासे	मर्कटाः	बन्दर
वृका वराहा	भेड़िये, सुअर,	च अन्यत्र क्षुद्रा	तथा दूसरे छोटे प्राणी
महिष ऋक्ष	भैंसे, रीछ,	हरिणाः शश	हिरन, खरगोश
शल्या गोपुच्छ	सेही, गोपुच्छ (बानर विशेष)	आदयः	आदि
सालावृक	कुत्ते तथा	अभीता चरन्ति	निर्भय घूमते थे ॥२२

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभि-
र्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः ।
गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्
निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥२३॥

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिः वृतः मदच्युत् कलभैः अनुद्रुतः गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन् निषेव्यमाणः अलिकुलैः मद अशनैः ॥२३॥

स घर्मतप्तः	वह धूपसे संतप्त होकर	अलिकुलैः	भौरोंके झुण्डोंसे
करिभिः	दूसरे हाथियों	निषेव्यमाणः	सेवित
करेणुभिः	हथिनियोंसे	कलभैः	हाथियोंके बच्चे
वृतः	घिरा हुआ,	अनुद्रुतः	उसके पीछे भाग रहे थे,
मदच्युत्	(कपोलों) से मद बहाता;	गरिम्णा	अपने भारी भारसे
मद अशनैः	उस मदको पीनेवाले	परितः गिरिं	चारों ओरसे पर्वतको
		प्रकम्पयन्	कंपाता हुआ ॥३२॥

सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं
जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ।
वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्
सरोवराभ्याशमथागमद् द्रुतम् ॥२४॥

सरः अनिलं पङ्कजरेणु रूषितं जिघ्रन् विदूरात् मद विह्वल ईक्षणः वृतः स्वयूथेन तृषा अर्दितेन तत् सरोवर अभ्याशं अथ आगमत् द्रुतम् ॥२४॥

पङ्कजरेणु	कमल-पराग	तृषा अर्दितेन	प्याससे पीड़ित
रूषितं	सुवासित	स्वयूथेन वृतः	अपने यूथसे घिरा,
सरः अनिलं	सरोवरकी वायुको	तत्	उस (पूर्व वर्णित)
विदूरात् जिघ्रन्	दूरसे सूंघता हुआ	सरोवर	सरोवरके
मद विह्वल	मदसे चञ्चल	अभ्याशं द्रुतं	समीप वेगसे चलता
ईक्षणः	नेत्र,	अथ आगमत्	तब जा पहुँचा ॥२४॥

विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बु निर्मलं
हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम् ।
पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृत-
मात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥२५॥

विगाह्य तस्मिन् अमृत अम्बु निर्मलं हेम अरविन्द उत्पल रेणु वासितं पपौ निकामं निजपुष्कर उद्धृतं आत्मानं अद्भिः स्नपयन् गत क्लमः ॥२५॥

तस्मिन्	उस (सरोवर) में	निजपुष्कर	अपनी सूंड़से
विगाह्य	घुसकर	उद्धृतं	उठाकर
हेम अरविन्द	स्वर्ण-कमल तथा	निकामं पपौ	जीभरकर पिया,
उत्पल	श्वेत कमलोंके	अद्भिः आत्मानं	फिर जलसे अपनेको
रेणु	परागसे	स्नपयन्	स्नान कराकर
वासितं निर्मलं	सुवासित निर्मल	गत क्लमः	श्रमहीन हो गया
अमृत अम्बु	अमृतके समान जल		॥२५॥

स्वपुष्करेणोद्धृतशीकराम्बुभि-
र्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ।
घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो
नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥२६॥

स्वपुष्करेण उद्धृत शीकर अम्बुभिः निपाययन् संस्नपयन् यथा गृही घृणीः करेणूः कलभात् च दुर्मदः न अचष्ट कृच्छ्रं कृपणः अजमायया ॥२६॥

गृही यथा	गृहस्थके समान	कलभात्	हाथीके बच्चोंको
घृणीः	मोहग्रस्त होकर	निपाययन्	जल पिलाने और
स्वपुष्करेण	अपनी सूँड़में	संस्नपयन्	स्नान करानेमें लगा
उद्धृत	उठाये	दुर्मदः कृपणः	मदमत्त बेचारा
अम्बुभिः	जलकी	अजमायया	भगवान्‌की मायासे
शीकर	फुहारसे	कृच्छ्रं न अचष्ट	अपने संकटको नहीं
करेणूः च	हथिनियों और		देख सका ॥२६॥

तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो
ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाग्रहीत् ।
यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो
यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥२७॥

तं तत्र कश्चित् नृप दैव चोदितः ग्राहः बलीयान् चरणे रुषा अग्रहीत् यदृच्छया एवं व्यसनं गतः गजः यथा बलं सः अतिबलः विचक्रमे ॥२७॥

नृप	राजन् !	तं चरणे	उसको पैरसे
तत्र दैव	वहां दैवकी	अग्रहीत्	पकड़ लिया
चोदितः	प्रेरणासे	यदृच्छया एवं	अचानक इस प्रकार
कश्चित्	किसी	व्यसनं गतः	संकटमें पड़कर
बलीयान्	बलवान	सः अतिबलः	वह अत्यन्त बलवान
ग्राहः रुषा	मगरने क्रोधसे	गज यथाः	गजराज भी अपने

बलं	बलके अनुसार	**विचक्रमे**	(छूटनेका) उद्योग करने लगा ॥२७॥

तथाऽऽतुरं यूथपतिं करेणवो
विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ।
विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः
पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥२८॥

तथा आतुरं यूथपतिं करेणवः विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा विचुक्रुशुः दीनधियः अपरे गजाः पार्ष्णि ग्रहाः तारयितुं न च अशकन् ॥२८॥

यूथपतिं	यूथपतिको	**अपरे गजाः**	दूसरे हाथी और
तथा आतुरं	उस प्रकार व्याकुल,	**करेणवः**	हथिनियाँ
बलीयसा	बलवान् (ग्राह द्वारा)	**तारयितुं**	निकाल देनेमें
		अशकन् न	समर्थ नहीं हुए
तरसा	बलपूर्वक	**च दीनधियः**	और आतुर बुद्धि
विकृष्यमाणं	खींचे जानेसे	**विचुक्रुशुः**	चिल्लाने लगे ॥२८॥
पार्ष्णि ग्रहाः	समीप खड़े		

नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयो-
र्विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः ।
समाः सहस्रं व्यगमन् महीपते
सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥२९॥

नियुध्यतः एवं इभेन्द्र नक्रयोः विकर्षतः अन्तरतः बहिः मिथः समाः सहस्रं व्यगमन् महीपते स प्राणयोः चित्रं अमंसता अमराः ॥२९॥

महीपते	राजन्	**एवं नियुध्यतः**	इस प्रकार युद्ध करते हुए
स प्राणयोः	अत्यन्त बलवान		
इभेन्द्र नक्रयोः	गजराज और मगर-के	**मिथः अन्तरतः**	परस्पर भीतर और
		बहिः	बाहर

विकर्षतः	खींचते हुए	अमराः	देवताओंने भी (इसे)
सहस्रं समाः	एक सहस्र वर्ष	चित्रं अमंसता	आश्चर्य जनक माना ॥२९॥
व्यगमन्	बीत गये		

ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां
कालेन दीर्घेण महानभूद् व्ययः ।
विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो
विपर्ययोऽभूत् सकलं जलौकसः ॥३०॥

ततः गजेन्द्रस्य मनः बल ओजसां कालेन दीर्घेण महान् अभूत् व्ययः विकृष्यमाणस्य जले अवसीदतः विपर्ययः अभूत् सकलं जल ओकसः ॥३०॥

ततः जले	तब जलमें	ओजसां	तेजस्विताका
दीर्घेण कालेन	बहुत लम्बे समय तक	महान् व्ययः	भारी व्यय
		अभूत्	हुआ; किन्तु
विकृष्यमाणस्य	खींचे जाते हुए	जल ओकसः	जलचर मगरका
अवसीदतः	कष्ट पाते हुए	सकलं	सब
गजेन्द्रस्य	गजेन्द्रके	विपर्ययः	उलटा (बढ़ना)
मनः बल	मनोबल,	अभूत्	हुआ ॥३०॥

इत्थं गजेन्द्रः स यदाऽऽप संकटं
प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ।
अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं
दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥३१॥

इत्थं गजेन्द्रः स यदा आप संकटं प्राणस्य देही विवशः यदृच्छया अपारयन् आत्मविमोक्षणे चिरं दध्याः इमां बुद्धिं अथ अभ्यपद्यत ॥३१॥

यदा स गजेन्द्रः	जब उस गजेन्द्रने	संकटं देही	संकट जीवने
इत्थं प्राणस्य	इस प्रकार प्राणका	यदृच्छया	अचानक

आप	पाया तो	अथ इमां बुद्धिं	तब इस विचारको
आत्मविमोक्षणे	अपने छुड़ानेमें	अभ्यपद्यत	प्राप्त कर सका
अपारयन्	असमर्थ होकर		॥३१॥
चिरं दध्याः	देर तक सोचनेपर		

न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः
कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम् ।
ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतो-
ऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥३२॥

न मां इमे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुं ग्राहेण पाशेन विधातुः आवृतः अपि अहं च तं यामि परं परायणम् ॥३२॥

विधातुः	विधाताके	करिण्यः कुतः	हथिनियां कैसे
ग्राहेण पाशेन	मगर रूपी फन्देमें		(सफल) होंगी,
आवृतः मां	फँसे हुए मुझे	च अहं अपि	अतः मैं भी
आतुरं ज्ञातयः	व्याकुल मेरी जातिके	तं परं परायणं	उन परम पुरुषकी
गजाः मोचितुं	हाथी छुड़ानेमें (जब)		शरण
प्रभवन्ति न	समर्थ नहीं हो रहे (तब)	यामि	जाऊँगा ॥३२॥

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भया-
न्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥३३॥

यः कश्चन ईशः बलिनः अन्तक उरगात् प्रचण्डवेगात् अभिधावतः भृशं भीतं प्रपन्नं परिपाति यद् भयात् मृत्युः प्रधावति अरणं तं ईमहि ॥३३॥

यः बलिनः	जो बलवान
प्रचण्डवेगात्	भयंकर वेगसे
भृशं	बराबर
अभिधावतः	चारों ओर दौड़ते
अन्तक उरगात्	कालरूपी सर्पसे
भीतं प्रपन्नं	डरे हुए शरणागत-की
परिपाति	रक्षा करता है,
यद् भयात्	जिसके भयसे
मृत्युः प्रधावति	मौत दौड़ती है
तं कश्चन ईशः	उस किसी सर्व-समर्थ
अरणं	रक्षककी
ईमहि	मैं शरण लेता हूँ ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णने गजेन्द्रोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

एवं व्यवसितो बुद्धया समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

एवं व्यवसितः बुद्ध्या समाधाय मनः हृदि जजाप परमं जाप्यं प्राक् जन्मनि अनुशिक्षितम् ॥१॥

एवं बुद्ध्या	इस प्रकार बुद्धिसे	**अनुशिक्षितं**	सीखे हुए
व्यवसितः	निश्चय करके	**परमं जाप्यं**	इस उत्तम स्तोत्रका
मनः हृदि	मनको हृदयमें	**जजाप**	पाठ करने लगा ॥१॥
समाधाय	एकाग्र करके,		
प्राक् जन्मनि	पूर्व जन्ममें		

गजेन्द्र उवाच–

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥

ॐ नमः भगवते तस्मै यत एतत् चिदात्मकं पुरुषाय आदि बीजाय पर ईशाय अभिधीमहि ॥२॥

ॐ तस्मै	ओंकार स्वरूप उस	**आदि बीजाय**	(सृष्टिके) आदि कारण
भगवते	भगवान्‌को	**पुरुषाय**	पुरुष
नमः	नमस्कार	**पर ईशाय**	परमेश्वरका
यत एतत्	जिनसे इस (शरीरादिको)	**अभिधीमहि**	मैं ध्यान करता हूँ ॥२॥
चिदात्मकं	चेतन स्वरूपता मिलती है,		

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥ ३ ॥

यस्मिन् इदं यतः च इदं येन इदं य इदं स्वयं यः अस्मात् परस्मात् च परं तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥३॥

यस्मिन् इदं	जिनमें यह जगत् है,	**यः अस्मात्**	जो इस कार्यरूप
च यतः इदं	और जिनसे यह (उत्पन्न) है,	**च**	तथा
येन इदं	जिनसे यह (व्याप्त) है,	**परस्मात्**	(इसके) कारणसे
य स्वयं इदं	जो स्वयं इस (जगत) के रूपमें है	**परं**	परे हैं
		तं स्वयम्भुवं	उन स्वयम्भूकी
		प्रपद्ये	(मैं) शरण लेता हूँ ॥३॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं
क्वचिद् विभातं क्व च तत् तिरोहितम् ।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

यः स्व आत्मनि इदं निज मायया अर्पितं क्वचित् विभातं क्व च तत् तिरोहितं अविद्ध दृक् साक्षि उभयं तत् ईक्षते स आत्ममूलः अवतु मां परात् परः ॥४॥

यः अविद्ध दृक्	जो अलुप्त ज्ञान	**तत् उभयं**	इसके उन दोनों रूपोंके
स्व आत्मनि	अपने भीतर ही	**साक्षि**	साक्षी होकर (उसे)
क्वचित् विभातं	कभी प्रकट रहने-वाले,	**ईक्षते**	देखते हैं
च क्व तत्	और कभी उसके	**स आत्ममूलः**	वे अपने स्वयं कारण
तिरोहितं	अदृश्य रहनेपर	**परात्**	(प्रकृति आदि) परसे
इदं	इस (विश्व) को	**परः**	भी पर
निज मायया	अपनी मायासे	**मां अवतु**	मेरी रक्षा करें ॥४॥
अर्पितं	बनाये		

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदाऽऽसीद् गहनं गभीरं
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥

कालेन पञ्चत्वं इतेषु कृत्स्नशः लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु तमः तदा आसीत् गहनं गभीरं यः तस्य पारे अभिविराजते विभुः ॥५॥

कालेन	कालक्रमसे
कृत्स्नशः	सम्पूर्ण
लोकेषु पालेषु	लोकों, लोकपालों
च सर्वहेतुषु	और सभी कारणोंके
पञ्चत्वं इतेषु	नाशको प्राप्त हो जानेपर
तदा गहनं	तब घोर
गभीरं	गम्भीर
तमः आसीत्	अन्धकार रह जाता है
यः विभुः	जो सर्वव्यापक
तस्य पारे	उसके पार
अभिविराजते	विराजमान रहते हैं ॥५॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥

न यस्य देवाः ऋषयः पदं विदुः जन्तुः पुनः कः अर्हति गन्तुं ईरितुम् यथा नटस्य आकृतिभिः विचेष्टतः दुरत्यय अनुक्रमणः स मा अवतु ॥६॥

देवाः ऋषयः	देवता और ऋषि
यस्य पदं	जिनका स्वरूप
न विदुः	नहीं जानते
पुनः कः	फिर दूसरा कौन
जन्तुः	प्राणी
ईरितुं गन्तुं	(उनकी) चेष्टा जान
अर्हति	सकता है,
यथा	जैसे
आकृतिभिः	आकारों द्वारा
नटस्य	नटकी
विचेष्टितः	चेष्टाओंको
दुरत्यय	दुर्गम
अनुक्रमणः	लीलामय
स मा अवतु	वे (प्रभु) मेरी रक्षा करें ॥६॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं
विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥

दिदृक्षवः यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः चरन्ति अलोक व्रतं अव्रणं वने भूत आत्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥७॥

यस्य सुमङ्गलं	जिनके मंगलमय	मुनयः	मुनिगण
पदं दिदृक्षवः	स्वरूपको देखनेकी इच्छासे	वने अव्रणं	वनमें रहकर त्रुटि रहित
विमुक्तसङ्गा	आसक्ति हीन	अलोक व्रतं	लोकोत्तर व्रत
भूत	समस्त प्राणियोंके	चरन्ति	करते हैं
आत्मभूताः	आत्मा हुए,	स सुहृदः	वे सर्वसुहृद
सुसाधवः	अच्छे सत्पुरुष	मे गतिः	मेरी गति है ॥७॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा
न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नाम रूपे गुण दोष एव वा तथा अपि लोक अप्यय संभवाय यः स्वमायया तानि अनुकालं ऋच्छति ॥८॥

यस्य जन्म	जिनका जन्म	लोकस्य	लोकोंकी
वा कर्म	अथवा कर्म	सम्भवाय	सृष्टि और
विद्यते न	उपस्थित नहीं है,	अप्यय	प्रलयके लिए
नाम रूपे	नाम और रूप,	यः स्वमायया	जो अपनी मायासे
वा गुण-दोष	अथवा गुण दोष	अनुकालं तानि	समयानुसार उनको
एव न	भी नहीं है	ऋच्छति	धारण करते हैं ॥८॥
तथा अपि	फिर भी		

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणे अनन्त शक्तये अरूपाय उरु रूपाय नमः आश्चर्य कर्मणे ॥९॥

तस्मै परेशाय	उन परमेश्वर	**उरु रूपाय**	अनन्ताकार,
अनन्त शक्तये	अनन्त शक्ति	**आश्चर्य कर्मणे**	आश्चर्य कर्माको
ब्रह्मणे नमः	ब्रह्मको नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥९॥
अरूपाय	निराकार,		

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥१०॥

नमः आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने नमः गिरां विदूराय मनसः चेतसां अपि ॥१०॥

आत्मप्रदीपाय	स्वयं प्रकाश,	**गिरां मनसः**	वाणी, मन,
साक्षिणे	सर्वसाक्षी	**चेतसां अपि**	चित्तसे भी
परमात्मने	परमात्माको	**विदूराय**	अत्यन्त दूरको
नमः	नमस्कार	**नमः**	नमस्कार ॥१०॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥११॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता नमः कैवल्य नाथाय निर्वाण सुख संविदे ॥११॥

विपश्चिता	विवेकी पुरुषों द्वारा	**संविदे**	अनुभूति रूप
नैष्कर्म्येण	कर्मत्याग द्वारा	**कैवल्य**	कैवल्य मोक्षके
सत्त्वेन	चित्तमें	**नाथाय**	स्वामीको
प्रतिलभ्याय	मिलनेवाले	**नमः**	नमस्कार ॥११॥
निर्वाण सुख	निर्वाण मोक्ष-सुख		

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे निर्विशेषाय साम्याय नमः ज्ञानघनाय च ॥१२॥

शान्ताय घोराय	शान्त, घोर,	**निर्विशेषाय**	(स्वयं) निर्विशेष,
मूढाय	मूढ	**साम्याय**	समत्वरूप
गुणधर्मिणे	गुणोंके धर्मको स्वीकार करने-वालेको	**च ज्ञानघनाय**	तथा घनीभूत-ज्ञानको
		नमः	नमस्कार ॥१२॥
नमः	नमस्कार,		

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञाय नमः तुभ्यं सर्व अध्यक्षाय साक्षिणे पुरुषाय आत्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञाय	क्षेत्रज्ञ,	**आत्ममूलाय**	जीवोंके मूल कारण,
सर्व अध्यक्षाय	सबके अध्यक्ष,	**मूलप्रकृतये**	मूल प्रकृति स्वरूप-को
साक्षिणे	साक्षी		
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥१४॥

सर्व इन्द्रिय गुण द्रष्ट्रे सर्व प्रत्यय हेतवे असताच्छायया उक्ताय सदा भासाय ते नमः ॥१४॥

सर्व इन्द्रिय	सब इन्द्रियोंके	**हेतवे**	कारण,
गुण द्रष्ट्रे	विषयोंके देखनेवाले,	**असताच्छायया**	छायाके समान असत् (अहंकार)
सर्व प्रत्यय	समस्त प्रतीतियोंके		

उक्ताय	कहे जानेवाले	ते नमः	आपको नमस्कार
सदा	नित्य सत् रूपसे		॥१४॥
भासाय	प्रकाशित		

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय
नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

नमः नमः ते अखिल कारणाय निष्कारणाय अद्भुत कारणाय सर्व आगम आम्नाय महार्णवाय नमः अपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

अखिल	सबके	ते नमः नमः	आपको बार-बार
कारणाय	कारण तथा		नमस्कार
निष्कारणाय	जिनका कोई कारण	सर्व आगम	सम्पूर्ण वेद तथा
	नहीं है,	आम्नाय	शास्त्रोंके
अद्भुत	(निर्विकार रहते	महार्णवाय	समुद्र स्वरूप,
	हुए) अद्भुत	अपवर्गाय	मोक्ष स्वरूप
कारणाय	कारण रूप	परायणाय	सर्वाश्रयको
		नमः	नमस्कार ॥१५॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

गुण अरणिच्छन् चित् उष्मपाय तत् क्षोभ विस्फूर्जित मानसाय नैष्कर्म्य भावेन विवर्जित आगम स्वयं प्रकाशाय नमः करोमि ॥१६॥

गुण	गुणों रूप	चित् उष्मपाय	ज्ञानाग्नि स्वरूप,
अरणिच्छन्	अरणिमें छिपे हुए	तत्	उन (गुणों) के
		क्षोभ	क्षोभसे

विस्फूर्जित	(जिनमें) प्रगट होता है.	विवर्जित आगम	शास्त्रकी उपेक्षा कर देने वालोंको
मानसाय	मनको	स्वयं प्रकाशाय	स्वयं प्रकाशित होनेवाले
नैष्कर्म्य	निष्कर्मत्वकी	नमः	(प्रभुको) नमस्कार
भावेन	भावनासे	करोमि	करता हूँ ॥१६॥

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय

मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।

स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-

प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१७॥

मादृक् प्रपन्न पशुपाश विमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमः आलयाय स्व अंशेन सर्व तनुभृत् मनसि प्रतीत प्रत्यक् दृशे भगवते बृहते नमः ते ॥१७॥

मादृक प्रपन्न	मेरे जैसे शरणागत	मनसि प्रतीत	अन्तःकरणमें प्रतीत होनेवाले
पशुपाश	पशुके बन्धनको	प्रत्यक् दृशे	अन्तर्यामी
विमोक्षणाय	खोल देनेवाले	बृहते	अपरिच्छिन्न
मुक्ताय	मुक्त स्वरूप	भगवते	भगवान्
भूरिकरुणाय	अतिशय दयालु	ते नमः	आपको नमस्कार ॥१७॥
आलयाय नमः	सर्वाश्रयको नमस्कार		
स्व अंशेन	अपने अंशसे		
सर्व तनुभृत्	सब शरीर-धारियोंके		

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-

र्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।

मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय

ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥

आत्म आत्मज आप्त गृह वित्त जनेषु सक्तैः दुष्प्रापणाय गुणसंग विवर्जिताय मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नमः ईश्वराय ॥१८॥

आत्म आत्मज	शरीर; पुत्र,	**स्व हृदये**	अपने हृदयमें
आप्त गृह	गुरुजन, घर,	**परिभाविताय**	चिन्तन किये जाने-
वित्त जनेषु	धन, स्वजनोंमें		वाले
सक्तैः	आसक्त लोगोंके लिए	**ज्ञानात्मने**	ज्ञान स्वरूप
दुष्प्रापणाय	दुष्प्राप्य,	**भगवते**	भगवान्
गुण सर्ग	गुणोंकी सृष्टिसे	**ईश्वराय**	परमेश्वरको
विवर्जिताय	रहित,	**नमः**	नमस्कार ॥१८॥
मुक्तात्मभिः	मुक्तात्माओं द्वारा		

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥१९॥

यं धर्म काम अर्थ विमुक्ति कामा भजन्त इष्टां गतिं आप्नुवन्ति किं तु आशिषः राति अपि देहं अव्ययं करोतु मे अदभ्रदयः विमोक्षणम् ॥१९॥

धर्म काम	धर्म, काम,	**किं तु**	और भी (जो)
अर्थ विमुक्ति	अर्थ, मोक्ष	**आशिषः**	अभिलाषाएँ तथा
कामा	चाहनेवाले	**अव्ययं देहं राति**	सुदृढ़ शरीर देते हैं वे
यं भजन्त	जिसका भजन करके	**अदभ्रदयः**	परम दयालु
इष्टां गतिं	अभीष्ट गति	**मे विमोक्षणं**	मेरा उद्धार
आप्नुवन्ति	पाते हैं,	**करोतु**	करें ॥१९॥

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥२०॥

एकान्तिनः यस्य न कञ्चन अर्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत् प्रपन्नाः अति अद्भुतं तत् चरितं सुमङ्गलं गायन्ति आनन्दसमुद्र मग्नाः ॥२०॥

यस्य भगवत्	जिन भगवान्के	गायन्ति	गाते हुए
ये प्रपन्नाः	जो शरणागत	आनन्दसमुद्र	आनन्द-सागरमें
एकान्तिनः	अनन्य भक्त हैं	मग्नाः	निमग्न रहकर
तत् अति	उनके अत्यन्त	वै कञ्चन	निश्चय कोई भी
अद्भुतं	विचित्र	अर्थं न	भोग नहीं
सुमङ्गलं	मंगलमय	वाञ्छन्ति	चाहते ॥२०॥
चरितं	चरितोंको		

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥

तं अक्षरं ब्रह्म परं परेशं अव्यक्तं आध्यात्मिक योग गम्यं अतीन्द्रियं सूक्ष्मं इव अतिदूरं अनन्तं आद्यं परिपूर्णं ईडे ॥२१॥

तं अक्षरं	उन अविनाशी,	अतीन्द्रियं	इन्द्रियातीत,
परं ब्रह्म	परम ब्रह्म,	सूक्ष्मं इव	सूक्ष्म जैसे,
परेशं	परमेश्वर,	अतिदूरं	अत्यन्त दूर,
अव्यक्तं	अव्यक्त,	अनन्तं आद्यं	अनन्त, आदि पुरुष,
आध्यात्मिक	आध्यात्मिक	परिपूर्णं ईडे	परिपूर्णकी स्तुति
योग	योगसे		करता हूँ ॥२१॥
गम्यं	जानने योग्य,		

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥२२॥

यस्य ब्रह्मा आदयः देवा वेदा लोकाः चर अचराः नाम रूप विभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥२२॥

ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादि	नाम च रूप	नाम और रूपके
देवा	देवता,	विभेदेन	भेदसे
वेदा	सब वेद,	यस्य फल्ग्व्या	जिसकी अत्यन्त क्षुद्र
चर अचराः	जंगम-स्थावर	कलया कृताः	कलासे बने हैं ॥२२॥
लोकाः	सब लोक		

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥२३॥

यथा अर्चिषः अग्नेः सवितुः गभस्तयः निर्यान्ति संयान्ति असकृत् स्वरोचिषः तथा यतः अयं गुण संप्रवाहः बुद्धिः मनः खानि शरीर सर्गाः ॥२३॥

यथा स्वरोचिषः	जैसे स्वयं प्रकाश	तथा यतः	उसी प्रकार जिनसे
अग्नेः अर्चिषः	अग्निसे लपटें या	अयं गुण	यह गुणोंका
सवितुः	सूर्यसे	संप्रवाहः	प्रवाह रूप
गभस्तयः	किरणें	बुद्धिः मनः	बुद्धि, मन,
असकृत्	निरन्तर	खानि शरीर	इन्द्रिय, शरीर रूप
निर्यान्ति	निकलती हैं	सर्गाः	सृष्टि है ॥२३॥
संयान्ति	(तथा उन्हींमें) मिलती है,		

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्-
निषेधशेषो जयतादशेषः ॥२४॥

स वै न देव असुर मर्त्यतिर्यक् न स्त्री न षण्ढः न पुमान् न जन्तुः न अयं गुणः कर्म न सत् न च असत् निषेध शेषः जयतात् अशेषः ॥२४॥

वै स न	निश्चय वे न	**अयं गुणः**	यह गुण-
देव असुर	देवता, असुर,	**कर्म न**	कर्म भी नहीं है,
मर्त्यतिर्यक्	मनुष्य या पशु-	**न सत्**	न सत् हैं,
	पक्षी हैं,	**च न असत्**	और न असत्
न स्त्री न	न स्त्री है, न	**निषेध शेषः**	निषेधावधि रूपसे
षण्ढः	नपुंसक,		बचे
न पुमान्	न पुरुष हैं,	**अशेषः**	सर्वरूपकी
न जन्तुः	न कोई जीव,	**जयतात्**	जय हो ॥२४॥

जिजीविषे नाहमिहामुया किम्-
अन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-
स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

जिजीविषे न अहं इह अमुया किं अन्तः बहिः च आवृतये भय योन्या इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवः तस्य आत्मलोक आवरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

अन्तः च बहिः	भीतर और बाहरसे	**कालेन यस्य**	कालके द्वारा जिसका
भय आवृतये	भयसे घिरी	**विप्लवः न**	विनाश नहीं होता
अमुया	इस (हाथीकी)	**आत्मलोक**	आत्मप्रकाशको
योन्या किं	योनिसे क्या लाभ	**तस्य आवरणस्य**	उस ढकनेवाले
इह जिजीविषे	इस योनिमेंजीनेकी		अज्ञासे
	इच्छा	**मोक्षं इच्छामि**	छूटना चाहता हूँ
अहं न	मैं नहीं करता हूँ,		॥२५॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥२६॥

सः अहं विश्वसृजं विश्वं अविश्वं विश्ववेदसं विश्व आत्मानं अजं ब्रह्म प्रणतः अस्मि परं पदम् ॥२६॥

सः	ऐसा (अज्ञानसे	विश्ववेदसं	विश्वके ज्ञाता,
अहं	छूटना चाहनेवाला) मैं	विश्व आत्मानं	विश्वात्मा
		अजं परं पदं	अजन्मा, परम गति
विश्वसृजं	विश्वके निर्माता,	ब्रह्म	परम ब्रह्मको
विश्वं	विश्वरूप,	प्रणतः अस्मि	प्रणाम करता हूँ
अविश्व	विश्वातीत,		॥२६॥

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥२७॥

योग रन्धित कर्मणः हृदि योग विभाविते योगिनः यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतः अस्मि अहम् ॥२७॥

योग कर्मणः	योगाभ्याससे कर्मों-को	यं प्रपश्यन्ति	जिनका साक्षात्कार करते हैं
रन्धित	भस्म करके	तं योगेशं	उन योगेश्वरको
योग विभाविते	योग द्वारा परिशुद्ध	अहं नतः अस्मि	मैं प्रणाम करता हूँ
हृदि योगिनः	हृदयमें योगीगण		॥२७॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥२८॥

नमो नमः तुभ्यं असह्यवेग शक्तित्रयाय अखिलधी गुणाय प्रपन्न पालाय दुरन्त शक्तये कद् इन्द्रियाणां अनवाप्यवर्त्मने ॥२८॥

असह्यवेग	असह्य वेगवाली	अनवाप्यवर्त्मने	जिनकी प्राप्तिका मार्ग नही पाया जा सकता उन
शक्तित्रयाय	तीन शक्तियोंवाले,		
अखिलधी	सम्पूर्ण बुद्धि एवं		
गुणाय	गुण स्वरूप,	दुरन्त शक्तये	अपार शक्ति
प्रपन्न पालाय	शरणागत रक्षक,	तुभ्यं नमो नमः	आपको बार-बार नमस्कार ॥२८॥
कद् इन्द्रियाणां	अजितेन्द्रियों द्वारा		

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥२६॥

न अयं वेद स्वम् आत्मानं यत् शक्त्या अहंधिया हतं तं दुरत्यय माहात्म्यं भगवन्तं इतः अस्मि अहम् ॥२६॥

यत् शक्त्या	जिनकी शक्ति (माया) से	**अयं न**	यह (जीव) नहीं
अहंधिया	(उत्पन्न) अहं बुद्धि द्वारा	**वेद**	जानता
हतं	आहत (ढका)	**तं दुरत्ययं**	उन अपार
स्वं आत्मानं	अपने आत्माको	**माहात्म्यं**	महिमामय
		भगवन्तं	भगवान्‌को
		अहं इतः अस्मि	मैं नमस्कार करता हूँ ॥२६॥

श्रीशुक उवाच—

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥३०॥

एवं गजेन्द्रं उपवर्णित निर्विशेषं ब्रह्मा आदयः विविधलिङ्ग भिदा अभिमानाः न एते यदा उपससृपुः निखिल आत्मकत्वात् तत्र अखिल अमरमयः हरिः आविः आसीत् ॥३०॥

एवं गजेन्द्रं	इस प्रकार गजेन्द्रके	**एते ब्रह्मा**	ये ब्रह्मा
निर्विशेषं	बिना किसी विशेषताके	**आदयः**	आदि
उपवर्णितं	स्तुति करनेपर	**यदा उपससृपुः**	जब समीप
विविधलिङ्ग	भिन्न-भिन्न रूप	**न**	नहीं आए,
भिदा	भेदोंका	**निखिल**	तब सभी
अभिमानाः	अभिमान करनेवाले	**आत्मकत्वात्**	सर्वात्मा होनेके कारण

अखिल	अखिल	तत्र आविः	वहां प्रगट
अमरमयः	देवमय	आसीत्	हो गये ॥३०॥
हरिः	श्रीहरि		

तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥३१॥

तं तद्वत् आर्तं उपलभ्य जगत् निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानः चक्र आयुधः अभ्यगमत् आशु यतः गजेन्द्रः ॥३१॥

तं तद्वत्	उस (गजेन्द्रको) इस प्रकार	समुह्यमानः	ढोये जाते
		चक्र आयुधः	अपना अस्त्र चक्र लेकर
आर्तं उपलभ्य	आर्त देखकर		
स्तोत्रं	(उसकी) स्तुतिको	स्तुवद्भिः	स्तुति करते
निशम्य	सुनकर	दिविजैः सह	देवताओंके साथ
छन्दोमयेन	वेदमय	यतः गजेन्द्रः	जहां गजेन्द्र थे,
गरुडेन	गरुड़से	आशु अभ्यगमत्	शीघ्र आ गये ॥३१॥

सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्त चक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥३२॥

सः अन्तः सरसि उरुबलेन गृहीत आर्तः दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्त चक्रं उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरं आह कृच्छात् नारायण अखिल गुरो भगवन् नमः ते ॥३२॥

अन्तः सरसि	सरोवरके भीतर	गृहीत आर्तः	पकड़नेसे व्याकुल
उरुबलेन	अत्यन्त बलवान (मगर) के	सः ख	उसने आकाशमें
		उपात्त चक्रं	चक्र उठाये

गरुत्मति	गरुड़पर बैठे	**गिरं आह**	यह वाणी बोला
हरिं	श्रीहरिको	**अखिल गुरो**	अखिल गुरो !
दृष्ट्वा	देखकर	**भगवन्**	भगवान्
साम्बुजकरं	कमल लिए सूँडको	**नारायण**	नारायण
उत्क्षिप्य	ऊपर उठाकर	**ते नमः**	आपको नमस्कार
कृच्छात्	कष्टपूर्वक		॥३२॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरमूमुचदुत्त्रियाणाम् ॥३३॥

तं वीक्ष्य पीडितं अजः सहसा अवतीर्य सग्राहं आशु सरसः कृपया उज्जहार ग्राहात् विपाटित मुखात् अरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिः अमूमुचत् उत्त्रियाणाम् ॥३३॥

तं पीडितं	उसको पीड़ित	**विपाटित**	फाड़े गये
वीक्ष्य अजः	देखकर अजन्मा प्रभु	**मुखात्**	मुखसे
सहसा अवतीर्य	सहसा उतर पड़े	**उत्त्रियाणां**	देवताओंके
कृपया	कृपापूर्वक	**सम्पश्यतां**	देखते हुए
सग्राहं	मगरके साथ (उसे)	**अरिणा गजेन्द्रं**	शत्रुसे गजेन्द्रको
सरसः	सरोवरसे	**हरिः अमूमुचत्**	श्रीहरिने छुड़ा दिया
उज्जहारः	ऊपर निकाल लिया		॥३३॥
ग्राहात्	ग्राहके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे
गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ।
मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥

तदा देव ऋषि गन्धर्वा ब्रह्म ईशान पुरः अगमाः मुमुचुः कुसुम आसारं शंसन्तः कर्म तत् हरेः ॥१॥

तदा देव ऋषि	तब देवता, ऋषि,	**तत् हरेः**	उस श्रीहरिके
गन्धर्वा ब्रह्म	गन्धर्व, ब्रह्मा और	**कर्म शंसन्तः**	कर्मकी प्रशंसा
ईशान पुरः	शंकरजीको आगे करके		करते हुए
		कुसुम आसारं	पुष्पोंकी वर्षा
अगमाः	वहां आए तथा	**मुमुचुः**	करने लगे ॥१॥

नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः ।
ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

नेदुः दुन्दुभयः दिव्या गन्धर्वा ननृतुः जगुः ऋषयः चारणाः सिद्धाः तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥२॥

दिव्या	देवताओंके	**पुरुषोत्तमं**	भगवान् पुरुषोत्तम-
दुन्दुभयः नेदुः	नगाड़े बजने लगे,		की
गन्धर्वा ननृतुः	गन्धर्व नाचने लगे,	**तुष्टुवुः**	स्तुति करने लगे
चारणाः जगुः	चारण गाने लगे,		॥२॥
ऋषयः सिद्धाः	ऋषि एवं सिद्ध गण		

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ।
मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः ॥ ३ ॥

यः असौ ग्राहः स वै सद्यः परम आश्चर्य रूप धृक् मुक्तः देवलशापेन हूहू गन्धर्व सत्तमः ॥३॥

यः असौ ग्राहः	जो यह मगर था	**परम आश्चर्य**	अत्यन्त विचित्र
स वै सद्यः	वह तो तत्काल	**रूप धृक्**	रूप धारण करके
देवलशापेन	देवल ऋषिके शापसे	**गन्धर्व सत्तम**	गन्धर्व श्रेष्ठ
मुक्तः	छूटकर	**हूहू**	हूहू हो गया ॥३॥

प्रणम्य शिरसाधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ।
अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥

प्रणम्य शिरसा अधीशं उत्तम श्लोकं अव्ययं अगायत यशोधाम कीर्तन्य गुण सत् कथं ॥४॥

शिरसा अधीशं	मस्तक झुकाकर उन सर्वेश,	**यशोधाम**	उन कीर्तिधामके
		कीर्तन्य गुण	कीर्तनीय गुण एवं
उत्तम श्लोकं	उत्तम कीर्ति,	**सत् कथं**	पवित्र चरितोंको
अव्ययं प्रणम्य	अविनाशीको प्रणाम करके	**अगायत**	गाने लगा ॥४॥

सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्यतम् ।
लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥

सः अनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तं लोकस्य पश्यतः लोकं स्वं अगात् मुक्त किल्बिषः ॥५॥

सः ईशेन	वह सर्वेश्वरके	**लोकस्य पश्यतः**	सब लोगोंके देखते हुए
अनुकम्पित	अनुग्रहको पाकर		
मुक्त किल्बिषः	पापोंसे छूटकर	**स्वं लोकं**	अपने लोक
तं प्रणम्य	उनको प्रणाम करके	**अगात्**	चला गया ॥५॥
परिक्रम्य	परिक्रमा करके,		

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥

गजेन्द्रः भगवत् स्पर्शात् विमुक्तः अज्ञान बन्धनात् प्राप्तः भगवतः रूपं पीतवासाः चतुर्भुजः ॥६॥

भगवत् स्पर्शात्	भगवान्के स्पर्शसे	पीतवासाः	पीताम्बरधारी,
गजेन्द्रः	गजेन्द्र	चतुर्भुजः	चतुर्भुज
अज्ञान	अज्ञानके	भगवतः रूपं	भगवान्के रूपको
बन्धनात्	बन्धनसे	प्राप्तः	पा गया ॥६॥
विमुक्तः	छूटकर		

स वै पूर्वमभूद् राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः ।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥

स वै पूर्वम् अभूत् राजा पाण्ड्यः द्रविड सत्तमः इन्द्रद्युम्न इति ख्यातः विष्णुव्रत परायणः ॥७॥

स वै पूर्वं	वह तो पहिले जन्ममें	विष्णुव्रत	विष्णुव्रत
		परायणः	परायण
इन्द्रद्युम्न	इन्द्रद्युम्न	पाण्ड्यः राजा	पाण्ड्य देशका राजा
इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध		
द्रविड सत्तमः	द्रविड़ श्रेष्ठ	अभूत्	था ॥७॥

स एकदाऽऽराधनकाल आत्मवान्
गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ।
जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं
समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥

स एकदा आराधनकाल आत्मवान् गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिं जटाधरः तापस आप्लुतः अच्युतं समर्चयामास कुलाचल आश्रमः ॥८॥

स आत्मवान्	वह मनस्वी
जटाधरः	जटा धारणकर,
तापस	तपस्वी बनकर
कुलाचल	मलय पर्वतपर
आश्रमः	आश्रममें
आराधनकाल	उपासनाके समय
आप्लुतः	स्नान करके
गृहीतमौनव्रत	मौन व्रत धारण करके
ईश्वरं अच्युतं	सर्वेश्वर अच्युत
हरिं	श्रीहरिकी
समर्चयामास	अर्चनाकर रहा था ॥८॥

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः
समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ।
तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं
रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥ ९ ॥

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः समागमत् शिष्यगणैः परिश्रितः तं वीक्ष्य तूष्णीं अकृत अर्हण आदिकं रहसि उपासीनं ऋषिः चुकोप ह ॥९॥

यदृच्छया तत्र	संयोगवश वहां
शिष्यगणैः	शिष्य समुदायके
परिश्रितः	सहित
महायशा	अत्यन्त यशस्वी
मुनिः	मुनि (अगस्त्य)
समागमत्	आ गये और
अर्हण आदिकं	पूजा आदि
अकृत	न करके
तं	उस (राजा) को
तूष्णीं	चुपचाप
रहसि उपासीनं	एकान्तमें बैठा
वीक्ष्य ऋषिः ह	देखकर ऋषि तो
चुकोप	क्रुद्ध हो गये ॥९॥

तस्मा इमं शापमदादसाधु-
रयं दुरात्माकृतबुद्धिरद्य ।
विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं
यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥१०॥

तस्मात् इमं शापं अदात् असाधुः अयं दुरात्मा अकृतबुद्धिः अद्य विप्र अवमन्ता विशतां तमः अन्धं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥१०॥

तस्मात् इमं	इसलिए यह	**यथा स्तब्धमतिः**	जैसे जड़ बुद्धि हो,
शापं अदात्	शाप दिया—	**गजः**	हाथी हो,
अयं असाधुः	'यह असाधु	**अन्धं तमः**	घोर अज्ञानमय
दुरात्मा	दुष्टचित्त,	**स एव विशतां**	उसी (हाथीकी
अकृतबुद्धिः	बुद्धिहीन है,		योनि) में प्रवेश करे
अद्य विप्र	आज ब्राह्मणका		॥१०॥
अवमन्ता	अपमान इसने किया		

श्रीशुक उवाच—

एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान् नृप सानुगः ।
इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥११॥

एवं शप्त्वा गतः अगस्त्यः भगवान् नृप सानुगः इन्द्रद्युम्नः अपि राजर्षिः दिष्टं तत् उपधारयन् ॥११॥

नृप	राजन् !	**गतः**	चले गये
एवं शप्त्वा	इस प्रकार शाप देकर	**राजर्षिः**	राजर्षि
		इन्द्रद्युम्नः अपि	इन्द्रद्युम्नने भी
सानुगः	अनुयायियोंके साथ	**तत् दिष्टं**	उसे प्रारब्ध
भगवान्	भगवान्	**उपधारयन्**	समझ लिया ॥११॥
अगस्त्यः	अगस्त्य		

आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् ।
हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥१२॥

आपन्नः कौञ्जरीं योनिम् आत्मस्मृति विनाशिनीम् हरि अर्चना अनुभावेन यत् गजत्वे अपि अनुस्मृतिः ॥१२॥

आत्मस्मृति	आत्मज्ञानको	**हरि अर्चना**	श्रीहरिकी पूजाके
विनाशिनीं	नष्ट कर देनेवाली	**अनुभावेन**	प्रभावसे
कौञ्जरीं योनिं	हाथीकी योनिमें	**गजत्वे अपि**	हाथी होनेपर भी
आपन्नः	पहुँच गये, किन्तु	**अनुस्मृतिः**	पिछली स्मृति
यत्	क्योंकि भगवान्		(बनी रही) ॥१२॥

एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभ-
स्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ।
गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमान-
कर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥१३॥

एवं विमोक्ष्य गज यूथपं अब्जनाभः तेन अपि पार्षद गतिं गमितेन युक्तः गन्धर्व सिद्ध विबुधैः उपगीयमान कर्म अद्भुतं स्वभवनं गरुडासनः अगात् ॥१३॥

एवं गज यूथपं	इस प्रकार गजराज-को	**गन्धर्व सिद्ध विबुधैः**	गन्धर्व, सिद्ध, देवताओं द्वारा
विमोक्ष्य	छुड़ाकर (उसे अपना)	**अद्भुतं कर्म**	(इस) अद्भुत कर्म-का
पार्षद गतिं गमितेन	पार्षद बना लिया	**उपगीयमानः**	गान होते समय ही
अब्जनाभः	भगवान् कमलनाभ	**गरुडासनः**	गरुड़पर बैठकर
तेन अपि युक्तः	उसके भी साथ	**स्वभवनं अगात्**	अपने धाम चले गये ॥१३॥

एतन्महाराज तवेरितो मया
कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं
दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥१४॥

एतत् महाराज तव ईरितः मया कृष्ण अनुभावः गजराज मोक्षणं स्वर्ग्यं यशस्यं कलि कल्मष अपहं दुःस्वप्न नाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥१४॥

कुरुवर्य	कुरुश्रेष्ठ	**तव ईरितः**	तुमको सुनाया गया
महाराज	महाराज !	**कृष्ण**	श्रीकृष्णका
मया एतत्	मेरे द्वारा यह	**अनुभावः**	प्रभाव

गजराज मोक्षणं	गजराजको छुड़ाना	**कल्मष अपहं**	दोषोंको दूर करने-
शृण्वतां	सुननेवालोंको		वाला है और
स्वर्ग्यं	स्वर्ग तथा	**दुःस्वप्न नाशं**	बुरे स्वप्न (के फल)
यशस्यं	यश देनेवाला है,		को नष्ट करने
कलि	कलियुगके		वाला है ॥१४॥

यथानुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः ।
शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशान्तये ॥१५॥

यथा अनुकीर्तयन्ति एतत् श्रेयः कामा द्विजातयः शुचयः प्रातः उत्थाय दुःस्वप्न आदि उपशान्तये ॥१५॥

यथा	जैसे	**दुःस्वप्न आदि**	बुरे स्वप्नादिकी
श्रेयः	अपना कल्याण	**उपशान्तये**	शान्तिके लिए
कामाः	चाहनेवाले	**एतत्**	इसका
द्विजातयः	द्विजातिके लोग	**अनुकीर्तयन्ति**	प्रतिदिन कीर्तन
प्रातः उत्थाय	सबेरे उठकर		करते हैं ॥१५॥
शुचयः	पवित्र होकर		

इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्रं कुरुसत्तम ।
शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः ॥१६॥

इदं आह हरिः प्रीतः गजेन्द्रं कुरुसत्तम शृण्वतां सर्वभूतानां सर्व भूतमयः विभुः ॥१६॥

कुरुसत्तम	कुरुश्रेष्ठ परीक्षित	**सर्वभूतानां**	सब प्राणियोंके
सर्वभूतमयः	सर्व प्राणिमय,	**शृण्वतां गजेन्द्रं**	सुनते हुए गजेन्द्रसे
विभुः	सर्व व्यापक	**इदं आह**	यह कहा ॥१६॥
हरिः प्रीतः	श्रीहरिने प्रसन्न		
	होकर		

श्रीभगवानुवाच–

ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम् ।
वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥१७॥

ये मां त्वां च सरः च इदं गिरि कन्दर काननं वेत्र कीचक वेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥१७॥

ये मां त्वां	जो लोग मुझे, तुम्हें	**काननं**	(यहांके) बनको
च	और	**वेत्र कीचक**	बेंत, कीचक
इदं सरः	इस सरोवरको	**वेणूनां**	बांसोंके
च गिरि	तथा पर्वतकी	**गुल्मानि**	झुरमुटोंको,
कन्दर	गुफाओंको,	**सुरपादपान्**	देववृक्षोंको ॥१७॥

शृङ्गाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ।
क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥१८॥

शृङ्गाणि इमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणः मे शिवस्य च क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥१८॥

इमानि	इन (पर्वत)	**मे प्रियं धाम**	मेरे प्रिय धाम
शृङ्गाणि	शिखरोंको,	**क्षीरोदं च**	क्षीरसागरको तथा
ब्रह्मणः मे	ब्रह्माजी, मेरे,	**भास्वरं**	तेजोमय
च शिवस्य	और शंकरजीके	**श्वेतद्वीपं**	श्वेत द्वीपको ॥१८॥
धिष्ण्यानि	निवास-स्थानोंको,		

श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ।
सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥१९॥

श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥१९॥

मम श्रीवत्सं	मेरी श्रीवत्सचिह्न,	सुदर्शनं	सुदर्शन-चक्र,
कौस्तुभं	कौस्तुभ मणि,	पाञ्चजन्यं	पांचजन्य शंख,
मालां	वनमाला,	पतगेश्वरं	पक्षिराज
कौमोदकीं गदां	कौमोदकी गदा,	सुपर्णं	गरुण ॥१९॥

शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम् ।
ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥२०॥

शेषं च मत् कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मत् आश्रयां ब्रह्माणं नारदं ऋषिं भवं प्रह्लादं एव च ॥२०॥

मत् सूक्ष्मां कलां	मेरी सूक्ष्म कला	ब्रह्माणं	ब्रह्मा,
शेषं	शेष,	नारदं ऋषिं	देवर्षि नारद,
च मत्	तथा मेरे	भवं च	शंकरजी तथा
आश्रयां	आश्रयमें रहनेवाली	प्रह्लादं एव	प्रह्लादको भी ॥२०॥
देवीं श्रियं	देवी लक्ष्मी,		

मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे ।
कर्माण्यनन्तपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥२१॥

मत्स्य कूर्म वराह आद्यैः अवतारैः कृतानि मे कर्माणि अनन्त पुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनं ॥२१॥

मत्स्य कूर्म	मत्स्य, कच्छप,	पुण्यानि	पुण्यदायी
वराह आद्यैः	वाराह आदि	कर्माणि	कर्म (चरित),
अवतारैः	अवतार लेकर	सूर्यं सोमं	सूर्य, चन्द्र,
मे कृतानि	मेरे किये	हुताशनं	अग्नि ॥२१॥
अनन्त	अनन्त		

प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान् धर्ममव्ययम् ।
दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥२२॥

प्रणवं सत्यं अव्यक्तं गो विप्रान् धर्मं अव्ययं दाक्षायणीः धर्मपत्नीः सोम कश्यपयोः अपि ॥२२॥

प्रणवं सत्यं	ओंकार, सत्य,	**धर्मपत्नीः**	धर्मकी पत्नियां हैं
अव्यक्तं गो	अव्यक्त, गायें,		तथा
अव्ययं धर्मं	अविनाशी धर्म,	**सोम**	चन्द्रमा एवं
दाक्षायणीः	दक्षकी जो कन्याएँ	**कश्यपयोः अपि**	कश्यपकी भी (पत्नियां) ॥२२॥

गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणम् ।
ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥२३॥

गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणं ध्रुवं ब्रह्मऋषीन् सप्त पुण्य श्लोकान् च मानवान् ॥२३॥

गङ्गां सरस्वतीं	गङ्गा, सरस्वती,	**ब्रह्मऋषीन्**	ब्रह्मर्षि,
नन्दां कालिन्दीं	नन्दा, यमुना,	**च पुण्य**	तथा पवित्र
सितवारणं	श्वेतगज ऐरावत,	**श्लोकान्**	कीर्ति
ध्रुवं सप्त	ध्रुव, सात	**मानवान्**	मनुष्योंको ॥२३॥

उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः ।
स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते ह्येनसोऽखिलात् ॥२४॥

उत्थाय पररात्र अन्ते प्रयताः सुसमाहिताः स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते हि एनसः अखिलात् ॥२४॥

हि मम	क्योंकि ये सब मेरे	**सुसमाहिताः**	खूब एकाग्र होकर
रूपाणि	स्वरूप हैं	**स्मरन्ति**	(जो) स्मरण करते
पररात्र	पिछली रात्रिके		हैं (वे)
अन्ते	अन्त (ब्रह्म मुहूर्त) में	**अखिलात्**	समस्त
उत्थाय	उठकर	**एनसः**	पापोंसे
प्रयताः	प्रयत्न पूर्वक	**मुच्यन्ते**	छूट जाते हैं ॥२४॥

ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये ।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥२५॥

ये मां स्तुवन्ति अनेन अङ्ग प्रतिबुध्य निशा अत्यये तेषां प्राण अत्यये च अहं ददामि विमलां मतिम् ॥२५॥

अङ्ग	प्रिय गजेन्द्र !	**अहं च**	मैं भी
ये निशा	जो रात्रि	**तेषां प्राण**	उनको प्राणान्तके
अत्यये	व्यतीत होनेपर	**अत्यये**	समय
प्रतिबुध्य	जागकर	**विमलां मतिं**	निर्मल बुद्धि
अनेन मां	इस (स्तोत्र) से मेरी	**ददामि**	देता हूँ ॥२५॥
स्तुवन्ति	स्तुति करते हैं		

श्रीशुक उवाच—

इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माप्य जलजोत्तमम् ।
हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥२६॥

इति आदिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलज उत्तमं हर्षयन् विबुध अनीकं आरुरोह खग अधिपम् ॥२६॥

हृषीकेशः	हृषीकेश भगवान्ने	**हर्षयन्**	हर्षित करके
इति आदिश्य	ऐसा आदेश देकर	**खग अधिपं**	पक्षिराजपर
जलज उत्तमं	शंख श्रेष्ठको	**आरुरोह**	आरोहण किया
प्रध्माय	बजाकर		॥१६॥
विबुध अनीकं	देवताओंके समूहको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
गजेन्द्रमोक्षणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुकउवाच—

राजन्नुदितमेतत् ते हरेः कर्माघनाशनम् ।
गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥

राजन् उदितं एतत् ते हरेः कर्म अघनाशनं गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं तु अन्तरं शृणु ॥१॥

राजन्	राजन् !	**ते उदितं**	तुमको सुना दिया,
एतत् पुण्यं	यह पवित्र	**रैवतं**	(अब) रैवत
अघनाशनं	पाप नाशक	**अन्तरं तु**	मन्वन्तरको तो
गजेन्द्रमोक्षणं	गजेन्द्रको छुड़ानेरूप	**शृणु**	सुनो ॥१॥
हरेः कर्म	श्रीहरिका कर्म		

पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः ।
बलिविन्ध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥

पञ्चमः रैवतः नाम मनुः तामस सोदरः बलि विन्ध्य आदयः तस्य सुता अर्जुन पूर्वकाः ॥२॥

पञ्चमः	पांचवे	**अर्जुन पूर्वकाः**	अर्जुन जिनमें पहिले हुए वे
रैवतः नाम	रैवत नामके		
तामसः सोदरः	तामसके सहोदर भाई	**बलि विन्ध्य आदयः**	बलि, विन्ध्य आदि
मनुः	मनु थे	**तस्य सुताः**	उनके पुत्र थे ॥२॥

विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः ।
हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥ ३ ॥

विभुः इन्द्रः सुरगणा राजन् भूतरय आदयः हिरण्यरोमा वेदशिरा अर्ध्वबाहु आदयः द्विजाः ॥३॥

राजन्	राजन् !	वेदशिरा	वेदशिरा
विभुः इन्द्रः	विभु इन्द्र थे,	अर्ध्वबाहु	ऊर्ध्वबाहु
भूतरय आदयः	भूतरय आदि	आदयः	आदि
सुरगणा	देवगण थे,	द्विजाः	ब्राह्मण सप्तर्षि)
हिरण्यरोमा	हिरण्यरोमा		थे ॥३॥

पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः ।
तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥ ४ ॥

पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठः भगवान् स्वयम् ॥४॥

शुभ्रस्य पत्नी	शुभ्रकी पत्नी	स्वकलया	अपनी कलासे
विकुण्ठा	विकुण्ठा थी,	स्वयं भगवान्	स्वयं भगवान्
तयोः	उससे	वैकुण्ठः जज्ञे	वैकुण्ठने अवतार
वैकुण्ठैः	वैकुण्ठ नामक		लिया ॥४॥
सुरसत्तमैः	देव श्रेष्ठोंके साथ		

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ।
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥

वैकुण्ठः कल्पितः येन लोकः लोक नमस्कृतः रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत् प्रिय काम्यया ॥५॥

देव्या रमया	देवी रमाके	लोक	सब लोकोंसे
प्रार्थ्यमानेन	प्रार्थना करनेपर	नमस्कृतः	प्रणम्य
तत् प्रिय	उनको प्रसन्न	वैकुण्ठः लोकः	वैकुण्ठ लोककी
काम्यया	करनेके लिए	कल्पितः	रचना की ॥५॥
येन	जिन्होंने		

तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ।
भौमान्रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद् गुणान् ॥ ६ ॥

तस्य अनुभावः कथितः गुणाः च परम उदयाः भौमान् रेणून् स विममे यः विष्णोः वर्णयेत् गुणान् ॥६॥

तस्य अनुभावः	उनके प्रभाव	**गुणान् वर्णयेत्**	गुणोंका वर्णन कर
च गुणाः	तथा गुणोंका		सकेगा,
परम उदयाः	परमोत्कर्ष	**स भौमान्**	वह तो पृथ्वीके
कथितः	वर्णन कर चुके हैं,	**रेणून्**	रज कणोंको
यः विष्णोः	जो विष्णु भगवान्के	**विममे**	गिन सकेगा ॥६॥

षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ।
पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥

षष्ठः च चक्षुषः पुत्रः चाक्षुषः नाम वै मनुः पूरु पुरुष सुद्युम्न प्रमुखाः चाक्षुष आत्मजाः ॥७॥

चक्षुषः पुत्रः	चक्षुषके पुत्र	**सुद्युम्न**	सुद्युम्न
चाक्षुषः नाम	चाक्षुष नामके	**चाक्षुष**	चाक्षुषके
वै षष्ठः च	निश्चय छठवें ही	**आत्मजाः**	पुत्रोंमें
मनुः	मनु हुए ।	**प्रमुखाः**	मुख्य थे ॥७॥
पूरु पुरुष	पुरु, पुरुष,		

इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ।
मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८ ॥

इन्द्रः मन्त्रद्रुमः तत्र देवा आप्य आदयः गणाः मुनयः तत्र वै राजन् हविष्मत् वीरक आदयः ॥८॥

राजन्	राजन् !	**वै तत्र**	निश्चय उस समय
तत्र इन्द्रः	उस समय इन्द्र	**मुनयः**	मुनि (सप्तर्षि)
मन्त्रद्रुमः	मन्त्रद्रुम था,	**हविष्मत्**	हविष्मत्
आप्य आदयः	आप्य आदि	**वीरक आदय**	वीरक आदि थे ॥८॥
देवा गणाः	देवताओंके समूह थे,		

तत्रापि देवः सम्भूत्यां वैराजस्याभवत् सुतः ।
अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९ ॥

तत्र अपि देवः सम्भूत्यां वैराजस्य अभवत् सुतः अजितः नाम भगवान् अंशेन जगतः पतिः ॥९॥

तत्र अपि	उस समय भी	**सम्भूत्यां**	सम्भूतिमें
जगतः पतिः	जगतके स्वामी	**वैराजस्य सुतः**	विराजके पुत्र
देवः भगवान्	लीलामय भगवान्	**अजितः नाम**	अजित नामसे
अंशेन	अपने अंशसे	**अभवत्**	अवतीर्ण हुए ॥९॥

पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ।
भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥१०॥

पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा भ्रममाणः अम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥१०॥

येन	जिन्होंने	**अम्भसि**	जलमें
पयोधिं	क्षीर समुद्रका	**भ्रममाणः**	घूमते
निर्मथ्य	मन्थन करके	**मन्दरः**	मन्दराचलको
सुराणां सुधा	देवताओंको अमृत	**कूर्मरूपेण**	कच्छप रूपसे
साधिता	प्राप्त कराया	**धृतः**	धारण किया ॥१०॥

राजोवाच—

यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ।
यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥११॥

यथा भगवता ब्रह्मन् मथितः क्षीरसागरः यत् अर्थं वा यतः च अद्रिं दधार अम्बुचर आत्मना ॥११॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**क्षीरसागरः**	क्षीरसागरका
यथा भगवता	जैसे भगवान्‌ने	**मथितः**	मन्थन किया,

वा यत्	अथवा जिस	आत्मना	रूपसे
अर्थं	प्रयोजनसे	अद्रिं दधार	पर्वतको धारण
च यतः	तथा जिस प्रकार		किया ॥११॥
अम्बुचर	जलचर (कच्छप)		

यथामृतं सुरैः प्राप्तं किञ्चान्यदभवत् ततः ।
एतद् भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥१२॥

यथा अमृतं सुरैः प्राप्तं किञ्च अन्यत् अभवत् ततः एतत् भगवतः कर्म वदस्व परम अद्भुतम् ॥१२॥

यथा सुरैः	जैसे देवताओंने	एतत् परम	यह परम
अमृतं प्राप्तं	अमृत पाया,	अद्भुतं	आश्चर्यमय
ततः	वहां जो	भगवतः कर्म	भगवान्का कर्म
किञ्च अन्यत्	कुछ दूसरा	वदस्व	बतलाइये ॥१२॥
अभवत्	हुआ,		

त्वया सङ्कथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः ।
नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥१३॥

त्वया संकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः न अति तृप्यति मे चित्तं सुचिरं ताप तापितम् ॥१३॥

सात्वतां	भक्तोंके	ताप तापितं	(वि) ताप संतप्त
पतेः	स्वामी भगवान्की	मे चित्तं	मेरा चित्त
महिम्ना	महिमा	अति	बहुत
त्वया	आप द्वारा	तृप्यति न	तृप्त नहीं होता है
संकथ्यमानेन	वर्णन करनेसे		॥१३॥
सुचिरं	दीर्घकालसे		

सूत उवाच—

सम्पृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ।
अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥१४॥

सम्पृष्टः भगवान् एवं द्वैपायनसुतः द्विजाः अभिनन्द्य हरेः वीर्यं अभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥१४॥

द्विजाः	ब्राह्मणो !	**अभिनन्द्य**	(परीक्षितका) अभिनन्दन करके
भगवान्	भगवान्	**हरेः वीर्यं**	श्रीहरिके पराक्रम- को
द्वैपायनसतः	व्यासनन्दन	**अभ्याचष्टुं**	प्रारम्भसे बतलाना
एवं सम्पृष्टः	इस प्रकार पूछे जानेपर	**प्रचक्रमे**	प्रारम्भ किया ॥१४॥

श्रीशुक उवाच

यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः ।
गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ॥१५॥

यदा युद्धे असुरैः देवा बाध्यमानाः शित आयुधैः गत असवः निपतिता न उत्तिष्ठेरन् स्म भूयशः ॥१५॥

यदा युद्धे	जब युद्धमें	**गत असवः**	निष्प्राण होकर
शित आयुधैः	तीक्ष्ण शस्त्रोंसे	**निपतिता**	गिर पड़े और
असुरैः	असुरों द्वारा	**भूयशः**	उनमें बहुतसे
बाध्यमानाः	मारे जानेपर	**न उत्तिष्ठेरन्**	नहीं उठ
देवाः	देवता	**स्म**	सके ॥१५॥

यदा दुर्वाससः शापात् सेन्द्रा लोकास्त्रयो नृप ।
निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥१६॥

यदा दुर्वाससः शापात् स इन्द्रा लोकाः त्रयः नृप निःश्रीकान् च अभवन् तत्र नेशुः इज्या आदयः क्रियाः ॥१६॥

नृप	राजन् !	**अभवन् तत्र**	हो गये
यदा दुर्वाससः	जब दुर्वासाजीके	**इज्या आदयः**	वहां यज्ञादि
शापात् स इन्द्रा	शापसे इन्द्रके साथ	**क्रियाः नेशुः**	कर्म नष्ट हो गये ॥१६॥
त्रयः लोकाः च	तीनों लोक ही		
निःश्रीकान्	कान्तिहीन		

निशाम्यैतत् सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः ।
नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चयम् ॥१७॥

निशाम्य एतत् सुरगणा महेन्द्र वरुण आदयः न अध्यगच्छन् स्वयं मन्त्रैः मन्त्रयन्तः विनिश्चयम् ॥१७॥

एतत् निशाम्य	यह देखकर	स्वयं विनिश्चयं	स्वयं निश्चित
महेन्द्र वरुण	महेन्द्र वरुण	मन्त्रैः	निर्णयको
आदयः	आदि	न	नहीं
सुरगणा	देवता लोग,	अध्यगच्छन्	पा सके ॥१७॥
मन्त्रयन्तः	सलाह करनेपर भी		

ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः ।
सर्वं विज्ञापयाञ्चक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥१८॥

ततः ब्रह्मसभां जग्मुः मेरोः मूर्धनि सर्वशः सर्वं विज्ञापयान् चक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥१८॥

ततः मेरोः	तब सुमेरुके	प्रणताः	प्रणाम करके
मूर्धनि	शिखरपर*	सर्वं	सब
ब्रह्मसभां	ब्रह्माजीकी सभामें	विज्ञापयान्	विज्ञापित
सर्वशः जग्मुः	सब गये,	चक्रुः	किया ॥१८॥
परमेष्ठिने	ब्रह्माजीको		

स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन् निःसत्त्वान्विगतप्रभान् ।
लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥१९॥

स विलोक्य इन्द्र वायु आदीन् निःसत्त्वान् विगतप्रभान् लोकान् अमङ्गल प्रायान् असुरान् अयथा विभुः ॥१९॥

---

* पञ्चम स्कन्धमें ब्रह्माजीके दो स्थानोंका वर्णन है ।

१—जम्बूद्वीपके केन्द्रमें स्थित सुमेरुके शिखरपर और २—सबसे अन्तिम पुष्करद्वीपमें ।

स विभुः	उन समर्थने	अमङ्गल	दुर्वशाग्रस्त
इन्द्र वायु	इन्द्र, वायु	प्रायान्	स्थिति
आदीन्	आदिको	असुरान्	असुरोंको
निःसत्त्वान्	निःसत्व एवं	अयथा	इससे विपरीत
विगतप्रभान्	कान्तिहीन तथा		दशामें
लोकान्	सब लोकोंको	विलोक्य	देखकर ॥१९॥

समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् ।
उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥२०॥

समाहितेन मनसा संस्मरन् पुरुषं परं उवाच उत्फुल्ल वदनः देवान् स भगवान् परः ॥२०॥

स परः	उन परमेष्ठी	संस्मरन्	स्मरण करते हुए
भगवान्	भगवान्ने	उत्फुल्ल वदनः	प्रसन्न मुखसे
समाहितेन	एकाग्र	देवान् उवाच	देवताओंसे बोले
मनसा	चित्तसे		॥२०॥
परं पुरुषं	परम पुरुषका		

ब्रह्मोवाच–*

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो
मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः ।
यस्यावतारांशकलाविसर्जिता
व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥२१॥

अहं भवः यूयं अथः असुर आदयः मनुष्य तिर्यक् द्रुम घर्म जातयः यस्य अवतार अंश कला विसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तं अव्ययम् ॥२१॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहं भवः	मैं, शंकरजी,	यस्य अवतार	जिनके अवतारके
यूयं	तुम लोग	अंश कला	अंशकी कलासे
अथः	और	विसर्जिता	उत्पन्न हैं,
असुर आदयः	असुर आदि	सर्वे तं	हम सब उन
मनुष्य तिर्यक्	मनुष्य, पशु-पक्षी,	अव्ययं	अविनाशीकी
द्रुम घर्म	वृक्ष, स्वेदज	शरणं व्रजाम	शरणमें चलें ॥२१॥
जातयः	प्राणी,		

न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो
नोपेक्षणीयादरणीयपक्षः
अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं
धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले ॥२२॥

न यस्य वध्यः न च रक्षणीयः न उपेक्षणीय आदरणीय पक्षः अथ अपि सर्ग स्थिति संयमार्थं धत्ते रजः सत्त्व तमांसि काले ॥२२॥

यस्य	जिसके लिए	पक्षः	पक्ष है,
न वध्यः	न कोई मारने योग्य है,	अथ अपि	ऐसा होनेपर भी
		सर्ग स्थिति	सृष्टि, स्थिति,
च न	और न	संयमार्थं	प्रलयके लिए
रक्षणीयः	रक्षा करने योग्य,	काले रजः	समयपर रजोगुण,
न उपेक्षणीय	न उपेक्षा करने योग्य या	सत्त्व	सत्त्वगुण
		तमांसि धत्ते	तमोगुणको धारण करते हैं ॥२२॥
आदरणीय	आदरणीय		

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः
सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम्
तस्माद् व्रजामः शरणं जगद्गुरुं
स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥२३॥

अयं च तस्य स्थिति पालन क्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनां तस्मात् व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नः धास्यति शं सुरप्रियः ॥२३॥

देहिनां	प्राणियोंके	क्षणः	समय है
भवाय	अभ्युदयके लिए	तस्मात्	इसलिए
सत्त्वं	सत्त्वगुण	जगद्गुरुं	उन जगद्गुरुकी
जुषाणस्य	स्वीकार किये	शरणं व्रजामः	शरण हम चलें,
तस्य अयं	उनका यह	स सुरप्रियः	वे देवप्रिय
स्थिति च	स्थिति और	नः स्वानां	हम अपनोंका
पालन	पालनका	शं धास्यति	कल्याण करेंगे ॥२३॥

श्रीशुक उवाच—

इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिन्दम ।
अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥२४॥

इति आभाष्य सुरान् वेधाः सह देवैः अरिन्दम अजितस्य पदं साक्षात् जगाम तमसः परम् ॥२४॥

अरिन्दम	शत्रु-नाशक परीक्षित !	देवैः सह	देवताओंके साथ
		तमस परं	तमोगुणके पार
वेधाः इति	ब्रह्माजीने इस प्रकार	अजितस्य	भगवान् अजितके
		साक्षात् पदं	प्रत्यक्ष स्थानपर
सुरान्	देवताओंसे	जगाम	गये ॥२४॥
आभाष्य	कहकर		

तत्राहृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो ।
स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीभिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥२५॥

तत्र अदृष्ट स्वरूपाय श्रुत पूर्वाय वै विभो स्तुतिं अब्रूत दैवीभिः गीः भिः तु अवहित इन्द्रियः ॥२५॥

तत्र	वहां	वै विभो	निश्चय उन सर्व-
इन्द्रियः	इन्द्रियोंको		व्यापककी
अवहित	एकाग्र करके,	दैवीभिः	दिव्य (वेदकी)
स्वरूपाय	जिनका स्वरूप	गीः भिः तु	वाणीसे ही
अदृष्ट	देखा नहीं था	स्तुतिं	स्तुति
श्रुत पूर्वाय	किन्तु पहिले सुना था	अब्रूत	बोलने (करने) लगे ॥२५॥

ब्रह्मोवाच–

अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं
गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ।
मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तं
नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥२६॥

अविक्रियं सत्यं अनन्तं आद्यं गुहाशयं निष्कलं अप्रतर्क्यं मनः अग्रयानं वचसा अनिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥२६॥

अविक्रियं सत्यं	निर्विकार, सत्य,	अग्रयानं	आगे चलनेवाले,
अनन्तं आद्यं	अनन्त, आदिपुरुष,	वचसा अनिरुक्तं	अनिर्वचनीय,
गुहाशयं	अन्तर्यामी,	वरेण्यं देववरं	वरणीय देवश्रेष्ठको
निष्कलं	निष्कल,	नमामहे	हम नमस्कार करते
अप्रतर्क्यं	अतर्क्य,		हैं ॥२६॥
मनः	मनसे भी		

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मना-
मर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ।
छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ
तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥२७॥

विपश्चितं प्राण मनः धिया आत्मनां अर्थ इन्द्रिय आभासं अनिद्रं अवणं छाया आतपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तं अक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥२७॥

प्राण मनः	प्राण, मन,	**छाया**	छाया (अविद्या)
धिया आत्मनं	बुद्धि, अहंकारके	**आतपौ**	आतप (विद्या)
विपश्चितं	जाननेवाले,	**यत्र**	जिनमें (दोनों)
अर्थ इन्द्रिय	विषय, इन्द्रियसे	**न**	नहीं हैं,
आभासं	आभासित होने-वाले,	**तं अक्षरं**	उन अविनाशी
		खं	आकाश रूप
अनिद्रं	अज्ञान निद्रासे रहित,	**त्रियुगं**	त्रियुगकी
		व्रजामहे	हम शरण लेते हैं ॥२७॥
अवणं	देहहीन हैं,		
गृध्रपक्षौ	जीवके पक्ष		

अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं
मनोमयं पञ्चदशारमाशु ।
त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि
यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥२८॥

अजस्य चक्रं तु अजया ईर्यमाणं मनः मयं पञ्चदश अरं आशु त्रिणाभि विद्युत् चलं अष्ट नेमि यत् अक्षं आहुः तं अमृतं प्रपद्ये ॥२८॥

पञ्चदश	पन्द्रह (दस इन्द्रिय और पंच प्राण)	**अजया**	माया द्वारा
		ईर्यमाणं	प्रेरित
अरं	अरोंवाले,	**मनः मयं**	मनोमय
त्रिणाभि	तीन (गुण रूप) नाभिका	**चक्रं**	(शरीर रूपी) चक्र-का
विद्युत्	बिजलीके समान	**यत् अक्षं आहुः**	जिन्हें आधार कहा गया है,
आशु चलं	तीव्र वेग		
अष्ट	आठ (प्रकृति रूप)	**तं अमृतं**	उन अमृत स्वरूपकी
नेमिः	नेमिका	**प्रपद्ये**	हम शरण लेते हैं ॥२८॥
अजस्य तु	अजन्मा जीवका ही		

य एकवर्णं तमसः परं त-
दलोकमव्यक्तमनन्तपारम् ।
आसाञ्चकारोपसुपर्णमेन-
मुपासते योगरथेन धीराः ॥२९॥

य एकवर्णं तमसः परं तत् अलोकं अव्यक्तं अनन्त पारं आसान् चकार उपसुपर्णं येनं उपासते योग रथेन धीराः ॥२९॥

य एकवर्णं	जो एकमात्र ज्ञान स्वरूप,	उपसुपर्णं	जीवके समीप
		आसान्	आसन
तमसः परं	प्रकृतिसे परे हैं,	चकार	जमाये (नित्यस्थि त)
तत् अलोकं	उन अदृश्य,		की
अव्यक्तं	अव्यक्त,	धीराः	धीर (विवेकी) जन
येनं	जो	योग रथेन	योग-मार्गसे
अनन्त पारं	अनन्त (देशातीत कालातीत)	उपासते	उपासना करते हैं ॥२९॥

न यस्य कश्चातितितर्ति मायां
यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् ।
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं
नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥३०॥

न यस्य कश्चित् अतितितर्ति मायां यया जनः मुह्यति वेद न अर्थं तं निर्जित आत्म आत्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥३०॥

यया	जिस (माया) के	मायां	उस मायाको
जनः	(द्वारा) मनुष्य	अतितितर्ति न	पार नहीं कर सकता
मुह्यति	मोहित होकर		
अर्थं	अपने (ठीक) प्रयोजनको	तं आत्म	उस अपनी
		आत्म गुणं	अपनी गुण रूपा मायाको
न वेद	नहीं जानता		
कश्चित् यस्य	कोई भी जिनकी		

निर्जित	जीत लेनेवाले	परेशं	परमेश्वरको हम
भूतेषु	समस्त प्राणियोंमें	नमाम	नमस्कार करते हैं
समं चरन्तं	समान रूपसे व्याप्त		॥३०॥

इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा
सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः ।
गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे
कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥३१॥

इमे वयं यत् प्रिय एव तन्वा सत्त्वेन सृष्टा बहिः अन्तः आविः गतिं न सूक्ष्मां ऋषयः च विद्महे कुतः असुर आद्याः इतर प्रधानाः ॥३१॥

प्रिय एव	जिनके प्रिय ही	गतिं	स्वरूपको
सत्त्वेन तन्वा	सत्त्वगुणके अंशसे	न विद्महे	नहीं जान पाते
सृष्टा	उत्पन्न	इतर	तब जिनमें दूसरे
इमे वयं	ये हम (देवता)		गुण (रजः तमः)
च ऋषयः	और ऋषिगण	प्रधानाः	प्रधान हैं वे
बहिः अन्तः	अपने बाहर भीतर	असुर आद्याः	असुरादि
आविः	विराजमान	कुतः	कैसे (जान सकते
यत् सूक्ष्मां	जिनके सूक्ष्म		हैं) ॥३१॥

पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य
चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ।
स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३२॥

पादौ मही इयं स्वकृत एव यस्य चतुर्विधः यत्र हि भूतसर्गः स वै महापूरुषः आत्मतन्त्रः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३२॥

यत्र	जिसमें
चतुर्विधः	चारों (स्वेदज, अंडज, उद्भिज, जरायुग) प्रकारकी
भूतसर्गः	प्राणि सृष्ट है (वह)
हि इयं मही	क्योंकि यह पृथ्वी
स्वकृत एव	उनकी अपनी बनायी ही है,
यस्य पादौ	जिनका पैर है,
वै स	निश्चय वे
महापूरुषः	महापुरुष
आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र
महाविभूतिः	परम ऐश्वर्यशाली
ब्रह्म	परम ब्रह्म
प्रसीदतां	(हमपर) प्रसन्न हों ॥३२॥

अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं
सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः ।
लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३३॥

अम्भः तु यद् रेत उदारवीर्यं सिध्यन्ति जीवन्ति उत वर्धमानाः लोकाः त्रयः अथ अखिल लोकपालाः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३३॥

त्रयः लोकाः	तीनों लोक
अथ	और
लोकपालाः	लोकपाल भी (जिससे)
सिध्यन्ति	उत्पन्न होते,
जीवन्ति	जीते
उत वर्धमानाः	तथा बढ़ते हैं
उदारवीर्यः	वह शक्तिशाली
अम्भः तु	जल ही
यत् रेत	जिनका वीर्य है (वे)
महाविभूतिः	परमैश्वर्य
ब्रह्म प्रसीदतां	परम ब्रह्म प्रसन्न हों ॥३३॥

सोमं मनो यस्य समामनन्ति
दिवौकसां वै बलमन्ध आयुः ।
ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३४॥

सोमं मनः यस्य सम आमनन्ति दिवौकसां वै बलं अन्ध आयुः ईशः नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३४॥

दिवौकसां	देवताओंकी जिसे	प्रजनः	उत्पन्न करनेवाला
वै बलं	निश्चित रूपसे बल,	सोमं	चन्द्रमा
अन्धः	अन्न	यस्य मनः	जिनका मन है,
आयुः	आयु	स	वे
सम आमनन्ति	कहते हैं,	महाविभूतिः	महाऐश्वर्यशाली
नगानां	जो वृक्षोंका	नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों
ईशः	आधीश्वर,		॥३४॥
प्रजानां	प्रजाओंको		

अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा
जातः क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा ।
अन्तःसमुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३५॥

अग्निः मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकाण्ड निमित्त जन्मा अन्तः समुद्रे अनुपचन् स्वधातून् प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३५॥

क्रियाकाण्ड	(यज्ञादि) कर्मकाण्ड-के	अनुपचन्	पचाता हुआ
		जातवेदा अग्निः	वह जातवेदा अग्नि
निमित्त जन्मा	निमित्त जन्म लेने-वाले,	यस्य तु मुखं	जिसका तो मुख है,
		स	वे
अन्तः	शरीरके भीतर और	महाविभूतिः	महाऐश्वर्यमय
समुद्रे	समुद्रमें	नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों
स्वधातून्	वहां विद्यमान धातुओंको		॥३५॥

यच्चक्षुरासीत् तरणिर्देवयानं
त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ।

द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३६॥

यत् चक्षुः आसीत् तरणिः देवमानं त्रयीमयः ब्रह्मच एष धिष्ण्यं द्वारं च मुक्तेः अमृतं च मृत्युः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३६॥

देवयानं	देवयान मार्गके अधिष्ठाता	मृत्युः	मृत्यु स्वरूप
त्रयीमयः	वेदमय	एष तरणिः	ये सूर्य
ब्रह्मण	परं ब्रह्मकी	यत् चक्षुः	जिनके नेत्र
धिष्ण्यं	उपासनाके स्थान,	आसीत्	हैं
च मुक्तेः द्वारं	और मोक्षके द्वार,	स महाविभूतिः	वे महाऐश्वर्यमय
अमृतं च	अमृत और	नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों ॥३६॥

प्राणादभूद् यस्य चराचराणां
प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ।
अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३७॥

प्राणात् अभूत् यस्य चर अचराणां प्राणः सहः बलं ओजः च वायुः अनु अवास्म सम्राजं इव अनुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३७॥

चर अचराणां	जंगम-स्थावर सब प्राणियोंका	अनु अवास्म	पीछे चलते हैं,
सहः बलं	जो मनोबल, देहबल	वायुः यस्य	वह वायु जिसके
च ओजः	और इन्द्रिय बल है,	प्राणात् अभूत्	प्राणसे उत्पन्न हुआ,
सम्राजं इव	सम्राटके समान जिसके	स	वे
वयं	हम (देवता)	महाविभूतिः	परमैश्वर्य
अनुगा	अनुयायियोंके समान	नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों ॥३७॥

श्रोत्राद् दिशो यस्य हृदश्च खानि
प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ।
प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३८॥

श्रोत्रात् दिशः यस्य हृदः च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः प्राण इन्द्रिय आत्म असु शरीरकेतं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३८॥

यस्य पुरुषस्य	जिन परम पुरुषके	**असु**	सूक्ष्मप्राण (नाग,
श्रोत्रात्	कानोंसे		कूर्म, कृकल, देवदत्त,
दिशः	विशाएँ,		धनंजय)
हृदः च खानि	हृदयसे इन्द्रियां,	**शरीरकेतं**	तथा शरीरका
नाभ्याः	नाभिसे		आधार
प्राण	प्राण (प्राण, अपान,	**खं प्रजज्ञिरे**	आकाश उत्पन्न
	व्यान, उदान,		हुआ
	समान)	**स महाविभूतिः**	वे परमेश्वर्य
इन्द्रिय आत्म	इन्द्रियां, मन,	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों
			॥३८॥

बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादा-
न्मन्योर्गिरीशो धिषणाद् विरिञ्चः ।
खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३९॥

बलात् महेन्द्रः त्रिदशाः प्रसादात् मन्योः गिरीशः धिषणात् विरिञ्चः खेभ्यः च छन्दांसि ऋषयः मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३९॥

बलात् महेन्द्रः	(जिनके) बलसे इन्द्र,	**मन्योः गिरीशः**	क्रोधसे रुद्र,
प्रसादात्	कृपासे	**धिषणात्**	बुद्धिसे
त्रिदशाः	देवता.	**विरिञ्चः**	ब्रह्मा,

खेभ्यः छन्दांसि	इन्द्रियोंसे वेद	स महाविभूतिः	वे महाविभूति
च ऋषयः	और ऋषिगण,	नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों
मेढतः कः	शिश्नसे प्रजापति (उत्पन्न हुए)		॥३६॥

**श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययाऽऽसन्
धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ।
द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४०॥**

श्रीः वक्षसः पितरः छायया आसन् धर्मः स्तनात् इतरः पृष्ठतः अभूत् द्यौः यस्य शीर्ष्णः अप्सरसः विहारात् प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४०॥

छायया पितरः	छायासे पितर	विहारात्	विहारसे
आसन्	उत्पन्न हुए,	अप्सरसः	अप्सराएँ,
स्तनात् धर्मः	स्तनोंसे धर्म	अभूत्	उत्पन्न हुईं
पृष्ठतः इतरः	पीठसे दूसरा (अधर्म)	स महाविभूतिः	वे महाविभूति
यस्य शीर्ष्णः	जिनके मस्तकसे	नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों
द्यौ	द्युलोक,		॥४०॥

**विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं
राजन्य आसीद् भुजयोर्बलं च ।
ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४१॥**

विप्रः मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीत् भुजयोः बलं च उर्वोः विड् ओजः अङ्घ्रिः अवेद शूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४१॥

यस्य मुखं	जिनके मुखसे	गुह्यं ब्रह्म	रहस्यात्मक वेद,
विप्रः च	ब्राह्मण तथा	भुजयोः	भुजाओंसे

राजन्य	क्षत्रिय	अवेद शूद्रौ	वेदबाह्य तथा शूद्र
च बलं	तथा बल	आसीत्	उत्पन्न हुए
ऊर्वोः	उरु (जांघ) से	स महाविभूतिः	वे महाविभूति
विड् ओजः	वैश्य और (उनकी वृत्ति) ओज	नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों ॥४१॥
अङ्घ्रिः	पैरसे		

लोभोऽधरात् प्रीतिरुपर्यभूद् द्युति-
र्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ।
भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४२॥

लोभः अधरात् प्रीतिः उपरि अभूत् द्युतिः नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः भ्रुवोः यमः पक्ष्म भवः तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४२॥

अधरात्	(जिनके) नीचेके ओष्ठसे	अभूत्	उत्पन्न हुआ
लोभः	लोभ	भ्रुवोः यमः	भौंहोंसे यमराज,
उपरि	ऊपरी ओष्ठसे	पक्ष्म भवः तु	पलकोंसे तो
प्रीतिः	प्रीति,	कालः	काल उत्पन्न हुआ
नस्तः द्युतिः	नासिकासे कान्ति,	स महाविभूतिः	वे महाविभूति
स्पर्शेन	स्पर्शसे	नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों ॥४२॥
पशव्यः कामः	पाशव धर्म काम,		

द्रव्यं वयः कर्म गुणान्विशेषं
यद्योगमायाविहितान्वदन्ति ।
यद् दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४३॥

द्रव्यं वयः कर्म गुणान् विशेषं यत् योगमाया अविहितान् वदन्ति यत् दुर्विभाव्यं प्रबुध अपबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४३॥

द्रव्यं	पञ्चभूत,	**प्रबुध**	विद्वानों द्वारा
वयः	काल	**अपबाधं**	अनात्म रूपसे
कर्म	कर्म,		त्याज्य हैं, उन सब
गुणान्	सत्त्वादि गुण तथा		रूपोंवाले
यत् योगमाया	जो योगमाया द्वारा	**स महाविभूतिः**	वे महाविभूति
अविहितान्	निषिद्ध धर्म प्रगट	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों
	हुए हैं,		॥४३॥
यत् दुर्विभाव्यं	जो अचिन्त्य		

नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये
स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ।
गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभि-
र्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥४४॥

नमः अस्तु तस्मा उपशान्त शक्तये स्वाराज्य लाभ प्रतिपूरित आत्मने गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिः न सज्जमानाय नभस्व दूतये ॥४४॥

शक्तये	सम्पूर्ण शक्तियां	**गुणेषु वृत्तिभिः**	गुणोंकी वृत्तियोंमें
उपशान्त	जिनमें शान्त हैं.	**न सज्जमानाय**	संसक्त न होनेवाले
स्वाराज्य	आत्मराज्य	**नभस्व**	वायुके समान
लाभ	प्राप्तिमे	**दूतये**	विचरण करनेवाले
प्रतिपूरित	परिपूर्ण	**तस्मा नमः**	उन (परमात्मा) को
आत्मने	स्वरूप,	**अस्तु**	नमस्कार हो ॥४४॥
मायरचितेषु	माया निर्मित		

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥४५॥

स त्वं नः दर्शय आत्मानं अस्मत् करण गोचरं प्रपन्नानां दिदृक्षुणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥४५॥

स त्वं	ऐसे आप	**ते आत्मानं**	वह आपका
नः दिदृक्षुणां	हम दर्शनाभिलाषी	**सस्मितं**	मुस्कराता
प्रपन्नानां	शरणागतोंके	**मुखाम्बुजं**	मुख-कमल
अस्मत् करण	हमारी इन्द्रियोंको	**दर्शय**	दिखलाइए ॥४५॥
गोचरं	दीख सके		

तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो ।
कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत् करोति हि ॥४६॥

तैः तैः स्वेच्छा धृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो कर्म दुर्विषहं यत् नः भगवान् तत् करोति हि ॥४६॥

विभो भगवान्	प्रभो ! भगवन् !	**स्वेच्छा**	अपनी इच्छासे
यत् नः	जो हमारे लिए	**धृतैः**	धारण किये
दुर्विषहं कर्म	दुःसह कर्म होते हैं	**रूपैः तत्**	रूपोंसे उसे
हि काले काले	क्योंकि समय-समयपर	**स्वयं करोति**	आप स्वयं सम्पन्न कर देते हैं ॥४६॥
तैः तैः	उन-उन		

क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा ।
देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥४७॥

क्लेश भूरि अल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा देहिनां विषय आर्तानां न तथा एव अर्पितं त्वयि ॥४७॥

विषय	भोगोंके लिए	**भूरि क्लेश**	बहुत कष्ट तथा
आर्तानां	व्याकुल	**अल्पसाराणि**	तुच्छ सारवाले
देहिनां	शरीरधारियोंके	**वा विफलानि**	अथवा निष्फल होते हैं
कर्माणि	कर्म		

तथा त्वयि	उस प्रकार आपको	एव	होनेवाले (कर्म)
अर्पितं	अर्पित	न	नहीं होते ॥४७॥

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ।
कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥४८॥

न अवमः कर्म कल्पः अपि विफलाय ईश्वर अर्पितः कल्पते पुरुषस्य एष स हि आत्मा दयितः हितः ॥४८॥

हि स आत्मा	क्योंकि वे परमात्मा	अवमः कल्पः	थोड़ा किया
दयितः हितः	प्रिय और हितकारी हैं,	कर्म अपि	कर्म भी
		विफलाय न	निष्फल नहीं
एष पुरुषस्य	अतः इस पुरुषका	कल्पते	होता ॥४८॥
ईश्वर अर्पितः	भगवान्‌को अर्पित		

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥४९॥

यथा हि स्कन्ध शाखानां तरोः मूल अवसेचनं एवं आराधनं विष्णोः सर्वेषां आत्मनः च हि ॥४९॥

हि यथा	क्योंकि जैसे	विष्णोः	विष्णु भगवान्‌की
तरोः मूल	वृक्षकी जड़को	आराधनं	आराधना
अवसेचनं	सींचना	सर्वेषां च	सबकी तथा
स्कन्ध	तने तथा डालियोंको	आत्मनः	अपनी भी (सेवा)
शाखानां	(भी सींचना है)		है ॥४९॥
एवं	इसी प्रकार		

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ।
निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥५०॥

नमः तुभ्यं अनन्ताय दुर्वितर्क्य आत्मकर्मणे निर्गुणाय गुण ईशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥५०॥

अनन्ताय	अनन्त	**च**	और
आत्मकर्मणे	अपने कर्मोंसे	**साम्प्रतं**	इस समय
दुर्वितर्क्य	अचिन्त्य	**सत्त्वस्थाय**	सत्वगुणमें स्थित
निर्गुणाय	निर्गुण,	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार
गुण ईशाय	गुणोंके स्वामी,	**(अस्तु)**	हो ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे-
ऽमृतमथने पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान् हरिरीश्वरः ।
तेषामाविरभूद् राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥

एवं स्तुतः सुरगणैः भगवान् हरिः ईश्वरः तेषां आविः अभूत् राजन् सहस्र अर्क उदय द्युतिः ॥१॥

राजन्	राजन् !	उदय	उदय होनेके समान
सुरगणैः	देवताओं द्वारा	द्युतिः	तेजस्वी
एवं स्तुतः	इस प्रकार स्तुति करनेपर	ईश्वरः भगवान्	सर्वसमर्थ भगवान्
		हरिः तेषां	श्रीहरि उनके सामने
सहस्र अर्क	सहस्रों सूर्योंके	आविः अभूत्	प्रकट हो गये ॥१॥

तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ।
नापश्यन्खं दिशः क्षोणिमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २ ॥

तेन एव महसा सर्वे देवाः प्रतिहत ईक्षणाः न अपश्यन् दिशः खं क्षोणीं आत्मानं च कुतः विभुम् ॥२॥

तेन एव	(भगवान्‌के) उसी	दिशः क्षोणीं	दिशाओंको, पृथ्वी-
महसा	तेजसे		को
ईक्षणाः	आखोंमें	च आत्मानं	तथा अपनेको भी
प्रतिहत	चकाचौंध होनेसे	न अपश्यन्	नहीं देख सके
सर्वे देवाः	सब देवता	विभुं कुतः	तब उन सर्वव्यापक को कैसे देखते ॥२॥

विरिञ्चो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ।
स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥

विरिञ्चः भगवान् दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुं स्वच्छां मरकत श्यामां कञ्ज गर्भ अरुण ईक्षणाम् ॥३॥

सह शर्वेण	शंकरजीके साथ	**स्वच्छां**	निर्मल
भगवान्	भगवान्	**मरकत**	नीलम मणिके समान
विरिञ्चः	ब्रह्माने	**श्यामां**	श्याम,
तां तनुं	उस (भगवान्के) रूपको	**कञ्ज**	कमलके
		गर्भ	भीतरी भागके समान
दृष्ट्वा	देखा,	**अरुण ईक्षणां**	लाल नेत्रवाले ॥३॥

तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ।
प्रसन्नचारुसर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दरभ्रुवम् ॥ ४ ॥

तप्त हेम अवदातेन लसत् कौशेय वाससा प्रसन्न चारु सर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दर भ्रुवम् ॥४॥

तप्त हेम	तपाये हुए स्वर्णके	**चारु सर्वाङ्गीं**	सर्वाङ्ग सुन्दर,
अवदातेन	समान आभावाले	**सुमुखीं**	सुन्दर मुख,
कौशेय वाससा	रेशमी वस्त्रसे	**सुन्दर**	सुन्दर
लसत्	सुशोभित	**भ्रुवं**	भौंहोंवाली (मूर्ति) थी ॥४॥
प्रसन्न	प्रसन्न,		

महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ।
कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ॥ ५ ॥

महामणि किरीटेन केयूराभ्यां च भूषितां कर्ण आभरण निर्भात कपोल श्रीमुख अम्बुजाम् ॥५॥

महामणि	महामणि जड़ित	**कपोल**	कपोलोंवालासे
किरीटेन	मुकुट	**श्रीमुख अम्बुजां**	श्रीमुख-कमल
च केयूराभ्यां	तथा अंगदोंसे	**निर्भात**	अत्यन्त शोभित था ॥५॥
भूषितां	भूषित थी,		
कर्ण आभरण	कानोंके आभूषण (कुंडल) से		

काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ।
कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ॥ ६ ॥

काञ्चीकलाप वलय हार नूपुर शोभितां कौस्तुभ आभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीम् वनमालिनीम् ॥६॥

काञ्चीकलाप	करधनी,	**आभरणां**	भूषित किये,
वलय हार	कङ्कण, हार,	**लक्ष्मीं**	श्रीवत्सचिह्न
नूपुर शोभितां	नूपुरसे सुशोभित,	**वनमालिनीं**	तथा वनमाला
कौस्तुभ	कौस्तुभमणिसे	**बिभ्रतीं**	धारण किये ॥६॥

सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् ।
तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ।
सर्वामरगणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिं गतैः ॥ ७ ॥

सुदर्शन आदिभिः स्व अस्त्रैः मूर्तिमत्भिः उपासितां तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परं सर्व अमरगणैः साकं सर्वाङ्गैः अवनिं गतैः ॥७॥

सुदर्शन	सुदर्शन	**साकं**	साथ
आदिभिः	आदि	**सर्वाङ्गैः**	सम्पूर्ण अंगसे
मूर्तिमत्भिः	मूर्तिमान	**अवनिं गतैः**	पृथ्वीपर पड़कर (साष्टाङ्ग प्रणाम करके)
स्व अस्त्रैः	अपने अस्त्रोंसे		
उपासितां	उपासित (उस मूर्तिको देखकर)	**परं पुरुषं**	परम पुरुषकी
		तुष्टाव	स्तुति करने लगे ॥७॥
सशर्वः	शंकरजीके साथ		
देवप्रवरः	देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने		
सर्व अमरगणैः	सब देवताओंके		

ब्रह्मोवाच–

अजातजन्मस्थितिसंयमाया-
गुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ।

अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने

महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥

अजात जन्म स्थिति संयमाय अगुणाय निर्वाण सुख अर्णवाय अणोः अणिम्ने अपरिगण्य धाम्ने महानुभावाय नमो नमः ते ॥८॥

जन्म	जन्म,	**अणोः अणिम्ने**	अणुसे भी अणु,
स्थिति संयमाय	स्थिति, प्रलय	**अपरिगण्य**	अपरिगणित
अजात	जिनका होता ही नहीं,	**धाम्ने**	स्वरूप,
		महानुभावाय	महा प्रभावशाली प्रभु
अगुणाय	उन निर्गुण		
निर्वाण सुख	मोक्ष सुख	**ते नमो**	आपको बार-बार
अर्णवाय	सागर	**नमः**	नमस्कार ॥८॥

रूपं तवैतत् पुरुषर्षभेज्यं

श्रेयोऽर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ।

योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्

पश्याम्यमुष्मिन् नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥

रूपं तव एतत् पुरुष ऋषभ इज्यं श्रेयः अर्थिभिः वैदिक तान्त्रिकेण योगेन धातः सह नः त्रिलोकान् पश्यामि अमुष्मिन् नु ह विश्वमूर्तौ ॥९॥

पुरुष ऋषभ	पुरुषोत्तम !	**धातः अमुष्मिन्**	त्राता ! आपके इस
श्रेयः	अपना कल्याण	**विश्वमूर्तौ**	विश्वरूपमें
अर्थिभिः	चाहनेवालों द्वारा	**नु ह**	निश्चय ही
तव एतत् रूपं	आपका यह रूप	**नः**	हम देवताओंके
वैदिक	वैदिक और	**सह**	साथ
तान्त्रिकेण	तान्त्रिक	**त्रिलोकान्**	तीनों लोकोंको
योगेन	विधिसे	**पश्यामि**	देख रहा हूँ ॥९॥
इज्यं	पूजनीय हैं		

त्वय्यग्र आसीत् त्वयि मध्य आसीत्
त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ।
त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं
घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥१०॥

त्वयि अग्र आसीत् त्वयि मध्य आसीत् त्वयि अन्त आसीत् इदं आत्मतन्त्रे त्वं आदिः अन्तः जगतः अस्य मध्यं घटस्य मृत्स्ना इव परः परस्मात् ॥१०॥

परस्मात्	इसपर (प्रकृति) से भी	त्वयि अन्त आसीत्	आपमें ही अन्त है
परः	आप परे हैं,	घटस्य मृत्स्ना	घड़ेका मिट्टीके
आत्मतन्त्रे	परम स्वतन्त्र आपमें	इव	समान
इदं त्वयि	इस जगत्का आप ही	अस्य जगतः	इस जगत्के
अग्र आसीत्	आदि है,	त्वं	आप ही
त्वयि मध्य	आपमें ही मध्य	आदिः अन्तः	आदि, अन्त और
आसीत्	है,	मध्यं	मध्य भी हो ॥१०॥

त्वं माययाऽऽत्माश्रयया स्वयेदं
निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ।
पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो
गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥११॥

त्वं मायया आत्म आश्रयया स्वया इदं निर्माय विश्वं तत् अनुप्रविष्टः पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणः गुणव्यवाये अपि अगुणं विपश्चितः ॥११॥

त्वं स्वया	आप अपना	निर्माय तत्	बनाकर फिर
आत्म	अपने	अनुप्रविष्टः	इसमें प्रविष्ट हो गये हैं,
आश्रयया	आश्रयमें रहनेवाली		
मायया इदं	मायासे इस विश्वको	विपश्चितः	विवेकी
		मनीषिणः	बुद्धिमान

युक्ता	युक्ति जाननेवाले	अपि	भी
मनसा	मनसे	अगुणं	आपको निर्गुण
गुणव्यवाये	गुणोंकी सृष्टिमें	पश्यन्ति	देखते हैं ॥११॥

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु
भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम् ।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां
गुणेषु बुद्धया कवयो वदन्ति ॥१२॥

यथा अग्नि एधस्य अमृतं च गोषु भुवि अन्नं अम्बु उद्यमने च वृत्तिं योगैः मनुष्याः अधियन्ति हि त्वां गुणेषु बुद्ध्या कवयः वदन्ति ॥१२॥

यथा एधस्य	जैसे लकड़ीमें-से	मनुष्याः	मनुष्य
अग्नि	अग्नि	अधियन्ति	पालेते है
च गोषु	और गायोंमें-से	हि त्वां	क्योंकि आपको
अमृतं	अमृत (थी)		(वैसे ही)
भुवि अन्नं	पृथ्वीमें-से अन्न और	कवयः	बुद्धिमान
अम्बु	जल,	बुद्ध्या	बुद्धि द्वारा
च उद्यमने	तथा उद्यमसे	गुणेषु	गुणोंमें पालते और
वृत्तिं	आजीविका	वदन्ति	वर्णन करते हैं
योगैः	उपायों द्वारा		॥१२॥

तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं
सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ।
दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे
गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः ॥१३॥

तं त्वां वयं नाथ सम उज्जिहानं सरोजनाभ अतिचिर ईप्सित अर्थं दृष्ट्वा गता निर्वृतिं अद्य सर्वे गजा दव आर्ता इव गाङ्गं अम्भः ॥१३॥

सरोजनाभ	पद्मनाभ !	दव आर्ता	दावाग्नि संतप्त
अतिचिर	बहुत समयसे	गजा	हाथीके
ईप्सित	अभीष्ट	गाङ्गं अम्भः	गंगा जल पानेके
अर्थं	प्रयोजन रूप	इव	समान
नाथ तं त्वां	स्वामी उस आपको	अद्य वयं सर्वे	आज हम सब
सम उज्जिहानं	सम्मुख प्रकट हुए	निर्वृतिं गता	परमानन्द प्राप्त हुए
दृष्ट्वा	देखकर		॥१३॥

स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला
वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ।
समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्
किं वान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥१४॥

स त्वं विधत्स्व अखिल लोकपाल वयं यत् अर्थाः तव पादमूलं समागताः ते बहिः अन्तः आत्मनि किं वा अन्य विज्ञाप्यं अशेष साक्षिणः ॥१४॥

वयं अखिल	हम सब	ते अशेष	आप सबके ही
लोकपाल	लोकपाल	आत्मनि बहिः	शरीरके बाहर-
यत् अर्थाः	जिस प्रयोजनसे	अन्तः	भीतरके
तव पादमूलं	आपके चरणोके समीप	साक्षिणः	साक्षीसे
		वा अन्य किं	फिर दूसरा क्या
समागताः	आए हैं	विज्ञाप्यं	सूचित करना रहा
स त्वं विधत्स्व	उसे आप पूरा कर दो,		है ॥१४॥

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये
दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ।
किं वा विदामेश पृथग्विभाता
विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥१५॥

अहं गिरित्रः च सुरादयः ये दक्ष आदयः अग्नेः इव केतवः ते किं वा विदाम ईश पृथक् विभाता विधत्स्व शं नः द्विज देव मन्त्रम् ॥१५॥

अहं गिरित्रः	मैं, शंकरजी,	किं वा	अथवा क्या (अपना
च ये	तथा जो		कल्याण)
सुरादयः	देवतादि,	विदाम	जान सकते हैं
दक्ष आदयः	दक्ष आदि (प्रजा-	ईश नः	अतः स्वामी ! हम
	पति)	देव द्विज	देवता, ब्राह्मणोंके-
अग्नेः	अग्निकी	शं मन्त्रं	कल्याणका उपाय
केतवः	चिनगारियोंके	विधत्स्व	(आप ही) कीजिए
इव	समान		॥१५॥
ते पृथक्	आपसे पृथक्		
विभाता	प्रकाशित		

श्रीशुक उवाच

एवं विरिञ्चादिभिरीडितस्तद्
विज्ञाय तेषां हृदयं तथैव ।
जगाद जीमूतगभीरया गिरा
बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥१६॥

एवं विरिञ्च आदिभिः ईडितः तत् विज्ञाय तेषां हृदयं तथा एव जगाद जीमूत गभीरया गिरा बद्ध अंजलीन् संवृत सर्व कारकान् ॥१६॥

एवं	इस प्रकार	विज्ञाय	जानकर
विरिञ्च	ब्रह्मा	सर्व कारकान्	सब इन्द्रियोंको
आदिभिः	आदि द्वारा	संवृत	रोककर
ईडितः	स्तुति करनेपर	अंजलीन् बद्ध	हाथ जोड़े
तत् हृदयं	उनके हृदयकी	तेषां	उन (देवताओं)से
	इच्छा	तथा	और (उनकी
			इच्छाके)

एव	अनुसार ही	जगाद	(भगवान्) बोले
जीमूत गभीरया	मेघ गम्भीर		॥१६)
गिरा	वाणीसे		

एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः ।
विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥१७॥

एक एव ईश्वरः तस्मिन् सुर कार्ये सुर ईश्वरः विहर्तु कामः तान् आह समुद्र उन्मथन आदिभिः ॥१७॥

सुर ईश्वरः	वे देवताओंके स्वामी	समुद्र उन्मथन	समुद्र-मन्थन
सुर	देवताओंके	आदिभिः	आदिके द्वारा
तस्मिन् कार्ये	उस काममें	विहर्तु	क्रीड़ा करनेकी
एक एव	अकेले ही	कामः	इच्छासे
ईश्वरः	समर्थ होनेपर भी	तान् आह	उनसे बोले ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच—

हन्त ब्रह्मन्नहो शम्भो हे देवा मम भाषितम् ।
शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद् यथा सुराः ॥१८॥

हन्त ब्रह्मन् अहो शम्भो हे देवा मम भाषितं शृणुता अवहिताः सर्वे श्रेयः वः स्यात् यथा सुराः ॥१८॥

हन्त ब्रह्मन्	हे ब्रह्माजी,	शृणुता	सुनो,
अहो शम्भो	हे शङ्कर,	सुराः यथा	देवताओ, जिससे
हे देवा सर्वे	हे देवगण सब लोग	वः श्रेयः स्यात्	तुम लोगोंका कल्याण
अवहिताः	सावधान होकर		हो ॥१८॥
मम भाषितं	मेरा भाषण		

यात दानवदैतेयैस्तावत् सन्धिर्विधीयताम् ।
कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद् वो भव आत्मनः ॥१९॥

यात दानव दैतेयैः तावत् सन्धिः विधीयतां कालेन अनुगृहीतैः तैः यावत् वः भव आत्मनः ॥१९॥

यात यावत्	जाओ, जब तक	**तावत् दानव**	तब तक दानव
वः आत्मनः	तुम लोगोंके अपने	**दैतेयैः**	दैत्योंसे
भव तैः	अभ्युदयका वह	**सन्धिः**	सन्धि
अनुगृहीतैः	अनुकूल	**विधीयतां**	कर लो ॥१९॥
कालेन	समय न आवे		

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे ।
अहिमूषकवद् देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ॥२०॥

अरयः अपि हि सन्धेयाः सति कार्य अर्थ गौरवे अहि मूषकवत् देवा हि अर्थस्य पदवीं गतैः ॥२०॥

हि देवा	क्योंकि देवताओं	**पदवीं गतैः**	अवसर आनेपर
गौरवे कार्य	बड़ा कार्य सिद्ध करनेका	**अहि मूषकवत्**	सर्प चूहेके समान
		अरयः अपि हि	शत्रु भी तो
अर्थ सति	प्रयोजन होनेपर	**सन्धेयाः**	सन्धि कर लेने योग्य होते हैं ॥२०॥
अर्थस्य	प्रयोजन पूर्तिका		

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम् ।
यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥२१॥

अमृत उत्पादने यत्नः क्रियतां अविलम्बितं यस्य पीतस्य वै जन्तुः मृत्युग्रस्तः अमरः भवेत् ॥२१॥

अविलम्बितं	बिना बिलम्ब किये	**मृत्युग्रस्तः**	मृत्युग्रस्त
अमृत उत्पादने	अमृत उत्पन्न करनेका	**जन्तुः**	प्राणी
		वै अमरः भवेत्	निश्चय अमर हो जाता है ॥२१॥
यत्नः क्रियतां	प्रयत्न करो		
यस्य पीतस्य	जिसको पीनेपर		

क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२२॥

क्षिप्त्वा क्षीर उदधौ सर्वा वीरुत् तृण लता औषधिः मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२२॥

क्षीर उदधौ	क्षीर-सागरमें	**मन्थानं कृत्वा**	मथानी बनाकर
सर्वा वीरुत्	सब पौधे	**तु वासुकिं**	तथा वासुकी-नाग-को
तृण लता	घास, लता तथा	**नेत्रं कृत्वा**	मन्थन-रज्जु बनाकर ॥२२॥
औषधिः	औषधियां		
क्षिप्त्वा	डालकर		
मन्दरं	मन्दराचलको		

सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः ।
क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥२३॥

सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वं अतन्द्रिताः क्लेशभाजः भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥२३॥

देवा मया	देवताओ, मेरी	**क्लेश भाजः**	क्लेशभागी और
सहायेन	सहायतासे	**यूयं फलग्रहाः**	तुम लोग फल लेने वाले
अतन्द्रिताः	आलस्य त्यागकर	**भविष्यन्ति**	होओगे ॥२३॥
निर्मन्थध्वं	मन्थन करो		
दैत्याः	दैत्य		

यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः ।
न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ॥२४॥

यूयं तत् अनुमोदध्वं यत् इच्छन्ति असुराः सुराः न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वे अर्थाः सान्त्वया यथा ॥२४॥

यत् असुराः	जो असुर	**सुराः यूयं**	देवताओ ! तुम लोग
इच्छन्ति	चाहते हैं,	**तत्**	उसे

अनुमोदध्वं	स्वीकार कर लो	**सिध्यन्ति**	सिद्ध होते हैं
सर्वे अर्थाः	सब प्रयोजन	**संरम्भेण**	वैसे (क्रोधसे)
यथा सान्त्वया	जैसे शान्तिपूर्वक	**न**	नहीं ॥२४॥

न भेतव्यं कालकूटाद् विषाज्जलधिसम्भवात् ।
लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥२५॥

न भेतव्यं कालकूटात् विषात् जलधि सम्भवात् लोभः कार्यः न वः जातुः रोषः कामः तु वस्तुषु ॥२५॥

जलधि	समुद्रसे	**वस्तुषु**	वस्तुके लिए
सम्भवात्	उत्पन्न होनेवाले	**लोभः कामः तु**	लोभ, कामना भी
कालकूटात्	कालकूट	**रोषः वः**	या क्रोध तुम लोगों-
विषात्	विषसे		को
भेतव्यं न	डरना नहीं चाहिए,	**न कार्यः**	नहीं करना चाहिए
जातुः	उत्पन्न होनेवाली किसी		॥२५॥

श्रीशुक उवाच—

इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ।
तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥२६॥

इति देवान् समादिश्य भगवान् पुरुषोत्तमः तेषां अन्तः दधे राजन् स्वच्छन्द गतिः ईश्वरः ॥२६॥

देवान् इति	देवताओंको इस प्रकार	**ईश्वरः भगवान्**	सर्वसमर्थ भगवान्
समादिश्य	भली प्रकार आदेश देकर	**पुरुषोत्तमः**	पुरुषोत्तम
स्वच्छन्द गतिः	स्वच्छन्द गति	**तेषां**	उनके सामनेसे
		अन्तः दधे	अन्तर्धान हो गये ॥२६॥

अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ।
भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥२७॥

अथ तस्मै भगवते नमः कृत्य पितामहः भवः च जग्मतुः स्वं स्वं धाम उपेयुः बलिं सुराः ॥२७॥

अथ तस्मै	तब उन	**स्वं स्वं धाम**	अपने-अपने धाम
भगवते	भगवान्‌को	**जग्मतुः**	चले गये
नमः कृत्य	प्रणाम करके	**सुराः**	देवता
पितामहः च	ब्रह्मा और	**बलिं**	दैत्यराज बलिके
भवः	शंकरजी	**उपेयुः**	समीप पहुँचे ॥२७॥

दृष्ट्वारीनप्यसंयत्ताञ्जातक्षोभान्स्वनायकान् ।
न्यषेधद् दैत्यराट् श्लोक्यः सन्धिविग्रहकालवित् ॥२८॥

दृष्ट्वा अरीन् अपि संयत्तान् जातक्षोभान् स्वनायकान् न्यषेधत् दैत्यराट् श्लोक्यः सन्धिविग्रह कालवित् ॥२८॥

अरीन्	शत्रुओंको	**सन्धि विग्रह**	सन्धि और युद्धके
संयत्तान् अपि	संयमित (निःशस्त्र) भी	**कालवित्**	समयको जाननेवाले
		श्लोक्यः	यशस्वी
दृष्ट्वा	देखकर	**दैत्यराट्**	दैत्यराजने
जातक्षोभान्	क्रुद्ध हुए	**न्यषेधत्**	रोक दिया ॥२८॥
स्वनायकान्	अपने सेनानायकोंको		

ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ।
श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥२९॥

ते वैरोचनिं आसीनं गुप्तं च असुरयूथपैः श्रिया परमया जुष्टं जित अशेषं उप आगमन् ॥२९॥

असुरयूथपैः	असुर सेना नायकोंसे	**परमया श्रिया**	परम शोभा
गुप्तं च	सुरक्षित तथा	**जुष्टं**	सम्पन्न

आसीनं	बैठे हुए	जित अशेषं	पराजित
वैरोचनिं	विरोचननन्दन	उप आगमन्	समीप आए ॥२९॥
ते	वे सम्पूर्ण रूपसे		

महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः ।
अभ्यभाषत तत् सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥३०॥

महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः अभ्यभाषत तत् सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥३०॥

महामतिः	महाबुद्धिमान	पुरुषोत्तमात्	पुरुषोत्तमसे
महेन्द्रः	इन्द्रने	शिक्षितं तत्	सीखा था, वह
श्लक्ष्णया वाचा	मधुर वाणीसे	सर्वं	सब
सान्त्वयित्वा	सान्त्वना देकर	अभ्यभाषत	सुनाया ॥३०॥
(यत्)	जो भगवान्		

तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ।
शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥३१॥

तत् अरोचत दैत्यस्य तत्र अन्ये ये असुर अधिपाः शम्बरः अरिष्टनेमिः च ये च त्रिपुरवासिनः ॥३१॥

तत्	यह बात	च ये	तथा जो
दैत्यस्य	दैत्यराजको और	त्रिपुरवासिनः	त्रिपुरवासी
तत्र ये अन्ये	वहां जो दूसरे	असुर अधिपाः	असुर-नायक थे
शम्बरः	शम्बर,		उनको
अरिष्टनेमिः	अरिष्टनेमि	अरोचत	अच्छी लगी ॥३१॥

ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ।
उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परन्तप ॥३२॥

ततः देव असुराः कृत्वा संविदं कृत सौहृदाः उद्यमं परमं चक्रुः अमृत अर्थे परंतप ॥३२॥

परंतप	शत्रुको संतप्त करने-वाले परीक्षित !	सौहृदाः	परस्पर मित्रता
		कृत	करके,
ततः देव	तब देवता और	अमृत अर्थे	अमृतके लिए
असुराः	असुरोंने	परमं उद्यमं	भारी उद्योग
संविदं कृत्वा	सलाह करके	चक्रुः	(प्रारम्भ) किया ॥३२॥

ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः ।
नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥३३॥

ततः ते मन्दरगिरिं ओजसा उत्पाट्य दुर्मदाः नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघ बाहवः ॥३३॥

ततः ते	तब वे	मन्दरगिरिं	मन्दराचलको
शक्ताः दुर्मदाः	शक्तिशाली, गर्विष्ठ	उत्पाट्य	उखाड़कर
परिघ	परिघके समान	नदन्त	गर्जना करते हुए
बाहवः	भुजाओं वालोंने	उदधिं निन्युः	समुद्रकी ओर ले चले ॥३३॥
ओजसा	बलपूर्वक		

दूरभारोद्वहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः ।
अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥३४॥

दूर भार उद्वह श्रान्ताः शक्र वैरोचन आदयः अपारयन्तः तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥३४॥

दूर भार उद्वह	दूर तक भार ढोनेसे	तं वोढुं	उसे ढोनेमें
श्रान्ताः शक्र	थककर इन्द्र	अपारयन्तः	असमर्थ होकर
वैरोचन	बलि	विवशा पथि	विवश होकर मार्गमें
आदयः	आदिने	विजहुः	छोड़ दिया ॥३४॥

निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ।
चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥३५॥

निपतन् स गिरिः तत्र बहून् अमर दानवान् चूर्णयामास महता भारेण कनक अचलः ॥३५॥

तत्र निपतन्	वहां गिरते समय	**बहून् अमर**	बहुतसे देव-
स गिरिः	उस पर्वतने	**दानवान्**	दानवोंको
महता भारेण	अपने भारी भारसे	**चूर्णयामास**	पीस डाला ॥३५॥
कनक अचलः	उस स्वर्ण पर्वतने		

तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान् ।
विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥३६॥

तान् तथा भग्न मनसः भग्न बाहु उरु कन्धरान् विज्ञाय भगवान् तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥३६॥

तान्	उन लोगोंको	**भग्न विज्ञाय**	टूटा जानकर
तथा	उस प्रकार	**तत्र गरुडध्वजः**	वहां गरुडध्वज
भग्न मनसः	भग्न संकल्प तथा	**भगवान् बभूव**	भगवान् प्रगट हो
बाहु उरु	भुजा, जांघें,		गये ॥३६॥
कन्धरान्	कन्धे		

गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ।
ईक्षया जीवयामास निर्जरान् निर्व्रणान्यथा ॥३७॥

गिरिपात विनिष्पिष्टान् विलोक्य अमर दानवान् ईक्षया जीवयामास निर्जरान् निर्व्रणान् यथा ॥३७॥

गिरिपात	पर्वतके गिरनेसे	**निर्जरान्**	थकावट और
विनिष्पिष्टान्	अत्यधिक कुचले हुए	**निर्व्रणान्**	चोटोंसे रहित
अमर दानवान्	देवता-दानवोंको	**यथा**	के समान करके
विलोक्य	देखकर	**जीवयामास**	जीवित कर दिया
ईक्षया	अपनी दृष्टिसे ही		॥३७॥

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ।
आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥३८॥

गिरिं च आरोप्य गरुडे हस्तेन एकेन लीलया आरुह्य प्रययाः अब्धिं सुर असुर गणैः वृतः ॥३८॥

एकेन हस्तेन	एक ही हाथसे	सुर असुर गणैः	देवता-असुर गणोंसे
गिरिं च गरुडे	पर्वतको भी गरुड़पर	वृतः अब्धिं	घिरे हुए समुद्रकी ओर
लीलया	खेल-खेलमें		
आरोप्य	रखकर	प्रययाः	चल पड़े ॥३८॥
आरुह्य	स्वयं भी बैठकर		

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात् सुपर्णः पततां वरः ।
ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥३९॥

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात् सुपर्णः पततां वरः ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥३९॥

पततां वरः	पक्षि-श्रेष्ठ	जलान्त	जलके समीप
सुपर्णः	गरुड़	उत्सृज्य	छोड़कर
गिरिं	पर्वतको अपने	स हरिणा	वे श्रीहरिके द्वारा
स्कन्धात्	कन्धेसे	विसर्जितः	विदा किये जानेपर
अवरोप्य	उतारकर	ययौ	चले गये ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
अमृतमथने मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ।
परिवीय गिरौ तस्मिन् नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥ १ ॥

ते नागराजं आमन्त्र्य फलभागेन वासुकिं परिवीय गिरौ तस्मिन् नेत्रं अब्धिं मुदा अन्विताः ॥१॥

ते	उन्होंने (समुद्र मन्थनसे प्राप्त होने-वाले)	**वासुकिं**	वासुकीको
		तस्मिन् गिरौ	उस पर्वतमें
फलभागेन	फलमें भाग देना	**नेत्रं परिवीय**	मन्थन-रज्जुके समान लपेटकर
आमन्त्र्य	स्वीकार करके	**मुदा अन्विताः**	प्रसन्न होकर ॥१॥
नागराजं	नागराज		

आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह ।
हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥

आरेभिरे सुसंयत्ता अमृत अर्थं कुरुद्वह हरिः पुरस्तात् जगृहे पूर्वं देवाः ततः अभवन् ॥२॥

कुरुद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !	**हरिः पुरस्तात्**	श्रीहरिने सबसे पहिले
सुसंयत्ता	अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक	**पूर्वं जगृहे**	अगला भाग पकड़ा,
अमृत अर्थं	अमृतके लिए	**ततः देवाः**	तब देवता (उनके पीछे)
आरेभिरे	प्रयत्न प्रारम्भ किया,	**अभवन्**	हो गये ॥२॥

तन्नैच्छन् दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ।
न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ॥ ३ ॥

तत् न इच्छन् दैत्यपतयः महापुरुष चेष्टितं न गृह्णीमः वयं पुच्छं अहेः अङ्गं अमङ्गलम् ॥३॥

दैत्यपतयः	दैत्यनायकोंने	अहेः अमङ्गलं	सर्पका अशुभ
तत् महापुरुष	उस पुरुषोत्तमकी	अङ्गं पुच्छं	अंग पूँछ
चेष्टितं	चेष्टाको स्वीकार	वयं न	हम नहीं
न इच्छन्	नहीं किया कि	गृह्णीमः	पकड़ेंगे ॥३॥

स्वाध्यायश्रुतसम्पन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः ।
इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान् विलोक्य पुरुषोत्तमः ।
स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ ४ ॥

स्वाध्याय श्रुत सम्पन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः इति तूष्णीं स्थितान् दैत्यान् विलोक्य पुरुषोत्तमः स्मयमानः विसृज्य अग्रं पुच्छं जग्राह स अमरः ॥४॥

श्रुत स्वाध्याय	वेदाध्यनसे (हम)	विलोक्य	देखकर (भगवान्)
सम्पन्नाः	सम्पन्न हैं,	पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तमने
जन्मकर्मभिः	जन्म तथा कर्मसे	स्मयमानः	मुस्कराते हुए
प्रख्याता	प्रसिद्ध हैं ।	अग्रं विसृज्य	अगल भाग छोड़कर
इति दैत्यान्	यह मानकर दैत्यों-को	स अमरः	देवताओंके साथ
		पुच्छं जग्राह	पूंछ पकड़ लिया ॥४॥
तूष्णीं स्थितान्	चुपचाप बैठे		

कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः ।
ममन्थुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ॥ ५ ॥

कृत स्थान विभागाः त एवं कश्यप नन्दनाः ममन्थुः परम आयत्ता अमृत अर्थं पयोनिधिम् ॥५॥

एवं स्थान	इस प्रकार स्थानका	**अमृत अर्थं**	अमृतके लिए
विभागाः	बटवारा	**पयोनिधिं**	क्षीरसागरका
कृत त	करके वे	**ममन्थुः**	मन्थन करने लगे
कश्यप नन्दनाः	कश्यपजीके पुत्र		॥५॥
परम आयत्ता	अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक		

मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ।
ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात् पाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥

मथ्यमाने अर्णवे सः अद्रिः अनाधारः हि अपः आविशत् ध्रियमाणः अपि बलिभिः गौरवात् पाण्डुनन्दन ॥६॥

पाण्डु-	पाण्डव-वंशको	**सः अनाधारः**	वह आधार रहित
नन्दन	आनन्द देनेवाले परीक्षित	**अद्रिः**	पर्वत
		हि	क्योंकि
बलिभिः	बलवानों द्वारा	**गौरवात्**	भारी होनेसे
ध्रियमाणः अपि	पकड़े रहनेपर भी	**अपः आविशत्**	पानीमें डूब गया
अर्णवे	समुद्र		॥७॥
मथ्यमाने	मन्थन करते समय		

ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ।
आसन् स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥

ते सुनिर्विण्ण मनसः परिम्लान मुख श्रियः आसन् स्वपौरुषे नष्टे दैवेन अतिबलीयसा ॥७॥

अतिबलीयसा	अत्यन्त बलवान	**सुनिर्विण्ण**	अत्यन्त खिन्न
दैवेन	दैव द्वारा	**मनसः**	चित्त,
स्वपौरुषे	अपना पुरुषार्थ	**मुख श्रियः**	मुखकी शोभा
नष्टे	नष्ट होनेपर	**परिम्लान**	मलिन
ते	उन (देवता-असुर) की	**आसन्**	हो गये ॥७॥

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः ।
कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥

विलोक्य विघ्नेश विधिं तत् ईश्वरः दुरन्त वीर्यः अवितथ अभिसन्धिः कृत्वा वपुः काच्छपं अद्भुतं महत् प्रविश्य तोयं गिरिं उज्जहार ॥८॥

तत् विघ्नेश	उस विघ्नेश्वर (गणेशजी) के	ईश्वरः महत्	सर्वसमर्थने महा अद्भुत
विधिं	(विघ्नरूप) उपायको	अद्भुतं काच्छपं वपुः	कच्छप शरीर
विलोक्य	देखकर	कृत्वा	धारण करके
दुरन्त वीर्यः	अनन्त पराक्रम	तोयं प्रविश्य	जलमें प्रवेश करके
अवितथ	अमोघ	गिरिं उज्जहार	पर्वतको ऊपर उठा लिया ॥८॥
अभिसन्धिः	संकल्प		

तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः
समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः ।
दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन-
प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥

तं उत्थितं वीक्ष्य कुल अचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुर असुराः दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनः प्रस्तारिणा द्वीप इव अपरः महान् ॥९॥

तं कुल अचलं	उस कुल पर्वतको	प्रस्तारिणा	विस्तारवाला (कच्छप)
उत्थितं वीक्ष्य	ऊपर आया देखकर	अपरः महान्	दूसरे महा-
सुर असुराः	देवता और असुर	द्वीप इव	द्वीपके समान
पुनः निर्मथितुं	फिर मन्थन करनेके लिए	पृष्ठेन	(उस पर्वतको) पीठपर
समुत्थिता	उठ खड़े हुए,	दधार	धारण किया ॥९॥
स लक्षयोजनः	वह एक लाख योजन		

सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं
परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः ।
बिभ्रत् तदावर्तनमादिकच्छपो
मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ॥१०॥

सुर असुर इन्द्रैः भुजवीर्य वेपितं परिभ्रमन्तं गिरिं अङ्ग पृष्ठतः बिभ्रत् तत् आवर्तनं आदि कच्छपः मेने अङ्ग कण्डूयनं अप्रमेयः ॥१०॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**पृष्ठतः बिभ्रत्**	पीठपर धारण करके
सुर असुर	देवता और असुर	**तत् आवर्तनं**	उसके घूमनेको
इन्द्रैः	नायकोंकी	**अप्रमेयः**	उन अपरिमित (बलशाली) ने
भुजवीर्य	भुजाओंके बलसे		
वेपितं	हिलाये जाते	**अङ्ग कण्डूयनं**	शरीर खुजलाना
परिभ्रमन्तं	घूमते	**मेने**	माना ॥१०॥
गिरिं	पर्वतको		

तथासुरानाविशदासुरेण
रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ।
उद्दीपयन् देवगणांश्च विष्णु-
र्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥११॥

तथा असुरान् आविशत् आसुरेण रूपेण तेषां बलवीर्यं ईरयन् उद्दीपयन् देवगणान् च विष्णुः दैवेन नागेन्द्रं अबोध रूपः ॥११॥

तथा विष्णुः	फिर श्रीहरिने	**च देवगणान्**	तथा देवगणोंको
असुरान्	असुरोंमें	**उद्दीपयन्**	उद्दीप्त करते
तेषां बलवीर्यं	उनके बल-पराक्रम-को	**दैवेन**	देव रूपमें,
		नागेन्द्रं	नागराज वासुकीमें
ईरयन्	बढ़ाते हुए	**अबोध रूपः**	निद्राके रूपमें
आसुरेण	असुरके	**आविशत्**	प्रवेश किया ॥११॥
रूपेण	रूपमें,		

उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य
आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ।
तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यै-
रभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ॥१२॥

उपरि अगेन्द्रं गिरिराट् इव अन्यः आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः तस्थौ दिवि ब्रह्म भव इन्द्र मुख्यैः अभिष्टुवत् भिः सुमनः अभिवृष्टः ॥१२॥

अगेन्द्रं	उस पर्वत राजके	**आक्रम्य**	(पर्वतको) दबाकर
उपरि	ऊपर	**तस्थौ**	स्थित हुए
दिवि	आकाशमें	**ब्रह्म भव**	ब्रह्मा, शंकर,
सहस्रबाहुः	हजारों हाथोंवाले	**इन्द्र मुख्यैः**	इन्द्रादि प्रमुख देवता
अन्यः	दूसरे	**अभिष्टुवत् भिः**	स्तुति करते हुए
गिरिराट् इव	पर्वतराजके समान	**सुमनः**	पुष्प
हस्तेन	हाथसे	**अभिवृष्टः**	वर्षा कर रहे थे ॥१२॥

उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः
परेण ते प्राविशता समेधिताः ।
ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा
महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥१३॥

उपरि अधः च आत्मनि गोत्र नेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः ममन्थुः अब्धिं तरसा मद उत्कटा महा अद्रिणा क्षोभित नक्र चक्रम् ॥१३॥

उपरि अधः	ऊपर और नीचे	**महा अद्रिणा**	महापर्वतके द्वारा
च आत्मनि	तथा अपनेमें,	**नक्र चक्रं**	मगर आदि जीव समूहोंको
गोत्र नेत्रयोः	पर्वतमें, नेती (वासुकी) में	**क्षोभित**	व्याकुल करते हुए
प्राविशता	प्रविष्ट हुए	**ते तरसा**	वे वेगपूर्वक
परेण	परमात्मासे	**अब्धिं ममन्थुः**	समुद्र-मन्थन करने लगे ॥१३॥
समेधिताः	बहुत बढ़ाये गये		
मद उत्कटा	मदोन्मत्त होकर		

अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुख-
श्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ।
पौलोमकालेयबलील्वलादयो
दवाग्निदग्धाः सरला इवाभवन् ॥१४॥

अहीन्द्र साहस्र कठोर दृक् मुख श्वास अग्नि धूम आहत वर्चसः असुराः पौलोम कालेय बलि इल्वल आदयः दवाग्निदग्धाः सरला इव अभवन् ॥१४॥

अहीद्र	नागराज वासुकिके	**बलि इल्वल**	बलि, इल्वल,
साहस्र	सहस्र	**आदयः असुराः**	आदि असुर
कठोर दृक्	भयंकर नेत्रों,	**दवाग्निदग्धा**	दावाग्निसे जले
मुख श्वास	मुखों तथा श्वासकी	**सरला**	साखूके वृक्षोंकी
अग्नि धूम	अग्नि और धुएँसे	**इव**	भांति
आहत वर्चसः	निस्तेज हुए	**अभवन्**	हो गये ॥१४॥
पौलोम कालेय	पौलोम, कालेय,		

देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्
धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकाननान् ।
समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना
ववुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥१५॥

देवान् च तत् श्वास शिखा हतप्रभान् धूम्र अम्बर स्रक् वर कञ्चुक आननान् सम् अभ्यवर्षन् भगवत् वशा घना ववुः समुद्र ऊर्मि उपगूढ वायवः ॥१५॥

तत्	उस (वासुकी) की	**अम्बर स्रक्**	वस्त्र, माला,
श्वास	श्वासकी	**वर कञ्चुक**	श्रेष्ठ कुर्ते,
शिखा	ज्वालासे	**आननान्**	मुख
हतप्रभान्	कान्तिहीन हुए	**धूम्र**	धूसर (मैले पड़े)

देवान् च	देवताओंके ऊपर	**च समुद्र**	तथा समुद्रकी
भगवत् वशा	भगवान्‌के वशमें रहनेवाले	**ऊर्मि**	लहरोंको
		उपगूढ	छूकर
घना सम्	मेघ भली प्रकार	**वायवः ववुः**	वायु चलने लगी
अभ्यवर्षन्	बरसने लगे,		॥१५॥

मथ्यमानात् तथा सिन्धोर्देवासुरवरूथपैः ।
यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाजितः स्वयम् ॥१६॥

मथ्यमानात् तथा सिन्धोः देव असुर वरूथपैः यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थ अजितः स्वयम् ॥१६॥

तथा	इस प्रकार	**न जायेत**	नहीं उत्पन्न हुआ,
देव असुर	देवता और असुर	**स्वयं**	तब स्वयं
वरूथपैः	सेनानायकों द्वारा	**अजितः**	अजित भगवान्
मथ्यमानात्	मन्थन करनेपर भी	**निर्ममन्थ**	मन्थन करने लगे
यदा सुधा	जब अमृत		॥१६॥

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्यु-
न्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः ।
जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा
मथ्नन् मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥१७

मेघश्यामः कनक परिधिः कर्ण विद्योत विद्युत् मूर्ध्नि भ्राजत् विलुलित कचः स्रक्धरः रक्तनेत्रः जैत्रैः दोः भिः जगत् अभयदैः दन्दशूकं गृहीत्वा मथ्नन् मथ्ना प्रतिगिरिः इव अशोभत अथ उद्धृत अद्रिः ॥१७॥

अथ	उस समय	**परिधिः**	पीताम्बरधारी,
मेघश्यामः	मेघके समान श्याम वर्ण	**कर्ण**	कानोंमें
		विद्योत	बिजलीके समान
कनक	स्वर्णके समान	**विद्युत्**	कुंडल पहिने,

विलुलित कचः	हिलते हुए केश	**दन्दशूकं**	सर्पको
मूर्ध्नि भ्राजत्	सिरपर शोभित हो रहे हैं,	**गृहीत्वा**	पकड़कर
		मथ्ना मथ्नत्	मथानीसे मन्थन करते समय
स्रक्धरः	वनमालाधारी		
रक्तनेत्रः	अरुण-नयन	**उद्धृत अद्रिः**	वे गिरिधारी
जगत्	विश्वको	**प्रतिगिरिः**	दूसरे पर्वतके
अभयदैः	अभय देनेवाले	**इव**	समान
जैत्रैः दोः भिः	जयशील भुजाओंसे	**अशोभत**	सुशोभित हुए ॥१७॥

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं
महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः ।
सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्
तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥१८॥

निर्मथ्यमानात् उदधेः अभूत् विषं महा उल्बणं हालहल अह्वं अग्रतः सम्भ्रान्त मीन उन् मकर अहि कच्छपात् तिमि द्विप ग्राह तिमिङ्गिल आकुलात् ॥१८॥

निर्मथ्यमानात्	(इस प्रकार) मन्थन करनेसे	**तिमिङ्गिल**	तिमिङ्गल (ह्वेल ?)
		आकुलात्	व्याकुल हो गये ऐसे
मीन	मछलियां,	**उदधेः अग्रतः**	समुद्रसे पहिले
मकर	घड़ियाल,	**महा उल्बणं**	अत्यन्त तीक्ष्ण
अहि कच्छपात्	सर्प, कछुए	**हालहल अह्वं**	हालाहल नामका
उन्	ऊपर आ गये,	**विषं अभूत्**	विष उत्पन्न हुआ ॥१८॥
तिमि	तिमि मछली,		
द्विप ग्राह	समुद्री हाथी, मगर,		

तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो
विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति ।
भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा
अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥१९॥

तत् उग्रवेगं दिशि दिशि उपरि अधः विसर्पत् उत्सर्पत् असह्यं अप्रति भीताः प्रजा दुद्रुवुः अङ्ग स ईश्वराः अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥१९॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**भीताः**	भयभीत होकर
तत् उग्रवेगं	उस उग्रवेगवाले,	**अरक्ष्यमाणाः**	रक्षाका मार्ग न देखकर
असह्यम्	असह्य,		
अप्रति	प्रतिकारहीन	**स ईश्वराः**	प्रजापतियोंके साथ
दिशि	(विषके) दिशा-	**प्रजाः**	प्रजा
दिशि	विदिशाएँ	**सदाशिवं**	भगवान् सदाशिवकी
विसर्पत्	बढ़ने,	**शरणं दुद्रुवुः**	शरणमें भागकर
उत्सर्पत्	फैलनेसे		गयी ॥१९॥

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या
भवाय देव्याभिमतं मुनीनाम् ।
आसीनमद्रावपवर्गहेतो-
स्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥२०॥

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्या अभिमतं मुनीनां आसीनं अद्राः अपवर्ग हेतोः तपः जुषाणम् स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥२०॥

त्रिलोक्या	त्रिलोकीके		प्रदान
भवाय	अभ्युदयके लिए	**हेतोः**	करनेके लिए
देव्या	देवी पार्वतीजीके साथ	**तपः जुषाणं**	तपस्या करनेवाले
		तं देववरं	उन देवश्रेष्ठको
अद्राः	कैलास पर्वतपर	**विलोक्य**	देखकर
आसीनं	विराजमान	**स्तुतिभिः**	स्तुति करते हुए
मुनीनां	मुनियोंके	**प्रणेमुः**	उन्हें प्रणाम किया ॥२०॥
अभिमतं	माननीय		
अपवर्ग	(जीवोंको) मोक्ष		

प्रजापतय ऊचुः

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन ।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद् विषात् ॥२१॥

देवदेव महादेव भूत आत्मन् भूतभावन त्राहि नः शरण आपन्नान् त्रैलोक्य दहनात् विषात् ॥२१॥

देवदेव	देवताओंके आराध्य	**विषात्**	इस विषसे
महादेव	महादेव !	**शरण**	शरणमें
भूतआत्मन्	प्राणियोंके आत्मा,	**आपन्नान्**	आये
भूतभावन	प्राणियोंके पालक !	**नः त्राहि**	हम लोगोंकी रक्षा
त्रैलोक्य	त्रिलोकीको		कीजिए ॥२१॥
दहनात्	जलानेवाले		

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः ।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥२२॥

त्वं एकः सर्वजगत ईश्वरः बन्ध मोक्षयोः तं त्वां अर्चन्ति कुशलाः प्रपन्न आर्ति हरं गुरुं ॥२२॥

त्वं एकः	आप अकेले ही	**प्रपन्न**	शरणागतके
सर्वजगत	सपूर्ण विश्वको	**आर्ति**	दुःखको
बन्ध	बन्धन या	**हरं**	दूर करनेवाले
मोक्षयोः	मुक्ति देनेमें	**गुरुं**	विश्व गुरुकी
ईश्वरः	समर्थ हो,	**कुशलाः**	चतुर लोग
तं त्वां	उन आप	**अर्चन्ति**	पूजा करते हैं ॥२३॥

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो ।
धत्से यदा स्वदृग् भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥२३॥

गुणमय्या स्वशक्त्या अस्य सर्ग स्थिति अप्ययान् विभो धत्से यदा स्वदृक् भूमन् ब्रह्म विष्णु शिव अभिधाम् ॥२३॥

विभो भूमन्	प्रभो ! सर्वव्यापक आप	**अप्ययान्**	प्रलय करना चाहते हैं तब
गुणमय्या	त्रिगुणमयी	**स्वदृक्**	स्वयं प्रकाश रूपसे
स्वशक्त्या	अपनी माया शक्तिसे	**ब्रह्म विष्णु**	ब्रह्मा, विष्णु,
यदा अस्य	जब इस (जगत) की	**शिव**	शिव
सर्ग स्थिति	सृष्टि स्थिति,	**अभिधां धत्से**	नाम धारण करते हैं ॥२३॥

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः ।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥२४॥

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सत् असत् भाव भावनः नाना शक्तिभिः आभातः त्वं आत्मा जगत् ईश्वरः ॥२४॥

सत् असत्	कारण-कार्य	**नाना**	अपनी अनेक
भाव	भावोंको	**शक्तिभिः**	शक्तियों द्वारा
भावनः	उत्पन्न करनेवाले	**आभातः**	आभासित होते
त्वं परमं	आप ही परम	**त्वं जगत्**	आप ही संसारके
गुह्यं	रहस्यमय	**ईश्वरः**	स्वामी
ब्रह्म	ब्रह्म हैं	**आत्मा**	परमात्मा हो ॥२४॥

त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा
प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः ।
कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्म-
स्त्वय्यक्षरं यत् त्रिवृदामनन्ति ॥२५॥

त्वं शब्द योनिः जगत् आदिः आत्मा प्राण इन्द्रिय द्रव्य गुण स्वभावः कालः क्रतुः सत्यं ऋतं च धर्मः त्वयि अक्षरं यत् त्रिवृत् आमनन्ति ॥२५॥

त्वं शब्द	आप वेदके उत्पत्ति	**आदिः**	आदि कारण
योनिः	स्थान,		महत्तत्त्व,
जगत्	जगत्के	**आत्मा प्राण**	अहंकार प्राण

इन्द्रिय द्रव्य	इन्द्रिय, पञ्चभूत,	यत् त्रिवृत्	जो त्रिगुणात्मिका
गुण	सत्त्वादि गुणोंके	अक्षरं	अविनाशी
स्वभावः	कारण,		प्रकृति है
कालः क्रतुः	काल, सङ्कल्प,	त्वयि	उसे भी आपके
सत्यं ऋतं	सत्य, ऋत	आमनन्ति	आश्रित (वेदोंमें)
च धर्मः	तथा धर्म हैं		कहा जाता है ॥२५॥

अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा
क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपङ्कजम् ।
कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो
दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥२६॥

अग्निः मुखं ते अखिल देवता आत्मा क्षितिं विदुः लोकं अव अङ्घ्रि पङ्कजं कालं गतिं ते अखिल देवता आत्मनः दिशः च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥२६॥

अखिल देवता	सर्व देवमय	विदुः	जाना जाता है,
आत्मा	आत्मा	ते अखिल	आप सर्व
अग्निः ते	अग्नि आपका	देवता आत्मनः	देवस्वरूपकी
मुखं	मुख है,	गतिं कालः	गति काल है,
क्षितिं लोकं	पृथ्वीलोक	दिशः कर्णौ	दिशाएँ कान हैं,
अङ्घ्रि पङ्कज	चरण-कमलोंका	च जलेशं	तथा वरुण
अव	तलवा	रसनं	रसना हैं ॥२६॥

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्
सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ।
परावरात्माश्रयणं तवात्मा
सोमो मनो द्यौर्भगवञ्छिरस्ते ॥२७॥

नाभिः नभः ते श्वसनं नभस्वान् सूर्यः च चक्षूंषि जलं स्म रेतः पर अवर आत्म आश्रयणं तव आत्मा सोमः मनः द्यौः भगवन् शिरः ते ॥२७॥

भगवन् ते	भगवान् आपकी	आत्म आश्रयणं	अपना निवास
नाभिः नभः	नाभि आकाश है,	तव आत्मा	आपका अहंकार है,
श्वसनं	श्वास	सोमः मनः	चन्द्रमा मन है
नभस्वान्	वायु है,	च द्यौः	तथा स्वर्ग
सूर्यः चक्षूंषि	सूर्य नेत्र हैं,	ते शिरः	आपका सिर है
जलं रेतः स्म	जल वीर्य है,		॥२७॥
पर अवर	बड़े छोटे जीवोंका		

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घा
रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ।
छन्दांसि साक्षात् तव सप्त धातव-
स्त्रयीमयात्मन् हृदयं सर्वधर्मः ॥२८॥

कुक्षिः समुद्राः गिरयः अस्थिसंङ्घा रोमाणि सर्व औषधि वीरुधः ते छन्दांसि साक्षात् तव सप्त धातवः त्रयीमय आत्मन् हृदयं सर्वधर्मः ॥२८॥

ते कुक्षिः	आपकी कुक्षि	छन्दांसि	(गायत्री आदि)
समुद्राः	समुद्र हैं,		छन्द
गिरयः	पर्वत	साक्षत् तव	साक्षात् आपकी
अस्थिसंङ्घा	अस्थि-समूह हैं,	सप्त	(रक्तादि) सात
सर्व	सब	धातवः	धातुएँ हैं,
औषधि	औषधियां और	सर्वधर्मः	सब धर्म
वीरुधः	पौध	हृदयं	हृदय हैं ॥२८॥
रोमाणि	रोम हैं,		

मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश
यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः ।
यत् तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं
देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ॥२९॥

मुखानि पञ्च उपनिषदः तव ईश यैः त्रिंशत् अष्ट उत्तर मन्त्रवर्गः यत् तत् शिव आख्यं परमार्थतत्त्वं देव स्वयंज्योतिः अवस्थितिः ते ॥२९॥

ईश	स्वामी,		मद्योजात, वामदेव, ईशान)
त्रिंशत अष्ट उत्तर	अड़तीस	**मुखानि**	(आपके पांच) मुख हैं,
मन्त्रवर्गः	मन्त्रोंका समूह	**यत् शिव आख्यं**	जो शिव नामक
यैः	जिनसे (परिच्छेद होनेपर) उत्पन्न होता है,	**स्वयंज्योतिः**	स्वयं प्रकाश
		परमार्थतत्त्वं	परमार्थ सत्ता है,
पञ्च	वे पांच	**तत् ते**	वह आपकी
उपनिषदः	उपनिषद् (तत् पुरुष, अघोर,	**अवस्थितिः**	स्थिति है ॥२९॥

छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो
नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ।
सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा
छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः ॥३०॥

छाया तु अधर्म उर्मिषु यैः विसर्गः नेत्रत्रयं सत्त्व रजः तमांसि सांख्य आत्मनः शास्त्र कृतः तव ईक्षा छन्दः मयः देव ऋषिः पुराणः ॥३०॥

अधर्म उर्मिषु	अधर्मकी लहरोंमें	**छन्दः**	(गायत्री आदि) छन्द
तु	तो	**मयः**	मय,
छाया	(आपकी) छाया है,	**देव ऋषिः**	देवता तथा ऋषि युक्त
यैः	जिससे विविध प्रकारकी	**पुराणः**	सनातन वेद
विसर्गः	सृष्टि होती है,	**सांख्य आत्मनः**	सांख्य स्वरूप
नेत्रत्रयं	तीनों नेत्र	**तव शास्त्र**	आप शास्त्र
सत्त्व रजः	सत्त्व, रज,	**कृतः**	निर्माताका
तमांसि	तमोगुण हैं,	**ईक्षा**	विचार हैं ॥३०॥

न ते गिरित्राखिललोकपाल-

विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ।

ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च

सत्त्वं न यद् ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥३१॥

न ते गिरित्र अखिल लोकपाल विरिञ्च वैकुण्ठ सुरेन्द्र गम्यं ज्योतिः परं यत्र रजः तमः च सत्त्वं न यत् ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥३१॥

गिरित्र	कैलासेश्वर !	ब्रह्म	ब्रह्म है
यत्र रजः	जिसमें रजोगुण	अखिल	वह समस्त
तमः च	तमोगुण और	लोकपाल	लोकपालों,
सत्त्वं	सत्त्वगुण	विरिञ्च	ब्रह्मा,
न	नहीं हैं,	वैकुण्ठ	विष्णु तथा
यत् निरस्तभेदं	जो भेदरहित	सुरेन्द्र गम्यं न	इन्द्र भी उसे नहीं
ते परं ज्योतिः	आपका परम प्रकाश		जान सकते ॥३१॥

कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेक-

भूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत् ते ।

यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्र-

वह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद ॥३२॥

काम अध्वर त्रिपुर कालगर आदि अनेक भूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत् ते यः तु अन्तकाल इदं आत्मकृतं स्वनेत्र वह्नि स्फुलिङ्ग शिखया भसितं न वेद ॥३२॥

यः तु	जो तो	वह्नि	अग्निकी
अन्तकाल	प्रलयके समय	स्फुलिङ्ग	लपट
आत्मकृतं	अपने बनाये	शिखया	शिखासे
इदं	इस जगतको	भसितं	भस्म होना
स्वनेत्र	अपने नेत्रसे निकले	वेद न	जान ही नहीं पाते

तत् ते	उस आपके लिए	भूतद्रुहः	प्राणि-द्रोहियोंको
काम अध्वर	मदन, दक्ष-यज्ञ,	क्षपयतः	नष्ट करते रहना
त्रिपुर कालगर	त्रिपुर कालकूट विष,	स्तुतये	स्तुतिके योग्य
		न	नहीं है ॥३२॥
अनेक	अनेक		

ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रि-
द्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम् ।
कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने
ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥३३॥

ये तु आत्मराम गुरुभिः हृदि चिन्तित अङ्घ्रि द्वन्द्वं चरन्तं उमया तपसा अभितप्तं कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने ते नूनं ऊतिं अविदन् तव हातलज्जाः ॥३३॥

आत्मराम	आत्माराम	अभितप्तं	लगे रहनेवाले
गुरुभिः	गुरुजनों द्वारा	ते	आपको
हृदि	हृदयमें	श्मशाने निरतं	श्मशानमें रहनेसे
चिन्तित	ध्यान किये जाने-वाले	उग्रपरुषं	क्रूर तथा रूक्ष
		कत्थन्त	बकते हैं
अङ्घ्रि द्वन्द्वं	युगल-चरणको	ते हातलज्जा	वे लज्जाहीन
ये तु	जो तो	नूनं तव	निश्चय आपकी
उमया	देवी उमाके साथ	ऊतिं	लीलाको
तपसा	तपस्यामें	अविदन्	नहीं जानते ॥३३॥

तत् तस्य ते सदसतोः परतः परस्य
नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः ।
ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु
तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥

तत् तस्य ते सत् असतोः परतः परस्य न अञ्जः स्वरूप गमने प्रभवन्ति भूम्नः ब्रह्मा आदयः किं उत संस्तवने वयं तु तत् सर्ग सर्ग विषया अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥

तत् तस्य	अतः उस	सर्ग विषया	बनाए हुए
सत् असतोः	कारण-कार्य जगत्से	वयं तु	हम सब तो
परतः परस्य	परे मायासे भी पर	संस्तवने	आपकी स्तुति करने योग्या
भूम्नः ते	सर्वव्यापक आपके		
स्वरूप गमने	स्वरूपको जाननेमें	किं	कहां है
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मा आदि भी	उत अपि	फिर भी
अञ्जः न	सरलतासे नहीं	शक्तिमात्रं	शक्तिके अनुसार (गुणगान) किया है ॥३४॥
प्रभवन्ति	समर्थ होते		
तत् सर्ग	उनके बनायेके		

एतत् परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ।
मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥३५॥

एतत् परं प्रपश्यामः न परं ते महेश्वर मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिः ते अव्यक्त कर्मणः ॥३५॥

महेश्वर	महेश्वर !	कर्मणः	कर्माका
एतत्	इस (आपके रूप) से	व्यक्तिः	यह आविर्भाव
परं	श्रेष्ठ	लोकस्य	लोकोंके
प्रपश्यामः न	हम कुछ नहीं देखते	मृडनाय	कल्याणके लिए ही है ॥३५॥
हि	क्योंकि		
ते अव्यक्त-	आप अव्यक्त-		

श्रीशुक उवाच—

तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः ।
सर्वभूतसुहृद् देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥३६॥

तत् वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः सर्वभूत सुहृत् देवः इदं आह सतीं प्रियाम् ॥३६॥

तासां	उन (प्रजापतियों) का	**देवः**	महादेवजी
तत्	वह	**कृपया**	कृपाके कारण
व्यसनं वीक्ष्य	संकट देखकर	**भृशपीडितः**	अत्यन्त व्यथित होकर
सर्वभूत	सब प्राणियोंके	**प्रियां सतीं**	अपनी प्रिया सतीसे
सुहृत्	हितैषी	**इदं आह**	यह बोले ॥३६॥

शिव उवाच–

अहो बत भवान्येतत् प्रजानां पश्य वैशसम् ।
क्षीरोदमथनोद्भूतात् कालकूटादुपस्थितम् ॥३७॥

अहो बत भवानि एतत् प्रजानां पश्य वैशसं क्षीरोद मथन उद्भूतात् कालकूटात् उपस्थितम् ॥३७॥

अहो बत भवानि	अहो, अरे भवानी !	**कालकूटात्**	कालकूट विष द्वारा
क्षीरोद	क्षीर सागरके	**उपस्थितं**	उपस्थित
मथन	मन्थनसे	**प्रजानां एतत्**	प्रजाका यह
उद्भूतात्	उत्पन्न हुए	**वैशसं पश्य**	संकट देखो ॥३७॥

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ।
एतावान्हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम् ॥३८॥

आसां प्राण परीप्सूनां विधेयं अभयं हि मे एतावान् हि प्रभोः अर्थः यत् दीन परिपालनम् ॥३८॥

आसां प्राण	इन प्राण	**यत् दीन**	जो दीनोंकी
परीप्सूनां	रक्षा चाहनेवालोंको	**परिपालनं**	रक्षा-पालन है,
हि मे	निश्चय मुझे	**प्रभोः**	समर्थ होनेका
अभयं विधेयं	अभय देना चाहिए	**एतावान्**	इतना ही
हि	क्योंकि	**अर्थः**	प्रयोजन है ॥३८॥

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः ।
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥३९॥

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेषु आत्ममायया ॥३९॥

आत्ममायया	परमात्माकी मायासे	**स्वैः**	अपने
मोहितेषु	मोहित	**प्राणैः**	प्राणोंके द्वारा
बद्धवैरेषु	बद्ध बैर	**साधवः**	सत्पुरुष
भूतेषु	प्राणियोंमें	**प्राणिनः**	प्राणियोंकी
क्षणभङ्गुरैः	क्षण-विनाशी	**पान्ति**	रक्षा करते हैं ॥३९॥

पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ।
प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ।
तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥४०॥

पुंसः कृपयतः भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः प्रीते हरौ भगवति प्रीये अहं सचर अचरः तस्मात् इदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिः अस्तु मे ॥४०॥

भद्रे	कल्याणी !	**सचर अचरः**	जंगम-स्थावरके साथ
पुंसः कृपयतः	लोगोंपर कृपा करनेसे	**अहं प्रीये**	मैं सन्तुष्ट होता हूँ,
सर्वात्मा हरिः	सर्वात्मा श्रीहरि	**तस्मात् इदं**	इसलिए यह
प्रीयते	प्रसन्न होते हैं,	**गरं भुञ्जे**	विष भक्षण करूँगा,
हरौ प्रीते	श्रीहरिके प्रसन्न होनेपर	**मे प्रजानां**	मेरी प्रजाका
		स्वस्तिः अस्तु	कल्याण हो ॥४०॥

श्रीशुक उवाच—

एवमामन्त्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः ।
तद् विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञान्वमोदत ॥४१॥

एवं आमन्त्र्य भगवान् भवानीं विश्वभावनः तत् विषं जग्धुं आरेभे प्रभावज्ञा अन्वमोदत ॥४१॥

एवं भवानीं	इस प्रकार देवी पार्वतीसे	**आरेभे**	प्रारम्भ किया
आमन्त्र्य	सलाह करके	**प्रभावज्ञा**	(भगवान् शंकरके) प्रभावको जानने-वाली
विश्वभावनः	विश्वरक्षक		
भगवान्	भगवान्ने	**अन्वमोदत**	(देवीने उनकी बातका) अनुमोदन कर दिया ॥४१॥
तत् विषं	उस विषको		
जग्धुम्	भक्षण करना		

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ।
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥४२॥

ततः करतली कृत्य व्यापि हालाहलं विषं अभक्षयन् महादेवः कृपया भूतभावनः ॥४२॥

ततः व्यापि	तब उस फैले हुए	**महादेवः**	महादेवजीने
हालाहलं विषं	हालाहल विषको	**कृपया**	कृपा पूर्वक
करतली	हथेलीपर	**अभक्षयन्**	भक्षण कर लिया ॥४२॥
कृत्य	समेटकर		
भूतभावनः	प्राणियोंके रक्षक		

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ।
यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥४३॥

तस्य अपि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः यत् चकार गले नीलं तत् च साधोः विभूषणम् ॥४३॥

जलकल्मषः	जलके मल (उस विष) ने	**स्ववीर्यं**	अपना प्रभाव
		दर्शयामास	दिखला दिया
तस्य	उन (शंकरजी) पर	**यत् गले**	जो कण्ठको
अपि	भी	**नीलं**	नीला

चकार	बना दिया किन्तु	विभूषणं	अलंकार ही हुआ ॥४३॥
तत् च	वह तो		
साधोः	साधु शिरोमणि (शंकरजी) के लिए		

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥४४॥

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशः जनाः परम आराधनं तत् हि पुरुषस्य अखिल आत्मनः ॥४४॥

प्रायशः	प्रायः	अखिल आत्मनः	सर्वात्मा
साधवः जनाः	सत्पुरुष लोग	पुरुषस्य	परमपुरुषकी
लोकतापेन	लोगोंके संतापसे	परम आराधनं	सर्वोत्तम आराधना है ॥४४॥
तप्यन्ते	सन्तप्त होते हैं,		
हि तत्	क्योंकि वह		

निशम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य मीढुषः ।
प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ॥४५॥

निशम्य कर्म तत् शम्भोः देवदेवस्य मीढुषः प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठः च शशंसिरे ॥४५॥

मीढुषः	सबकी कामना पूर्ण करनेवाले	दाक्षायणी प्रजा	दक्ष-कन्या सती,
		ब्रह्मा च	ब्रह्मा तथा
देवदेवस्य	देवोंके देव	वैकुण्ठः	भगवान् विष्णुने भी
शम्भोः	शंकरजीका	शशंसिरे	(उनकी) प्रशंसा की ॥४५॥
तत् कर्म	वह कर्म		
निशम्य	देखकर		

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत् किञ्चिज्जगृहुः स्म तत् ।
वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे ॥४६॥

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेः यत् किञ्चित् जगृहुः स्म तत् वृश्चिक अहि विष औषध्यः दन्दशूकाः च ये अपरे ॥४६॥

पिबतः	पीते समय (शंकर-जी) के	**औषध्यः**	औषधियों
		च ये अपरे	तथा जो दूसरे
पाणेः	हाथसें	**दन्दशूकाः**	डसनेवाले हैं
यत् किञ्चित्	जो थोड़ा-सा	**तत्**	उसे उन्होंने
प्रस्कन्नं	छलक गया,	**जगृहुः स्म**	ग्रहण कर लिया
वृश्चिक	बिच्छू,		॥४६॥
अहि विष	सर्प, विषैली		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
ऽमृतमथनेसप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ।
ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

पीते गरे वृषभ अङ्केण प्रीताः ते अमर दानवाः ममन्थुः तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततः अभवत् ॥१॥

वृषभ अङ्केण	भगवान् वृषभध्वज द्वारा	**तरसा**	वेग पूर्वक
		सिन्धुं ममन्थुः	समुद्र-मन्थन करने लगे,
गरे पीते	विष पी लेनेपर		
ते अमर	वे देवता	**ततः हविर्धानी**	तब कामधेनु
दानवाः	दानव	**अभवत्**	प्रकट हुई ॥१॥
प्रीताः	प्रसन्न होकर		

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः ।
यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २ ॥

तां अग्निहोत्रीं ऋषयः जगृहुः ब्रह्मवादिनः यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥२॥

नृप	राजन् !	**हविषे यज्ञस्य**	यज्ञके हविष्य (घृतादि) के लिए तथा
तां अग्निहोत्रीं	उस अग्निहोत्रकी सामग्री देनेवालीको	**मेध्याय**	(गोमूत्रादिसे) पवित्रताके लिए
ब्रह्मवादिनः	वेदवादी	**जगृहुः**	ले लिया ॥२॥
ऋषयः	ऋषियोंने		
देवयानस्य	ब्रह्मलोकके मार्ग स्वरूप		

तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः ।
तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥

ततः उच्चैःश्रवा नाम हयः अभूत् चन्द्रपाण्डुरः तस्मिन् बलिः स्पृहां चक्रे न इन्द्र ईश्वर शिक्षया ॥३॥

ततः उच्चैःश्रवा	तब उच्चैःश्रवा	तस्मिन् बलिः	उसके लिए बलिने
नाम	नामक	स्पृहां चक्रे	अभिलाषा की,
चन्द्रपाण्डुरः	चन्द्रमाके समान श्वेत	ईश्वर शिक्षया	श्रीहरि सिखलानेसे
हयः अभूत्	अश्व उत्पन्न हुआ,	इन्द्र न	इन्द्रने (इच्छा) नहीं की ॥३॥

तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः ।
दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४ ॥

तत ऐरावतः नाम वारण इन्द्रः विनिर्गतः दन्तैः चतुःभिः श्वेत अद्रेः हरन् भगवतः महिम् ॥४॥

तत चतुःभिः	फिर चार	महिं हरन्	कान्तिको छीनता हुआ सा
दन्तैः भगवतः	दांतोंसे भगवान् (शिव) के	ऐरावतः नाम	ऐरावत नामक
श्वेत अद्रेः	श्वेत-पर्वत कैलास-की	वारण इन्द्रः	गजेन्द्र
		विनिर्गतः	निकला ॥४॥

कौस्तुभाख्यमभूद् रत्नं पद्मरागो महोदधेः ।
तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ ॥ ५ ॥

कौस्तुभ आख्यं अभूत् रत्नं पद्मरागः महा उदधेः तस्मिन् हरिः स्पृहां चक्रे वक्षः अलङ्करणे मणौ ॥५॥

महा उदधेः	महा समुद्रसे	पद्मरागः रत्नं	पद्मराग रत्न
कौस्तुभ आख्यं	कौस्तुभ नामका	अभूत्	उत्पन्न हुआ

वक्ष:	वक्षस्थलको	हरि:	श्रीहरिने लेनेकी
अलंकरणे	अलंकृत करनेके लिए	स्पृहां	इच्छा
		चक्रे	की ॥५॥
तस्मिन् मणौ	उस मणिको		

ततोऽभवत् पारिजात: सुरलोकविभूषणम् ।
पूरयत्यर्थिनो योऽर्थै: शश्वद् भुवि यथा भवान् ॥ ६ ॥

ततः अभवत् पारिजातः सुरलोक विभूषणं पूरयति अर्थिनः यः अर्थैः शश्वत् भुवि यथा भवान् ॥६॥

ततः सुरलोक	फिर देवलोकको	भवान्	वैसे
विभूषणं	सुशोभित करने-वाला	यः शश्वत्	जो बराबर
		अर्थिनः	चाहनेवालोंकी
पारिजातः	कल्पवृक्ष	अर्थैः	कामनाएँ
अभवत्	उत्पन्न हुआ	पूरयति	पूरी करता रहता
भुवि यथा	पृथ्वीपर जैसे तुम हो		है ॥६॥

ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्य: सुवासस: ।
रमण्य: स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनै: ॥ ७ ॥

ततः च अप्सरसः जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः रमण्यः स्वर्गिणां वल्गु गति लीला अवलोकनैः ॥७॥

ततः च	उसके पश्चात् तो	रमण्यः	रमण करानेवाली
स्वर्गिणां	स्वर्गमें रहनेवालों-को	निष्ककण्ठ्यः	गलेमें पदक पहिने
		सुवाससः	उत्तम-वस्त्रोंवाली
वल्गु गति	अपनी सुन्दर गति,	अप्सरसः	अप्सराएँ
लीला	विलास पूर्ण	जाता	उत्पन्न हुईं ॥७॥
अवलोकनैः	चितवनसे देखने		

ततश्चाविरभूत् साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा ।
रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामनी यथा ॥ ८ ॥

ततः च: आविः अभूत् साक्षात् श्रीरमा भगवत् परा रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामनी यथा ॥८॥

ततः च	उसके बाद फिर	**कान्त्या**	कान्तिसे
यथा	जैसे	**दिशः**	दिशाओंको
सौदामनी	मेघमें प्रकट होने-	**रञ्जयन्ती**	रंगती हुई
	वाली	**भगवत् परा**	भगवत् परायणा
विद्युत्	बिजली हो वैसे	**साक्षात् श्रीरमा**	साक्षात् श्रीरमा
	अपनी	**आविः अभूत्**	प्रकट हुईं ॥८॥

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ।
रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुर असुर मानवाः रूप औदार्य वयः वर्ण महिमा आक्षिप्त चेतसः ॥९॥

रूप औदार्य	सौन्दर्य, उदारता,	**मानवाः सर्वे**	मनुष्यादि सब
वयः वर्ण	आयु, शरीरका रंग,	**तस्यां**	उनके लिए
महिमा	महिमासे	**स्पृहां चक्रुः**	अभिलाषा करने
आक्षिप्त	मुग्ध चित्त		लगे ॥९॥
ससुर असुर	देवता-असुरोंके साथ		

तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् ।
मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि ॥१०॥

तस्या आसनं आनिन्ये महेन्द्रः महत् अद्भुतं मूर्तिमत्यः सरित् श्रेष्ठा हेमकुम्भैः जलं शुचि ॥१०॥

महेन्द्रः महत्	इन्द्र अत्यन्त	**आसनं तस्या**	आसन उनके लिए
अद्भुतं	अद्भुत	**आनिन्ये**	ले आये

सरित् श्रेष्ठा	श्रेष्ठ नदियां	जलं शुचि	(अपना) पवित्र जल
मूर्तिमत्यः	मूर्तिमती होकर		लायीं ॥१०॥
हेमकुम्भैः	स्वर्णकलशोंमें		

आभिषेचनिका भूमिराहरत् सकलौषधीः ।
गावः पञ्च पवित्राणि वसन्तो मधुमाधवौ ॥११॥

आभिषेचनिका भूमिः आहरत् सकल औषधीः गावः पञ्च पवित्राणि वसन्तः मधुमाधवौ ॥११॥

भूमिः	पृथ्वी	वसन्तः	वसन्तने
अभिषेचनिका	अभिषेकोपयोगी	मधुमाधवौ	चैत्र-वैशाखमें होने-
सकल औषधिः	सर्वौषधि,		वाले कल
गावः	गाएँ	आहरत्	प्रदान किए ॥११॥
पञ्च पवित्राणि	पवित्र पञ्चगव्य,		

ऋषयः कल्पयाञ्चक्रुरभिषेकं यथाविधि ।
जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नटाश्च ननृतुर्जगुः ॥१२॥

ऋषयः कल्पयान् चक्रुः अभिषेकम् यथाविधि जगुः भद्राणि गन्धर्वा नटाः च ननृतुः जगुः ॥१२॥

ऋषयः	ऋषियोंने	जगुः च	गान करने लगे तथा
यथाविधि	विधिपूर्वक	नटाः	नट लोग
अभिषेकं	अभिषेक	ननृतुः जगुः	नाचने-गाने लगे
कल्पयान् चक्रुः	सम्पन्न कराया		॥१२॥
गन्धर्वा भद्राणि	गन्धर्व मंगल		

मेघा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान् ।
व्यनादयञ्छङ्खवेणुवीणास्तुमुलनिःस्वनान् ॥१३॥

मेघा मृदङ्ग पणव मुरज आनक गोमुखान् व्यनादयन् शङ्खवेणु वीणाः तुमुल निःस्वनान् ॥१३॥

मेघा तुमुल	मेघ जैसे उच्च	गोमुखान् शङ्ख	गोमुख, शंख,
निःस्वनान्	स्वरवाले	वेणु वीणाः	वंशी, वीणा
मृदङ्ग पणव	मृदंग, नगाड़े,	व्यनादयन्	बजाने लगे ॥१३॥
मुरज आनक	मुरज, बड़े नगाड़े,		

ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ।
दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥१४॥

ततः अभिषिषिचुः देवीं श्रियं पद्मकरां सतीं दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैः द्विज ईरितैः ॥१४॥

ततः द्विज	तब ब्राह्मणों द्वारा	पूर्णकलशैः	भरे कलशोंसे
ईरितैः	किए	सतीं पद्मकरां	परमसती पद्महस्ता
सूक्त	स्तुति (श्रीसूक्त)	देवीं श्रियं	देवी लक्ष्मीका
वाक्यैः	वचनों सहित	अभिषिषिचुः	अभिषेक किया
दिगिभाः	दिग्गजोंने		॥१४॥

समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ।
वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥१५॥

समुद्रः पीतकौशेय वाससी सम उपाहरत् वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्त षट्पदाम् ॥१५॥

समुद्रः	समुद्रने	वैजयन्तीं स्रजं	वैजयन्तीमाला
पीतकौशेय	पीले रेशमी	सम	अच्छे
वाससी	दो वस्त्र,	उपाहरत्	उपहाररूपमें दिए
वरुणः मधुना	वरुणने अपने मधुसे		॥१५॥
मत्त षट्पदां	भ्रमरोंको मतवाला बना देनेवाली		

भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ।
हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले ॥१६॥

भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः हारं सरस्वती पद्मं अजः नागाः च कुण्डले ॥१६॥

प्रजापतिः	प्रजापति	**सरस्वती हारं**	सरस्वतीजीने हार,
विश्वकर्मा	विश्वकर्माने	**अजः पद्मं**	ब्रह्माजीने कमल
विचित्राणि	विचित्र	**च नागाः**	तथा नागोंने
भूषणानि	आभूषण,	**कुण्डले**	कुण्डल दिए ॥१६॥

ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं
नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना ।
चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं
सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥१७॥

ततः कृत स्वस्त्ययन उत्पल स्रजं नदत् द्विरेफां परिगृह्य पाणिना चचाल वक्त्रं सुकपोल कुण्डलं सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥१७॥

ततः	तब	**दधती**	धारण किये
स्वस्त्ययन	स्वस्तिवाचन	**नदत् द्विरेफां**	गुंजार करते भ्रमरों-
कृत	हो जानेपर		से युक्त
सुशोभनं	अत्यन्त सुन्दर	**उत्पल**	श्वेत कमलोंकी
सुकपोल	उत्तम कपोलोंवाले	**स्रजं**	माला
कुण्डलं	कुण्डल मंडित	**पाणिना**	हाथमें
वक्त्रं	मुखपर	**परिगृह्य**	लेकर
सव्रीडहासं	लज्जा युक्त मुस्कराहट	**चचाल**	चलीं ॥१७॥

स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं
निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम् ।
ततस्ततो नूपुरवल्गुशिञ्जितै-
र्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥१८॥

स्तनद्वयं च अतिकृश उदरी समं निरन्तरं चन्दन कुङ्कुम उक्षितं ततः ततः नूपुर वल्गुशिञ्जितैः विसर्पती हेमलता इव सा बभौ ॥१८॥

अतिकृश	अत्यन्त कृश	वल्गुशिञ्जितैः	मधुर झंकार करती
उदरी	पेटवाली,	ततः ततः	इधर-उधर
च निरन्तरं	तथा परस्तर सटे,	विसर्पती	चलती हुई
समं	बराबर,	सा हेमलता	वे (लक्ष्मी) स्वर्ण-
चन्दन कुंकुम	चन्दन केशरसे		लताके
उक्षितं	उपलिप्त	इव बभौ	समान जान पड़ीं
स्तनद्वयं	दोनों स्तनोंसे युक्त,		॥१८॥
नूपुर	नूपुरोंकी		

विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः
पदं ध्रुवं चाव्यभिचारिसद्गुणम् ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारण-
त्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ॥१९॥

विलोकयन्ती निः अवद्यं आत्मनः पदं ध्रुवं च अव्यभिचारि सद्गुणं गन्धर्व यक्ष असुर सिद्ध चारण त्रैविष्टपेय आदिषु न अविन्दत ॥१९॥

आत्मनः	अपने लिए	विलोकयन्ती	देखती हुई (उन्हें)
निः अवद्यं	निर्दोष,	गन्धर्व यक्ष	गन्धर्व, यक्ष,
च सद्गुणं	तथा सद्गुण	असुर सिद्ध	असुर, सिद्ध,
अव्यभिचारि	जिससे कभी हटते	चारण	चारण,
	न हों ऐसा	त्रैविष्टपेय	देवता
ध्रुवं पदं	निश्चित (पतिरूप)	आदिषु	आदिमें
	आश्रय	न अविन्दत	नहीं मिला ॥१९॥

नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो
ज्ञानं क्वचित् तच्च न सङ्गवर्जितम् ।
कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः
स ईश्वरः किं परतोव्यपाश्रयः ॥२०॥

नूनं तपः यस्य न मन्यु निर्जयः ज्ञानं क्वचित् तत् च न सङ्ग वर्जितं कश्चित् महान् तस्य न काम निर्जयः स ईश्वरः किं परतः व्यपाश्रयः ॥२०॥

नूनं	(उन्होंने देखा) निश्चय	**कश्चित्**	कोई (ब्रह्मादि)
यस्य	जिनमें	**महान्**	महत्त्वशाली हैं,
तपः	तपस्या है (दुर्वासादिमें)	**तस्य काम**	उनके द्वारा काम-देवको
न मन्यु	वहाँ क्रोध-	**निर्जयः न**	जीता नहीं गया है,
निर्जयः	विजय नहीं है,	**परतः**	दूसरोंके
क्वचित्	कहीं (वृहस्पति आदिमें)	**व्यपाश्रयः**	आश्रयको चाहने-वाले
ज्ञानं	ज्ञान है,	**स ईश्वरः**	वे (इन्द्रादि) समर्थ स्वामी
तत् च सङ्ग	वह तो आसक्ति	**किं**	कैसे हो सकते हैं
वर्जितं न	रहित नहीं है,		॥२०॥

धर्मः क्वचित् तत्र न भूतसौहृदं
त्यागः क्वचित् तत्र न मुक्तिकारणम् ।
वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं
न हि द्वितीयो गुणसङ्गवर्जितः ॥२१॥

धर्मः क्वचित् तत्र न भूत सौहृदं त्यागः क्वचित् तत्र न मुक्ति कारणं वीर्यं न पुंसः अस्ति अजवेग निष्कृतं न हि द्वितीयः गुणसंग वर्जितः ॥२१॥

क्वचित्	कहीं (परशुराम आदिमें)	**त्यागः**	त्याग है
धर्मः	धर्म है	**तत्र मुक्ति**	पर वहाँ मोक्षका
तत्र भूत	पर वहां प्राणियोंसे	**कारणं न**	कारण नहीं है,
सौहृदं न	सौहार्द्र नहीं है	**पुंसः**	पुरुषों
क्वचित्	कहीं (शिवि आदिमें)	**वीर्यं अस्ति**	(सहस्रार्जुनादिमें) बल है

अजवेग	पर वे कालके वेगसे	गुणसङ्ग	गुणोंकी आसक्तिसे
निष्कृतं न	निकले (छूटे) नहीं हैं,	वर्जितः न	छूटे हैं, परन्तु (शिशु होनेसे योग्य) नहीं हैं ॥२१॥
हि द्वितीयः	निश्चय दूसरे (सनकादि)		

क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमङ्गलं
क्वचित् तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः ।
यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः
सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम् ॥२२॥

क्वचित् चिरआयुः न हि शीलमङ्गलं क्वचित् तदपि अस्ति न वेद्यं आयुषः यत्र उभयं कुत्र च सः अपि अमङ्गलः सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम् ॥२२॥

क्वचित्	कहीं (मार्कण्डेयादि-में)	च यत्र	और यदि
चिरआयुः	दीर्घायु है	कुत्र	कहीं (महादेवादिमें)
शीलमङ्गलं	मंगलमय शील-व्यवहार	सः अपि	वह भी है तो
हि न	निश्चय नहींहै,	अमङ्गलः	वह अमङ्गल रूप दीखते हैं,
तत् अपि	वह (शील) भी	कश्चन्	तथा कोई एक
क्वचित्	कहीं (बलि आदिमें)	सुमङ्गलः	उत्तम मङ्गलमय है,
अस्ति	है तो (उनकी)	हि मां	किन्तु वह मुझे
आयुषः	आयुका	काङ्क्षते न	चाहता नहीं है ॥२२॥
वेद्यं न	पता नहीं है,		

एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणै-
र्वरं निजैकाश्रयतयागुणाश्रयम् ।
वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं
रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥२३॥

एवं विमृश्य अव्यभिचारि सद्गुणैः वरं निज एक आश्रयतया अगुण आश्रयं वव्रे वरं सर्वगुणैः अपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपेक्षं ईप्सितम् ॥२३॥

एवं विमृश्य	इस प्रकार विचार करके	**निज एक वरं**	अपने एकमात्र पति
अव्यभिचारि	नित्य	**ईप्सितं**	अपने अभीष्ट
सद् गुणैः	सद्गुण सम्पन्न	**मुकुन्दं**	श्रीहरिको
अगुण आश्रय	निर्गुणत्वको	**निरपेक्षं**	अपेक्षा रहित होने-पर भी
आश्रयतया	स्वीकार किये (प्राकृत गुणातीत)	**रमा वरं**	लक्ष्मीने पति रूपमें
सर्वगुणैः	सम्पूर्ण गुणोंके	**वव्रे**	वरण कर लिया ॥२३॥
अपेक्षितं	अभीष्ट		

तस्यांसदेश उशतीं नवकञ्जमालां
माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ।
तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम
सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥२४॥

तस्य अंसदेश उशतीं नव कञ्जमालां माद्यन् मधुव्रत वरूथ गिरः उपघुष्टां तस्थौ निधाय निकटे तत् उरः स्वधाम सव्रीड हास विकसत् नयनेन याता ॥२४॥

माद्यन् मधुव्रत	मतवाले भ्रमर	**तत् उरः**	उनके वक्षस्थलको
वरूथ गिरः	समूहोंकी गुंजारसे	**सव्रीड हास**	लज्जापूर्ण मुसकान-से
उपघुष्टां	गुंजायमान	**विकसत्**	खिले नेत्रोंसे
उशतीं नव	मनोहर नये	**नयनेन**	देखती
कञ्जमालां	कमलोंकी माला	**याता निकटे तस्थौ**	जाकर पास खड़ी हो गईं ॥२४॥
तस्य अंसदेश	उनके गलेमें		
निधाय	डालकर		
स्वधाम	अपने निवासस्थान		

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या
वक्षोनिवासमकरोत् परमं विभूतेः ।
श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन
यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥२५॥

तस्याः श्रियः त्रिजगतः जनकः जनन्या वक्षः निवासं अकरोत् परमं विभूतेः श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन यत्र स्थित एधयत स अधिपतीन् त्रिलोकान् ॥२५॥

त्रिजगतः जनकः	त्रिलोकके पिताने	**श्रीः**	लक्ष्मीजी
तस्या परमं	उन महैश्वर्य	**स्वाः प्रजाः**	अपनी प्रजा
विभूतेः	शालिनी	**स अधिपतीन्**	लोकपालोंके साथ
जनन्या	जगज्जननीका	**त्रिलोकान्**	तीन लोकोंको
निवासं	निवासस्थान अपने	**सकरुणेन**	अपनी कृपामयी
वक्षः श्रियः	वक्ष स्थलकी शोभा	**निरीक्षणेन**	दृष्टिसे
अकरोत्	बनाया	**एधयत**	अभिवृद्धि करतीं
यत्र स्थिताः	जहां स्थित होकर		हैं ॥२५॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ।
देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥२६॥

शङ्ख तूर्य मृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः देव अनुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतां अभूत् ॥२६॥

शङ्ख तूर्य	शंख, तुरही,	**अनुगानां**	अनुचरोंकी
मृदङ्गानां	मृदङ्ग	**नृत्यतां गायतां**	नाचते-गातोंकी
वादित्राणां	आदि बाजोंकी	**पृथुः स्वनः**	तुमुल-ध्वनि
सस्त्रीणां	तथा स्त्रियोंके साथ	**अभूत्**	हुई ॥२६॥
देव	देवताओंके		

ब्रह्मरुद्राङ्गिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ।
ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः ॥२७॥

ब्रह्म रुद्र अङ्गिरः मुख्याः सर्वे विश्वसृजः विभुं ईडिरे अवितथैः मन्त्रैः तत् लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः ॥२७॥

पुष्पवर्षिणः	पुष्पवर्षा करने-वाले	तत् लिङ्गैः	उन विष्णु प्रति-पादक
ब्रह्म रुद्र	ब्रह्मा, शंकर	अवितथैः मन्त्रैः	अमोघ मन्त्रोंसे
अङ्गिरः मुख्याः	अंगिरा प्रमुख	विभुं ईडिरे	उन भूमा पुरुषकी स्तुति करने लगे ॥२७॥
सर्वे विश्वसृजः	सब विश्वस्रष्टा प्रजापति		

श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ।
शीलादिगुणसम्पन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥२८॥

श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः शील आदि गुण सम्पन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥२८॥

देवाः	देवता,	शील आदि गुण	शीलादि गुण
सप्रजापतयः	प्रजापतियोंके साथ	सम्पन्ना परां	सम्पन्न होकर परम
प्रजाः श्रिया	प्रजा लक्ष्मीजी द्वारा	निर्वृतिं लेभिरे	आनन्दको प्राप्त हुई ॥२८॥
विलोकिता	देखे जानेसे		

निःसत्त्वा लोलुपा राजन् निरुद्योगा गतत्रपाः ।
यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥२९॥

निः सत्त्वा लोलुपा राजन् निरुद्योगा गतत्रपाः यदा च उपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुः दैत्य दानवाः ॥२९॥

राजन्	राजन् !	लोलुपा	लालची,
यदा च लक्ष्म्या उपेक्षिता	जब कि लक्ष्मीजीने उपेक्षा कर दी (तब)	निरुद्योगा	उद्योगहीन,
दैत्य दानवाः	दैत्य-दानव	गतत्रपाः	निर्लज्ज,
निःसत्त्वा	सत्त्वहीन,	बभूवुः	हो गये ॥२९॥

अथासीद् वारुणी देवी कन्या कमललोचना ।
असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥३०॥

अथ आसीत् वारुणी देवी कन्या कमल लोचना असुरा जगृहुः तां वै हरेः अनुमतेन ते ॥३०॥

अथ	इसके अनन्तर	**आसीत्**	उत्पन्न हुई
कमल	कमलके समान	**ते असुरा**	वे असुर
लोचना	नेत्रोंवाली	**हरेः अनुमतेन**	श्रीहरिकी अनुमतिसे
कन्या वारुणी	कन्या वारुणी	**तां वै**	उसे निश्चय
देवी	देवी	**जगृहुः**	ले लिया ॥३०॥

अथोदधेर्मथ्यमानात् काश्यपैरमृतार्थिभिः ।
उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥३१॥

अथ उदधेः मथ्यमानात् काश्यपैः अमृत अर्थिभिः उदतिष्ठन् महाराज पुरुषः परम अद्भुतः ॥३१॥

महाराज	महाराज परीक्षित !	**मथ्यमानात्**	मथे जाते हुए
अथ अमृत	फिर अमृत	**उदधेः**	समुद्रसे
अर्थिभिः	चाहनेवाले	**परम अद्भुतः**	अत्यन्त अद्भुत
काश्यपैः	कश्यपजीके पुत्रों द्वारा	**पुरुषः**	पुरुष
		उदतिष्ठन्	ऊपर निकला ॥३१॥

दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥३२॥

दीर्घ पीवर दोर्दण्डः कम्बुग्रीवः अरुण ईक्षणः श्यामलः तरुणः स्रग्वी सर्व आभरण भूषितः ॥३२॥

दीर्घ पीवर	लम्बी मोटी	**अरुण ईक्षणः**	रतनारे, नेत्र,
दोर्दण्डः	भुजाएँ,	**श्यामलः**	साँवला,
कम्बुग्रीवः	शंखके समान कण्ठ	**तरुणः**	तरुण वयका,

स्रग्वी	वनमालाधारी,	आभरण	आभूषणोंसे
सर्व	सब	भूषितः	अलंकृत ॥३२॥

पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ।
स्निग्धकुञ्चित केशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ॥३३॥

पीतवासा महा उरस्कः सुमृष्ट मणि कुण्डलः स्निग्ध कुञ्चित केश अन्तः सुभगः सिंह विक्रमः ॥३३॥

पीतवासा	पीताम्बरधारी,	कुञ्चित	घुंघराली
महा उरस्कः	विशाल वक्षस्थल,	केश अन्तः	अलकोंवाला,
सुमृष्ट मणि	स्वच्छ मणिमय	सुभगः सिंह	सुन्दर, सिंहके समान
कुण्डलः	कुंडल पहिने	विक्रमः	पराक्रमी ॥३३॥
स्निग्ध	चिकनी		

अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद् वलयभूषितः ।
स बै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः ॥३४॥

अमृत आपूर्ण कलशं बिभ्रत् वलय भूषितः स वै भगवतः साक्षात् विष्णोः अंशांश सम्भवः ॥३४॥

वलय	कंकणसे	साक्षात् भगवतः	साक्षात् भगवान्
भूषितः	आभूषित (हाथोंमें)	विष्णोः	विष्णुके छोटे
अमृत आपूर्ण	अमृतसे पूरा भरा	अंशांश	अंशसे
कलशं बिभ्रत्	कलश लिये	सम्भवः	उत्पन्न हुए थे ॥३४॥
वै स	निश्चय वे		

धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक् ।
तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम् ॥३५॥

धन्वन्तरिः इति ख्यातः आयुर्वेददृक् इज्यभाक तं आलोक्य असुराः सर्वे कलशं च अमृत आभृतम् ॥३५॥

इज्यभाक्	यज्ञमें भाग पाने-वाले,	तं च अमृत आभृतं	उनको तथा अमृतसे पूरे भरे
धन्वन्तरिः इति	धन्वन्तरि इस नामसे	कलशं	कलशको
ख्यातः	प्रसिद्ध	सर्वे असुराः	सब असुरोंने
आयुर्वेददृक्	आयुर्वेदप्रवर्तक	आलोक्य	देखकर ॥३५॥

लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाहरन् ।
नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने ॥३६॥

लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलशं तरसा आहरन् नीयमाने असुरैः तस्मिन् कलशे अमृत भाजने ॥३६॥

सर्ववस्तूनि	सब वस्तुओंपर	आहरन्	छीन लिया
लिप्सन्तः	ललचाते रहनेवाले (उन्होंने)	तस्मिन् अमृत भाजने	उस अमृत पात्रको
तरसा	झपट कर वेगसे	असुरैः	असुरोंके
कलशं	कलशको	नीयमाने	ले लेनेपर ॥३६॥

विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ।
इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ।
मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥३७॥

विषण्ण मनसः देवाः हरिं शरणं आययुः इति तत् दैन्यं आलोक्य भगवान् भृत्य कामकृत् मा खिद्यत मिथः अर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥३७॥

विषण्ण मनसः	खिन्न चित्त	भृत्य	सेवकोंका
देवाः हरिं	देवता श्रीहरिकी	कामकृत्	काम कर देनेवाले
शरणं आययुः	शरणमें आये,	भगवान्	भगवान् (ने कहा)
इति तत्	इस प्रकार उनकी	मा खिद्यत	'खेद मत करो
दैन्यं आलोक्य	दीनता देखकर	स्वमायया	अपनी मायासे

वः अर्थं	तुम्हारा प्रयोजन	साधयिष्ये	सिद्ध कर दूंगा'
मिथः	(असुरोंके) परस्पर झगड़ेसे		॥३७॥

मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥३८॥

मिथः कलिः अभूत् तेषां तत् अर्थे तर्ष चेतसां अहं पूर्वं अहं पूर्वं न त्वं न त्वं इति प्रभो ॥३८॥

प्रभो	राजन् !	अहं पूर्वं	मैं पहिले'
तर्ष चेतसां	तृष्णालोलुप चित्त-वाले	न त्वं न त्वं	तुम नहीं, तुम नहीं
तेषां तत् अर्थे	उनमें उस (अमृत)-के लिए	इति मिथः	इस प्रकार परस्पर
अहं पूर्वं	'मैं पहिले,	कलिः अभूत्	झगड़ा होने लगता ॥३८॥

देवाः स्वं भागमर्हन्ति ये तुल्यायासहेतवः ।
सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥३९॥

देवाः स्वं भागं अर्हन्ति ये तुल्य आयास हेतवः सत्रयाग इव एतस्मिन् एष धर्मः सनातनः ॥३९॥

ये तुल्य आयास	'जो समान परिश्रम को	स्वं भागं अर्हन्ति	अपना भाग पानेके अधिकारी हैं,
हेतवः देवाः	करने वाले देवता हैं,	एष सनातनः	यही सनातन
सत्रयाग इव	यज्ञभागके समान	धर्मः	धर्म है ॥३९॥
एतस्मिन्	इसमें		

इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः ।
दुर्बलाः प्रबलान् राजन् गृहीतकलशान् मुहुः ॥४०॥

इति स्वान् प्रत्यषेधन् वै दैतेया जात मत्सराः दुर्बलाः प्रबलान् राजन् गृहीत कलशान् मुहुः ॥४०॥

राजन्	राजन् !
इति	इस प्रकार
गृहीत कलशान्	कलश ले जाने वाले
प्रबलान् स्वान्	बलवान अपनों को
जात मत्सराः	ईर्षा उत्पन्न होनेके कारण
दुर्बलाः दैतेया	दुर्बल दैत्य
वै मुहुः	निश्चय बार बार
प्रत्यषेधन्	रोकने लगे ॥४०॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ।
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥४१॥

एतस्मिन् अन्तरे विष्णुः सर्व उपायवित् ईश्वरः योषित् रूपं अनिर्देश्यं दधार परम अद्भुतम् ॥४१॥

एतस्मिन् अन्तरे	इसी बीचमें
सर्व उपायवित्	सब उपायोंको जाननेवाले
ईश्वरः विष्णुः	सर्वसमर्थ विष्णुने
परम अद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत
अनिर्देश्यं	अवर्णनीय
योषित् रूपं	स्त्रीका रूप
दधार	धारण किया ॥४१॥

प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् ।
समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ॥४२॥

प्रेक्षणीय उत्पलश्यामं सर्व अवयव सुन्दरं समान कर्ण आभरणं सुकपोल उन्नस आननम् ॥४२॥

प्रेक्षणीय	दर्शनीय
उत्पलश्यामं	नीलकमलके समान श्याम वर्ण,
सर्व अवयव	सर्वांग
सुन्दरं	सुन्दर
समान कर्ण	बराबरके कानोंमें
आभरणं	आभूषण (कुंडल) पहिने,
सुकपोल	सुन्दर कपोल,
उन्नस आननं	उठी नासिकावाला मुख ॥४२॥

नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् ।
मुखामोदानुरक्तालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम् ॥४३॥

नवयौवन निर्वृत्त स्तन भारकृश उदरं मुख आमोद अनुरक्त अलि झङ्कार उद्विग्न लोचनम् ॥४३॥

नवयौवन	नये यौवनसे	मुख आमोद	मुखकी सुगन्धिमें
निर्वृत्त	गोलाकार हुए	अनुरक्त अलि	अनुरक्त भौंरोंकी
स्तन	स्तनोंके	झङ्कार उद्विग्न	गुंजारसे चंचल
भारकृश	भारसे दुबला पड़ा	लोचनं	नेत्रवाली ॥४३॥
उदरं	पेट,		

बिभ्रत् स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ।
सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ॥४४॥

बिभ्रत् स्वकेश भारेण मालां उत्फुल्ल मल्लिकां सुग्रीव कण्ठ आभरणं सुभुज अङ्गद भूषितं ॥४४॥

स्वकेश	अपने केश	सुग्रीव कण्ठ	सुन्दर ग्रीवामें गलेके
भारेण	भार (जूड़े) में	आभरणं	आभूषण पहिने,
उत्फुल्ल	फूली	सुभुज	सुन्दर भुजाएँ
मल्लिकां	चमेलीकी	अंगद	बाजूबन्दसे
मालां बिभ्रत्	माला धारण किये	भूषितं	अलंकृत थीं ॥४४॥

विरजाम्बरसंवीतनितम्बद्वीपशोभया ।
काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥४५॥

विरज अम्बर संवीत नितम्ब द्वीप शोभया काञ्च्या प्रविलसत् वल्गु चलत् चरण नूपुरम् ॥४५॥

विरज अम्बर	निर्मल वस्त्र	प्रविलसत्	सुशोभित था,
संवीत	पहिने	वल्गु चलत्	सुन्दर चंचल
शोभया	शोभाशाली	चरण	चरणोंमें
नितम्ब द्वीप	नितम्ब द्वीप	नूपुरं	नूपुर पहिने थी
काञ्च्या	करधनीसे		॥४५॥

सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रू विलासावलोकनैः ।
दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन् मुहुः ॥४६॥

सव्रीड स्मित विक्षिप्त भ्रू विलास अवलोकनैः दैत्य यूथप चेतःसु कामं उद्दीपयन् मुहुः ॥४६॥

सव्रीड	लज्जा पूर्वक	**दैत्य यूथप**	दैत्य-दलपतियोंके
स्मित	मुस्कराहटके साथ	**चेतःसु मुहुः**	चित्तमें बार-बार
भ्रू विलास	भौंहें चलाकर	**कामं उद्दीपयन्**	कामोद्दीपन करते हुए ॥४६॥
विक्षिप्त	कटाक्ष पूर्वक		
अवलोकनैः	देखनेसे		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भगवन्मायोपलम्भनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः ।
क्षिपन्तो दस्युधर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥ १ ॥

ते अन्य अन्यतः असुराः पात्रं हरन्तः त्यक्त सौहृदाः क्षिपन्तः दस्यु धर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥१॥

ते असुराः	वे असुर	पात्रं	अमृत-पात्रको
त्यक्त सौहृदाः	सौहार्द्र त्यागकर	अन्य अन्यतः	एक दूसरेसे
दस्यु धर्माण	डाकुओंके धर्ममें लगे	हरन्तः	छीन रहे थे कि
क्षिपन्तः	परस्पर आक्षेप करते	स्त्रियं आयान्तीं	स्त्रीको आते हुए
		ददृशुः	देखा ॥१॥

अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ।
इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥ २ ॥

अहो रूपं अहो धाम अहो अस्या नवं वयः इति ते तां अभिद्रुत्य पप्रच्छुः जात हृत् छयाः ॥२॥

जात हृत् छयाः	हृदयको क्षीण करने-वाले काम-वेगके उत्पन्न होनेसे	अहो नवं वयः	कैसी नवीन अवस्था है'
		ते इति	वे इस प्रकार कहते
अहो	'अहो	तां अभिद्रुत्य	उसके पास दौड़ गये और
अस्या	इसका कैसा विचित्र		
रूपं	रूप है,	पप्रच्छुः	पूछने लगे ॥२॥
अहो धाम	कैसा अद्भुत कान्ति है,		

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि ।
कस्यासि वद वामोरु मथ्नन्तीव मनांसि नः ॥ ३ ॥

का त्वं कञ्ज पलाश अक्षि कुतः वा किं चिकीर्षसि कस्य असि वद वामोरु मथ्नन्ति इव मनांसि नः ॥३॥*

कञ्ज पलाश	'कमल-दल	**कस्य असि**	किसको हो ?
अक्षि	लोचने !	**वामोरु वद**	सुन्दरी ! बतलाओ,
का त्वं	तुम कौन हो ?	**नः मनांसि**	हमारे चित्तको
वा कुतः	अथवा कहांसे आयी हो ?	**मथ्नन्ति इव**	मानो मथे दे रही हो ॥३॥
किं चिकीर्षसि	क्या करना चाहती हो ?		

न वयं त्वामरैर्दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः ।
नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः ॥ ४ ॥

न वयं त्वा अमरैः दैत्यैः सिद्ध गन्धर्व चारणैः न अस्पृष्ट पूर्वां जानीमः लोक ईशैः च कुतः नृभिः ॥४॥

वयं त्वा	हम लोग तुम्हें	**पूर्वां**	पहिले
अमरैः दैत्यैः	देवता, दैत्यों,	**न अस्पृष्ट न**	बिना अछूती नहीं (अछूती)
सिद्ध गन्धर्व	सिद्ध, गन्धर्व,	**जानीमः**	जानते हैं,
चारणैः	चारणों	**कुतः नृभिः**	फिर मनुष्योंकी क्या
च लोक	तथा लोकपालों		चर्चा ॥४॥
ईशैः	द्वारा भी		

नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषितासि शरीरिणाम् ।
सर्वेन्द्रियमनः प्रीतिं विधातुं घृणेन किम् ॥ ५ ॥

---

*यहां 'असुरोवाच' देना अनावश्यक है; क्योंकि आगे श्लोक ८ के लिए 'श्रीशुक उवाच' नहीं है

नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषिता असि शरीरिणां सर्व इन्द्रिय मनः प्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥५॥

सुभ्रूः	सुन्दर भौंहों वाली !	सर्व इन्द्रिय	सब इन्द्रियों तथा
नूनं किं त्वं	निश्चय क्या तुम	मनः प्रीतिं	मनकी प्रसन्नता
सघृणेन	दयालु	विधातुं	सम्पन्न करनेके लिए
विधिना	विधाता द्वारा	प्रेषिता असि	भेजी गयी हो ॥५॥
शरीरिणां	शरीरधारियोंकी		

सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि ।
ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥ ६ ॥

सा त्वं नः स्पर्धमानानां एक वस्तुनि मानिनि ज्ञातीनां बद्ध वैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥६॥

सुमध्यमे	सुमध्यमे !	नः ज्ञातीनां	हम जाति भाइयोंमें
मानिनि	मानिनि !	सा त्वं	वह तुम
एक वस्तुनि	एक ही वस्तुके लिए	शं विधत्स्व	शान्ति स्थापित कर
बद्ध वैराणां	दृढ़ शत्रुता करके		दो ॥६॥
स्पर्धमानानां	डाह करनेवाले		

वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः ।
विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ ७ ॥

वयं कश्यप दायादा भ्रातरः कृत पौरुषाः विभजस्व यथान्यायं न एव भेदः यथा भवेत् ॥७॥

वयं कश्यप	हम लोग कश्यपजीके	यथान्यायं	न्यायपूर्वक
दायादा	पुत्र अतः	विभजस्व	बाँट दो
भ्रातरः	परस्पर भाई हैं,	यथा भेदः	जिससे फिर झगड़ा
कृत पौरुषाः	(हम सबने) पुरुषार्थ किया हैं,	न एव भवेत्	नहीं ही हो' ॥७॥

इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः ।
प्रहस्य रुचिरापांगैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

इति उपामन्त्रितः दैत्यैः माया योषित् वपुः हरिः प्रहस्य रुचिर अपांगैः निरीक्षन् इदं अब्रवीत् ॥८॥

दैत्यैः इति	दैत्योंके इस प्रकार	**हरिः प्रहस्य**	श्रीहरि हँसकर
उपामन्त्रितः	आमन्त्रण देनेपर	**रुचिर अपांगैः**	सुन्दर कटाक्ष पूर्वक
माया	मायासे	**निरीक्षन्**	देखते हुए
योषित् वपुः	स्त्री शरीरधारी	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥८॥

श्रीभगवानुवाच–

कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि संगताः ।
विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु न याति हि ॥ ९ ॥

कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि संगताः विश्वासं पण्डितः जातु कामिनीषु न याति हि ॥९॥

कश्यपदायादाः	कश्यपकुमारो !	**हि पण्डितः**	क्योंकि विद्वान
मयि	मुझ	**कामिनीषु जातु**	स्त्रियोंका कभी
पुंश्चल्यां	व्यभिचारिणीके	**विश्वासं न**	विश्वास नहीं
कथं संगताः	क्यों साथ होते हो,	**याति**	करते ॥९॥

सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ।
सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ॥१०॥

सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः सख्यानि आहुः अनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ॥१०॥

सुरद्विषः	देवद्रोहियो !	**नूत्नं नूत्नं**	नये-नयोंको
सालावृकाणां	कुत्तोंका	**विचिन्वतां**	ढूंढ़नेवालियोंकी
च स्वैरिणीनां	तथा स्वेच्छा चारिणी	**सख्यानि**	मित्रता
		अनित्यानि	अस्थायी
स्त्रीणां	स्त्रियोंका	**आहुः**	कही गयी है ॥१०॥

श्रीशुक उवाच–

इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः ।
जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥११॥

इति ते क्ष्वेलितैः तस्या आश्वस्त मनसः असुराः जहसुः भाव गम्भीरं ददुः च अमृत भाजनम् ॥११॥

इति तस्या	इस प्रकार उसके	**भाव गम्भीरं**	गम्भीर भावसे
क्ष्वेलितैः	परिहास करनेपर	**जहसुः च**	हँसे और
ते असुराः	वे असुर	**अमृत भाजनं**	अमृतका पात्र
आश्वस्त मनसः	विश्वस्त चित्त होकर	**ददुः**	दे दिया ॥११॥

ततो गृहीत्वामृतभाजनं हरि-
र्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा ।
यद्यभ्युपेतं क्व च साध्वसाधु वा
कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् ॥१२॥

ततः गृहीत्वा अमृत भाजनं हरिः बभाष ईषत् स्मित शोभया गिरा यद् अभ्युपेतं क्व च साधु असाधु वा कृतं मया वः विभजे सुधां इमाम् ॥१२॥

ततः	तब	**क्व च साधु**	कुछ अच्छा
अमृत भाजनं	अमृत-पात्रको	**वा असाधु**	अथवा बुरा
गृहीत्वा हरिः	लेकर श्रीहरिने	**यद् अभ्युपेतं**	यदि स्वीकार हो तो
ईषत् स्मित	तनिक मुस्कानसे	**इमां सुधां**	यह अमृत
शोभया गिरा	शोभित वाणीसे	**वः विभजे**	तुम लोगोंमें
बभाष	बोले		बांटूंगी' ॥१२॥
मया कृतं	'मेरे द्वारा किया		

इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुङ्गवाः ।
अप्रमाणविदस्तस्यास्तत् तथेत्यन्वमंसत ॥१३॥

इति अभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्य असुर पुङ्गवाः अप्रमाणविदः तस्याः तत् तथा इति अन्वमंसत ॥१३॥

इति तस्या	इस प्रकार उसका	**असुर पुङ्गवाः***	असुरश्रेष्ठोंने
अभिव्याहृतं	साभिप्राय कहना	**तत् तथा**	यह ऐसा ठीक है,
आकर्ण्य	सुनकर	**इति**	इस प्रकार
तस्याः	उसके	**अन्वमंसत**	उसे मान लिया ॥१३॥
अप्रमाणविदः	स्वरूपको न जाननेवाले		

अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषानलम् ।
दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥१४॥

अथ उपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषा अनलं दत्त्वा गो विप्र भूतेभ्यः कृतस्वस्त्यनाः द्विजैः ॥१४॥

अथ उपोष्य	फिर उपवास करके	**च भूतेभ्यः**	तथा अन्य प्राणियों-को
कृतस्नाना	स्नान करनेके पश्चात	**दत्त्वा द्विजैः**	देकर, ब्राह्मणों द्वारा
हविषा अनलं	हविसे अग्निमें	**कृतस्वस्त्यनाः**	स्वस्ति वाचन करा-कर ॥१४॥
हुत्वा	हवन करके		
गो-विप्र	गौ-ब्राह्मणों		

यथोपजोषं वासांसि परिधायाहतानि ते ।
कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः ॥१५॥

यथा उपजोषं वासांसि परिधाय अहतानि ते कुशेषु प्राविशन् सर्वे प्राक् अग्रेषु अभिभूषिताः ॥१५॥

यथा उपजोषं	अपनी रुचिके अनुसार	**अहतानि वासांसि**	बिना फटे वस्त्र

*पुंगवा—बैल, यह श्लेष है।

परिधाय	पहिन कर	अग्रेषु	नोक करके बिछाए
अभिभूषिताः	आभूषण धारण करके	कुशेषु ते	कुशोंपर वे
		सर्वे प्राविशन्	सब बैठ गये ॥१५॥
प्राक्	पूर्वकी ओर		

प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च ।
धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥१६॥

प्राक् मुखेषु उपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च धूप आमोदित शालायां जुष्टायां माल्य दीपकैः ॥१६॥

माल्य	माला और	प्राक् मुखेषु	पूर्वकी ओर मुख करके
दीपकैः	दीपकोंसे		
जुष्टायां	सुशोभित	सुरेषु च	देवता और
धूप	धूपसे	दितिजेषु	दैत्योंके
आमोदित	सुगन्धित	उपविष्टेषु	बैठ जानेपर ॥१६॥
शालायां	बड़े कक्षमें		

तस्यां नरेन्द्र करभोरुरुशद्दुकूल-
श्रोणी तटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी ।
सा कूजती कनकनूपुरशिञ्जितेन
कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ॥१७॥

तस्यां नरेन्द्र कर भ उरुः उशत् दुकूल श्रोणी तट अलस गतिः मद विह्वल अक्षी सा कूजती कनकनूपुर शिञ्जितेन कुम्भस्तनी कलशपाणिः अथ आविवेश ॥१७॥

नरेन्द्र	राजेन्द्र परीक्षित !	अलस गतिः	मन्द गति
अथ तस्यां	फिर उस (कक्ष) में	मद विह्वल	मदमत्त
उशत् दूकूल	सुन्दर वस्त्र पहिने	अक्षी	नयनी
श्रोणी तट	नितम्बोंके भारसे	करभ	गजशुण्ड-सी

उरुः	जंघाओंवाली,
कुम्भस्तनी	कलश जैसे स्तन-वाली
कनकनूपुर शिञ्जितेन	स्वर्णनूपुरोंके झंकारसे
कूजती	कूजन करती
सा	वह
कलशपाणि	हाथोंमें कलश लिये
आविवेश	प्रविष्ट हुई ॥१७॥

तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्ण-
नासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् ।
संवीक्ष्य संमुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन
देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकान्ताम् ॥१८॥

तां श्रीसखीं कनककुण्डल चारुकर्ण नासा कपोल वदनां परदेवता आख्यां संवीक्ष्य संमुमुहुः उत् स्मित वीक्षणेन देव असुरा विगलिता स्तन पट्टिकान्ताम् ॥१८॥

कनक कुण्डल	स्वर्ण कुंडलवाले
चारुकर्ण	सुन्दर कर्ण,
नासा	नासिका
कपोल	कपोल युक्त
वदनां	मुखवाली,
स्तन	स्तनोंपरके
पट्टिकान्ता	अंचलका किनारेका भाग
विगलिता	हटा हुआ है ऐसी
तां परदेवता	उसपर देवता
आख्यां	नाम्नी
श्रीसखीं	लक्ष्मीजीकी सखी-को
संवीक्ष्य	देखकर
उत् स्मित	(उसकी) मुसकान भरी
वीक्षणेन	चितवनसे
देव असुरा	देवता असुर
संमुमुहुः	मोहित हो गये ॥१८॥

असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् ।
मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥१९॥

असुराणां सुधादानं सर्पाणां इव दुर्नयं मत्वा जाति नृशंसानां न तां व्यभजत् अच्युतः ॥१९॥

जाति	स्वभावसे ही	दुर्नयं मत्वा	अन्याय मानकर
नृशंसानां	निर्दय	अच्युतः	श्रीहरिने
सर्पाणां इव	सर्पोंके समान	तां न	उनको (अमृत) नहीं
असुराणां	असुरोंको	व्यभजत्	बांटा ॥१९॥
सुधादानं	अमृत देना		

कल्पयित्वा पृथक् पङ्क्तीरुभयेषां जगत्पतिः ।
तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पङ्क्तिषु ॥२०॥

कल्पयित्वा पृथक् पङ्क्तिः उभयेषां जगत् पतिः तान् च उपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पङ्क्तिषु ॥२०॥

जगत् पतिः	उन जगत्पतिने	तान् च	फिर उनको तो
उभयेषां	दोनों (देव-दानवों) की	स्वेषु स्वेषु च	अपनी-अपनी ही
		पङ्क्तिषु	पंक्तियोंमें
पृथक् पङ्क्तिः	अलग-अलग पंक्ति	उपवेशयामास	बैठाया ॥२०॥
कल्पयित्वा	बनवाकर		

दैत्यान्गृहीतकलशो वञ्चयन्नुपसञ्चरैः ।
दूरस्थान् पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥२१॥

दैत्यान् गृहीतकलशः वञ्चयन् उपसञ्चरैः दूरस्थान् पाययामास जरामृत्यु हरां सुधाम् ॥२१॥

गृहीतकलशः	हाथमें कलश लिये	दूरस्थान्	दूर बैठे (देवताओं)
उपसञ्चरैः	समीप चलने तथा कटाक्षादिसे		को
		जरामृत्यु	बुढ़ापे और मृत्युको
दैत्यान्	दैत्योंको	हरां	हरण करनेवाला
वञ्चयन्	ठगते हुए	सुधां	अमृत
		पाययामास	पिला दिया ॥२१॥

ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं नृप ।
तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥२२॥

ते पालयन्तः समयं असुराः स्वकृतं नृप तूष्णीं आसन् कृतस्नेहाः स्त्री विवाद जुगुप्सया ॥२२॥

नृप	राजन् !	**स्वकृतं**	अपने साथकी गयी
ते असुराः	वे असुर	**समयं**	शर्तका
स्त्री विवाद	स्त्रीसे झगड़ा करना	**पालयन्तः**	पालन करते हुए
जुगुप्सया	निन्दनीय समझकर	**तूष्णीं आसन्**	चुपचाप बैठे रहे ॥२२॥
कृतस्नेहाः	इसने स्नेह किया है इसलिए		

तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः ।
बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किञ्चन विप्रियम् ॥२३॥

तस्यां कृत अति प्रणयाः प्रणय अपाय कातराः बहु मानेन च आबद्धा न ऊचुः किञ्चन विप्रियम् ॥२३॥

तस्यां अति	उससे बहुत	**च**	तथा (उसके द्वारा)
प्रणया :	प्रेम	**बहु मानेन**	बहुत सम्मान पानेसे
कृत	किया था,	**आबद्धा**	बँधे हुए थे, अतः
प्रणय	उस प्रेमके नष्ट होनेके	**विप्रियं**	अप्रिय
		किञ्चन	कुछ भी
अपाय	भयसे	**न ऊचुः**	नहीं बोले ॥२३॥
कातराः	कातर थे,		

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ।
प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥२४॥

देवलिङ्ग प्रतिच्छन्नः स्वर्भानुः देवसंसदि प्रविष्टः सोमं अपिबत् चन्द्र अर्काभ्यां च सूचितः ॥२४॥

देवलिङ्ग	देवताके रूपमें	**प्रविष्टः**	घुसकर
प्रतिच्छन्नः	छिपकर	**स्वर्भानुः**	स्वर्भानु दैत्यने
देवसंसदि	देव समूहमें	**सोमं अपिबत्**	अमृत पीलिया

च चन्द्र अर्काभ्यां	किन्तु चन्द्रमा-सूर्य द्वारा	सूचितः	(इसका) संकेत कर दिया ॥२४॥

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः ।
हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाप्लावितोऽपतत् ॥२५॥

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः हरिः तु तस्य कबन्धः तु सुधया अप्लावितः अपतत् ॥२५॥

हरिः	श्रीहरिने अमृत	तु तस्य	किन्तु उसका
पिबतः	पीते समय	कबन्धः	धड़
क्षुरधारेण	तीक्ष्ण धारवाले	सुधया	अमृत
चक्रेण	चक्रसे	अप्लावितः	न सींचे जानेसे
शिरः	उसका सिर	अपतत्	गिर गया ॥२५॥
जहार	काट दिया		

शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत् ।
यस्तु पर्वणि चन्द्रार्काविभिधावति वैरधीः ॥२६॥

शिरः तु अमरतां नीतं अजः ग्रहं अचीक्लृपत् यः तु पर्वणि चन्द्र अर्काः अभिधावति वैरधीः ॥२६॥

तु शिरः	किन्तु सिर	यः तु पर्वणि	जो कि पूर्णिमा-अमावस्याको
अमरतां नीतः	अमरत्व प्राप्त हो गया,	वैरधीः	बैर बुद्धिसे
अजः ग्रहं	ब्रह्माजीने (उसे) ग्रह	चन्द्र अर्काः	चन्द्रमा-सूर्यपर
अचीक्लृपत्	बना दिया,	अभिधावति	आक्रमण करता है ॥२६॥

पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः ।
पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥२७॥

पीतप्राये अमृते देवैः भगवान् लोकभावनः पश्यतां असुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥२७॥

देवैः अमृते	देवताओंके अमृत	असुरेन्द्राणां	असुर-नायकोंके
पीतप्राये	प्रायः पीलेनेपर	पश्यतां	देखते हुए
लोकभावनः	लोकरक्षक	स्वं रूपं	अपना रूप
भगवान्	भगवान्	जगृहे	ग्रहण कर लिया
हरिः	श्रीहरिने		॥२७॥

एवं सुरासुरगणाः समदेशकाल-
हेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः ।
तत्रामृतं सुरगणाः फलमञ्जसाऽऽपु-
र्यत्पादपङ्कजरजः श्रयणान्न दैत्याः ॥२८॥

एवं सुर असुर गणाः समदेश काल हेतु अर्थ कर्म मतयः अपि फले विकल्पाः तत्र अमृतं सुरगणाः फलं अञ्जसा आपुः यत् पादपङ्कजरजः श्रयणात् न दैत्याः ॥२८॥

एवं	इस प्रकार	श्रयणात्	आश्रय लेनेसे
सुर असुर गणाः	देव-असुर गणमें	सुरगणाः	देवता लोग
समदेश काल	समान देश, काल,	अञ्जसा	सरलतासे
हेतु अर्थ	कारण, प्रयोजन,	तत्र फलं	वहां फलरूप
मतयः कर्म अपि	बुद्धि, कर्म होनेपर भी	अमृतं आपुः	अमृत पा गये
फले विकल्पाः	फलमें भेद हो गया	न दैत्याः	(पर उनका आश्रय नहीं लेनेसे) दैत्य नहीं पा सके ॥२८॥
यत्	जिनकी		
पादपङ्कजरजः	चरण-कमल रज-का		

यद् युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभि-
र्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत् पृथक्त्वात् ।
तैरेव सद् भवति यत् क्रियतेऽपृथक्त्वात्
सर्वस्य तद् भवति मूलनिषेचनं यत् ॥२९॥

यत् युज्यते असु वसु कर्म मनः वचः भिः देह आत्मज आदिषु नृभिः तत् असत् पृथक्त्वात् तैः एव सत् भवति यत् क्रियते अपृथक्त्वात् सर्वस्य तत् भवति मूल निषेचनं यत् ॥२९॥

नृभिः यत्	मनुष्यों द्वारा जो	**भवति**	हो जाता है
असु वसु	प्राण और धनसे	**यत्**	यदि
कर्म	कर्म	**अपृथक्त्वात्**	अभेद बुद्धिसे
मनः वचः	मन, वाणी द्वारा	**क्रियते**	किया जाय
देह	शरीर,	**यत् मूल**	क्योंकि जड़को
आत्मज आदिषु	पुत्रादिके लिए	**निषेचनं**	सींचना
पृथक्त्वात्	भेद बुद्धिसे	**तत्**	वह
क्रियते	किया जाता है	**सर्वस्य**	सब (पूरे वृक्ष) के लिए
तत् असत्	वह व्यर्थ होता है		
तैः एव सत्	वही सार्थक	**भवति**	हो जाता है ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे ऽमृतमथने नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप ।
युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥

इति दानव दैतेया न अविन्दन् अमृतं नृप युक्ताः कर्मणि यत्ताः च वासुदेव पराङ्मुखाः ॥१॥

नृप	राजन् !	कर्मणि युक्ताः	कर्ममें लगने
इति	इस प्रकार	च यत्ताः	और प्रयत्न करने-
वासुदेव	श्रीहरिसे		पर भी
पराङ्मुखाः	विमुख	अमृतं न	अमृत नहीं
दानव दैतेया	दानव-दैत्य	अविन्दन्	पा सके ॥१॥

साधयित्वामृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान् ।
पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥

साधयित्वा अमृतं राजन् पाययित्वा स्वकान् सुरान् पश्यतां सर्व-भूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥२॥

राजन्	राजन् !	सुरान्	देवताओंको
गरुडवाहनः	गरुड वाहन श्रीहरि	पाययित्वा	पिलाकर
अमृतं	अमृत	सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
साधयित्वा	सिद्ध करके,	पश्यतां ययौ	देखते हुए चले गये
स्वकान्	अपने आश्रित		॥२॥

सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः ।
अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥

सपत्नानां परां ऋद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः अमृष्यमाणा उत्पेतुः देवान् प्रति उद्यत आयुधाः ॥३॥

ते दितिनन्दनाः	वे दैत्य	उद्यत आयुधाः	अस्त्र-शस्त्र उठाकर
सपत्नानां	अपने शत्रुओंका	देवान् प्रति	देवताओंपर
परां ऋद्धिं	परमैश्वर्य	उत्पेतुः	चढ़ दौड़े ॥३॥
दृष्ट्वा	देखकर		
अमृष्यमाणाः	उसे सहन न करके		

ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः ।
प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥ ४ ॥

ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीत एधिताः प्रति संयुयुधुः शस्त्रैः नारायण पद आश्रयाः ॥४॥

ततः नारायण	तब श्रीनारायणके	एधिताः	सबल हुए
पद आश्रयाः	प्रेरणाश्रित	शस्त्रैः	शस्त्र लेकर
सर्वे सुरगणाः	सब देववृन्द	प्रति	प्रतिकारमें
सुधया पीत	अमृत पीनेसे	संयुयुधुः	युद्ध करने लगे ॥४॥

तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः ।
रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥

तत्र दैव असुरः नाम रणः परमदारुणः रोधसि उदन्वतः राजन् तुमुलः रोमहर्षणः ॥५॥

राजन्	राजन् !	परमदारुणः	अत्यन्त भयंकर
तत्र	वहां	रोमहर्षणः	रोमाञ्चकारी
उदन्वतः रोधसि	क्षीरसमुद्र किनारे	तुमुलः रणः	घोर युद्ध (हुआ) ॥५॥
दैव असुरः नाम	देवासुर नामक		

तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे ।
समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥

तत्र अन्यः अन्यं सपत्नाः ते संरब्ध मनसः रणे सम आसाद्य असिभिः बाणैः निजघ्नुः विविध आयुधैः ॥६॥

तत्र ते	वहां वे दोनों	असिभिः बाणैः	तलवारों, बाणों,
सपत्नाः	विपक्षी लोग	विविध	अनेक प्रकारके
संरब्ध मनसः	क्रोध पूर्ण चित्त	आयुधैः	अस्त्र-शस्त्रोंसे
अन्यः अन्यं	एक दूसरेको	निजघ्नुः	प्रहार करने लगे
रणे	युद्धमें		॥६॥
सम आसाद्य	ठीक सामने पाकर		

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां भेरीडमरिणां महान् ।
हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निस्वनोऽभवत् ॥ ७ ॥

शङ्ख तूर्य मृदङ्गानां भेरी डमरिणां महान् हस्ति अश्व रथ पत्तीनां नदतां निस्वनः अभवत् ॥७॥

शङ्ख तूर्य	शंख, तुरही,	रथ पत्तीनां	रथारोही एवं पैदल सेनाका
मृदङ्गानां	मृदङ्गों,	महान्	भारी
भेरी	नगाडों,	निस्वनः	कोलाहल
डमरिणां	डमरुओं तथा	अभवत्	होने लगा ॥७॥
नदतां हस्ति	गर्जना करते हाथी,		
अश्व	घोड़े,		

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः ।
हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे ॥ ८ ॥

रथिनः रथिभिः तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः हया हयैः इभाः च इभैः सम सज्जन्त संयुगे ॥८॥

तत्र संयुगे	वहां युद्धमें	च इभाः	और गजरोही
रथिनः रथिभिः	रथी-रथियोंसे,	इभैः	गजा रोहियोंसे
पत्तयः पत्तिभिः	पैदल पैदलोंसे	सम सज्जन्त	भली प्रकार भिड़ गये ॥८॥
हयाः	घुड़सवार		
हयैः	घुड़सवारोंसे,		

उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः ।
केचिद् गौरमृगैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ ॥

उष्ट्रैः केचित् इभैः केचित् अपरे युयुधुः खरैः केचित् गौरः मृगैः ऋक्षैः द्वीपिभिः हरिभिः भटाः ॥९॥

केचित भटाः	कोई वीर	केचित गौरः	अरना सांडपर
उष्ट्रैः केचित्	ऊँटपर, कोई	ऋक्षैः द्वीपिभिः	रीछ, बाघों या
इभैः	हाथीपर,	हरिभिः	सिंहोंपर बैठकर
अपरे खरैः	दूसरे गधेपर,	युयुधुः	युद्ध करने लगे ॥९॥

गृध्रैः कङ्कैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिङ्गिलैः ।
शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥१०॥

गृध्रैः कङ्कैः बकैः अन्ये श्येन भासैः तिमिङ्गिलैः शरभैः महिषैः खड्गैः गोवृषैः गवय अरुणैः ॥१०॥

गृध्रैः कङ्कैः	गीधों, कांकों,	शरभैः	शरभों,
बकैः	बगुलोंपर,	महिषैः खड्गै	भैंसों, गेंड़ों,
अन्ये श्येन	दूसरे बाज,	गोवृषै	बैलों
भासैः	टिटिहरी,	गवयः	नीलगायों,
तिमिङ्गिलैः	तिमिंगल,	अरुणैः	सांडोंपर बैठे ॥१०॥

शिवाभिराखुभिः केचित् कृकलासैः शशैर्नरैः ।
बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥११॥

शिवाभिः आखुभिः केचित् कृकलासैः शशै नरैः बस्तैः एके कृष्णसारैः हंसैः अन्ये च सूकरैः ॥११॥

केचित्	कोई	एके बस्तैः	कोई बकरेपर,
शिवाभिः	शृगालीपर,	कृष्णसारैः	कस्तूरी मृगपर,
आखुभिः	चूहेपर,	हंसैः च अन्यैः	हंसपर और दूसरे
कृकलासैः	गिरगिटपर,	सूकरैः	सुअरपर ॥११॥
शशैः नरैः	चूहेपर, मनुष्यपर,		

अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः ।
सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥१२॥

अन्ये जल स्थल खगैः सत्त्वैः विकृत विग्रहैः सेनयोः उभयोः राजन् विविशुः ते अग्रतः अग्रतः ॥१२॥

राजन्	राजन् !	**सत्त्वैः**	प्राणियोंपर बैठकर
अन्ये जल	दूसरे जलचर,	**उभयोः सेनयोः**	दोनों सेनाओंमें
स्थल	स्थलचर,	**ते अग्रतः अग्रतः**	वे आगेसे आगे
खगैः	नभचर	**विवशुः**	घुसने लगे ॥१२॥
विकृत विग्रहैः	भयानकाकार		

चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः ।
महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बर्हिचामरैः ॥१३॥

चित्रध्वज पटै राजन् आतपत्रैः सित अमलैः महाधनैः वज्रदण्डैः व्यजनैः बार्ह चामरैः ॥१३॥

राजन्	राजन् !	**महाधनैः**	बहुमूल्य
चित्रध्वज	विचित्र झंडोंके	**वज्रदण्डैः**	हीरे जड़े दण्डवाले
पटैः	वस्त्रोंसे,	**बार्ह**	मोरछलों तथा
सित अमलैः	श्वेत निर्मल	**चामरैः**	चमरसे ॥१३॥
आतपत्रैः	छत्रोंसे		

वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः ।
स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥१४॥

वात उद्धूत उत्तर उष्णीषैः अर्चिभिः वर्म भूषणैः स्फुरद्भिः विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥१४॥

वात उद्धूत	वायुसे उड़ते	**सूर्यरश्मिभिः**	सूर्यकी किरणोंके द्वारा
उत्तर	उत्तरीय तथा	**सुतरां**	अधिक
उष्णीषैः	पगड़ियोंसे,	**अर्चिभिः**	निकलती किरणोंसे
वर्म भूषणैः	कवच एवं आभूषणों-पर	**विशदैः शस्त्रैः**	निर्मल शस्त्रोंके
		स्फुरद्भिः	दमकनेसे ॥१४॥

देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन ।
रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥१५॥

देव दानव वीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन रेजतुः वीरमालाभिः यादसां इव सागरौ ॥१५॥

पाण्डुनन्दन	पाण्डवोंको हर्षित करनेवाले परीक्षित	**वीरमालाभिः**	वीरोंकी श्रेणीसे युक्त
		यादसां	जलचरोंसे भरे
देव दानव	देव-दानव	**सागरौ इव**	दो समुद्रोंके सम्मान
वीराणां	वीरोंकी	**रेजतुः**	शोभित थी ॥१५॥
ध्वजिन्यौ	वे सेनाएँ		

वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ।
यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥१६॥

वैरोचनः बलिः संख्ये सः असुराणां चमूपतिः यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितं ॥१६॥

सः असुराणां	वह असुरोंका	**वैहायसं नाम**	वैहायस नामक
चमूपतिः	सेनापति	**कामगं**	इच्छानुसार चलनेवाले
वैरोचनः	विरोचनका पुत्र		
बलिः	बलि	**यानं**	विमान ॥१६॥
मयनिर्मितं	मयके द्वारा बनाये		

सर्वसाङ्ग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥१७॥

सर्वं साङ्ग्रामिक उपेतं सर्वं आश्चर्यमयं प्रभो अप्रतर्क्यं अनिर्देश्यं दृश्यमानं अदर्शनम् ॥१७॥

प्रभो	राजन् !	**अप्रतर्क्यं**	समझमें न आने-वाला,
सर्वं	जो युद्धकी सब		
साङ्ग्रामिक	सामग्रियोंसे	**दृश्यमानं**	कभी दीखने कभी
उपेतं	भरा था,	**अदर्शनं**	न दीखनेवाला
सर्वं आश्चर्यमयं	सर्वाश्चर्यमय था,	**अनिर्देश्यं**	निर्देश करने योग्य नहीं था ॥१७॥

आस्थितस्तद् विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ।
वालव्यजनछत्राग्र्यै रेजे चन्द्र इवोदये ॥१८॥

आस्थितः तत् विमान अग्र्यं सर्व अनीक अधिपैः वृतः वालव्यजन छत्र अग्र्यैः रेजे चन्द्र इव उदये ॥१८॥

तत् विमान	उस विमान	वालव्यजन	छोटे पंखों और
अग्र्यं	श्रेष्ठपर	छत्र अग्र्यैः	श्रेष्ठ छत्रसे
सर्व अनीक	समस्त सेना	उदये	उदय कालीन
अधिपैः	नायकोंसे	चन्द्र इव	चन्द्रमाके समान
वृतः आस्थितः	घिरे बैठे हुए (बलि)	रेजे	शोभित हुए ॥१८॥

तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः ।
नमुचिः शम्बरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥१९॥

तस्य आसन् सर्वतः यानैः यूथानां पतयः असुराः नमुचिः शम्बरः बाणः विप्रचित्तिः अयोमुखः ॥१९॥

तस्य सर्वतः	उनके चारों ओर	नमुचिः शम्बरः	नमुचि, शम्बर,
यूथानां पतयः	सेनाओंके नायक	बाणः	बाण,
असुराः यानैः	असुर विमानोंपर बैठे	विप्रचित्तिः	विप्रचित्ति,
		अयोमुखः	अयोमुख ॥१९॥
आसन्	थे		

द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ।
शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥२०॥
हयग्रीवः शङ्कुशिराः कपिलो मेघदुन्दुभिः ।
तारकश्चक्रदृक् शुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कलः ॥२१॥

द्विमूर्धा, कालनाभः, अथ प्रहेतिः, हेतिः, इल्वलः, शकुनिः, भूतसंतापः, वज्रदंष्ट्रः, विरोचनः, हयग्रीवः, शङ्कुशिराः, कपिलः, मेघदुन्दुभिः, तारकः, चक्रदृक्, शुम्भः, निशुम्भः, जम्भ, उत्कलः ॥२०-२१॥*

*ये केवल नाम हैं।

अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ।
अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥२२॥

अरिष्टः अरिष्टनेमिः च मयः च त्रिपुर अधिपः अन्ये पौलोम कालेया निवात कवच आदयः ॥२२॥

अरिष्टः च	अरिष्ट और	**अन्ये पौलोम**	दूसरे पौलोम,
अरिष्टनेमिः	अरिष्टनेमि,	**कालेया**	कालेय,
च त्रिपुर	तथा त्रिपुरोंका	**निवातकवच**	निवातकवच
अधिपः	स्वामी	**आदयः**	आदि ॥२२॥
मयः	मय,		

अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः ।
सर्व एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥२३॥

अलब्ध भागाः सोमस्य केवलं क्लेश भागिनः सर्व एते रणमुखे बहुशः निर्जिता अमराः ॥२३॥

सोमस्य	अमृतमें	**रणमुखे**	युद्धमें
अलब्धभागाः	भाग न पाकर	**बहुशः**	बहुत बार
केवलं	केवल	**अमराः**	देवताओंको
क्लेश भागिनः	कष्ट भागी हुए थे,	**निर्जिता**	जीत चुके थे ॥२३॥
एते सर्व	ये सभी		

सिंहनादान्विमुञ्चन्तः शङ्खान्दध्मुर्महारवान् ।
दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्बलभित् कुपितो भृशम् ॥२४॥

सिंहनादा विमुञ्चन्तः शङ्खान् दध्मुः महारवान् दृष्ट्वा सपत्नान् उत्सिक्तान् बलभित् कुपितः भृशम् ॥२४॥

सिंहनादां	सिंहनाद	**शङ्खान्**	शंख
विमुञ्चन्तः	करते हुए	**दध्मुः**	बजाने लगे,
महारवान्	उच्च ध्वनिवाले	**सपत्नान्**	(तब) शत्रुओंको

उत्सिक्तान्	गर्वमें आया	भृशं कुपितः	बहुत क्रुद्ध हुए ॥२४॥
दृष्ट्वा	देखकर		
बलभित्	बल नामक दानव-को मारनेवाले इन्द्र		

ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ।
यथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ॥२५॥

ऐरावतं दिक्करिणं आरूढः शुशुभे स्वराट् यथा स्रवत् प्रस्रवणं उदय अद्रिं अहर्पतिः ॥२५॥

प्रस्रवणं	मद बहाते	यथा स्रवत्	जैसे झरने-झरते
ऐरावतं	ऐरावत नामक	उदय अद्रिं	उदयाचलपर
दिक्करिणं	दिग्गजपर	अहर्पतिः	दिवानाथ सूर्य हों ॥२५॥
आरूढः स्वराट्	चढ़कर इन्द्र		
शुशुभे	(ऐसे) शोभित हुए		

तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः ।
लोकपालाः सह गणैर्वायग्निवरुणादयः ॥२६॥

तस्य आसन् सर्वतः देवा नाना वाह ध्वज आयुधाः लोकपालाः सह गणैः वायु अग्नि वरुण आदयः ॥२६॥

तस्य सर्वतः	उनके चारों ओर	वरुण आदयः	वरुण आदि
नाना वाह	अनेक प्रकारके वाहन	लोकपालाः	लोकपाल
ध्वज आयुधाः	ध्वजा तथा आयुध-वाले	सह गणैः	अपने गणोंके साथ
वायु अग्नि	वायु, अग्नि,	आसन्	थे ॥२६॥

तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः ।
आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ॥२७॥

ते अन्य अन्यं अभिसंसृत्य क्षिपन्तः मर्मभिः मिथः आह्वयन्तः विशन्तः अग्रे युयुधुः द्वन्द्वयोधिनः ॥२७॥

ते अन्य	वे (देव-दानव) एक	अग्रे विशन्तः	आगे बढ़ते हुए
अन्यं	दूसरेके	द्वन्द्वयोधिनः	दो-दो मिलकर
अभिसंसृत्य	सामने पहुँचकर		लड़ते हुए
मिथः मर्मभिः	परस्पर मर्मवेधी	युयुधुः	युद्ध करने लगे
क्षिपन्तः	आक्षेप करते हुए		॥२७॥
आह्वयन्तः	ललकारते हुए		

युयोध बलिरिन्द्रेण तारकेण गुहोऽस्यत ।
वरुणो हेतिनायुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥२८॥

युयोध बलिः इन्द्रेण तारकेण गुहः अस्यतः वरुणः हेतिना युध्यत् मित्रः राजन् प्रहेतिना ॥२८॥

राजन्	राजन् !	वरुणः	वरुणने
बलिः इन्द्रेण	बलिने इन्द्रसे	हेतिना	हेतिसे
युयोध	युद्ध किया,	मित्रः	मित्र देवता
अस्यतः	प्रहार करते	प्रहेतिना	प्रहेतिसे
तारकेण	तारकासुरसे	युध्यत्	युद्ध करने लगे
गुहः	कुमार कार्तिक,		॥२८॥

यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै ।
शम्बरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥२९॥

यमः तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै शम्बरः युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥२९॥

यमः तु	यमराजने तो	तु सवित्रा	तथा सविता
कालनाभेन	कालनाभसे,	विरोचनः	विरोचनसे
वै विश्वकर्मा	निश्चय विश्वकर्मा	युयुधे	युद्ध करने लगे
मयेन	मयसे		॥२९॥
त्वष्ट्रा शम्बरः	त्वष्ट्राने शम्बरसे		

अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा ।
सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च ॥३०॥

अपराजितेन नमुचिः अश्विनौ वृषपर्वणा सूर्यः बलि सुतैः देवः बाण ज्येष्ठैः शतेन च ॥३०॥

अपराजितेन	अपराजितके साथ	**बाण ज्येष्ठैः**	बाणासुर बड़ा था
नमुचिः	नमुचि		उन
अश्विनौ	अश्विनीकुमार	**बलि**	उन बलिके
वृषपर्वणा	वृषपर्वाके साथ,	**शतेन सुतैः**	सौ पुत्रोंसे
च	तथा जिनमें	**सूर्यः देवः**	सूर्य देवता ॥३०॥

राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः ।
निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥३१॥

राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधे अनिलः निशुम्भ शुम्भयोः देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥३१॥

तथा राहुणा	ऐसे ही राहुसे	**शुम्भयोः**	शुम्भसे
सोमः च	चन्द्रमाने और	**तरस्विनी देवी**	वेगवती देवी
पुलोम्ना	पुलोमासे	**भद्रकाली**	भद्रकाली
अनिलः	वायुने,	**युयुधे**	युद्ध करने लगीं
निशुम्भ-	निशुम्भ-		॥२१॥

वृषाकपिस्तु जम्भेन महिषेण विभावसुः ।
इल्वलः सह वातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिन्दम ॥३२॥

वृषाकपिः तु जम्भेन महिषेण विभावसुः इल्वलः सह वातापिः ब्रह्मपुत्रैः अरिन्दम ॥३२॥

अरिन्दम	शत्रु नाशक परीक्षित् !	**वृषाकपिः**	महादेवजी,
जम्भेन तु	जम्भसे तो	**महिषेण**	महिषसे
		विभावसु	अग्निदेव,

इल्वलः	इल्वल और	ब्रह्मपुत्रैः	ब्रह्माजीके पुत्रोंके
वातापिः	वातापि	सह	साथ ॥३२॥

कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह ।
बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥३३॥

कामदेवेन दुर्मर्षः उत्कलः मातृभिः सह बृहस्पतिः च उशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥३३॥

कामदेवेन	कामदेवके साथ	उशनसा	शुक्राचार्यके साथ
दुर्मर्षः	दुर्मर्ष,	च	तथा
मातृभिः सह	मातृगणके साथ	नरकेण	नरकासुरके साथ
उत्कलः	उत्कल,	शनैश्चरः	शनैश्चर ॥३३॥
बृहस्पतिः	बृहस्पति		

मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः ।
विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥३४॥

मरुतः निवातकवचैः कालेयैः वसवः अमराः विश्वेदेवाः तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥३४॥

निवातकवचैः	निवातकवचोंसे	पौलोमै तु	पौलोमोंसे तो
मरुतः	मरुद्गण,	विश्वेदेवाः	विश्वेदेवा,
कालेयैः	कालेयोंसे	क्रोधवशैः सह	क्रोधवशोंके साथ
वसवः अमराः	अमर वसुगण,	रुद्राः	रुद्रगण ॥३४॥

त एवमाजावसुराः सुरेन्द्रा
द्वन्द्वेन संहत्य च युध्यमानाः ।
अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा
जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥३५॥

त एवं आजाः असुराः सुरेन्द्रा द्वन्द्वेन संहत्य च युध्यमानाः अन्यः अन्यं आसाद्य निजघ्नुः ओजसा जिगीषवः तीक्ष्ण शर असि तोमरैः ॥३५॥

आजाः	युद्ध भूमिमें
त असुराः	वे असुर (और)
सुरेन्द्रा	देवनायक
एवं द्वन्द्वेन	इस प्रकार दो-दो
संहत्य	भिड़कर
अन्यः अन्यं	एक दूसरेके
आसाद्य	सम्मुख पहुँचकर
युध्यमानाः	युद्ध करते हुए
च जिगीषवः	तथा जीतनेकी इच्छासे
तीक्ष्ण शर	तीक्ष्ण बाण,
असि तोमरैः	तलवार, भालोंसे
ओजसा	आवेशसे
निजघ्नुः	प्रहार करने लगे ॥३५॥

भुशुण्डिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः
शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि ।
निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः
सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ॥३६॥

भुशुण्डिभिः चक्र गद अर्ष्टि पट्टिशैः शक्ति उल्मुकैः प्रास परश्वधैः अपि निस्त्रिंश भल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिन्दिपालैः च शिरांसि चिच्छिदुः ॥३६॥

भुशुण्डिभिः	भुशुण्डि (बन्दूक) से,
चक्र गद	चक्र, गदा,
अर्ष्टि पट्टिशैः	ऋष्टि, पट्टिश,
शक्ति उल्मुकैः	शक्ति, जलती लकड़ी,
प्रास परश्वधैः	प्रास, परश्वध,
अपि	से भी,
निस्त्रिंश भल्लैः	निस्त्रिंश, भाला,
समुद्गरैः	मुद्गरों युक्त
च	तथा
सभिन्दिपालैः	भिन्दिपाल युक्त
परिघैः	डंडोंसे
शिरांसि	सिरोंको
चिच्छिदुः	काटने लगे ॥३६॥

गजास्तुरङ्गाः सरथाः पदातयः
सारोहवाहा विविधा विखण्डिताः ।
निकृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रय-
श्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥३७॥

गजाः तुरङ्गाः सरथाः पदातयः स आरोहवाहा विविधा विखण्डिताः निकृत्त बाहु उरु शिरः अधर अङ्घ्रयः छिन्न ध्वज इष्वास तनुत्र भूषणाः ॥३७॥

गजाः तुरङ्गाः	हाथी, घोड़े,	अधर अङ्घ्रयः	नीचेके पैर,
सरथाः	रथके साथ	निकृत्त	कट गये,
पदातयः	पैदल,	ध्वज,	ध्वजाएँ,
स आरोहवाहा	सवारके साथ वाहन,	इष्वास	धनुष,
विविधा	अनेक प्रकारसे	तनुत्र भूषणाः	कवच, आभूषण
विखण्डिताः	कट गए,	छिन्न	टुकड़े हो गये । ३७॥
बाहु उरु शिरः	भुजाएँ, जांघें, सिर,		

तेषां पदाघातरथाङ्गचूर्णिता-
दायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा ।
रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन्
न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥३८॥

तेषां पद आघात रथाङ्ग चूर्णितात् आयोधनात् उल्बण उत्थितः तदा रेणुः दिशः खं द्युमणिं च छादयन् न्यवर्तत असृक् स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥३८॥

तेषां पद	उनके पैरोंके	छादयन्	ढकती हुई
आघात	पटकने और	उल्बण रेणुः	प्रचण्ड धूलि
रथाङ्ग	रथ चक्रोंसे	उत्थितः	उठी
चूर्णितात्	चूर्ण बनी	असृक्	(किन्तु) रक्तकी
तदा	उस समय	स्रुतिभिः	धाराओंसे
आयोधनात्	युद्धभूमिसे	परिप्लुतात्	भींग जानेके कारण
दिशः खं	दिशाओं, आकाश,	न्यवर्तत	लौट आयी (बैठ
च द्युमणिं	तथा सूर्यको		गयी) ॥३८॥

शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः
संरम्भदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः ।

महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः
सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥३९॥

शिरोभिः उद्धूत किरीट कुण्डलैः संरम्भदृक्भिः परिदष्ट दत् छदैः महाभुजैः साभरणैः सह आयुधैः सा प्रास्तृता भूः करभ उरुभिः बभौ ॥३९॥

उद्धूत किरीट	गिरे हुए मुकुट	सह आयुधैः	हथियार लिए
कुण्डलैः	कुण्डलोंवाले,	महाभुजैः	विशाल भुजाओं एवं
संरम्भदृक्भिः	क्रोध भरे नेत्र और	करभ उरुभिः	हाथीकी सूँड़के
परिदष्ट दत्	दांतों ओठ		समान
छदैः	दबाये	प्रास्तृता भूः	बिछी हुई वह भूमि
शिरोभिः	मस्तकोंसे तथा	बभौ	भर गयी ॥३९॥
साभरणैः	आभूषण युक्त		

कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पतितस्वशिरोऽक्षिभिः ।
उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावन्तो भटान् मृधे ॥४०॥

कबन्धाः तत्र च उत्पेतुः पतितः स्वशिरः अक्षिभिः उद्यत आयुध दोर्दण्डैः आधावन्तः भटान् मृधे ॥४०॥

तत्र मृधे	उस युद्धभूमिमें	दोर्दण्डैः	भुजाओंमें
पतितः	गिरे हुए	उद्यत आयुध	हथियार उठाये
कबन्धाः	धड़	भटान्	दूसरे योधाओंकी
स्वशिरः	अपने सिरके		ओर
अक्षिभिः	नेत्रोंसे (देखकर)	आधावन्तः	दौड़ने लगे ॥४०॥

बलिर्महेन्द्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः ।
चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमार्च्छयत् ॥४१॥

बलिः महेन्द्रं दशभिः त्रिभिः ऐरावतं शरैः चतुर्भिः चतुरः वाहान् एकेन आरोहं अर्च्छयत् ॥४१॥

बलिः महेन्द्रं	बलिने इन्द्रको	एकेन शरैः	एक बाणसे एक
दशभिः	दस	आरोहं	महावतको
त्रिभिः ऐरावतं	तीनसे ऐरावतको,	आर्च्छयत्	मारनेके लिए
चतुर्भिः वाहान्	चारसे ऐरावतके		(अठारह बाण)
चतुरः	चारों चरण-रक्षकों-को		छोड़े ॥४१॥

स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसम्प्राप्तान्हसन्निव ॥४२॥

स तान् आपततः शक्रः तावद्भिः शीघ्रविक्रमः चिच्छेद निशितैः भल्लैः असम्प्राप्तान् हसन् इव ॥४२॥

शीघ्रविक्रमः	शीघ्र पराक्रमी	तावद्भिः	उतने ही
स शक्रः	उन इन्द्रने	निशितैः	तीक्ष्ण
तान्	उन (बाणों) को	भल्लैः	भल्ल नामक बाणोंसे
आपततः	आते समय	हसन् इव	हँसते हुएसे
असम्प्राप्तान्	पहुँचनेके पहिले ही	चिच्छेद	काट दिया ॥४२॥

तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे ।
तां ज्वलन्तीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥४३॥

तस्य कर्म उत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिं आददे तां ज्वलन्तीं महा उल्का आभां हस्तस्थां अच्छिनत् हरिः ॥४३॥

तस्य उत्तमं	उनका वह श्रेष्ठ	तां महा उल्का	उस बड़े उल्काके
कर्म	पराक्रम	आभां	समान
वीक्ष्य	देखकर	ज्वलन्तीं	प्रज्वलितको
दुर्मर्षः	असहन शीलतासे	हस्तस्थां	हाथमें रहते ही
शक्तिं	(बलिने) शक्ति	हरिः अच्छिनत्	इन्द्रने काट दिया
आददे	उठायी		॥४३॥

ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः ।
यद् यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं तदच्छिनद् विभुः ॥४४॥

ततः शूलं ततः प्रासं ततः तोमरं ऋष्टयः यत् यत् शस्त्रं सम आदद्यात् सर्वं तत् अच्छिनत् विभुः ॥४४॥

ततः शूलं	फिर भाला,	सम आदद्यात्	(बलि) उठाते गये,
ततः प्रासं	फिर प्रास,	तत् सर्वं	उन सबको
ततः तोमरं	फिर तोमर एवं	विभुः	समर्थ इन्द्रने
ऋष्टयः	ऋष्टियों	अच्छिनत्	काट दिया ॥४४॥
यत् यत् शस्त्रं	जो जो शस्त्र		

ससर्जाथासुरीं मायामन्तर्धानगतोऽसुरः ।
ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ॥४५॥

ससर्ज अथ आसुरीं मायां अन्तर्धान गतः असुरः ततः प्रादुः अभूत् शैलः सुर अनीक उपरि प्रभो ॥४५॥

प्रभो	राजन् !	ससर्ज	उत्पन्न की (जिससे)
अथ असुरः	इसके बाद असुरराज बलिने	सुर अनीक	देव-सेनाके
		उपरि	ऊपर
अन्तर्धान गतः	अदृश्य होकर	शैलः प्रादुः	(एक) पर्वत
आसुरीं मायां	आसुरी माया	अभूत्	प्रकट हुआ ॥४५॥

ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना ।
शिलाः सटङ्कशिखराश्चूर्णयन्त्यो द्विषद्बलम् ॥४६॥

ततः निपेतुः तरवः दह्यमाना दवाग्निना शिलाः सटङ्क शिखराः चूर्णयन्त्यः द्विषत् बलम् ॥४६॥

ततः दवाग्निना	उससे दावाग्निसे	सटङ्क	तीखी धारवाली
दह्यमाना	जलते हुए	शिलाः	शिलाएँ
तरवः	वृक्ष तथा	शिखराः	एवं शिखर

द्विषत्	शत्रु (देवताओं) की	चूर्णयन्त्यः	कुचलते हुए
बलं	सेनाको	निपेतुः	गिरने लगे ॥४६॥

महोरगाः समुत्पेतुर्दन्दशूकाः सवृश्चिकाः ।
सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयन्तो महागजान् ॥४७॥

महा उरगाः सम उत्पेतुः दन्दशूकाः सवृश्चिकाः सिंह व्याघ्र वराहाः च मर्दयन्तः महागजान् ॥४७॥

महा उरगाः	बड़े-बड़े सर्प,	च वराहाः	तथा सुअर
सवृश्चिकाः	बिच्छुओंके साथ	महागजान्	बड़े-बड़े गजराजोंको
दन्दशूकाः	अन्य डँसनेवाले जीव,	मर्दयन्तः	मारते हुए
		सम उत्पेतुः	चारों ओर उत्पन्न हो गये ॥४७॥
सिंह व्याघ्र	सिंह, बाघ,		

यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः ।
छिन्धि भिन्धीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥४८॥

यातुधान्यः च शतशः शूलहस्ताः विवाससः छिन्धि भिन्धि इति वादिन्यः तथा रक्षः गणाः प्रभो ॥४८॥

प्रभो	राजन् !	शतशः	सैकड़ों
शूलहस्ताः	त्रिशूल हाथमें लिये	यातुधान्यः	राक्षसियाँ
विवाससः	नग्ना	तथा	तथा
छिन्धि भिन्धि	'छेदो-काटो'	रक्षः गणाः	राक्षस गण उत्पन्न हो गये ॥४८॥
इति	इस प्रकार		
वादिन्यः	बोलनेवाली		

ततो महाघना व्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाः ।
अङ्गारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥४९॥

ततः महाघना व्योम्नि गम्भीर परुष स्वनाः अङ्गारान् मुमुचुः वातैः आहताः स्तनयित्नवः ॥४९॥

ततः गम्भीर परुष स्वनाः	फिर गम्भीर कठोर शब्द करने-वाले	स्तनयित्नवः वातैः आहताः अङ्गारान् मुमुचुः	विजलियोंके साथ वायुसे आहत अंगारोंकी वर्षा करने लगे ॥४९॥
महाधनाः	महामेघ		

सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः ।
सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥५०॥

सृष्टः दैत्येन सुमहान् वह्निः श्वसन सारथिः सांवर्तक इव अति उग्रः विबुध ध्वजिनीं अधाक् ॥५०॥

दैत्येन	दैत्यराजके द्वारा	अति उग्रः	अत्यन्त प्रचण्ड
सृष्टः	उत्पन्न	वह्निः	अग्नि
श्वसन	वायुरूपी	विबुध	देवताओंकी
सारथिः	सारथि युक्त	ध्वजिनीं	सेनाको
सांवर्तक	प्रलयकालीन अग्निके	अधाक्	भस्म करने लगा ॥५०॥
इव	समान		

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ।
प्रचण्डवातैरुद्धूततरङ्गावर्तभीषणः ॥५१॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत प्रचण्डवातैः उद्धूत तरङ्ग आवर्त भीषणः ॥५१॥

ततः	तब	समुद्र	समुद्र
प्रचण्डवातैः	प्रबल प्रभञ्जनके	उद्वेलः	किनारा छोड़कर
उद्धूत	थपेड़ोंसे उठी	सर्वतः	सब ओर
तरंग	तरंगों तथा	प्रत्यदृश्यत	दीखने लगा ॥५१॥
आवर्त	भँवरोंके कारण		
भीषणः	भयंकर		

एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः ।
सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥५२॥

एवं दैत्यैः महामायैः अलक्ष्यगति भीषणैः सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥५२॥

एवं	इस प्रकार	**सृज्यमानासु**	उत्पन्न की जाती
महामायैः	महामायावी	**मायासु**	मायाओंसे
अलक्ष्यगति	अदृश्य गतिवाले	**सुरसैनिकाः**	देव-सैनिकगण
भीषणैः दैत्यैः	भयानक दैत्य द्वारा	**विषेदुः**	दुःखी हो गये ॥५२॥

न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिन्द्रादयो नृप ।
ध्यातः प्रादुरभूत् तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥५३॥

न तत् प्रतिविधिं यत्र विदुः इन्द्र आदयः नृप ध्यातः प्रादुः अभूत् तत्र भगवान् विश्वभावनः ॥५३॥

नृप	राजन् !	**तत्**	तब (उनके)
यत्र इन्द्र	जब इन्द्र	**ध्यातः**	ध्यान करनेपर
आदयः	आदि	**तत्र**	वहां
तत्	उसके	**विश्वभावनः**	विश्वरक्षक
प्रतिविधिं	प्रतिकारका उपाय	**भगवान्**	भगवान्
न विदुः	नहीं जान सके	**प्रादुः अभूत्**	प्रकट हो गये ॥५३॥

ततः सुपर्णांसकृताङ्घ्रिपल्लवः
पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचनः ।
अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लस-
च्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः ॥५४॥

ततः सुपर्ण अंस कृत अङ्घ्रि पल्लवः पिशङ्गवासा नवकञ्ज लोचनः अदृश्यत अष्ट आयुध बाहुः उल्लसत् श्रीकौस्तुभ अनर्घ्य किरीट कुण्डलः ॥५४॥

ततः	तब	**अङ्घ्रि-**	चरण-
सुपर्ण अंस	गरुड़के कन्धेपर	**पल्लवः कृत**	पल्लव रखे

पिशङ्गवासा	पीताम्बरधारी,	श्री	श्रीवत्स,
नवकञ्ज-	नवीन पद्म-	कौस्तुभ	कौस्तुभ-मणि,
लोचनः	लोचन,	अनर्घ्य किरीट	महामूल्य मुकुट
अष्ट आयुध	आठ आयुधोंसे	कुण्डलः	कुण्डलधारी
उल्लसत्	शोभित	अदृश्यत	(श्रीहरि) दिखायी
बाहुः	भुजाओंवाले,		पड़े ॥५४॥

तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा
माया विनेशुर्महिना महीयसः ।
स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते
✓ हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ॥५५॥

तस्मिन् प्रविष्टे असुर कूटकर्मजा माया विनेशुः महिना महीयसः स्वप्नः यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपत् विमोक्षणम् ॥५५॥

तस्मिन्	उन	हि यथा	क्योंकि जैसे
महीयसः	महिमामयके	प्रतिबोध आगते	जागरण आनेपर
प्रविष्टे	प्रवेश करते ही	स्वप्नः	स्वप्न (लुप्त हो
असुर	असुरके		जाता है, वैसे ही)
कूटकर्मजा	छलपूर्व कर्मोंसे	हरिस्मृतिः	भगवान्‌का स्मरण
	उत्पन्न	सर्वविपत्	सब विपत्तियोंसे
माया	माया (भगवान्‌की)	विमोक्षणं	मुक्त कर देनेवाला
महिना	महिमासे		है ॥५५॥
विनेशुः	नष्ट हो गयी		

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह
आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः ।

तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद् गृहीत्वा
तेनाहनन्नृप सवाहमरिं व्यधीशः ॥५६॥

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहं इभ अरिवाह आविध्य शूलं अहिनोत् अथ कालनेमिः तत् लीलया गरुड मूर्ध्नि पतत् गृहीत्वा तेन अहनन् नृप सवाहं अरिं व्यधीशः ॥५६॥

नृप	राजन् !	अहिनोत्	प्रहार किया,
इभ अरिवाह	सिंहवाहन	तत् गरुड़	उसे गरुड़के
कालनेमिः	कालनेमिने	मूर्ध्नि	सिरपर
अथ मृधे	उस समय युद्धस्थल-में	पतत् लीलया	गिरते हुए खेलपूर्वक
गरुडवाहं	गरुड़वाहन	गृहीत्वा	पकड़कर
दृष्टवा	(भगवान्) को देख-कर	तेन सवाहं	उसीसे वाहनके साथ
शूलं	त्रिशूल	अरिं व्यधीशः	शत्रुको त्रिलोकी-नाथने
आविध्य	फेंककर	अहनन्	मार दिया ॥५६॥

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्य-
च्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम् ।
आहत्य तिग्मगदयाहनदण्डजेन्द्रं
तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाऽऽद्यः ॥५७॥

माली सुमालि अति बलौ युधि पेततुः यत् चक्रेण कृत्तशिरसाः अथ माल्यवान् तं आहत्य तिग्म गदया अहनत् अण्डज इन्द्रं तावत् शिरः अच्छिनत् अरेः नदतः अरिणा आद्यः ॥५७॥

अति बलौ	अत्यन्त बलवान	कृत्तशिरसाः	उनके सिर काट दिये गये
माली सुमालि	माली और सुमाली	युधि पेततुः	युद्धमें गिर पड़े
यत् चक्रेण	क्योंकि चक्रसे		

अथ	तब	**नदतः**	गर्जना करते
माल्यवान्	माल्यवान्ने	**अरिणा**	शत्रुका
तिग्म गदया	तीक्ष्ण गदासे	**शिरः तावत्**	मस्तक उसी समय
तं	उन (भगवान्) तथा	**आद्यः**	आदिपुरुषने
अण्डज इन्द्रं	पक्षिराजपर	**अच्छिनत्**	काट दिया। ५७॥
अहनत्	प्रहार करके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
देवासुरसंग्रामे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः
परस्य पुंसः परयानुकम्पया ।
जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादय-
स्तांस्तान्रणे यैरभिसंहृताः पुरा ॥ १ ॥

अथो सुराः प्रति उपलब्ध चेतसः परस्य पुंसः परया अनुकम्पया जघ्नुः भृशं शक्र समीरण आदयः तान् तान् रणे यैः अभिसंहृताः पुरा ॥१॥

परस्य पुंसः	परम पुरुषकी	शक्र समीरण	इन्द्र वायु
परया	परम	आदयः	आदि
अनुकम्पया	कृपासे	रणे यैः पुरा	युद्धसे जिनसे पहिले
अथो सुराः	तब देवता	अभिसंहृताः	भिड़े हुए थे
प्रति	जैसे फिर	तान् तान्	उन-उनपर
उपलब्ध	पा गये हों	भृशं	प्रबल प्रहार
चेतसः	चित्तको (ऐसे सावधान होकर)	जघ्नुः	करने लगे ॥१॥

वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः ।
उदयच्छद् यदा वज्रं प्रजा हा हेति चुक्रुशुः ॥ २॥

वैरोचनाय संरब्धः भगवान् पाक शासनः उदयच्छत् यदा वज्रं प्रजा हा हा इति चुक्रुशुः ॥२॥

भगवान्	भगवान्	यदा संरब्धः	जब कुपित होकर
पाक शासनः	पाक दैत्य नाशक इन्द्रने	वैरोचनाय	विरोचन-नन्दन बलिपर

वज्रं	वज्र	इति	यह
उदयच्छत्	उठाया (तब)	चुक्रुशुः	चिल्लाने लगी ॥२॥
प्रजा हा हा	प्रजा 'हाय-हाय'		

वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरःस्थितम् ।
मनस्विनं सुसम्पन्नं विचरन्तं महामृधे ॥ ३ ॥

वज्रपाणिः तं आह इदं तिरस्कृत्य पुरः स्थितं मनस्विनं सुसम्पन्नं विचरन्तं महामृधे ॥३॥

वज्रपाणिः	वज्रहस्त इन्द्रने	सुसम्पन्नं	(अस्त्र-शस्त्रोंसे) सम्पन्न
महामृधे	उस महायुद्धमें	तं	उस बलिका
विचरन्तं	विचरण करते हुए	तिरस्कृत्य	तिरस्कार करते हुए
पुरः स्थितं	अपने सामने खड़े	इदं आह	यह कहा ॥३॥
मनस्विनं	मनस्वी		

इन्द्र उवाच-*

नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान् नो जिगीषसि ।
जित्वा बालान् निबद्धाक्षान् नटो हरति तद्धनम् ॥ ४ ॥

नटवत् मूढ मायाभिः माया ईशान् नः जिगीषसि जित्वा बालान् निबद्ध अक्षात् नटः हरति तत् धनम् ॥४॥

मूढ	मूर्ख ! (जैसे)	नटवत्	(वैसे ही) नटकी भांति
निबद्ध अक्षान्	आंखें बाँधे हुए	मायाभिः	मायाके द्वारा
बालान्	बालकोंको अपने	नः	हम
जित्वा	वशमें करके	माया ईशान्	मायापतियोंको
नटः तत्	नट उनके	जिगीषसि	जीतना चाहता है ॥४॥
धनं हरति	धनको हर लेते हैं		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सिसृप्सन्ति ये दिवम् ।
तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५ ॥

आरुरुक्षन्ति मायाभिः उत्सिसृप्सन्ति ये दिवं तान् दस्यून् विधुनोमि अज्ञान् पूर्वस्मात् च पदात् अधः ॥५॥

ये मायाभिः	जो मायाके द्वारा	तान् अज्ञान्	उन मूर्ख
दिवं	स्वर्गपर	दस्यून्	डाकुओंको
आरुरुक्षन्ति	चढ़ना चाहते हैं या	पूर्वस्मात्	(उनके) पहिले
उत्सिसृप्सन्ति	उससे भी ऊपर (ब्रह्मलोक) उठना चाहते हैं	पदात् च अधः	स्थानसे भी नीचे
		विधुनोमि	फेंक देता हूँ ॥५॥

सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो हरिष्ये मन्दात्मन्घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥

सः अहं दुर्मायिनः ते अद्य वज्रेण शतपर्वणा शिरः हरिष्ये मन्द आत्मन् घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥६॥

मन्द आत्मन्	मन्द बुद्धिः	हरिष्ये	काट लूंगा,
ते दुर्मायिनः	तुझ दुष्ट माया करनेवालेका	ज्ञातिभिः	अपने जाति भाइयोंके
		सह	साथ
सः अहं	वह मैं	घटस्व	(तुझसे जो हो सके)
अद्य शतपर्वणा	आज सौ गांठोंवाले		कर ले ॥६॥
वज्रेण शिरः	वज्रसे मस्तक		

बलिरुवाच—

सङ्ग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ।
कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७ ॥

संग्रामे वर्तमानानां कालचोदित कर्मणां कीर्तिः जयः अजयः मृत्युः सर्वेषां स्युः अनुक्रमात् ॥७॥

कालचोदित	कालसे प्रेरित
कर्मणां	कर्मवाले
संग्रामे	युद्धमें
वर्तमानानां	लगे हुए
सर्वेषां	सबकी ही
कीर्तिः जयः	कीर्ति, जय,
अजयः मृत्युः	पराजय, मृत्यु,
अनुक्रमात् स्युः	क्रमशः होती रहती है ॥७॥

तदिदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः ।
न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ॥ ८ ॥

तत् इदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयं अपण्डिताः ॥८॥

इदं	इस जगतको
कालरशनं	काल-नियन्त्रित
पश्यन्ति	देखते हैं,
तत् न	इसलिए न
हृष्यन्ति	हर्षित होते,
न शोचन्ति	न शोक करते,
तत्र यूयं	इस विषयमें तुम लोग
अपण्डिताः	अज्ञानी हो ॥८॥

न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ।
गिरो वः साधुशोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९ ॥

न वयं मन्यमानानां आत्मानं तत्र साधनं गिरः वः साधु शोच्यानां गृह्णीमः मर्मताडनाः ॥९॥

तत्र	उस (जय-पराजय) का
आत्मानं साधनं	अपनेको साधन
मन्यमानानां	माननेवाले
साधु	सत्पुरुषों द्वारा
शोच्यानां	शोचनीय
वः मर्मताडनाः	तुम्हारी मर्मवेधी
गिरः	वाणीको
वयं न गृह्णीमः	हम नहीं ग्रहण करते ॥९॥

श्रीशुक उवाच—

इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः ।
आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥१०॥

इति आक्षिप्य विभुं वीरः नाराचैः वीर मर्दनः आकर्ण पूर्णैः अहनत् आक्षेपैः आहतं पुनः ॥१०॥

इति विभुं	इस प्रकार इन्द्रको	**पूर्णैः**	धनुष खींचकर
आक्षिप्य	तिरस्कृत करके	**आक्षेपैः**	आक्षेपोंसे
वीरः मर्दनः	वीरोंको रौंदनेवाले	**आहतं**	घायल (इन्द्र) को
वीरः	वीर बलिने	**पुनः नाराचैः**	फिर बाणोंसे
आकर्ण	कान तक	**अहतं**	मारा ॥१०॥

एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ।
नामृष्यत् तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥११॥

एवं निराकृतः देवः वैरिणा तथ्य वादिना न अमृष्यत् तत् अधिक्षेपं तोत्र आहत इव द्विपः ॥११॥

एवं	इस प्रकार	**आहत**	मारे
तथ्य वादिना	तथ्य कहनेवाले		जानेपर
वैरिणा	शत्रु द्वारा	**द्विपः इव**	हाथीके समान
निराकृतः	तिरस्कृत होनेपर	**तत् अधिक्षेपं**	उस आक्षेपको
तोत्र	चाबुक (अंकुश) से	**अमृष्यत् न**	सहन नहीं कर सके ॥११॥

प्राहरत् कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ।
सयानो न्यपतद् भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥१२॥

प्राहरत् कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः सानः न्यपतत् भूमौ छिन्न पक्ष इव अचलः ॥१२॥

तस्मा	उन (बलिपर)	**अचलः**	पर्वतके
अमोघं	अमोघ	**इव**	समान (बलि)
परमर्दनः	शत्रुनाशक	**सयानः**	अपने विमानके साथ
कुलिशं	वज्रका	**भूमौ न्यपतत्**	पृथ्वीपर गिर पड़े ॥१२॥
प्राहरत्	प्रहार किया,		
छिन्न पक्ष	पंख कटे		

सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत् ।
अभ्ययात् सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥१३॥

सखा अयं पतितं दृष्ट्वा जम्भः बलिसखः सुहृत् अभ्ययात् सौहृदं सख्युः हतस्य अपि समाचरन् ॥१३॥

बलिसखः	बलिका सखा और	**हतस्य अपि**	मारे जानेपर भी
सुहृत् जम्भः	सुहृद जम्भ	**सख्युः सौहृदं**	सखाकी मित्रता
अयं सखा	यह सखा	**समाचरन्**	निभाते हुए
पतितं दृष्ट्वा	गिर गया यह देखकर	**अभ्ययात्**	सामने आया ॥१३॥

स सिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ।
जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥१४॥

स सिंहवाह असाद्य गदां उद्यम्य रंहसा जत्राः अताडयत् शक्रं गजं च सुमहाबलः ॥१४॥

स सिंहवाह	वह सिंहवाहन	**रंहसा शक्रं**	वेगपूर्वक इन्द्रके
सुमहाबलः	अत्यन्त बलवान	**जत्राः च**	जत्रुपर तथा
आसाद्य	समीप आकर	**गजं**	गज ऐरावतको
गदां उद्यम्य	गदा उठाकर	**अताडयत्**	मारा ॥१४॥

गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ।
जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥१५॥

गदाप्रहार व्यथितः भृशं विह्वलितः गजः जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥१५॥

गदाप्रहार	गदाके प्रहारसे	**जानुभ्यां**	घुटने
भृशं	बहुत	**स्पृष्ट्वा**	टेककर
विह्वलितः	व्यथित	**परमं कश्मलं**	परम व्याकुलताको
गजः	ऐरावत हाथी पृथ्वीपर	**ययौ**	प्राप्त हुआ ॥१५॥

ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ।
आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥१६॥

ततः रथः मातलिना हरिभिः दशशतैः वृतः आनीतः द्विपं उत्सृज्य रथं आरुरुहे विभुः ॥१६॥

ततः	तब (इन्द्रके सारथि)	रथः आनीतः	रथ लाया गया,
मातलिना	मातलि द्वारा	द्विपं उत्सृज्य	(तब) हाथी छोड़कर
दशशतैः	एक सहस्र	विभुः रथं	इन्द्र रथपर
हरिभिः	अश्वोंसे	आरुरुहे	चढ़ गये ॥६॥
वृतः	जुता हुआ		

तस्य तत् पूजयन् कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः ।
शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥१७॥

तस्य तत् पूजयन् कर्म यन्तुः दानव सत्तमः शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानः अहनन् मृधे ॥१७॥

दानव सत्तमः	दानवश्रेष्ठ जम्भने	शूलेन	शूलसे
तस्य यन्तुः	उस सारथिके	तं तु स्मयमानः	उसे तो मुस्कराते हुए
तत् कर्म	उस कर्मकी		
पूजयन्	प्रशंसा करके	अहनन्	मारा ॥१७॥
मृधे ज्वलता	युद्धमें प्रज्वलित		

सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालम्ब्य मातलिः ।
इन्द्रो जम्भस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥१८॥

सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वं आलम्ब्य मातलिः इन्द्रः जम्भस्य संक्रुद्धः वज्रेण अपाहरत् शिरः ॥१८॥

मातलिः	मातलिने	संक्रुद्धः	(तब) अत्यन्त क्रुद्ध होकर
सत्त्वं आलम्ब्य	धैर्य धारण करके	इन्द्रः वज्रेण	इन्द्रने वज्रसे
सुदुर्मर्षां	उस दुस्सह	जम्भस्य शिरः	जम्भका सिर
रुजं सेहे	चोटको सह लिया,	अपाहरत्	काट दिया ॥१८॥

जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः ।
नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विताः ॥१९॥

जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयः नारदात् ऋषेः नमुचिः च बलः पाकः तत्र अपेतुः त्वर अन्विताः ॥१९॥

नारदात् ऋषेः	देवर्षि नारदसे	**नमुचिः बलः च**	नमुचि, बल और
जम्भं हतं	जम्भको मारा गया	**पाकः तत्र**	पाक वहां
श्रुत्वा	सुनकर	**त्वर अन्विताः**	शीघ्रता पूर्वक
तस्य ज्ञातयः	उसकी जातिके	**अपेतुः**	आये ॥१९॥

वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु ।
शरैरवाकिरन् मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥२०॥

वचः भिः परुषैः इन्द्रं अर्दयन्तः अस्य मर्मसु शरैः अवाकिरन् मेघा धाराभिः इव पर्वतम् ॥२०॥

परुषैः वचःभिः	कठोर वचनोंसे	**धाराभिः**	धारासे वर्षाके
अस्य इन्द्रं	इस इन्द्रके	**इव**	समान
मर्मसु	मर्म (हृदय) को	**शरैः**	वाणोंकी झड़ी
अर्दयन्तः	पीड़ित करते हुए	**अवाकिरन्**	लगा दी ॥२०॥
मेघा पर्वतं	मेघोंकी पर्वतोंपर		

हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः ।
तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥२१॥

हरीन् दशशतानि आजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः तावद्भिः अर्दयामास युगपत् लघु हस्तवान् ॥२१॥

लघु हस्तवान्	हस्त लाघववाले	**हरीन्**	घोड़ोंको
बलः	बलने	**तावद्भिः शरैः**	उतने ही बाणोंसे
आजौ	युद्धमें	**युगपत्**	एक साथ
हर्यश्वस्य	इन्द्रके	**अर्दयामास**	घायल किया ॥२१॥
दशशतानि	एक हजार		

शताभ्यां मातलि पाको रथं सावयवं पृथक् ।
सकृत्सन्धानमोक्षेण तदद्भुतमभूद् रणे ॥२२॥

शताभ्यां मातलि पाकः रथं स अवयवं पृथक् सकृत् सन्धान मोक्षेण तत् अद्भुतं अभूत् रणे ॥२२॥

पाकः	पाकने	रथं पृथक्	रथको पृथक्-पृथक् बींधा,
शताभ्यां सकृत्	सौ बाण एक साथ		
सन्धान मोक्षेण	चढ़ाते-छोड़ते हुए	तत् रणे	यह युद्धमें
मातलि स	मातलि तथा	अद्भुतं अभूत	अद्भुत बात हुई ॥२२॥
अवयवं	अंगोंके साथ		

नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः ।
आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः ॥२३॥

नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्ण पुङ्खैः महा इषुभिः आहत्य व्यनदत् संख्ये सतोय इव तोयदः ॥२३॥

पञ्चदशभिः	पन्द्रह	नमुचिः संख्ये	नमुचिने युद्धमें
स्वर्ण पुङ्खैः	सोनेके पूँछवाले	सतोय तोयदः	पानी भरे बादलके
महा इषुभिः	बड़े भारी बाणोंसे	इव	समान
आहत्य	आघात करके	व्यनदत्	गर्जना की ॥२३॥

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम् ।
छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः ॥२४॥

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथ सारथिं छादयामासुः असुराः प्रावृट् सूर्यं इव अम्बुदाः ॥२४॥

प्रावृट्	वर्षा कालीन	सरथ सारथिं	रथ और सारथि सहित
अम्बुदाः	बादलों द्वारा	शक्रं सर्वतः	इन्द्रको चारों ओरसे
सूर्यं इव	सूर्यके समान	शरकूटेन	बाण समूहोंसे
असुराः	असुरोंने	छादयामासुः	ढक दिया ॥२४॥

अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला
विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः ।
अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता
वणिक्पथा भिन्नवो यथार्णवे ॥२५॥

अलक्षयन्तः तं अतीव विह्वला विचुक्रुशुः देवगणाः सह अनुगाः अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिताः वणिक् पथा भिन्न नवः यथा अर्णवे ॥२५॥

यथा अर्णवे	जैसे समुद्रमें	देवगणाः	देवता लोग
पथा	मार्गमें ही	सह	साथ
भिन्न नवः	नौका टूट जानेपर	तं अलक्षयन्तः	उन इन्द्रको न देखकर
वणिक्	व्यापारी (वैसे)		
शत्रुबलेन	शत्रु-सेना द्वारा	अतीव	अत्यन्त
निर्जिताः	पराजित	विह्वला	व्याकुल होकर
अनायकाः	नायकहीन	विचुक्रुशः	क्रन्दन करने लगे
अनुगाः	अपने अनुचरोंके		॥२५॥

ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्
विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः ।
बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्
स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥२६॥

ततः तुषारात् इषु बद्ध पञ्जरात् विनिर्गतः साश्वरथ ध्वजा अग्रणीः बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन् स्व तेजसा सूर्य इव क्षपा अत्यये ॥२६॥

साश्वरथ	घोड़ों सहित रथ	पञ्जरात्	पिंजड़ेसे
ध्वजा	ध्वजा	विनिर्गतः	निकलकर
अग्रणीः	सारथिके साथ इन्द्र	दिशः खं	दिशाओं, आकाश,
ततः	उस	च पृथिवीं	तथा पृथ्वीको
इषु बद्ध	बाणोंसे बने	रोचयन्	प्रकाशित करते

स्व तेजसा	अपने तेजसे	सूर्य इव	सूर्यके समान
क्षपा अत्यये	रात्रिके अन्तमें	बभौ	शोभित हुए ॥३६॥
तुषारात्	कुहरेसे निकले		

निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे ।
उदयच्छद् रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥२७॥

निरीक्ष्य पृतनां देवः परैः अभ्यर्दितां रणे उदयच्छत् रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरः रुषा ॥२७॥

वज्रधरः देवः	वज्रधारी इन्द्रदेवने	निरीक्ष्य रुषा	देखकर क्रोधपूर्वक
रणे पृतनां	युद्धमें अपनी सेनाको	रिपुं हन्तुं	शत्रुको मारनेके लिए
परैः	शत्रुओं द्वारा	वज्रं	वज्र
अभ्यर्दितां	चारों ओरसे रौंदी गयी	उदयच्छत्	उठाया ॥२७॥

स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः ।
ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥२८॥

स तेन एव अष्ट धारेण शिरसी बल पाकयोः ज्ञातीनां पश्यतां राजन् जहार जनयन् भयम् ॥२८॥

राजन्	राजन् !	भयं जनयन्	भय उत्पन्न करते हुए
स तेन एव	उन्होंने उसी		
अष्ट	आठ	बल पाकयोः	बल और पाकके
धारेण	धारोंवाले वज्रसे	शिरसी	सिरोंको
पश्यतां	देखनेवाले	जहार	काट दिया ॥२८॥
ज्ञातीनां	जाति-भाइयोंको		

नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः ।
जिघांसुरिन्द्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥२९॥

नमुचिः तत् वधं दृष्ट्वा शोक अमर्ष रुषा अन्वितः जिघांसुः इन्द्रं नृपते चकार परम उद्यमम् ॥२९॥

नृपते	राजन् !	रुषा अन्वितः	क्रोधसे युक्त
तत् वधं	उनका मारा जाना	इन्द्रं जिघांसुः	इन्द्रको मारनेके लिए
दृष्ट्वा	देखकर	नमुचिः	नमुचिने
शोक	शोक,	परम	महान
अमर्ष	असहनशीलता,	उद्यमं चकार	उद्योग किया ॥२६॥

अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम् ।
प्रगृह्याभ्यद्रवत् क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ।
प्राहिणोद् देवराजाय निनदन् मृगराडिव ॥३०॥

अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्ध हेम भूषणं प्रगृह्य अभ्यद्रवत् क्रुद्धः हतः असि इति वितर्जयन् प्राहिणोत् देवराजाय निनदन् मृगराट् इव ॥३०॥

क्रुद्धः	क्रोधमें भरकर	इति	इस प्रकार
हेम	स्वर्णके	वितर्जयन्	डांटता हुआ
भूषणं	आभूषणोंसे सजे	अभ्यद्रवत्	इन्द्रकी ओर दौड़ा,
घण्टावद्ध	घण्टा बँधे	मृगराट् इव	सिंहके समान
अश्मसारमयं	लोहेके बने	निनदन्	गर्जना करता हुआ
शूलं प्रगृह्य	त्रिशूलको लेकर	देवराजाय	देवराजपर
हतः असि	'तू मारा ही गया'	प्राहिणोत्	उसे फेंका ॥३०॥

तदापतद् गगनतले महाजवं
विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा ।
तमाहनन्नृप कुलिशेन कन्धरे
रुषान्वितस्त्रिदशपतिः शिरो हरन् ॥३१॥

तत् अपतत् गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिः इषुभिः सहस्रधा तम अहनन् नृप कुलिशेन कन्धरे रुषा अन्वितः त्रिदशपतिः शिरः हरन् ॥३१॥

नृप	राजन्	गगनतले	आकाशमें
तत्	वह (त्रिशूल)	महाजवं	बड़े वेगसे

अपतत्	आ रहा था	रुषा अन्वितः	क्रोधमें भरकर
हरिः इषुभिः	इन्द्रने (उसे) बाणोंसे	शिरः हरन्	उसका सिर काटने-
सहस्रधा	हजारों टुकड़ोंमें		के लिए
विचिच्छिदे	काट दिया	कुलिशेन कन्धरे	वज्रसे गलेपर
त्रिदशपतिः	फिर देवराजने	तं अहनन्	उसे मारा ॥३२॥

न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो
बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः ।
तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्
तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥३२॥

न तस्य हि त्वचं अपि वज्र ऊर्जितः बिभेद यः सुरपतिना ओजसा ईरितः तत् अद्भुतं परम् अतिवीर्य वृत्रभित् तिरस्कृतः नमुचि शिरोधर त्वचा ॥३२॥

सुरपतिना	देवराज इन्द्र द्वारा	अतिवीर्य	महापराक्रमी
ओजसा	बड़े वेगसे	वृत्रभित्	वृत्रासुरको काट
ईरितः	छोड़ा गया		दिया था
हि ऊर्जितः	क्योंकि वह तेजस्वी	नमुचि	वह नमुचिके
वज्रः	वज्र	शिरोधर	सिरके नीचे (गले)
तस्य त्वचं अपि	उसके चमड़ेको भी		की
न बिभेद	नहीं काट सका	त्वचा	चमड़ीसे
तत् परम्	यह बहुत	तिरस्कृतः	तिरस्कृत हो गया
अद्भुतं	विचित्र बात हुई		॥३२॥
यः	जिसने		

तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः ।
किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥३३॥

तस्मात् इन्द्रः अबिभेत् शत्रोः वज्रः प्रतिहतः यतः किं इदं दैवयोगेन भूतं लोक विमोहनं ॥३३॥

यतः वज्रः	क्योंकि वज्र	लोक	लोगोंको
प्रतिहतः	असफल हो गया	विमोहनं	मोहमें डालनेवाला
तस्मात् इन्द्रः	इसलिए इन्द्र	इदं किं भूतं	यह क्या हो गया ॥३३॥
शत्रोः अबिभेत्	शत्रुसे डर गये		
दैवयोगेन	दैवयोगसे		

येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ।
कृतो निविशतां भारैः पतत्त्रैः पततां भुवि ॥३४॥

येन मे पूर्वं अद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजा अत्यये कृतः निविशतां भारैः पततां भुवि ॥३४॥

पूर्वं पतत्रैः	पूर्व कालमें पंखों द्वारा	प्रजा	प्रजाके
		अत्यये	नाशका कारण बनते
निविशतां	(चाहे जहां) जाते और	अद्रीणां मे	पर्वतोंका मैंने
		येन	जिस (वज्र) से
भारैः भुवि	भारवश पृथ्वीपर	पक्षच्छेदः	पंख काट
पततां	गिरते	कृतः	दिये ॥३४॥

तपः सारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः ।
अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥३५॥

तपः सारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रः येन विपाटितः अन्ये च अपि बल उपेताः सर्व अस्त्रैः अक्षत त्वचः ॥३५॥

त्वाष्ट्र	त्वष्टाकी	अक्षत त्वचः	अनिर्भिन्न त्वचा-वाले
तपः	तपस्याके		
सारमयं	फल-स्वरूप उत्पन्न	बल उपेताः	बल सम्पन्नोंको
वृत्रः	वृत्रासुरको	येन	जिससे (मैंने)
च अन्ये	तथा दूसरे	विपाटितः	वध किया ॥३५॥
सर्व अस्त्रैः	सब अस्त्रोंसे		

सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके ।
नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥३६॥

सः अयं प्रतिहतः वज्रः मया मुक्तः असुरे अल्पके न अहं तत् आददे दण्डं ब्रह्मतेजः अपि कारणम् ॥३६॥

सः अयं वज्रः	वही यह वज्र	**कारणं अपि**	उत्पन्न होनेपर भी
मया अल्पके	मेरे द्वारा तुच्छ	**अहं तत्**	मैं इस
असुरे मुक्तः	असुरपर चलानेपर	**दण्डं**	दण्ड (अस्त्र) को
प्रतिहतः	असफल हो गया	**न आददे**	नहीं लूंगा ॥३६॥
तत् ब्रह्मतेजः	अतः ब्रह्मतेजसे		

इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी ।
नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥३७॥

इति शक्रं विषीदन्तं आह वाक् अशरीरिणी न अयं शुष्कैः अथ न आर्द्रैः वधं अर्हति दानवः ॥३७॥

इति	इस प्रकार	**अयं दानवः**	'यह दानव
विषीदन्तं	विषाद करते हुए	**न शुष्कैः**	न सूखी (वस्तु) से
शक्रं	इन्द्रसे	**अथ न अर्द्रैः**	और न गीलीसे
अशरीरिणी	शरीर रहित	**वधं अर्हति**	मारने योग्य है
वाक् आह	वाणीने कहा—		॥३७॥

मयास्मै यद् वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः ।
अतोऽन्यच्चिन्तनीयस्ते उपायो मघवन् रिपोः ॥३८॥

मया अस्मै यद् वरः दत्तः मृत्युः न एव आर्द्र शुष्कयोः अतः अन्यः चिन्तनीयः ते उपायः मघवन् रिपोः ॥३८॥

मया अस्मै	मैंने इसे	**मृत्युः न**	(तेरी) मृत्यु नहीं
वरः दत्तः	वरदान दिया है	**एव**	'ही होगी'
यद्	जिससे	**अतः मघवन्**	अतः इन्द्र !
आर्द्र शुष्कयोः	गीली या सूखी (वस्तु) से	**ते रिपोः**	तुम्हें शत्रुके लिए

अन्यः उपायः	दूसरा कोई उपाय	चिन्तनीयः	सोचना चाहिए' ॥३८॥

तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः ।
ध्यायन् फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥३९॥

तां दैवीं गिरं आकर्ण्य मघवान् सुसमाहितः ध्यायन् फेनं अथ अपश्यत् उपायं उभय आत्मकम् ॥३९॥

तां दैवीं गिरं	उस दिव्य वाणीको	मघवान्	इन्द्रने
आकर्ण्य	सुनकर	अथ फेनं	तब फेनको
सुसमाहितः	अत्यन्त एकाग्र होकर	उभय आत्मकं	दोनों प्रकारका
		उपायं अपश्यत्	उपाय देखा ॥३९॥
ध्यायन्	ध्यान करते हुए		

न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः ।
तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥४०॥

न शुष्केण न च आर्द्रेण जहार नमुचेः शिरः तं तुष्टवुः मुनिगणा माल्यैः च अवाकिरन् विभुम् ॥४०॥

न शुष्केण	न सूखेसे	तं विभुं	तब उन इन्द्रकी
च न	और न	मुनिगणा	मुनि लोग
आर्द्रेण	गीले (फेन) से	तुष्टवुः	स्तुति करने लगे
नमुचेः शिरः	नमुचिका सिर	च माल्यैः	तथा पुष्पावली
जहार	काट दिया	अवाकिरन्	बरसाने लगे ॥४०॥

गन्धर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥४१॥

गन्धर्व मुख्यौ जगतुः विश्वावसु परावसू देव दुन्दुभयः नेदुः नर्तक्यः ननृतुः मुदा ॥४१॥

विश्वावसु	विश्वावसु,	देव दुन्दुभयः	देव-दुन्दुभियां
परावसू	परावसु आदि	नेदुः	बजने लगीं
गन्धर्व मुख्यौ	प्रमुख गन्धर्व	मुदा नर्तक्यः	आनन्दसे नर्तकियां
जगतुः	(यश) गाने लगे,	ननृतुः	नाचने लगीं ॥४१॥

अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वग्निवरुणादयः ।
सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगान्केसरिणो यथा ॥४२॥

अन्ये अपि एवं प्रतिद्वन्द्वान् वायु अग्नि वरुण आदयः सूदयामासुः अस्त्र ओघैः मृगान् केसरिणः यथा ॥४२॥

एवं अन्ये अपि	इसी प्रकार दूसरे भी	यथा केसरिणः	जैसे सिंह
		मृगान्	हिरणोंको (नष्ट करें)
वायु अग्नि	वायु, अग्नि,		
वरुण आदयः	वरुण आदिने	प्रतिद्वन्द्वान्	अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको
अस्त्र ओघैः	शस्त्रोंकी वर्षासे	सूदयामासुः	मार दिया ॥४२॥

ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ।
वारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसंक्षयम् ॥४३॥

ब्रह्मणा प्रेषितः देवान् देवर्षिः नारदः नृप वारयामास विबुधान् दृष्ट्वा दानव संक्षयम् ॥४३॥

नृप	राजन् !	दानव संक्षयं	दानवोंका विनाश
ब्रह्मणा	ब्रह्मा द्वारा	दृष्ट्वा	देखकर
देवान्	देवताओंके पास	विबुधान्	देवताओंको
प्रेषितः	भेजे गये	वारयामास	मनाकर दिया
देवर्षिः नारदः	देवर्षि नारदने		॥४३॥

नारद उवाच–

भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः ।
श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ॥४४॥

भवद्भिः अमृतं प्राप्तं नारायण भुज आश्रयैः श्रिया सम एधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ॥४४॥

नारायण	श्रीनारायणके	**सम**	भली प्रकार
भुज आश्रयैः	बाहुबलके सहारेसे	**एधिताः**	समृद्ध किये गये हो
भवद्भिः	तुम लोगों द्वारा	**विग्रहात्**	अतः युद्धसे
अमृतं प्राप्तं	अमृत पा लिया गया	**उपारमत**	अब उपराम हो जाओ ॥४४॥
सर्वे श्रिया	तुम सब लक्ष्मीजी द्वारा		

श्रीशुक उवाच—

संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः ।
उपगीयमानानुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥४५॥

संयम्य मन्यु संरम्भं मानयन्तः मुनेः वचः उपगीयमाना अनुचरैः ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥४५॥

मुनेः	मुनि (नारद) की	**अनुचरैः**	अनुचरों द्वारा
वचः	बात	**उपगीयमाना**	प्रशंसित होते
मानयन्तः	मानते हुए	**सर्वे**	सब
मन्यु संरम्भं	क्रोधावेशको	**त्रिविष्टपं ययुः**	स्वर्ग चले गये ॥४५॥
संयम्य	नियन्त्रित करके		

येऽवशिष्टा रणे तस्मिन् नारदानुमतेन ते ।
बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ॥४६॥

ये अवशिष्टा रणे तस्मिन् नारद अनुमतेन ते बलिं विपन्नं आदाय अस्तं गिरिं उपागमन् ॥४६॥

तस्मिन् रणे	उस युद्धमें	**विपन्नं बलिं**	मरे हुए बलिको
ये अवशिष्टा	जो (असुर) बच गये थे	**आदाय**	लेकर
		अस्तं गिरिं	अस्ताचलपर
ते नारद	उन्होंने नारदजीकी	**उपागमन्**	चले गये ॥४६॥
अनुमतेन	अनुमतिसे		

तत्राविनष्टावयवान् विद्यमानशिरोधरान् ।
उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया ॥४७॥

तत्र अविनष्ट अवयवान् विद्यमान शिरः अधरान् उशना जीवयामास संजीविन्या स्व विद्यया ॥४७॥

तत्र	वहां	**स्व संजीविन्या**	अपनी संजीवनी
अवयवान्	(जिनके) अंग	**विद्यया**	विद्यासे
अविनष्ट	नष्ट नहीं हुए थे	**उशना**	शुक्राचार्यने
शिरः	सिर और	**जीवयामास**	जीवित कर दिया
अधरान्	नीचेके धड़		॥४७॥
विद्यमान	विद्यमान थे (उन्हें)		

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः ।
पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥४८॥

बलिः च उशनसा स्पृष्टः प्रति आपन्न इन्द्रियस्मृतिः पराजितः अपि न अखिद्यत् लोक तत्त्व विचक्षणः ॥४८॥

उशनसा स्पृष्टः	शुक्राचार्यके छूते ही	**विचक्षणः**	जाननेवाले होनेसे
बलिः च	बलिकी भी		वे
इन्द्रियस्मृतिः	इन्द्रिय और स्मरण	**पराजितः**	पराजित होनेपर
	शक्ति	**अपि**	भी
प्रति आपन्नः	लौट आयी,	**अखिद्यत् न**	खेदग्रस्त नहीं हुए
लोक तत्त्व	संसारका तत्त्व		॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
देवासुरसंग्रामे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच*

वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ।
मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥

वृषध्वजः निशम्य इदं योषित् रूपेण दानवान् मोहयित्वा सुरगणान् हरिः सोमं अपाययत् ॥१॥

योषित् रूपेण	स्त्री रूपीसे	**सुरगणान्**	देवताओंको
दानवान्	दानवोंको	**सोमं अपाययत्**	अमृत पिलाया
मोहयित्वा	सम्मोहित करके	**वृषध्वजः**	शंकरजीने
हरिः	श्रीहरिने	**इदं निशम्य**	इसे सुना ॥१॥

वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः ।
सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥

वृषं आरुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैः वृतः सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्र आस्ते मधुसूदनः ॥२॥

सर्वभूतगणैः	सब भूत-समूहोंसे	**द्रष्टुं**	देखनेके लिए
वृतः	घिरे हुए	**यत्र**	जहां
देव्या सह	देवी पार्वतीके साथ	**मधुसूदनः**	भगवान् मधुसूदन
वृषं आरुह्य	बैलपर बैठकर	**आस्ते ययौ**	थे वहां गये ॥२॥
गिरिशः	कैलासवासी भगवान् शिव (उस रूपको)		

---

*यहाँ गीता प्रेसकी प्रतिमें 'श्रीबादरायणिरुवाच' है।

सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ।
सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥ ३ ॥

सभाजितः भगवता सादरं स उमया भवः सु उपविष्ट उवाच इदं प्रतिपूज्य स्मयन् हरिम् ॥३॥

स उमया	देवी उमाके साथ	सु उपविष्ट	भली प्रकार बैठ जानेपर
भवः	शंकरजी	प्रतिपूज्य	प्रशंसा करते हुए
भगवता	भगवान् श्रीहरि द्वारा	स्मयन् हरिं	मुस्कराकर श्रीहरिसे
सादरं	आदरपूर्वक	इदं उवाच	यह बोले ॥३॥
सभाजितः	सत्कृत होकर		

श्रीमहादेव उवाच—

देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ।
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥

देवदेव जगत् व्यापिन् जगदीश जगन्मय सर्वेषां अपि भावानां त्वं आत्मा हेतुः ईश्वरः ॥४॥

देवदेव	देवाधिदेव !	भावानां अपि	भावोंके ही
जगत् व्यापिन्	जगत् व्यापिन !	त्वं आत्मा	आप स्वरूप,
जगदीश	जगत्-स्वामी !	हेतुः ईश्वरः	कारण और स्वामी हो ॥४॥
जगन्मय	जगत् स्वरूप !		
सर्वेषां	सभी		

आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ।
यतोऽव्ययस्य नैतानि तत् सत्यं ब्रह्म चिद् भवान् ॥५॥

आदि अन्त अव अस्य यत् मध्यं इदं अन्यत् अहं बहिः यतः अव्ययस्य न एतानि तत् सत्यं ब्रह्म चित् भवान् ॥५॥

यत् अस्य	जिससे इस जगतके	इदं अहं	यह मैं हूँ
आदि अन्त	आदि, अन्त और	अन्यत्	यह दूसरा है,
अव	अवस्थान (वर्तमान)	बहिः न	यह बाहरी भेद नहीं
मध्यं	मध्य होते हैं,		है
यतः	क्योंकि	तत् सत्यं	वह सत्य
अव्ययस्य	जिस अविनाशीमें	चित् ब्रह्म	चेतन स्वरूप ब्रह्म
एतानि	यह सब (आदि, अन्त, मध्य और)	भवान्	आप हैं ॥५॥

तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिषः ।
विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥ ६ ॥

तव एव चरण अम्भोजं श्रेयः कामा निः आशिषः विसृज्य उभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥६॥

श्रेयः कामा	अपना कल्याण चाहनेवाले	सङ्गं विसृज्य	आसक्ति त्यागकर
निः आशिषः	निष्काम	तव एव	आपके ही
मुनयः	मुनिगण	चरण अम्भोजं	चरण-कमलोंकी
उभयतः	दोनों ओर (लोक-परलोक) की	समुपासते	भली प्रकार उपासना करते हैं ॥६॥

त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोक-
मानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ।
विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमाना-
मात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयानपेक्षः ॥ ७ ॥

त्वं ब्रह्म पूर्णं अमृतं विगुणं विशोकं आनन्दमात्रं अविकारं अनन्यत् अन्यत् विश्वस्य हेतुः उदय स्थिति संयमानां आत्मा ईश्वरः च तत् अपेक्षतया अनपेक्षः ॥७॥

त्वं अमृतं	आप अमृत स्वरूप
विगुणं विशोकं	निर्गुण, निःशोक,
आनन्दमात्रं	आनन्द मात्र,
अविकारं	निर्विकार,
अन्यत्	दूसरेकी
अनन्यत्	सत्तासे रहित (अद्वितीय)
पूर्णं ब्रह्म	पूर्ण ब्रह्म हैं,
विश्वस्य	संसारकी
उदय स्थिति	उत्पत्ति, स्थिति,
संयमानां हेतुः	प्रलयके कारण हैं,
च आत्मा	तथा उसके स्वरूप
ईश्वरः	और शासक हैं
अनपेक्षः	स्वयं निरपेक्ष हैं,
तत्	उन (जीवों) की
अपेक्षतया	अपेक्षा (कामना) के अनुसार (फल देते हैं) ॥७॥

एकस्त्वमेव सदसद् द्वयमद्वयं च
स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ।
अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो
यस्माद् गुणैर्व्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥८॥

एकः त्वं एव सत् असत् द्वयं अद्वयं च स्वर्णं कृत अकृतं इव इह न वस्तु भेदः अज्ञानतः त्वयि जनैः विहितः विकल्पः यस्मात् गुणैः व्यतिकरः निरुपाधिकस्य ॥८॥

एकः त्वं एव	एक मात्र आप ही
सत्	कारण स्वरूप
अद्वयं	अद्वितीय
च असत्	तथा कार्यरूप
द्वयं	द्वैत हैं,
स्वर्णं	सोनेमें
कृत	बनाये गये (आभूषणादि)
अकृतं	न बनाये (मूल स्वर्णधातु)
इव	के समान
इह वस्तु	यहां वस्तुओंका (विकारोत्पन्न)
भेदः न	भेद नहीं है
अज्ञानतः	अज्ञानके कारण
त्वयि जनैः	आपमें लोगोंने
विकल्पः	भेद
विहितः	आरोपित कर लिया है,
यस्मात्	क्योंकि
निरुपाधिकस्य	आप उपाधिहीनमें
गुणैः	गुणोंके कारण
व्यतिकरः	विकार (भेद) प्रतीत होता है ॥८॥

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेके
एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् ।
अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां
केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ६ ॥

त्वां ब्रह्म केचित् अवयन्ति उत धर्मं एके एके परं सत् असतोः पुरुषं परेशं अन्ये अवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां केचित् महापुरुषं अव्ययं आत्मतन्त्रम् ॥६॥

केचित्	कोई (अद्वैतवादी)	अन्ये	दूसरे (पाञ्चरात्र-वाले)
त्वां	आपको		
ब्रह्म	ब्रह्म	नवशक्तियुतं	नौ शक्तियोंसे युक्त*
अवयन्ति	समझते हैं,	परं	परमपुरुष,
उत एके	और कोई(मीमासक)	केचित्	और कोई
धर्मं	धर्म,	त्वां	(पातंजल-योगवाले) आपको
एके	कोई (सांख्यवादी)		
सत् असतोः	कारण-कार्यसे	अव्ययं	अविनाशी,
परं परेशं	परे परमेश्वर	आत्मतन्त्रं	परम स्वतन्त्र
पुरुषं	परम पुरुष	महापुरुषं	महापुरुष
		अवयन्ति	समझते हैं ॥६॥

नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या
जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ।
यन्माययामुषितचेतस ईश दैत्य-
मर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥१०॥

न अहं पर आयुः ऋषयः न मरीचि मुख्याः जानन्ति यत् विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः यत् मायया मुषितचेतस ईश दैत्य मर्त्य आदयः किं उत शश्वत् अभद्र वृत्ताः ॥१०॥

---

*पाञ्चरात्रमें नौ शक्तियाँ हैं—१. विमला २. उत्कर्षिणी ३. ज्ञाना ४. क्रिया ५. योगा ६. प्रह्वी ७. सत्या ८. ईशाना ९. अनुग्रहा ।

ईश	प्रभो !	मुख्याः	आदि प्रमुख ऋषि
खलु	अरे,		जानते
सत्त्वसर्गाः	सत्वगुणसे उत्पन्न	यत् मायया	जिनकी मायासे
मुषितचेतस	चुराये गये चित्तवाले	शश्वत्	निरन्तर
अहं	मैं,	अभद्र वृत्ताः	असदाचारी
पर आयुः	दोपरार्ध आयुवाले ब्रह्माजी,	दैत्य मर्त्य आदयः	असुर मनुष्य आदि
यत् विरचितं	जिनकी लीलाको	किं उत	फिर कैसे (जान
न जानन्ति	नहीं जानते		सकते हैं) ॥१०॥
न मरीचि	न मरीचि		

स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं
भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ।
वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं
सर्वं तदात्मकतयावगमोऽवरुन्त्से ॥११॥

स त्वं समीहितं अदः स्थितिः जन्म नाशं भूत इहितं च जगतः भव बन्ध मोक्षौ वायुः यथा विशति खं च चर अचर आख्यं सर्वं तत् आत्मकतया अवगमः अवरुन्त्से ॥११॥

यथा वायुः	जैसे वायु	समीहितं	तथा चेष्टाको
चर अचर	चर-अचर	च भूत	तथा प्राणियोंके
आख्यं	कहलानेवाले	इहितं	कर्मोंको
सर्वं च खं	सबमें तथा आकाश-में	भव	उनके जन्म,
		बन्ध मोक्षौ	बन्धन, मोक्षको
विशति	प्रविष्ट रहता है (उसी प्रकार)	तत् सर्वं	इस सबको
		तत्	उनके
स त्वं	वह आप	आत्मकतया	स्वरूप होनेसे
अदः जगतः	इस जगतकी	अवगमः	इनका ज्ञान
स्थिति	स्थिति,	अवरुन्त्से	रखते हैं ॥११॥
जन्म नाशं	उत्पत्ति और प्रलय		

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।
सोऽहं तद् द्रष्टुमिच्छामि यत् ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥१२॥

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः सः अहं तत् द्रष्टुं इच्छामि यत् ते योषित् वपुः धृतम् ॥१२॥

गुणैः	गुणोंके साथ	**योषित् वपुः**	स्त्रीका रूप
रममाणस्य	क्रीड़ा करते हुए	**धृतं**	धारण किया
ते अवतारा	आपके जो अवतार हुए उन्हें	**सः अहं**	वह मैं
		तत् द्रष्टुं	उसे देखना
मया दृष्टा	मैंने देखा है,	**इच्छामि**	चाहता हूँ ॥१२॥
यत् ते	जो आपने		

येन सम्मोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ।
तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥१३॥

येन सम्मोहिता दैत्याः पायिताः च अमृतं सुराः तत् दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥१३॥

येन	जिस (रूप) से	**दिदृक्षव**	देखनेकी इच्छासे
दैत्याः	दैत्योंको	**आयाताः**	हम आये हैं
सम्मोहिता	मोहित किया	**हि नः**	क्योंकि हमको
च सुराः	तथा देवताओंको	**परम् कौतूहलं**	अत्यन्त कुतूहल है ॥१३॥
अमृतं पायिताः	अमृत पिलाया		
तत्	उसे		

श्रीशुक उवाच—

एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवान् शूलपाणिना ।
प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥१४॥

एवं अभ्यर्थितः विष्णुः भगवान् शूलपाणिना प्रहस्य भाव गम्भीरं गिरिशं प्रति अभाषत ॥१४॥

एवं	इस प्रकार	भाव गम्भीरं	गम्भीर भावसे
शूलपाणिना	शूलपाणि शंकरजी द्वारा	प्रहस्य	हँसकर
		गिरिशं प्रति	शंकरजीसे
भगवान् विष्णुः	भगवान् विष्णु	अभाषत	बोले ॥१४॥
अभ्यर्थितः	प्रार्थना किये जाने-पर		

श्रीभगवानुवाच–

कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः ।
पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥१५॥

कौतूहलाय दैत्यानां योषित् वेषः मया कृतः पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥१५॥

पीयूषभाजने	अमृत-पात्रके	कौतूहलाय	कुतूहलमें डालनेको
गते	छिन जानेपर	मया	मैंने
सुरकार्याणि	देवताओंके कामको	योषित् वेषः	स्त्रीका रूप
पश्यता	देखते हुए	कृतः	धारण किया था ॥१५॥
दैत्यानां	दैत्योंको		

तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम ।
कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रभवोदयम् ॥१६॥

तत् ते अहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रभव उदयम् ॥१६॥

तत्	वह	ते	आप
कामिनां	कामी पुरुषोंका	दिदृक्षोः	देखना चाहते हैं
बहु मन्तव्यं	बहुत माननीय तथा		अतः
सङ्कल्पप्रभव	कामका	अहं	मैं
उदयं	उद्दीपक (रूप)	दर्शयिष्यामि	दिखलाऊंगा ॥१६॥
सुरसत्तम	देवश्रेष्ठ !		

श्रीशुक उवाच—

इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥१७॥

इति ब्रुवाणः भगवान् तत्र एव अन्तः अधीयत सर्वतः चारयन् चक्षुः भव आस्ते सह उमया ॥१७॥

इति ब्रुवाणः	ऐसा कहकर	**उमया सह**	देवी उमाके साथ
भगवान्	भगवान्	**भवः सर्वतः**	शंकरजी चारों ओर
तत्र एव	वहीं	**चक्षुः चारयन्**	आँख घुमाकर
अन्तः अधीयत	अन्तर्धान हो गये	**आस्ते**	देखने लगे ॥१७॥

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं
विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ।
विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लसद्-
दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥१८॥

ततः ददर्श उपवने वरस्त्रियं विचित्र पुष्प अरुण पल्लव द्रुमे विक्रीडतीं कन्दुक लीलया लसत् दुकूल पर्यस्त नितम्ब मेखलाम् ॥१८॥

ततः विचित्र	तभी अनेक प्रकारके	**विक्रीडतीं**	खेलती
पुष्प	पुष्पों तथा	**पर्यस्त दुकूल**	दुकूलसे आच्छादित
अरुण पल्लव	लाल-लाल नये पत्तोंवाले	**नितम्ब**	नितम्बोंपर
		मेखलां	करधनी पहिने
द्रुमे उपवने	वृक्षोंके बगीचेमें	**वरस्त्रियं**	एक श्रेष्ठ स्त्रीको
लसत्	उछालकर	**ददर्श**	देखा ॥१८॥
कन्दुक लीलया	गेंदका खेल		

आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तन-
प्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे ।

प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्-
पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥१९॥

आवर्तन उद्वर्तन कम्पित स्तन प्रकृष्ट हार उरुभरैः पदे पदे प्रभज्यमानां इव मध्यतः चलत् पद प्रवालं नयतीं ततः ततः ॥१९॥

आवर्तन	(गेंदको) लपकने और	प्रभज्यमानां इव	टूटी जाती-सी
		चलत् पद	चञ्चल चरण-
उद्वर्तन	उछालनेसे	प्रवालं	पल्लवोंको
कम्पित स्तन	हिलते स्तन तथा	ततः ततः	इधर-उधर
प्रकृष्ट हार	श्रेष्ठ हारोंके	नयतीं	ले जा रही थी
उरुभरैः	भारी भारसे		॥१९॥
मध्यतः	बीचसे		

दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं
प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ।
स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्-
कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥२०॥

दिक्षु भ्रमत् कन्दुक चापलैः भृशं प्रोद्विग्न तार आयत लोल लोचनां स्वकर्ण विभ्राजित कुण्डल उल्लसत् कपोल नील अलक मण्डित आननाम् ॥२०॥

दिक्षु भ्रमत्	दिशाओंमें घूमते	विभ्राजित	चमकते
कन्दुक	गेंदकी	कुण्डल	कुण्डलोंसे
चापलैः	चञ्चलतासे	उल्लसत्	सुशोभित
भृशं प्रोद्विग्न	अत्यन्त चंचल	कपोल	कपोल तथा
तार आयत	पुतलीवाले बड़े	नील अलक	काली अलकोंसे
लोल लोचनां	चपल नेत्रोंवाली,	मण्डित	मण्डित
स्वकर्ण	अपने कानोंमें	आननां	मुखवाली ॥२०॥

श्लथद् दुकूलं कबरीं च विच्युतां
सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ।
विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं
विमोहयन्तीं जगदात्ममायया ॥२१॥

श्लथत् दुकूलं कबरीं च विच्युतां सन्नह्यतीं वाम करेण वल्गुना विनिघ्नतीं अन्य करेण कन्दुकं विमोहयन्तीं जगत् आत्ममायया ॥२१॥

श्लथत् दुकूलं	खिसकती साड़ी	कन्दुकं	गेंदको
च	तथा	विनिघ्नतीं	बार-बार मारती
विच्युतां कबरीं	खिसकते जूड़ेको	आत्ममायया	अपनी मायासे
वल्गुना	मनोहर	जगत्	विश्वको
वाम करेण	बायें हाथसे	विमोहयन्तीं	विमोहित कर रही
सन्नह्यतीं	सम्हालती हुई		थी ॥२१॥
अन्य करेण	दूसरे हाथसे		

तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषद्-
व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ।
स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा
नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥२२॥

तां वीक्ष्य देव इति कन्दुक लीलया ईषत् व्रीडा स्फुटस्मित विसृष्ट कटाक्ष मुष्टः स्त्रीप्रेक्षण प्रतिसमीक्षण विह्वल आत्मा न आत्मानं अन्तिक उमां स्वगणान् च वेद ॥२२॥

इति	इस प्रकार	मुष्टः देव	मोहित महादेव
कन्दुक लीलया	गेंद खेलती हुई	तां वीक्ष्य	उसे देखकर
ईषत् व्रीडा	तनिक लज्जा तथा	स्त्रीप्रेक्षण	उस स्त्रीके देखते हुए
स्फुटस्मित	प्रकट मुस्कानयुक्त	प्रतिसमीक्षण	वह फिर देखे इससे
कटाक्ष विसृष्ट	कटाक्ष पातसे	विह्वल आत्मा	व्याकुल चित्त

आत्मानं	अपने	स्वगणं	अपने गणोंका भी
अन्तिकं	पास	वेद न	ज्ञान नहीं रहा
उमां च	देवी उमा तथा		॥२२॥

तस्याः कराग्रात् स तु कन्दुको यदा
गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः ।
वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्
भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥२३॥

तस्याः कराग्रात् स तु कन्दुकः यदा गतः विदूरं तं अनुव्रजत् स्त्रियाः वासः ससूत्रं लघु मारुतः अहरत् भवस्य देवस्य किल अनुपश्यतः ॥२३॥

भवस्य देवस्य	महादेव शंकरजीके	तं अनुव्रजत्	उसके पीछे दौड़ती
किल	अहो,		हुई
अनुपश्यतः	देखते हुए ही	स्त्रियाः लघु	स्त्रीकी झीनी
यदा तस्याः	जब उसके	वासः	साड़ी
कराग्रात्	हाथकी अंगुलियोंसे	ससूत्रं	कटि सूत्रके साथ
स तु कन्दुकः	वह गेंद तो	मारुतः अहरत्	वायुने खींच ली
विदूरं गतः	कुछ दूर चला गया तब		॥२३॥

एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम् ।
दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ॥२४॥

एवं तां रुचिर अपाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमां दृष्ट्वा तस्यां मनः चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ॥२४॥

एवं तां	इस प्रकार उस	विषज्जन्त्यां	(कटाक्षके कारण)
रुचिर अपाङ्गीं	सुन्दर कटाक्षवाली		आसक्ता (जानकर)
दर्शनीयां	दर्शनीया,	किल भवः	अहो, शंकरजीने
मनोरमां	मनोहारिणीको	तस्यां मनः	उसमें मन लगा
दृष्ट्वा	देखकर	चक्रे	दिया ॥२४॥

तयापहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः ।
भवान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ॥२५॥

तया अपहृत विज्ञानः तत् कृत स्मरविह्वलः भवान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीः तत् पदं ययौ ॥२५॥

तया विज्ञानः	उसके द्वारा विवेक	पश्यन्त्या	देखते हुए
अपहृत	छीने जानेसे	गतह्रीः	निर्लज्ज होकर
तत् कृत	उसके लिए	तत् पदं	उसकी ओर
स्मरविह्वलः	काम-व्याकुल होकर	ययौ	चल दिये ॥२५॥
भवान्या अपि	पार्वतीजीके भी		

सा तमायान्तमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ।
निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत ॥२६॥

सा तं आयान्तं आलोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशं निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती न अन्वतिष्ठत ॥२६॥

तं आयान्तं	उन्हें आता हुआ	निलीयमाना	पीछे छिपती हुई
आलोक्य सा	देखकर वह	हसन्ती	हँसती हुई
विवस्त्रा	वस्त्रहीना	अन्वतिष्ठत न	कहीं ठहरी नहीं ॥२६॥
भृशं व्रीडिता	बहुत लज्जित होकर		
वृक्षेषु	वृक्षोंके		

तामन्वगच्छद् भगवान् भवः प्रमुषितेन्द्रियः ।
कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥२७॥

तां अनु अगच्छत् भगवान् भवः प्रमुषित इन्द्रियः कामस्य च वशं नीतः करेणुं इव यूथपः ॥२७॥

इन्द्रियः	इन्द्रियोंके (उसके द्वारा)	करेणुं यूथपः	हथिनीके पीछे गजराजके
प्रमुषित	चुरा लिए जानेसे	इव	समान
भगवान् भवः	भगवान शिव	तां अनु	उसके पीछे
कामस्य च	कामके भी	अगच्छत्	चल पड़े ॥२७॥
वशं नीतः	वशमें लाये जाकर		

सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वानिच्छतीं स्त्रियम् ।
केशबन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥२८॥

सः अनुव्रज्य अतिवेगेन गृहीत्वा अनिच्छतीं स्त्रियं केशबन्ध उप आनीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥२८॥

सः अतिवेगेन	वे बहुत वेगसे	**गृहीत्वा**	पकड़कर
अनुव्रज्य	पीछे दौड़कर	**उप आनीय**	समीप लाकर
अनिच्छतीं	इच्छा न करनेवाली	**बाहुभ्यां**	भुजाओंसे
स्त्रियं	स्त्रीको	**परिषस्वजे**	आलिंगन कर लिया ॥२८॥
केशबन्ध	उसका जूड़ा		

सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ।
इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥२९॥

स उपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा इतः ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्ण शिरोरुहा ॥२९॥

करिणा	गजेन्द्रके द्वारा	**इतः ततः**	इधर-उधर
करिणी यथा	हथिनीके समान	**प्रसर्पन्ती**	खिसकती हुई
सा भगवता	वह भगवान् शंकर द्वारा	**शिरोरुहा**	(उसके) केश
		विप्रकीर्ण	बिखर गये ॥२९॥
उपगूढा	आलिंगिता		

आत्मानं मोचयित्वाङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात् ।
प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥३०॥

आत्मानं मोचयित्वा अङ्ग सुर ऋषभ भुज अन्तरात् प्राद्रवत् सा पृथु श्रोणी माया देव विनिर्मिता ॥३०॥

अङ्ग	प्रिय परिक्षित !	**विनिर्मिता**	बनायी
सा देव	वह विष्णु भगवान्-की	**पृथु श्रोणी**	स्थूल नितम्बोंवाली
		माया	माया

सुर ऋषभ	महादेवजीकी	मोचयित्वा	छुड़ाकर
भुज अन्तरात्	भुजाओंके बीचसे	प्राद्रवत्	भागी ॥३०॥
आत्मानं	अपनेको		

तस्यासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः ॥३१॥

तस्य असौ पदवीं रुद्रः विष्णोः अद्भुत कर्मणः प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणा इव विनिर्जितः ॥३१॥

तस्य	उन	कामेन	कामदेव द्वारा
अद्भुत कर्मणः	अद्भुत कर्मा	विनिर्जितः इव	पराजितकी भांति
विष्णोः पदवीं	विष्णुके पीछे	असौ रुद्रः	ये रुद्रदेव
वैरिणा	अपने शत्रु	प्रत्यपद्यत	चल पड़े ॥३१॥

तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतसः ।
शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनु धावतः ॥३२॥

तस्य अनुधावतः रेतः चस्कन्द अमोघ रेतसः शुष्मिणः यूथपस्य इव वासितां अनु धावतः ॥३२॥

वासितां	ऋतुमती (हथिनी) के	अनुधावतः	पीछे दौड़ते हुए
अनुधावतः	पीछे दौड़ते हुए	अमोघ	अमोघ
शुष्मिणः	मदोन्मत्त	रेतसः	वीर्य (शंकरजी) का
यूथपस्य	यूथपति गजराजके	रेतः	वीर्य-
इव	समान	चस्कन्द	स्खलित हो गया ॥३२॥
तस्य	उसके		

यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ।
तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥३३॥

यत्र यत्र अपतन् मह्यां रेतः तस्य महात्मनः तानि रूप्यस्य हेम्नः च क्षेत्राणि आसन् महीपते ॥३३॥

महीपते	राजन् !	**तानि रूप्यस्य**	वही चांदी
तस्य महात्मनः	उन महापुरुषका	**च हेम्नः**	तथा स्वर्णके
मह्यां यत्र यत्र	पृथ्वीपर जहां-जहां	**क्षेत्राणि आसन्**	क्षेत्र हो गये ॥३३॥
रेतः अपतन्	वीर्य गिरा		

सरित्सरस्सु शैलेषु वनेषूपवनेषु च ।
यत्र क्व चासन्नृषयस्तत्र संनिहितो हरः ॥३४॥

सरित् सरः सु शैलेषु वनेषु उपवनेषु च यत्र क्व च आसन् ऋषयः तत्र संनिहितः हरः ॥३४॥

सरित् सरः सु	नदी, सरोवरपर	**यत्र क्व च**	अथवा जहां कहीं
शैलेषु	पर्वतोंपर,	**ऋषयः आसन्**	ऋषि लोग थे
च वनेषु	तथा वनोंमें,	**तत्र हरः**	वहां शंकरजी
उपवनेषु	उपवनोंमें	**संनिहितः**	गये ॥३४॥

स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ।
जडीकृतं नृपश्रेष्ठ सन्यवर्तत कश्मलात् ॥३५॥

स्कन्ने रेतसि सः अपश्यत् आत्मानं देवमायया जडीकृतं नृपश्रेष्ठ सन्यवर्तत कश्मलात् ॥३५॥

नृपश्रेष्ठ	नृपश्रेष्ठ !	**जडीकृतं**	मुग्ध हुआ
स्कन्ने रेतसि	वीर्यपात हो जानेपर	**अपश्यत्**	देखा तब
सः आत्मानं	उन्होंने अपनेको	**कश्मलात्**	(विषया सक्तिरूप)
देवमायया	भगवान्‌की माया द्वारा		इस मलिनतासे
		संन्यवर्तत	निवृत्त हो गए ॥३५॥

अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ।
अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदु हाद्भुतम् ॥३६॥

अथ अवगत माहात्म्य आत्मनः जगदात्मनः अपरिज्ञेय वीर्यस्य न मेने तत् उ ह अद्भुतम् ॥३६॥

अथ	तब	**माहात्म्य**	महिमा
जगदात्मनः	जगदात्मा	**अवगत**	जानकर
अपरिज्ञेय	अचिन्त्य	**तत् उ ह**	उसे निश्चय ही
वीर्यस्य आत्मनः	पराक्रम परमात्मा-की	**अद्भुतं न**	अद्भुत नहीं
		मेने	माना ॥३६॥

तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः ।
उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥३७॥

तं अविक्लवं अव्रीडं आलक्ष्य मधुसूदनः उवाच परमप्रीतः बिभ्रत् स्वां पौरुषीं तनुम् ॥३७॥

तं	उन (महादेवजी, को	**बिभ्रत्**	धारण करके
अविक्लवं	विषाद रहित	**परमप्रीतः**	अत्यन्त प्रसन्न होकर
अव्रीडं	और लज्जा रहित	**मधुसूदनः**	भगवान् मधुसूदन
आलक्ष्य	देखकर	**उवाच**	बोले ॥३७॥
स्वां पौरुषीं तनुं	अपना पुरुष रूप		

श्रीभगवानुवाच—

दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः ।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया ॥३८॥

दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठां आत्मना स्थितः यत् मे स्त्री रूपया स्वैरं मोहितः अपि अंग मायया ॥३८॥

अङ्ग-	प्रिय-	**यत् मे**	जो मेरी
विबुधश्रेष्ठ	महादेवजी !	**स्त्री रूपया**	स्त्री रूपिणी
दिष्ट्या	आनन्दकी बात है कि	**मायया**	माया द्वारा
		मोहितः अपि	मोहित होनेपर भी

त्वं अधुना	आप इस समय	आत्मना निष्ठां	आत्म निष्ठामें
स्वां	अपनी	स्थितः	स्थित हो गये ॥३८॥

को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् ।
तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥३९॥

कः नु मे अतितरेत् मायां विषक्तः त्वत् ऋते पुमान् तान् तान् विसृजतीं भावान् दुस्तरां अकृत् आत्मभिः ॥३९॥

अकृत् आत्मभिः	अजितेन्द्रियके लिए	त्वत् ऋते	आपको छोड़कर
दुस्तरां	दुस्तर	नु कः पुमान्	भला कौन पुरुष
तान् तान्	उन-उन हाव	विषक्तः	उसमें आसक्त होकर
भावान्	भावोंको		फिर
विसृजतीं	प्रकट करती	अतितरेत्	पार कर सकता है
मे मायां	मेरी मायाको		॥३९॥

सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ।
मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥४०॥

स इयं गुणमयी माया न त्वां अभिभविष्यति मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥४०॥

कालरूपेण	काल-स्वरूप	माया त्वां	माया आपको
मया	मेरे द्वारा		(अब)
कालेन भागशः	कालके एक अंशसे	अभिभविष्यति	पराभव
समेता	संयुक्त हुई	न	नहीं कर सकेगी
स इयं गुणमयी	वह यह गुणमयी		॥४०॥

श्रीशुक उवाच—

एवं भगवता राजन् श्रीवत्साङ्केन सत्कृतः ।
आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ॥४१॥

एवं भगवता राजन् श्रीवत्स अङ्केन सत्कृतः आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्व आलयं ययौ ॥४१॥

राजन्	राजन् !	**तं आमन्त्र्य**	उनकी अनुमति लेकर
एवं भगवता	इस प्रकार भगवान्		
श्रीवत्स अङ्केन	श्रीविष्णु द्वारा	**परिक्रम्य**	परिक्रमा करके
		सगणः	गणोंके साथ
सत्कृतः	सत्कृत होकर	**स्व आलयं**	अपने निवासको
		ययौ	चले गये ॥४१॥

आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ।
शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याऽऽचष्टाथ भारत ॥४२॥

आत्म अंशभूतां तां मायां भवानीं भगवान् भवः शंसतां ऋषिमुख्यानां प्रीत्या आचष्ट अथ भारत ॥४२॥

भारत	परीक्षित !	**अंशभूतां**	अंशसे उत्पन्न
अथ	फिर	**तां मायां**	उस मायाकी
भगवान् भवः	भगवान् शंकर	**शंसतां**	प्रशंसा करते हुए
भवानीं	पार्वतीजीसे तथा	**प्रीत्या**	प्रसन्नता पूर्वक
ऋषि मुख्यानां	प्रमुख ऋषियोंसे	**आचष्ट**	बोले ॥४२॥
आत्म	परमात्माके		

श्रीमहादेव उवाच—*

अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां
परस्य पुंसः परदेवतायाः ।
अहं कलानामृषभो विमुह्ये
ययावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥४३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अपि व्यपश्यसि त्वं अजस्य मायां परस्य पुंसः पर देवतायाः अहं कलानां ऋषभः विमुह्यै ययावशः अन्ये किं उत अस्वतन्त्राः ॥४३॥

परस्य पुंसः	परम पुरुष	**ऋषभः**	सर्वश्रेष्ठ
पर देवतायाः	परम देवता	**अहं ययावशः**	मैं जिसके वशमें होकर
अजस्य मायां	अजन्माकी माया	**विमुह्यै**	मोहित हो गया
त्वं	तुमने	**उत**	फिर जो
अपि व्यपश्यसि	क्या भली प्रकार देखी,	**अस्वतन्त्राः**	पराधीन (जीव) हैं
कलानां	(भगवान्की)कलाओं में	**किं**	उनकी क्या चर्चा ॥४३॥

यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्
समासहस्रान्त उपारतं वै ।
स एष साक्षात् पुरुषः पुराणो
न यत्र कालो विशते न वेदः ॥४४॥

यं मां अपृच्छसि त्वं उपेत्य योगात् समा सहस्र अन्त उपारतं वै स एष साक्षात् पुरुषः पुराणः न यत्र कालः विशते न वेदः ॥४४॥

समा सहस्र	एक सहस्र वर्षके	**वै स एष**	निश्चय वे यही
अन्त	पश्चात्	**साक्षात्**	साक्षात्
योगात्	योग साधनसे	**पुराणः पुरुषः**	पुराण पुरुष हैं
उपारतं	उपरत	**यत्र न कालः**	न कालका
मां उपेत्य	मेरे पास आकर	**विशते न वेदः**	प्रवेश है, न वेदका ॥४४॥
त्वं यं	तुम जिनके विषयमें		
अपृच्छसि	पूछती थीं		

श्रीशुक उवाच–

इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ।
सिन्धोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥४५॥

इति ते अभिहितः तात विक्रमः शार्ङ्ग धन्वनः सिन्धोः निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महा अचलः ॥४५॥

तात	तात परीक्षित !	**सिन्धोः निर्मथने**	समुद्र-मन्थनके लिए
इति ते	इस प्रकार तुमसे	**येन पृष्ठे**	जिन्होंने पीठपर
शार्ङ्ग धन्वनः	शारङ्ग धन्वाका	**महा अचलः**	महापर्वत (मन्दर)
विक्रमः	पराक्रम	**धृतः**	धारण किया ॥४५॥
अभिहितः	मैंने वर्णन किया		

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो
न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ।
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं
समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥४६॥

एतत् मुहुः कीर्तयतः अनुशृण्वतः न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् यत् उत्तमश्लोक गुण अनुवर्णनं समस्त संसार परिश्रम अपहम् ॥४६॥

एतत् मुहुः	इसका बार-बार	**उत्तमश्लोक**	श्रेष्ठकीर्ति
कीर्तयतः	वर्णन करनेसे तथा	**गुण**	भगवान्‌के गुणोंका
अनुशृण्वतः	बार-बार श्रवण करनेसे	**अनुवर्णनं**	बार-बार वर्णन
		संसार समस्त	संसारके सम्पूर्ण
समुद्यमः	उद्योग	**परिश्रम**	परिश्रमोंको
क्वचित्	कभी	**अपहं**	दूर करनेवाला है ॥४६॥
रिष्यते न	निष्फल नहीं होता,		
यत्	क्योंकि		

असदविषयमङ्घ्रि भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्यम् ।
कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥४७॥

असत् अविषयं अङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्नान् अमृतं अमरवर्यान् आशयत् सिन्धुमथ्यं कपट युवति वेषः मोहयन् यः सुर अरिन् तं अहं उपसृतानां कामपूरं नतः अस्मि ॥४७॥

कपट युवति	मायासे मोहिनी	**असत् अविषयं**	असत् पुरुषोंके लिए
वेषः	रूप धारण करके		अप्राट्य
यः सुर अरिन्	देव-शत्रुओंको	**उपसृतानां**	शरणागतोंकी
मोहयन्	मोहित करके	**कामपूरं**	कामनाएँ पूर्ण
सिन्धुमथ्यं	समुद्र-मन्थनसे		करनेवाले
	उत्पन्न	**भावगम्यं**	भावनासे प्राप्त
अमृतं	अमृत		होनेवाले उन
प्रपन्नान्	शरणागत	**अङ्घ्रि नतः**	चरणोंमें नमस्कार
अमरवर्यान्	देवश्रेष्ठोंको	**अस्मि**	करता हूँ। ४७॥
आशयत्	पिलाया,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे शङ्करमोहनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ।
सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥

मनुः विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः सप्तमः वर्तमानः यः तत् अपत्यानि मे शृणु ॥१॥

यः विवस्वतः-	जो सूर्य-	**वर्तमानः**	इस समयके
पुत्रः	पुत्र	**सप्तमः मनुः**	सातवें मनु हैं
श्राद्धदेव	श्राद्धदेव	**तत् अपत्यानि**	उनके पुत्रोंका वर्णन
इति श्रुतः	इस नामसे प्रसिद्ध	**मे शृणु**	मुझसे सुनो ॥१॥

इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ।
नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २ ॥

इक्ष्वाकुः नभगः च एव धृष्टः शर्यातिः एव च नरिष्यन्तः अथ नाभागः सप्तमः दिष्ट उच्यते ॥२॥

इक्ष्वाकुः च	इक्ष्वाकु और	**नाभागः**	नाभाग
नभगः	नभग,	**सप्तमः**	सातवेंको
धृष्टः एव	धृष्ट भी	**दिष्ट उच्यते**	दिष्ट कहा जाता है ॥२॥
च शर्यातिः एव	तथा शर्याति भी,		
अथ नरिष्यन्तः	और नरिष्यन्त,		

करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः ।
मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परन्तप ॥ ३ ॥

करूषः च पृषध्रः च दशमः वसुमान् स्मृतः मनोः वैवस्वतस्य एते दश पुत्राः परन्तप ॥३॥

करूषः च	करूष और	**परन्तप**	शत्रु-संतापी परीक्षि !
पृषध्रः	पृषध्र		
च दशमः	तथा दसवें	**वैवस्वतस्य**	वैवस्वत
वसुमान स्मृतः	वसुमान् कहलाते हैं,	**मनोः**	मनुके
		एते दश पुत्राः	ये दस पुत्र हुए ॥३॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
अश्विनावृभवो राजन्निन्द्रस्तेषां पुरन्दरः ॥ ४ ॥

आदित्या वसवः रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः अश्विना ऋभवः राजन् इन्द्रः तेषां पुरन्दरः ॥४॥

राजन्	राजन् !	**अश्विना**	दोनों अश्विनी कुमार
आदित्या	(द्वादश) आदित्य,		
वसवः	(आठ) वसुगण,	**ऋभवः**	तथा ऋभु लोग (देवता) हैं,
रुद्रा	(एकादश) रुद्र,		
विश्वेदेवा	विश्वेदेवा,	**पुरन्दरः**	पुरन्दर
मरुद्गणाः	(उनचास) मरुद्गण,	**तेषां इन्द्रः**	इनके इन्द्र हैं ॥४॥

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥

कश्यपः अत्रिः वसिष्ठः च विश्वामित्रः अथ गौतमः जमदग्निः भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥५॥

कश्यपः अत्रिः	कश्यप, अत्रि,	**भरद्वाज**	भरद्वाज
अथ गौतमः	गौतमके साथ	**इति**	इस प्रकार
विश्वामित्रः	विश्वामित्र	**सप्तर्षयः**	सप्तर्षि
जमदग्निः च	जमदग्नि तथा	**स्मृताः**	माने गये हैं ॥५॥

अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् ।
आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ६ ॥

अत्र अपि भगवत् जन्म कश्यपात् अदितेः अभूत् आदित्यानां अवरजः विष्णुः वामन रूप धृक् ॥६॥

अत्र अपि	इस मन्वन्तरमें भी	**अवरजः**	सबसे छोटे पुत्रके रूपमें
कश्यपात्	कश्यपजीसे	**वामन रूप धृक्**	वामन रूपधारी
अदितेः	अदितिमें	**भगवत् विष्णुः**	भगवान् विष्णुका
आदित्यानां	अदिति-पुत्रोंमें	**जन्म अभूत्**	अवतार हुआ ॥६॥

संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वन्तराणि ते ।
भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्यान्वितानि च ॥७॥

संक्षेपतः मया उक्तानि सप्त मन्वन्तराणि ते भविष्याणि अथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्ति अन्वितानि च ॥७॥

मया ते	मैंने तुमसे	**मन्वन्तराणि**	मन्वन्तरोंका
संक्षेपतः	संक्षिप्त रूपसे	**उक्तानि**	वर्णन किया
विष्णोः	भगवान् विष्णुकी	**अथ**	अब
शक्ति	शक्तिसे	**भविष्याणि च**	होनेवाले (मन्वन्तरों) का भी
अन्वितानि	युक्त		
सप्त	सात	**वक्ष्यामि**	वर्णन करता हूँ ॥७॥

विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे ।
संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव ॥ ८ ॥

विवस्वतः च द्वे जाये विश्वकर्म सुते उभे संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्राक् अभिहिते तव ॥८॥

विश्वकर्म	विश्वकर्माकी	**द्वे जाये**	दो पत्नियां थीं
उभे सुते	दोनों पुत्रियां	**ये तव**	जिनका वर्णन तुमसे
संज्ञा च छाया	संज्ञा और छाया	**प्राक् अभिहिते**	पहिले कर चुका हूँ ॥८॥
विवस्वतः च	विवस्वानके तो		

तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः ।
यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुताञ्छृणु ॥ ९ ॥

तृतीयां वडवां एके तासां संज्ञा सुताः त्रयः यमः यमी श्राद्धदेवः छायायाः च सुतान् शृणु ॥९॥

वडवां	बडवा नामकी	**यमः यमी**	यमराज, यमुना,
एके तृतीयां	एकतीसरी पत्नी थी	**श्राद्धदेवः**	श्रादद्धेव मनु
तासां संज्ञा	उनमें संज्ञाके	**छायायाः च**	अब छायाके भी
त्रयः सुताः	तीन सन्तान हुई,	**सुतान् शृणु**	पुत्रोंको सुनो ॥९॥

सार्वणिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ।
शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥१०॥

सार्वणिः तपती कन्या भार्या संवरणस्य या शनैश्चरः तृतीयः अभूत् अश्विनौ वडवा आत्मजौ ॥१०॥

सार्वणिः	सार्वणि और	**शनैश्चरः**	शनैश्चर
तपती कन्या	तपती नामकी कन्या	**अभूत्**	हुए
या संवरणस्य	जो संवरणकी	**वडवा आत्मजौ**	बड़वाके दो पुत्र
भार्या	पत्नी हुई	**अश्विनौ**	अश्विनी कुमार हुए
तृतीयः	तीसरे		॥१०॥

अष्टमेऽन्तर आयाते सार्वणिर्भविता मनुः ।
निर्मोकविरजस्काद्याः सार्वणितनया नृप ॥११॥

अष्टमे अन्तर आयाते सार्वणिः भविता मनुः निर्मोक विरजस्क आद्याः सार्वणि तनया नृप ॥११॥

नृप	राजन् !	**सार्वणिः मनुः**	सार्वणि मनु
अष्टमे अन्तरे	आठवें मन्वन्तरके	**भविता**	होंगे
आयाते	आनेपर	**निर्मोक**	निर्मोक

विरजस्क	विरजस्क	सावर्णि तनया	सावर्णिके पुत्र होंगे ॥११॥
आद्याः	आदि		

तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः ।
तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥१२॥

तत्र देवाः सुतपसः विरजा अमृत प्रभाः तेषां विरोचन सुतः बलिः इन्द्रः भविष्यति ॥१२॥

तत्र सुतपसः	उस समय सुतपा,	विरोचन	विरोचनके
विरजा	विरज और अमृत	सुतः बलिः	पुत्र बलि
अमृतप्रभाः	अमृतप्रभ	तेषां इन्द्रः	उनके इन्द्र
देवाः	(नामके) देवता होंगे	भविष्यति	होंगे । १२॥

दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ।
राद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥१३॥

दत्त्वा इमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयं राद्धं इन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिं अवाप्स्यति ॥१३॥

पदंत्रयं	तीन पद (पृथ्वी)	हित्वा	छोड़कर
याचमानाय	मांगनेवाले	इमां दत्त्वा	यह त्रिलोकी दे दिया
विष्णवे	भगवान् विष्णुको	ततः	उससे (वे फिर)
यः	जिन्होंने	सिद्धिं	सफलता
राद्धं इन्द्रपदं	समृद्ध इन्द्र-पद	अवाप्स्यसि	प्राप्त करेंगे ॥१३॥

योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः ।
निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनाऽऽस्ते स्वराडिव ॥१४॥

यः असौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः निवेशितः अधिके स्वर्गात् अधुना आस्ते स्वराट् इव ॥१४॥

यः असौ	जो यह (बलि)	सुतले	सुतलमें
भगवता	भगवान् द्वारा	निवेशितः	प्रविष्ट कराया गया
बद्धः	बाँध लिया गया,	अधुना	इस समय
पुनः प्रीतेन	फिर प्रसन्न होकर	स्वराट् इव	वहां इन्द्रके समान
स्वर्गात् अधिके	स्वर्गसे अधिक (ऐश्वर्यमय)	आस्ते	रहता है ॥१४॥

गालवो दीप्तिमान्रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ।
ऋष्यशृङ्गः पितास्माकं भगवान्बादरायणः ॥१५॥

गालवः दीप्तिमान् रामः द्रोणपुत्रः कृपः तथा ऋष्यशृङ्गः पिता अस्माकं भगवान् बादरायणः ॥१५॥

गालवः	गालव,	ऋष्यशृङ्गः	ऋष्यशृंग,
दीप्तिमान्	दीप्तिमान्,	तथा अस्माकं	तथा मेरे
रामः	परशुराम,	पिता	पिता
द्रोणपुत्रः	अश्वत्थामा,	भगवान्	भगवान्
कृपः	कृपाचार्य,	बादरायणः	वेदव्यास ॥१५॥

इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्वयोगतः ।
इदानीमासते राजन् स्वे स्व आश्रममण्डले ॥१६॥

इमे सप्तर्षयः तत्र भविष्यन्ति स्वयोगतः इदानीं आसते राजन् स्वे स्व आश्रममण्डले ॥१६॥

राजन्	राजन्	इदानीं	इस समय
तत्र इमे	उस मन्वन्तरमें ये	स्वे स्व	अपने अपने
स्वयोगतः	अपने योग प्रभावसे	आश्रममण्डले	आश्रम-स्थानोंमें
सप्तर्षयः	सप्तर्षि	आसते	रहते हैं ॥१६॥
भविष्यन्ति	होंगे,		

देवगुह्यात्सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ।
स्थानं पुरन्दराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥१७॥

देवगुह्यात् सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः स्थानं पुरन्दरात् हित्वा बलये दास्यति ईश्वरः ॥१७॥

देवगुह्यात्	देवगुह्य नामक (ब्राह्मण) से	**ईश्वरः**	परमेश्वर (अवतार लेकर)
सरस्वत्यां	(उसकी पत्नी) सरस्वतीसे	**प्रभुः**	वे समर्थ
सार्वभौम इति	सार्वभौम इस नामसे	**पुरन्दरात्**	पुरन्दरसे उनका
		स्थानं	स्थान स्वर्ग
		हित्वा	छीनकर
		बलये दास्यति	बलिको दे देंगे ॥१७॥

नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसम्भवः ।
भूतकेतुर्दीप्तकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥१८॥

नवमः दक्ष सावर्णिः मनुः वरुण सम्भवः भूतकेतुः दीप्तकेतुः इति आद्याः तत् सुता नृप ॥१८॥

नृप	राजन् !	**दीप्तकेतुः**	दीप्तकेतु
नवमः मनुः	नौवे मनु	**आद्याः**	आदि
वरुण सम्भवः	वरुणसे उत्पन्न	**इति तत्**	इस प्रकार उनके
दक्षसावर्णिः	दक्षसावर्णि होंगे	**सुता**	पुत्र होंगे ॥१८॥
भूतकेतुः	भूतकेतु		

पारा मरीचिगर्भाद्या देवा इन्द्रोऽद्भुतः स्मृतः ।
द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यन्त्यृषयस्ततः ॥१९॥

पारा मरीचिगर्भ आद्या देवा इन्द्रः अद्भुतः स्मृतः द्युतिमत् प्रमुखाः तत्र भविष्यन्ति ऋषयः ततः ॥१९॥

तत्र पारा	उस समयके पार,	**अद्भुतः इन्द्रः**	अद्भुत नामक इन्द्र
मरीचिगर्भ	मरीचिगर्भ	**स्मृतः**	कहे गये हैं,
आद्या देवा	आदि देवता और	**ततः**	उस मन्वन्तरमें

द्युतिमत्	द्युतिमान्	ऋषयः	सप्तर्षि
प्रमुखाः	आदि मुख्य	भविष्यन्ति	होंगे ॥१९॥

आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला ।
भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥२०॥

आयुष्मतः अम्बुधारायां ऋषभः भगवत् कला भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यते अद्भुतः ॥२०॥

आयुष्मतः	आयुष्मानसे	ऋषभः भविता	ऋषभ नामसे होगा
अम्बुधारायां	(उनकी पत्नी) अम्बुधारामें	येन संराद्धां	जिनका प्रदत्त
		त्रिलोकीं	त्रिलोकीका राज्य
भगवत् कला	भगवान्का कलावतार	अद्भुतः	अद्भुत नामा इन्द्र
		भोक्ष्यते	भोगेंगे ॥२०॥

दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ।
तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥२१॥

दशमः ब्रह्म सावर्णिः उपश्लोक सुतः महान् तत् सुता भूरिषेण आद्या हविष्मत् प्रमुखा द्विजाः ॥२१॥

उपश्लोक	उपश्लोकके	भूरिषेण आद्या	भूरिषेण आदि और
महान् सुतः	महान् पुत्र	हविष्मत्	हविष्मान् आदि
ब्रह्मसावर्णिः	ब्रह्मसावर्णि	प्रमुखा	प्रधान
दशमः	दसवें मनु होंगे	द्विजाः	ब्राह्मण होंगे ॥२१॥
तत् सुता	उनके पुत्र		

हविष्मान्सुकृतिः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः ।
सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शम्भुः सुरेश्वरः ॥२२॥

हविष्मान् सुकृतिः सत्यः जयः मूर्तिः तदा द्विजाः सुवासन विरुद्ध आद्या देवाः शम्भुः सुरेश्वरः ॥२२॥

हविष्मान्	हविष्मान्,	सुवासन विरुद्ध	सुवासन, विरुद्ध
सुकृतिः	सुकृति	आद्या देवाः	आदि देवता तथा
सत्यः जयः	सत्य, जय,	शम्भुः	शम्भु नामक
मूर्तिः	मूर्ति आदि	सुरेश्वरः	इन्द्र होंगे ॥२२॥
द्विजाः	ब्राह्मण (सप्तर्षि) होंगे		

विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शम्भोः सख्यं करिष्यति ।
जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः ॥२३॥

विष्वक्सेनः विषूच्यां तु शम्भोः सख्यं करिष्यति जातः स्व अंशेन भगवान् गृहे विश्वसृजः विभुः ॥२३॥

विश्वसृजः गृहे	विश्वसृजके घर	विष्वक्सेनः	विष्वक्सेन
विषूच्यां तु	विषूचीसे ही	शम्भोः	शम्भु नामक इन्द्रसे
जातः स्व अंशेन	अपने अंशसे उत्पन्न	सख्यं	मित्रता
विभुः भगवान्	सर्वव्यापक भगवान्	करिष्यति	करेंगे ॥२३॥

मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ।
अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥२४॥

मनुः वै धर्म सावर्णिः एकादशम आत्मवान् अनागताः तत् सुताः च सत्य धर्म आदयः दश ॥२४॥

एकादशम मनुः	ग्यारहवें मनु	सत्य च धर्म	सत्य तथा धर्म
वै आत्मवान्	निश्चय मनस्वी	आदयः	आदि
धर्मसावर्णिः	धर्मसावर्णि होंगे,	दश सुताः	दस पुत्र होंगे ॥२४॥
अनागताः तत्	आगे होनेवाले उनके		

विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ।
इन्द्रश्च वैधृतस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥२५॥

विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः इन्द्रः च वैधृतः तेषां ऋषयः च अरुण आदयः ॥२५॥

विहङ्गमाः	विहंगम,	च तेषां इन्द्रः	और उनका इन्द्र
कामगमा	कामगम,	वैधृतः च	वैधृत तथा
निर्वाणरुचयः	निर्वाणरुचि	अरुण आदयः	अरुण आदि
सुराः	देवता होंगे,	ऋषयः	सप्तर्षि होंगे ॥२५॥

आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः ।
वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥२६॥

आर्यकस्य सुतः तत्र धर्म सेतुः इति स्मृतः वैधृतायां हरेः अंशः त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥२६॥

तत्र	उस मन्वन्तरमें	धर्म सेतुः इति	धर्मसेतु इस नामसे
आर्यकस्य	आर्यकका	स्मृतः	प्रसिद्ध होकर
वैधृतायं	वैधृतासे उत्पन्न	त्रिलोकीं	तीनों लोकोंका
हरेः अंशः	श्रीहरिका अंश	धारयिष्यति	धारण करेगा ॥२६॥

भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः ।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥२७॥

भविता रुद्रसावर्णि राजन् द्वादशमः मनुः देववान् उपदेवः च देव श्रेष्ठ आदयः सुताः ॥२७॥

राजन्	राजन् !	च देव श्रेष्ठ	तथा देवश्रेष्ठ
रुद्रसावर्णिः	रुद्रसावर्णि	आदयः	आदि
द्वादशमः मनुः	बारहवें मनु	सुताः	उनके पुत्र होंगे ॥२७॥
भविता	होंगे		
देववान् उपदेवः	देववान्, उपदेव		

ऋतधामा च तत्रेन्द्रो देवाश्च हरितादयः ।
ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥२८॥

ऋतधामा च तत्र इन्द्रः देवाः च हरित आदयः ऋषयः च तपोमूर्तिः तपस्वी अग्नीध्रक आदयः ॥२८॥

तत्र	उस मन्वन्तरमें	च ऋषयः	और सप्तर्षि
ऋतधामा	ऋतधामा	तपोमूर्तिः	तपोमूर्ति,
इन्द्रः	इन्द्र	तपस्वी च	तपस्वी तथा
च देवाः	तथा देवता	अग्नीध्रक	अग्नीध्रक
हरित आदयः	हरित आदि	आदयः	आदि होंगे ॥२८॥

स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः ।
अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥२९॥

स्वधाम आख्यः हरेः अंशः साधयिष्यति तत् मनोः अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतः विभुः ॥२९॥

सत्यसहसः	सत्यसहासे उत्पन्न	विभुः तत्	समर्थ होनेसे उसमें
सूनृतायाः सुतः	सूनृताका पुत्र	मनोः अन्तरं	मन्वन्तरका
स्वधाम आख्यः	स्वधामा नामक	साधयिष्यति	पालन करेगा ॥२९॥
हरेः अंशः	भगवान्‌का अंश		

मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ।
चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥३०॥

मनुः त्रयोदशः भाव्यः देवसावर्णिः आत्मवान् चित्रसेन विचित्र आद्या देवसावर्णि देहजाः ॥३०॥

आत्मवान्	जितेन्द्रिय	चित्रसेन	चित्रसेन
देवसावर्णि	देवसावर्णि	विचित्र आद्या	विचित्र आदि
त्रयोदशः मनुः	तेरहवें मनु	देवसावर्णिः	देवसावर्णिके
भाव्यः	होंगे	देहजाः	पुत्र होंगे ॥३०॥

देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः ।
निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा ॥३१॥

देवाः सुकर्म सुत्राम संज्ञा इन्द्रः दिवस्पतिः निर्मोक तत्त्वदर्श आद्या भविष्यन्ति ऋषयः तदा ॥३१॥

तदा सुकर्म	उस समय सुकर्म,	**निर्मोक**	निर्मोक,
सुत्राम	सुत्राम,	**तत्त्वदर्श**	तत्त्वदर्श
संज्ञा देवाः	नामक देवता,	**आद्या ऋषयः**	आदि सप्तर्षि
दिवस्पतिः	दिवस्पति नामक	**भविष्यन्ति**	होंगे ॥३१॥
इन्द्रः	इन्द्र		

देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः ।
योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां सम्भविष्यति ॥३२॥

देवहोत्रस्य तनयः उपहर्ता दिवस्पतेः योगेश्वरः हरेः अंशः बृहत्यां सम्भविष्यति ॥३२॥

देवहोत्रस्य	देवहोत्रका	**सम्भविष्यति**	उत्पन्न होगा,
तनयः	पुत्र	**दिवस्पतेः**	वह दिवस्पति
हरेः अंशः	श्रीहरिका अंश	**उपहर्ता**	(इन्द्रत्व) देनेवाला
योगेश्वरः	योगेश्वर नामसे		होगा ॥३२॥
बृहत्यां	बृहतीसे		

मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति ।
उरुगम्भीरबुद्ध्याद्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः ॥३३॥

मनुः वा इन्द्र सावर्णिः चतुर्दशम एष्यति उरु गम्भीर बुद्धि आद्या इन्द्र सावर्णि वीर्यजाः ॥३३॥

चतुर्दशम मनुः	चौदवां मनु	**गम्भीरबुद्धि**	गम्भीरबुद्धि
वा	तो	**आद्या**	आदि
इन्द्रसावर्णिः	इन्द्रसावर्णि	**इन्द्रसावर्णि**	इन्द्रसावर्णिके
एष्यति	आवेगा	**वीर्यजाः**	पुत्र होंगे ॥३३॥
उरु	उरु,		

पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति ।
अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः ॥३४॥

पवित्राः चाक्षुषा देवाः शुचिः इन्द्रः भविष्यति अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धः मागध आद्याः तपस्विनः ॥३४॥

पवित्राः चाक्षुषा	पवित्र, चाक्षुष	**शुचिः शुद्धः**	शुचि, शुद्ध,
देवाः	देवता होंगे,	**मागध आद्याः**	मागध आदि
शुचिः इन्द्रः	शुचि नामक इन्द्र	**तपस्विनः**	तपस्वी (सप्तर्षि)
भविष्यति	होंगे,		होंगे ॥३४॥
अग्निर्बाहुः	अग्नि बाहु,		

सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः ।
वितानायां महाराज क्रियातन्तून्वितायिता ॥३५॥

सत्रायणस्य तनयः बृहद् भानुः तदा हरिः वितानायां महाराज क्रियातन्तून् वितायिता ॥३५॥

महाराज	महाराज !	**हरिः**	श्रीहरि
तदा	उस मन्वन्तरमें	**बृहद् भानुः**	बृहद्भानु नामसे
सत्रायणस्य	सत्रायणके	**क्रियातन्तून्**	कर्मकाण्डका
वितानायां	वितानासे हुए	**वितायिता**	विस्तार करनेवाले
तनयः	पुत्र		होंगे ॥३५॥

राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ।
प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥३६॥

राजन् चतुर्दश एतानि त्रिकाल अनुगतानि ते प्रोक्तानि येभिः मितः कल्पः युगसाहस्र पर्ययः ॥३६॥

राजन्	राजन् !	**युगसाहस्र**	सहस्र युगों
त्रिकाल	तीनों कालोंमें		(चतुर्युगियों) का
अनुगतानि	होनेवाले	**पर्ययः**	परिमित काल (एक
एतानि चतुर्दश	ये चौदह मन्वन्तर		कल्प)
ते प्रोक्तानि	तुम्हें सुना दिये,	**मितः**	मापा जाता है
येभिः	इन्हींसे		॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे
मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

राजोवाच–

मन्वन्तरेषु भगवन्यथा मन्वादयस्त्विमे ।
यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥

मन्वन्तरेषु भगवन् यथा मनु आदयः तु इमे यस्मिन् कर्मणि ये येन नियुक्ताः तत् वदस्व मे ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	ये यस्मिन्	जो जिस
इमे मनु आदयः	ये मनु आदि	कर्मणि	कर्ममें
तु	तो	नियुक्ताः	लगाये गये हैं
मन्वन्तरेषु	मन्वन्तरोंमें	तत् मे वदस्व	वह मुझे बतलाइये ॥१॥
यथा येन	जैसे जिसके द्वारा		

श्रीशुक उवाच–*

मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते ।
इन्द्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥

मनवः मनुपुत्राः च मुनयः च महीपते इन्द्राः सुरगणाः च एव सर्वे पुरुष शासनाः ॥२॥

महीपते	राजन् !	इन्द्राः	इन्द्र
मनवः च	मनु तथा	सुरगणाः एव	देवगण भी
मनुपुत्राः	मनुके पुत्र,	सर्वे पुरुष	सब परम पुरुषसे
च मुनयः	और सप्तर्षि एवं	शासनाः	शासित हैं ॥२॥

*यहाँ गीता प्रेसकी प्रतिमें 'ऋषिरुवाच' है ।

यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप ।
मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः ॥ ३ ॥

यज्ञ आदयः याः कथिताः पौरुष्यः तनवः नृप मनु आदयः जगत् यात्रां नयन्ति आभिः प्रचोदिताः ॥३॥

नृप	राजन् !	**आभिः**	इन्हींसे
याः यज्ञ आदयः	जो यज्ञ आदि	**प्रचोदिताः**	प्रेरित होकर
पौरुष्यः	परम पुरुषके	**मनु आदयः**	मनु आदि
तनवः	अवतार	**जगत् यात्रां**	संसार-व्यवहारको
कथिताः	बतलाये गए	**नयन्ति**	चलाते हैं ॥३॥

चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्ताञ्छ्रुतिगणान्यथा ।
तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥

चतुः युगान्ते कालेन ग्रस्तान् श्रुति गणान् यथा तपसा ऋषयः अपश्यन् यतः धर्मः सनातनः ॥४॥

चतुः युगान्ते	चारों युगोंका अन्त होनेपर	**यथा पश्यन्**	यथावत देखते (साक्षात् करते) हैं,
कालेन	समयके द्वारा	**यतः सनातनः**	जिससे सनातन
ग्रस्तान्	ग्रस्त (लुप्त) हुई	**धर्मः**	धर्म (चलता है) ॥४॥
श्रुति गणान्	श्रुतियोंको		
तपसा ऋषयः	तपस्यासे ऋषिगण		

ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः ।
युक्ताः सञ्चारयन्त्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप ॥ ५ ॥

ततः धर्मं चतुष्पादं मनवः हरिणा उदिताः युक्ताः सञ्चारयन्ति अद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप ॥५॥

नृप	राजन् !	**उदिताः**	प्रेरणासे
ततः हरिणा	तब श्रीहरिकी	**युक्ताः**	सावधानी पूर्वक

स्वे स्वे काले	अपने-अपने समयमें	अद्धा	पूर्णतः
मनवः महीं	मनु लोग पृथ्वीपर	सञ्चारयन्ति	सञ्चार करते हैं ॥५॥
चतुष्पादं	चार चरणोंवाले		
धर्मं	धर्मका		

पालयन्ति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः ।
यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥ ६ ॥

पालयन्ति प्रजा पाला यावत् अन्तं विभागशः यज्ञ भाग भुजः देवा ये च तत्र अन्विताः च तैः ॥६॥

पाला	मनुपुत्र	च ये तत्र	तथा जो वहां पंच-यज्ञमें
विभागशः	पुत्र-पौत्रादिके क्रम विभाग द्वारा	अन्विताः	ऋषि, पितरादि साथ होते हैं,
यावत् अन्तं	मन्वन्तरके अन्त तक	तैः च	उनके साथ ही
प्रजा	प्रजाका	यज्ञ भाग भुजः	यज्ञका भाग भोगते हैं ॥६॥
पालयन्ति	पालन करते हैं		
देवा	देवता		

इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् ।
भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन् कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७ ॥

इन्द्रः भगवता दत्तां त्रैलोक्य श्रियं ऊर्जितां भुञ्जानः पाति लोकान् त्रीन् कामं लोके प्रवर्षति ॥७॥

भगवता दत्तां	भगवान्‌की दी हुई	त्रीन् लोकान्	तीनों लोकोंकी
ऊर्जितां	उत्कृष्ट	पाति	रक्षा करते हैं
त्रैलोक्य श्रियं	त्रिलोकीकी लक्ष्मी-को	लोके कामं	तथा संसारमें पर्याप्त
भुञ्जानः इन्द्रः	भोगते हुए इन्द्र	प्रवर्षति	वर्षा करते हैं ॥७॥

ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ।
ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूपधृक् ॥ ८ ॥

ज्ञानं च अनुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूप धृक् ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेश रूपधृक् ॥८॥

अनुयुगं हरिः	प्रत्येक युगमें श्रीहरि	**कर्म**	कर्मकाण्डका,
सिद्धस्वरूप	सिद्धस्वरूप	**योगेश**	योगेश्वरका
धृक्	धारण करके	**रूपधृक्**	रूप धारण करके
ज्ञानं च	ज्ञानका तथा	**योगं ब्रूते**	योगका उपदेश करते हैं ॥८॥
ऋषिरूपधरः	ऋषिरूप धारण करके		

सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात् स्वराड्वपुः ।
कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥

सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून् हन्यात् स्वराट् वपुः कालरूपेण सर्वेषां अभावाय पृथक् गुणः ॥९॥

प्रजेश रूपेण	प्रजापति रूपसे	**गुणः**	गुण (सर्दी-गर्मी आदि) से
सर्गं	सृष्टि करते हैं	**कालरूपेण**	कालरूपमें
स्वराट् वपुः	सम्राट् रूपमें	**सर्वेषां**	सबके नाशका
दस्यून् हन्यात्	दस्युओंको मारते हैं,	**अभावाय**	कारण होते हैं ॥९॥
पृथक्	अलग-अलग		

स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया ।
विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥१०॥

स्तूयमानः जनैः एभिः मायया नामरूपया विमोहित आत्मभिः नाना दर्शनैः न च दृश्यते ॥१०॥

एभिः	इस	**नाना दर्शनैः**	अनेक दर्शनशास्त्रों द्वारा
नामरूपया	नाम-रूपात्मिका	**स्तूयमानः**	वर्णित होनेपर भी
मायया	मायासे	**दृश्यते न च**	जाने नहीं ही जाते हैं ॥१०॥
विमोहित	विमोहित		
आत्मभिः जनैः	चित्त लोगों द्वारा		

एतत् कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ।
यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥११॥

एतत् कल्प विकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितं यत्र मन्वन्तराणि आहुः चतुर्दश पुराविदः ॥११॥

एतत् कल्प	इस प्रकार महाकल्प और	पुराविदः	पुरातत्त्व-ज्ञाताओंने
		चतुर्दश	चौदह
विकल्पस्य	अवान्तर कल्पोंका	मन्वन्तराणि	मन्वन्तर
प्रमाणं	स्वरूप	आहुः	(प्रत्येक अवान्तर कल्पमें) बतलाये हैं ॥११॥*
परिकीर्तितं	बतला दिया		
यत्र	जिनमें		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

---

*यहां कल्पका अर्थ ब्रह्माजीकी पूरी आयु दो परार्ध है और विकल्पका अर्थ उनका एक दिन है।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

राजोवाच

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ।
भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥ १ ॥

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्मात् हरिः अयाचत भूत्वा ईश्वरः कृपणवत् लब्ध अर्थः अपि बबन्धतम् ॥१॥

ईश्वरः	जगदीश्वर	**अयाचत**	मांगी
भूत्वा	होकर भी	**लब्ध अर्थः**	मनोरथ प्राप्त होनेपर
कृपणवत्	दरिद्रके समान		
हरिः बलेः	श्रीहरिने बलिसे	**अपि**	भी
पदत्रयं भूमेः	तीन-पद पृथ्वी	**तं बबन्ध**	उसे क्यों बन्धनमें डाला ॥१॥
कस्मात्	क्यों		

एतद् वेदितुमिच्छामो महत् कौतूहलं हि नः ।
यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥

एतत् वेदितुं इच्छामः महत् कौतूहलं हि नः यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं च अपि अनागसः ॥२॥

पूर्णस्य	पूर्णकाम	**एतत् नः**	यह हम
यज्ञेश्वरस्य	यज्ञेश्वरका (भिक्षा मांगना)	**वेदितुं**	सब जानना
		इच्छामः	चाहते हैं
अनागसः अपि	निरपराधको भी	**हि महत्**	क्योंकि हमें बहुत
बन्धनं च	बाँधना भी	**कौतूहलं**	कुतूहल है ॥२॥

श्रीशुक उवाच—

पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो
हीन्द्रेण राजन्भृगुभिः स जीवितः ।
सर्वात्मना तानभजद् भृगून्बलिः
शिष्यो महात्मार्थनिवेदनेन ॥ ३ ॥

पराजितः श्रीः असुभिः च हापितः हि इन्द्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः सर्वं आत्मना तान् अभजत् भृगून् बलिः शिष्यः महात्मा अर्थ निवेदनेन ॥३॥

राजन्	राजन्
इन्द्रेण	इन्द्र द्वारा
पराजितः	पराजित
च श्रीः	तथा लक्ष्मी एवं
असुभिः	प्राणोंसे
हापितः स	हीन किये गये वे
भृगुभिः	क्योंकि वे शुक्राचार्य द्वारा
जीवितः	जीवित कर दिये गये थे
शिष्यः	अतः उनके शिष्य
महात्मा बलिः	महात्मा बलि
सर्वं आत्मना	सब प्रकारसे
अर्थ निवेदनेन	सर्व स्वसमर्पण करके
तान् भृगून्	उन भृगुनन्दन शुक्राचार्यजी
अभजत्	सेवा करने लगे ॥३॥

तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा
अयाजयन्विश्वजिता त्रिणाकम् ।
जिगीषमाणं विधिनाभिषिच्य
महाभिषेकेण महानुभावाः ॥ ४ ॥

तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा अयाजयन् विश्वजिता त्रिणाकं जिगीषमाणं विधिना अभिषिच्य महाभिषेकेण महानुभावाः ॥४॥

महानुभावाः	महान् प्रभावशाली	महाभिषेकेण	महाअभिषेक विधि-
भृगवः ब्राह्मणा	भृगुवंशी ब्राह्मणोंने		से
प्रीयमाणा	प्रसन्न होकर	अभिषिच्य	अभिषेक करके
त्रिणाकं	स्वर्ग विजयकी		उनसे
जिगीषमाणं	कामनासे	विश्वजिता	विश्वजित
तं विधिना	उन बलिकी विधि पूर्वक	अयाजयन्	यज्ञ कराया ॥४॥

ततो रथः काञ्चनपट्टनद्धो
हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ।
ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो
हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥ ५ ॥

ततः रथः काञ्चन पट्टनद्धः हयाः च हर्यश्व तुरङ्ग वर्णाः ध्वजः च सिंहेन विराजमानः हुताशन आदास हविर्भिः इष्टात् ॥५॥

ततः हविर्भिः	तब हविसे	वर्णाः	रंगवाले
इष्टात् हुताशन	पूजित अग्निने	हयाः च	घोड़े तथा
काञ्चन	स्वर्णकी	सिंहेन	सिंहके
पट्टनद्धः	चद्दरसे मढ़ा	विराजमानः	चिह्नसे सुशोभि
रथः च	रथ और	ध्वजः आदास	ध्वजा प्रदान किया
हर्यश्व तुरंग	इन्द्रके घोड़ोंके समान		॥५॥

धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं
तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ।
पितामहस्तस्य ददौ च माला-
मम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥

धनुः च दिव्यं पुरट उपनद्धं तूणाः अरिक्तौ कवचं च दिव्यं पितामहः तस्य ददौ च मालां अम्लान पुष्पां जलजं च शुक्रः ॥६॥

पुरट उपनद्धं	स्वर्ण जटित	अम्लान	कभी न कुम्हलाने-
दिव्यं धनुः च	दिव्य धनुष और		वाले
अरिक्तौ तूणाः	दो अक्षय तरकश	पुष्पां	पुष्पोंकी
च दिव्यं कवचं	तथा दिव्य कवच	मालां ददौ च	माला दी तथा
	(दिया)	शुक्रः	शुक्राचार्यने
च पितामहः	एवं पितामह	जलजं	शंख दिया ॥६॥
तस्य	(प्रह्लादने) उनको		

एवं स विप्रार्जितयोधनार्थ-
स्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् ।
प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः
प्रह्लादमामन्त्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥

एवं स विप्र अर्जित योधन अर्थः तैः कल्पितः स्वस्त्ययनः अथ विप्रान् प्रदक्षिणीकृत्य कृत प्रणामः प्रह्लादं आमन्त्र्य नमः चकार ॥७॥

एवं विप्र	इस प्रकार ब्राह्मणों	विप्रान्	ब्राह्मणोंकी
	द्वारा	प्रदक्षिणीकृत्य	प्रदक्षिणा कर उन्हें
अर्जित	प्राप्त	कृत प्रणामः	प्रणाम करनेके
योधन अर्थः	युद्ध-सामग्री तथा		पश्चात्
तैः स्वस्त्ययनः	उनके ही द्वारा	प्रह्लादं	प्रह्लादजीसे
	स्वस्ति वाचन	आमन्त्र्य	अनुमति लेकर
कल्पितः	किये जानेपर	नमः चकार	उन्हें नमस्कार
अथ स	फिर उन्होंने		किया ॥७॥

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः ।
सुस्रग्धरोऽथ संनह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥ ८ ॥

अथ आरुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः सुस्रक् धरः अथ संनह्य धन्वी खड्गी धृत इषुधिः ॥८॥

अथ भृगुदत्तं	फिर भृगुवंशी ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त	**अथ संनह्य**	फिर कवच धारण किया,
दिव्यं रथं	दिव्य रथपर	**धन्वी खड्गी**	धनुष, तलवार तथा
महारथः	महारथी	**धृत इषुधिः**	तरकश धारण
आरुह्य	(बलि) चढ़कर		किया ॥८॥
सुस्रक् धरः	उत्तम माला धारण करके		

हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९ ॥

हेम अङ्गद लसत् बाहुः स्फुरन् मकरकुण्डलः रराज रथमारूढः धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥९॥

हेम अङ्गद	स्वर्णके बाजूबन्दसे	**धिष्ण्यस्थ**	अग्नि कुण्डमें
लसत् बाहुः	भुजाएँ सुशोभित थीं		प्रज्वलित
मकरकुण्डलः	मकराकृति कुण्डल	**हव्यवाट् इव**	अग्निके समान
स्फुरन्	चमक रहे थे,	**रराज**	शोभित हुए ॥९॥
रथमारूढः	रथपर बैठकर		

तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः ।
पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥१०॥

तुल्य ऐश्वर्य बल श्रीभिः स्वयूथैः दैत्ययूथपैः पिबद्भिः इव खं दृक्भिः दहद्भिः परिधीन् इव ॥१०॥

खं इव	आकाशको मानो	**आत्म तुल्य**	अपने समान
पिबद्भिः	पी जायँगे	**ऐश्वर्य बल**	ऐश्वर्य, बल,
दृक्भिः	नेत्रोंसे	**श्रीभिः**	धनवाले
परिधीन्	दिशाओंको	**दैत्ययूथपैः**	दैत्य-सेनायकों रूपी
दहद्भिः इव	मानो भस्म कर देंगे ऐसे	**स्वयूथैः**	अपने दलसे ॥१०॥

वृतो विकर्षन् महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः ।
ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन्निव रोदसी ॥११॥

वृतः विकर्षन् महतीं आसुरीं ध्वजिनीं विभुः ययाः इन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन् इव रोदसी ॥११॥

वृतः	घिरे हुए	रोदसी	पृथ्वीको
विभुः	समर्थ बलि	कम्पयन् इव	कम्पित करते हुएसे
महतीं आसुरीं	विशाल आसुरी	स्वृद्धां इन्द्रपुरीं	समृद्ध इन्द्रपुरीकी ओर
ध्वजिनीं	सेनाको	ययाः	गये ॥११॥
विकर्षन्	साथ लिए		

रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥१२॥

रम्यां उपवन उद्यानैः श्रीमद्भिः नन्दन आदिभिः कूजत् विहङ्ग-मिथुनैः गायन् मत्त मधुव्रतैः ॥१२॥

श्रीमद्भिः	शोभाशाली	विहङ्ग-मिथुनैः	पक्षियोंके जोड़े
नन्दन आदिभिः	नन्दन आदि	कूजत्	कलख करते तथा
उपवन	पुष्प-वाटिका	मत्त मधुव्रतैः	मतवाले भ्रमर
उद्यानैः	तथा बगीचोंसे	गायन्	गुंजार करते थे ॥१२॥
रम्यां	रमणीय (जिसमें)		

प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः ।
हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः ।
नलिन्यो यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥१३॥

प्रवाल फल पुष्प उरु भार शाखा अमरद्रुमैः हंस सारस चक्राह्व कारण्डव कुल आकुलाः नलिन्यः यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥१३॥

प्रवाल फल	पल्लव, फल,	भार	भारसे (झुकी)
पुष्प	पुष्पोंके	शाखा	डालोंवाले

अमरद्रुमैः	कल्पवृक्षोंसे (युक्त) हैं	कुल आकुलाः	समूहसे हलचलमय
		नलिन्यः यत्र	सरोवरोंमें जहां
हंस सारस	हंस, सारस,	सुरसेविताः	देवताओंसे सत्कृता
चक्राह्व	चकोर,	प्रमदाः क्रीडन्ति	स्त्रियां क्रीडा करती हैं ॥१३॥
कारण्डव	कारण्डव		

आकाशगङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया ।
प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥१४॥

आकाश-गङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया प्राकारेण अग्नि वर्णेन स अट्टालेन उन्नतेन च ॥१४॥

परिखभूतया	खाईं की भांति बनी	उन्नतेन	उच्च
देव्या आकाश	देवी आकाश-	अग्नि वर्णेन	अग्निवर्ण
गङ्गया	गङ्गासे	प्राकारेण वृतां	परकोटेसे घिरी हुई ॥१४॥
च	तथा		
स अट्टालेन	अट्टालिकाओं सहित		

रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ।
जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥१५॥

रुक्मपट्ट कपाटैः च द्वारैः स्फटिक गोपुरैः जुष्टां विभक्त प्रपथां विश्वकर्म विनिर्मितां ॥१५॥

विश्वकर्म	विश्वकर्मा द्वारा	गोपुरैः	तोरण द्वारोंसे- युक्त है,
विनिर्मितां	बनायी हुई		
रुक्मपट्ट	स्वर्ण-पत्रसे	विभक्त	(जिसमें) पृथक-पृथक
कपाटैः	मढ़े किवाड़ोंवाले	प्रपथां	मार्ग
द्वारैः च	द्वारों तथा		बने हैं ॥१५॥
स्फटिक	स्फटिक-मणिके		

सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् ।
शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

सभा चत्वर रथ्या आढ्यां विमानैः न्यर्बुदैः युतां शृङ्गाटकैः मणिमयैः वज्र विद्रुम वेदिभिः ॥१६॥

सभा चत्वर	सभा-भवन, चौराहों	शृङ्गाटकैः	कंगूरों तथा
रथ्या आढ्यां	गलियोंसे भरी हुई,	वज्र विद्रुम	हीरे और मूंगेकी
न्यर्बुदैः	दस करोड़	वेदिभिः	वेदियोंसे (शोभित)
विमानैः युतां	विमानोंसे युक्त है,		है ॥१६॥
मणिमयैः	मणिमय		

यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ।
भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥१७॥

यत्र नित्य वयः रूपाः श्यामा विरजवाससः भ्राजन्ते रूपवत् नार्याः हि अर्चिभिः इव वह्नयः ॥१७॥

यत्र नित्य	जहाँ नित्य	अर्चिभिः	ज्वालासे युक्त
रूपाः	नव-यौवना	वह्नयः इव	अग्निके समान
श्यामा वयः	षोडश-वर्षीया	हि भ्राजन्ते	निश्चय शोभित
रूपवत् नार्याः	रूपवती नारियां		होती हैं ॥१७॥
विरज वाससः	निर्मल वस्त्र पहिने		

सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्रजाम् ।
यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥१८॥

सुरस्त्री केश विभ्रष्ट नव सौगन्धिक स्रजां यत्र आमोदं उप आदाय मार्ग आवाति मारुतः ॥१८॥

सुरस्त्री केश	देवांगनाओंके केशसे	उप आदाय	ग्रहण करके
विभ्रष्ट	गिरी हुई	मारुतः मार्ग	पवन मार्गोंमें
नव सौगन्धिक	नवीन सुगन्धित	आवाति	बहता है ॥१८॥
स्रजां आमोदं	मालाओंकी सुगन्धि		

हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना ।
पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥१९॥

हेमजाल अक्षनिर्गच्छत् धूमेन अगुरुगन्धिना पाण्डुरेण प्रतिच्छन्न मार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥१९॥

हेमजाल	स्वर्णकी जाली लगी	**प्रतिच्छन्न मार्गे**	ढके मार्गोंसे
अक्षनिर्गच्छत्	खिड़कियोंसे निकलते	**सुरप्रियाः**	देव-स्त्रियां
अगुरुगन्धिना	अगुरुकी गन्धवाले	**यान्ति**	जाती हैं ॥१९॥
पाण्डुरेण धूमेन	पीले धुएँसे		

मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभि-
र्नानापताकावलभीभिरावृताम् ।
शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां
वैमानिकस्त्रीकलगीतमंगलाम् ॥२०॥

मुक्ता वितानैः मणिहेम केतुभिः नाना पताका अवलभिः अभिः आवृतां शिखण्डि पारावत भृङ्ग नादितां वैमानिक स्त्री कलगीत मङ्गलाम् ॥२०॥

मुक्ता	मोतीकी झालरोंवाले	**शिखण्डि**	मयूर,
वितानैः	वितानोंसे	**पारावत**	कबूतर तथा
मणि हेम	मणि जटित स्वर्णकी	**भृङ्ग**	भौरोंके शब्दसे
केतुभिः	ध्वजाओंपर लगी	**नादितां**	गूंजती
नाना	अनेक प्रकारकी	**वैमानिक स्त्री**	देवांगनाओंके
पताका	पताकाओंके	**कलगीत**	मनोहर गानसे
अवलिभिः	समूहसे	**मङ्गलां**	मङ्गलमयी ॥२०॥
अभिः आवृतां	चारों ओरसे घिरी हुई,		

मृदंगशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः
सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः ।

नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकै-
मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥२१॥

मृदङ्ग शङ्ख आनक दुन्दुभिः स्वनैः सताल वीणा मुरज अर्ष्टि वेणुभिः नृत्यैः सवाद्यैः उपदेव गीतकैः मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥२१॥

मृदङ्ग शङ्ख	मृदंग, शंख,	सवाद्यैः	वाद्योंके साथ
आनक	आनक तथा	नृत्यैः	नृत्यों एवं
दुन्दुभिः	दुन्दुभीके	गीतकैः	गायनसे
स्वनैः सताल	घोषसे तालयुक्त	मनोरमां	मनोहर
वीणा मुरज	वीणा, मुरज,	स्वप्रभया	अपनी कान्तिसे
अर्ष्टि वेणुभिः	अर्ष्टि, वेणु-वंशीसे और	जितप्रभां	प्रभाकी अधिदेवीको भी जीत लिया है ॥२१॥
उपदेव	उपदेवताओंके		

यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः ।
मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत् ॥२२॥

यां न व्रजन्ति अधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः मानिनः कामिनः लुब्धा एभिः हीना व्रजन्ति यत् ॥२२॥

यां अधर्मिष्ठाः	जहां अधर्मी,	न व्रजन्ति	नहीं जा सकते,
खला भूतद्रुहः	दुष्ट, प्राणिद्रोही,	एभिः हीना	इन (दोषों) से रहित लोग
शठाः मानिनः	ठग, अभिमानी,	यत् व्रजन्ति	जहां जाते हैं ॥२२॥
कामिनः लुब्धा	कामी, लोभी		

तां देवधानीं स वरूथिनीपति-
र्बहिः समन्ताद् रुरुधे पृतन्यया ।
आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं
दध्मौ प्रयुञ्जन्भयमिन्द्रयोषिताम् ॥२३॥

तां देवधानीं स वरूथिनीपतिः बहिः समन्तात् रुरुधे पृतन्यया आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुञ्जन् भयं इन्द्र योषिताम् ॥२३॥

स	उस	**इन्द्र**	फिर इन्द्रकी
वरूथिनीपतिः	सेनापति बलिने	**योषितां**	पत्नियोंको
तां	उस	**भयं प्रयुञ्जन्**	भयभीत करते हुए
देवधानीं	देवराजधानीको	**आचार्यदत्तं**	शुक्राचार्यका दिया
बहिः समन्तात्	बाहर चारों ओरसे	**महास्वनं**	बहुत शब्द करने-वाला
पृतन्यया	सेना द्वारा		
रुरुधे	रोक (घेर) दिया	**जलजं दध्मौ**	शंख बजाया ॥२३॥

मघवांस्तमभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् ।
सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥२४॥

मघवान् तं अभिप्रेत्य बलेः परमं उद्यमं सर्व देवगण उपेतः गुरुं एतत् उवाच ह ॥२४॥

तं बलेः	उस बलिका	**गुरुं उपेतः**	गुरु बृहस्पतिके पास जाकर
परमं उद्यमं	महान उद्योग	**ह एतत् उवाच**	निश्चय यह बोले ॥२४॥
अभिप्रेत्य	जानकर		
मघवान्	इन्द्र		
सर्व देवगण	सब देवताओंके साथ		

इन्द्र उवाच—*

भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेर्नः पूर्ववैरिणः ।
अविषह्यामिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जितः ॥२५॥

भगवन् उद्यमः भूयान् बलेः नः पूर्व वैरिणः अविषह्यं इमं मन्ये केन आसीत् तेजसा ऊर्जितः ॥२५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवन्	भगवन् !	मन्ये	मानता हूँ
नः पूर्वं वैरिणः	हमारे पहिलेके शत्रु	केन तेजसा	किसके तेजसे यह
बलेः भूयान्	बलिका बड़ा भारी	ऊर्जितः	अभिवृद्ध हुआ है
उद्यमः	उद्योग है,		॥२५॥
इमं अविषह्यं	इसे (मैं) असहनीय		

नैनं कश्चित् कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः ।
पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ।
दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥२६॥

न एनं कश्चित् कुतः वा अपि प्रतिव्योढुं अधीश्वरः पिबन् इव मुखेन इदं लिहन् इव दिशः दश दहन् इव दिशः दृक्भिः संवर्त अग्निः इव उत्थितः ॥२६॥

मुखेन इदं	मुखके द्वारा इस संसारको	अधीश्वरः न	समर्थ नहीं है
पिबन् इव	पी जातेके समान	दृक्भि दिशः	नेत्रोंसे दिशाओंको
दिशः दश	दसो दिशाओंको	दहन् इव	जलाता हुआ-सा
लिहन् इव	चाट जातेके समान	संवर्त	प्रलयकालीन
कश्चित् वा	कोई भी या	अग्निः इव	अग्निके समान
कुतः अपि	किसी भी	उत्थितः	उठा आ रहा है
प्रतिव्योढुं	(इसे) रोकनेमें		॥२६॥

ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः ।
ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥२७॥

ब्रूहि कारणं एतस्य दुर्धर्षत्वस्य मत् रिपोः ओजः सहः बलं तेजः यत एतत् समुद्यमः ॥२७॥

एतस्य मत्	इस मेरे	तेजः कारणं	तेजका कारण
रिपोः	शत्रुके	ब्रूहि	बतलाइये
दुर्धर्षत्वस्य	दुर्धर्षताका और	यत एतत्	जिससे यह
ओजः सहः	इन्द्रिय बल, मनोबल,	समुद्यमः	महान् उद्योग कर
बलं	देहबल एवं		रहा है ॥२७॥

बृहस्पतिरुवाच—*

जानामि मघवञ्छत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ।
शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥२८॥

जानामि मघवन् शत्रोः उन्नतेः अस्य कारणं शिष्याय उपभृतं तेजः भृगुभिः ब्रह्मवादिभिः ॥२८॥

मघवन् शत्रोः	इन्द्र ! शत्रुकी	**भृगुभिः**	भृगुवंशी ब्राह्मणोंने
अस्य उन्नतेः	इस उन्नतिका	**शिष्याय तेजः**	शिष्यके लिए तेजक
कारणं जानामि	कारण मैं जानता हूँ	**उपभृतं**	सम्पादन किया है ॥२८॥
ब्रह्मवादिभिः	वेदवादी		

भवद्विधो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ।
नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ॥२९॥

भवत् विधः भवान् वा अपि वर्जयित्वा ईश्वरं हरिं न अस्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ॥२९॥

ईश्वरं हरिं	सर्वेश्वर श्रीहरिको	**जनाः**	साधारण लोग,
वर्जयित्वा	छोड़कर	**अस्य पुरः**	इसके सामने
भवत् विधः	तुम्हारे समान	**स्थातुं शक्तः**	ठहरनेमें समर्थ
वा भवान् अपि	अथवा तुम स्वयं भी	**न**	नहीं हो ॥२९॥
यथा कृतान्तस्य	जैसे कालके सामने		

तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ।
यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥३०॥

तस्मात् निलयं उत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपं यात कालं प्रतीक्षन्तः यतः शत्रोः विपर्ययः ॥३०॥

---

*यहां अन्य प्रतियोंमें 'गुरुरुवाच' है ।

तस्मात्	इसलिए	कालं	उस समयकी
त्रिविष्टपं	स्वर्गके	प्रतीक्षन्तः	प्रतीक्षा करते हुए
निलयं	घरको	यूयं सर्वे	तुम सब लोग
उत्सृज्य	छोड़कर	यात	कहीं चले जाओ
यतः शत्रोः	जिससे शत्रुका		॥३०॥
विपर्ययः	उलटा समय आवे		

एष विप्रबलोदर्कः सम्प्रत्यूर्जितविक्रमः ।
तेषामेवापमानेन सानुबन्धो विनङ्क्षयति ॥३१॥

एष विप्रबल उदर्कः सम्प्रति ऊर्जित विक्रमः तेषां एव अपमानेन स अनुबन्धः विनङ्क्ष्यति ॥३१॥

विप्रबल	ब्राह्मणोंके बलका	तेषां एव	उन (ब्राह्मणों) का ही
उदर्कः	सूर्योदय होनेके कारण	अपमानेन	अपमान करनेसे
सम्प्रति एष	इस समय यह	स अनुबन्धः	सम्बन्धियों सहित
ऊर्जित विक्रमः	पराक्रम प्राप्त है,	विनङ्क्ष्यति	नष्ट हो जायगा ॥३१॥

श्रीशुक उवाच—*

एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना ।
हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥३२॥

एवं सुमन्त्रित अर्थाः ते गुरुणा अर्थ अनुदर्शिना हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुः गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥३२॥

एवं	इस प्रकार	गुरुणा	गुरुसे
अर्थ अनुदर्शिना	ठीक सच्चा स्वार्थ जाननेवाले	सुमन्त्रित	प्रयोजनका भली प्रकार

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

अर्थाः	विचार करके	गीर्वाणाः	देवता
ते	वे	त्रिविष्टपं	स्वर्ग
कामरूपिणः	इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले	हित्वा	छोड़कर
		जग्मुः	चले गये ॥३२॥

देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम् ।
देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥३३॥

देवेषु अथ निलीनेषु बलिः वैरोचनः पुरीं देवधानीं अधिष्ठाय वशं निन्ये जगत् त्रयम् ॥३३॥

अथ देवेषु निलीनेषु	तब देवताओंके भली प्रकार छिप-जानेपर	पुरीं अधिष्ठाय	पुरीपर अधिकार करके
वैरोचनः	विरोचननन्दन	जगत् त्रयं	त्रिलोकीको
बलिः	बलिने	वशं निन्ये	वशमें कर लिया ॥३३॥
देवधानीं	देवराजधानी		

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ।
शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥३४॥

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः शतेन हयमेधानां अनुव्रतं अयाजयन् ॥३४॥

शिष्यवत्सलाः	शिष्यपर प्रेम रखने-वाले	विश्वजयिनं	विश्व-विजयी
		शिष्यं	शिष्यसे
भृगवः	भृगुवंशी ब्राह्मणोंने	हयमेधानां शतेन	सौ अश्वमेध-यज्ञ
तं अनुव्रतं	उस अनुगत	अयाजयन्	कराने लगे ॥३४॥

ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ।
कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेज उडुराडिव ॥३५॥

ततः तत् अनुभावेन भुवनत्रय विश्रुतां कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेज उडुराड इव ॥३५॥

ततः तत्	तब उन (यज्ञों) के	**कीर्तिं दिक्षु**	कीर्तिको दिशाओंमें
अनुभावेन	प्रभावसे	**वितन्वानः**	फैलाते हुए
भुवनत्रय	त्रिलोक	**उडुराड इव**	चन्द्रमाके समान
विश्रुतां	विख्यात	**स रेज**	वे शोभित हुए ॥३५॥

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥३६॥

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेव उपलम्भितां कृतकृत्यं इव आत्मानं मन्यमानः महामनाः ॥३६॥

कृतकृत्यं इव	कृतकृत्यके समान	**उपलम्भितां**	प्राप्त करायी हुई
आत्मानं	अपनेको	**च स्वृद्धां**	तथा स्वयं बढ़ायी हुई
मन्यमानः	मानते हुए		
महामनाः	उदारचित्त बलि	**श्रियं बुभुजे**	लक्ष्मीको भोगने लगे ॥
द्विजदेव	ब्राह्मण देवताओं द्वारा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्याय: ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमातादितिस्तदा ।
हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाता अदितिः तदा हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यत् अनाथवत् ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**तदा देवमाता**	तब देवताओंकी माता
पुत्रेषु नष्टेषु	पुत्रोंके छिप जानेपर	**अदितिः**	अदिति
त्रिविष्टपे	स्वर्गके	**अनाथवत्**	अनाथाकी भांति
दैत्यैः हृते	दैत्यों द्वारा छीन लिये जानेपर	**पर्यतप्यत्**	संताप करने लगीं ॥१॥

एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् ।
निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥

एकदा कश्यपः तस्य आश्रमं भगवान् अगात् निरुत्सवं निरानन्दं समाधेः विरतः चिरात् ॥२॥

चिरात्	बहुत समयसे	**तस्य निरुत्सवं**	उसके उत्सवहीन,
समाधेः	समाधिमें रहकर	**निरानन्दं**	आनन्दहीन
विरतः	उपरत हुए	**आश्रमं**	आश्रममें
भगवान् कश्यपः	भगवान् कश्यप	**अगात्**	आये ॥२॥

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ।
सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥

स पत्नीं दीनवदनां कृत आसन परिग्रहः सभाजितः यथा न्यायं इदं आह कुरुद्वह ॥३॥

कुरुद्वह	कुरुनन्दन परीक्षित !	परिग्रहः कृतः	स्वीकार करके
यथा न्यायं	नियमानुसार	दीनवदनां	खिन्नमुखी
सभाजितः	सत्कार पाकर	पत्नीं	पत्नीसे
आसन	आसन	स इदं आह	वे यह बोले ॥३॥

कश्यप उवाच—*

अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनाऽऽगतम् ।
न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

अपि अभद्रं न विप्राणां भद्रे लोके अधुना आगतं न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योः छन्द अनुवर्तिनः ॥४॥

भद्रे	कल्याणी !	अनुवर्तिनः	रहनेवाले
विप्राणां	ब्राह्मणोंका तो कहीं	लोकस्य न	लोकका तो नहीं
न	नहीं,	अधुना	इस समय कोई
अपि	अथवा	अभद्रं	अमङ्गल
धर्मस्य न	धर्मका तो नहीं या	आगतं	आ गया है ॥४॥
मृत्योः छन्द	मृत्युके वशमें		

अपि वाकुशलं किञ्चित् गृहेषु गृहमेधिनि ।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥ ५ ॥

अपि वा अकुशलं किञ्चित् गृहेषु गृहमेधिनि धर्मस्य अर्थस्य कामस्य यत्र योगः हि अयोगिनाम् ॥५॥

गृहमेधिनि	गृहस्वामिनी !	यत्र गृहेषु	जिस घरमें (रहनेसे)
हि	क्योंकि	अयोगिनां	योग न करनेवालों-को भी

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

योगः	योगका फल मिल जाता है, वहां	किञ्चित्	कुछ
		अपि वा	भी क्या
धर्मस्य अर्थस्य	धर्मका, अर्थका या	अकुशलं	हानि हुई है ॥५॥
कामस्य	कामके मिलनेमें		

अपि वातिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया ।
गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥ ६ ॥

अपि वा अतिथयः अभि एत्य कुटुम्ब आसक्तया त्वया गृहात् अपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥६॥

वा क्वचित्	अथवा कभी	प्रत्युत्थानेन	स्वागतमें उठकर खड़े होनेसे
कुटुम्ब	कुटुम्बमें		
आसक्तया	आसक्त	अपि	भी
त्वया गृहात्	तुम्हारे द्वारा घरसे	अपूजिता	सत्कार पाये बिना
अतिथयः	अतिथि	याताः	चले गये ॥६॥
अभि एत्य	यहां आकर		

गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ।
यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥

गृहेषु येषु अतिथयः न अर्चिताः सलिलैः अपि यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराज गृह उपमाः ॥७॥

येषु गृहेषु	जिन घरोंमें	नूनं ते	निश्चय वे
अतिथयः	अतिथिगण	फेरुराज	शृगालके
सलिलैः अपि	जलसे भी	गृह उपमा	घर (बिल) के समान हैं ॥७॥
अर्चिताः न	सत्कृत हुए बिना		
यदि निर्यान्ति	यदि चले जाते हैं तो		

अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति ।
त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ८ ॥

अपि अग्नयः तु वेलायां न हुता हविषा सति त्वया उद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥८॥

भद्रे	कल्याणी !	त्वया वेलायां	तुमने (हवन) समय पर
मयि प्रोषिते	मेरे प्रवासमें चले जानेपर	अग्नयः तु	अग्निको तो
कर्हिचित् अपि	किसी समय भी	हविषा सति	हविष्य होनेपर भी
उद्विग्नधिया	उद्विग्न चित्त होनेसे	हुता न	कहीं आहुति न दी हो ॥८॥

यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः ।
ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥ ९ ॥

यत् पूजया कामदुघानि याति लोकान् गृह अन्वितः ब्राह्मणः अग्निः च वै विष्णोः सर्वदेव आत्मनः मुखम् ॥९॥

कामदुघानि	सब कामना पूर्ण करनेवाले	वै ब्राह्मणः	निश्चय वे ब्राह्मण
यत् पूजया	जिनकी पूजासे	च अग्निः	तथा अग्नि
गृह अन्वितः	गृहस्थ पुरुष	सर्वदेव	सर्वदेव
लोकान् याति	उत्तम लोकोंको जाता है ।	आत्मनः	स्वरूप
		विष्णोः	भगवान् विष्णुके
		मुखं	मुख हैं ॥९॥

अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि ।
लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥१०॥

अपि सर्वे कुशलिनः तव पुत्रा मनस्विनि लक्षये अस्वस्थं आत्मानं भवत्या लक्षणैः अहम् ॥१०॥

मनस्विनि	मनस्विनी !	अस्वस्थं	अस्वस्थ
तव सर्वे पुत्रा	तुम्हारे सब पुत्र	आत्मानं	चित्त
कुशलिनः अपि	कुशलसे तो हैं ?	लक्षये	लक्षित कर रहा हूँ ॥१०॥
अहं लक्षणैः	मैं लक्षणोंसे		
भवत्या	तुमको		

अदितिरुवाच—

भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ।
त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥११॥

भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन् धर्मस्य अस्य जनस्य च त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन् गृहा इमे ॥११॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन !	**इमे गृहा**	ये घर
गृहमेधिन्	गृहस्वामी !	**त्रिवर्गस्य**	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म,
द्विजगवां	ब्राह्मणों, गायों,		काम) के
धर्मस्य	धर्मका	**परं क्षेत्रं**	मुख्य स्थान (यथा-
च अस्य जनस्य	तथा इस लोकका		वत्) हैं ॥११॥
भद्रं	कुशल है,		

अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ।
सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥१२॥

अग्नयः अतिथयः भृत्या भिक्षवः ये च लिप्सवः सर्वं भगवतः ब्रह्मन् अनुध्यानात् न रिष्यति ॥१२॥

ब्रह्मन् भगवतः	ब्रह्मन् ! भगवन्	**च ये लिप्सवः**	तथा जो दूसरे
अनुध्यानात्	आपका बराबर		चाहनेवाले
	स्मरण रहनेसे	**भिक्षवः**	भिक्षुक हैं वे
अग्नयः	अग्नि,	**रिष्यति न**	खाली (हाथ) नहीं
अतिथयः	अतिथि,		जाते ॥१२॥
भृत्या	सेवक-वर्ग		

को नु मे भगवन्कामो न सम्पद्येत मानसः ।
यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते ॥१३॥

कः नु मे भगवन् कामः न सम्पद्येत मानसः यस्या भवान् प्रजाअध्यक्ष एवं धर्मान् प्रभाषते ॥१३॥

भगवन्	भगवन्	नु मे	भला मेरी
भवान्	आप	कः मानसः	कौन-सी मानसिक
प्रजाध्यक्ष	प्रजापति	कामः न	कामना नहीं
यस्या एवं धर्मान् प्रभाषते	जिसको इस प्रकार धर्मोपदेश करते हैं	सम्पद्येत	पूरी होगी ॥१३॥

तवैव मारीच मनःशरीरजाः
प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः ।
समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो
तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥१४॥

तव एव मारीच मनः शरीर-जाः प्रजा इमाः सत्त्व रजः तमः जुषः समः भवान् तासु असुर आदिषु प्रभो तथा अपि भक्तं भजते महेश्वरः ॥१४॥

मारीच	मरीचि-नन्दन !	आदिषु	आदिके प्रति
सत्त्व रजः तमः	सत्त्व, रज, तम	भवान् समः	आप समान हैं,
जुषः	गुणोंसे युक्त	प्रभो तथा अपि	प्रभो ! ऐसा होनेपर भी
इमाः प्रजा	यह (सम्पूर्ण) प्रजा	महेश्वरः	(स्वयं) महेश्वर भी
तव एव	आपके ही	भक्तं	अपने भक्तोंकी
मनः शरीर-	मन या शरीरसे	भजते	अनुकूलता रखते
जाः	उत्पन्न है,		हैं ॥१४॥
तासु असुर	उन असुर		

तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत ।
हृतश्रियो हृतस्थानान्सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥१५॥

तस्मात् ईश भजन्त्या मे श्रेयः चिन्तय सुव्रत हृतश्रियः हृत स्थानान् सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥१५॥

तस्मात् ईश	इसलिए समर्थ	प्रभो	स्वामी,
सुव्रत	उत्तम व्रतवाले	मे भजन्त्या	मुझ सेवा करने-वालीके

श्रेयः चिन्तय	हितका विचार कीजिए,	हृत स्थानान्	पदच्युत किये गये
सपत्नैः	शत्रुओं द्वारा	नः पाहि	हम लोगोंकी रक्षा कीजिए ॥१५॥
हृतश्रियः	श्रीहीन		

परैर्विवासिता साहं मग्ना व्यसनसागरे ।
ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥१६॥

परैः विवासिता स अहं मग्ना व्यसन सागरे ऐश्वर्यं श्रीः यशः स्थानं हृतानि प्रबलैः मम ॥१६॥

स अहं	वह मैं	मम ऐश्वर्यं	मेरा ऐश्वर्य
परैः	शत्रुओं द्वारा	श्रीः यशः	लक्ष्मी, यश,
विवासिता	निर्वासिता	स्थानं	स्थान
व्यसन सागरे	दुःखके समुद्रमें	प्रबलैः	बलवान (दैत्यों) ने
मग्ना	डूब रही हूँ	हृतानि	छीन लिया है ॥१६॥

यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन् ममात्मजाः ।
तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥१७॥

यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन् मम आत्मजाः तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥१७॥

मम आत्मजाः	मेरे पुत्र	साधो	साधो !
यथा तानि	जैसे उनको	तथा धिया	वैसा अपनी बुद्धिसे
पुनः प्रपद्येरन्	प्राप्त कर सकें	विधेहि	विधान कीजिए ॥१७॥
कल्याणकृत्तम	कल्याणकर्ताओंमें श्रेष्ठ		

श्रीशुक उवाच—

एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ।
एवं अभ्यर्थितः अदित्या कः तां आह स्मयन् इव ।

एवं	इस प्रकार	कः तां	प्रजापति कश्यपजी
अदित्या	अदितिके द्वारा		उससे
अभ्यर्थितः	प्रार्थना करनेपर	स्मयन् इव	चकित होतेसे
		आह	बोले

कश्यप उवाच—*

अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥१८॥

अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धं इदं जगत् ॥१८॥

अहो	अहो,	इदं जगत्	यह सारा संसार
विष्णोः	भगवान् विष्णुकी	स्नेहबद्धं	स्नेहके बन्धनसे
मायाबलं	मायाका कैसा बल		बँधा है ॥१८॥
	है कि		

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः ।
कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥१९॥

क्व देहः भौतिकः अनात्मा क्व च आत्मा प्रकृतेः परः कस्य के पति पुत्र आद्या मोह एव हि कारणम् ॥१९॥

क्व भौतिकः	कहां तो पञ्चभूतोंसे	आत्मा	आत्मा,
	बना	पति पुत्र आद्या	पति-पुत्र आदि
अनात्मा देहः	अनात्मा (जड़) यह	कस्य के	किसके कौन हैं;
	शरीर	हि मोह एव	लेकिन मोह ही
च क्व प्रकृतेः	और कहाँ प्रकृतिसे	कारणं	इसमें कारण है
परः	परे		॥१९॥

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् ।
सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥२०॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनं सर्वभूत गुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुं ॥२०॥

भगवन्तं	भगवद्भक्त	**जगद्गुरुं**	जगद्गुरु
पुरुषं	पुरुषोंको	**जनार्दनं**	जनार्दन
सर्वभूत	सब प्राणियोंके	**वासुदेवं**	वासुदेवकी
गुहावासं	हृदय गुफामें रहने-वाले	**उपतिष्ठस्व**	उपासना करनी चाहिए ॥२०॥

स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकम्पनः ।
अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥२१॥

स विधास्यति ते कामान् हरिः दीन अनुकम्पनः अमोघा भगवद्-भक्तिः न इतर एति मतिः मम ॥२१॥

स दीन	वे दीनोंपर	**भगवद्भक्तिः**	भगवान्‌की भक्ति
अनुकम्पनः	दया करनेवाले	**अमोघा**	अव्यर्थ है ।
हरिः ते	श्रीहरि तुम्हारी	**इतर**	दूसरा कोई उपाय
कामान्	कामनाएँ	**मम मतिः**	मेरी बुद्धिमें
विधास्यति	पूरी करेंगे,	**न एति**	नहीं आता ॥२१॥

अदितिरुवाच–

केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् ।
यथा मे सत्यसङ्कल्पो विदध्यात् स मनोरथम् ॥२२॥

केन अहं विधिना ब्रह्मन् उपस्थास्ये जगत् पतिं यथा मे सत्य सङ्कल्पः विदध्यात् स मनोरथम् ॥२२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**यथा स**	जिससे वे
अहं केन	मुझे किस	**सत्य सङ्कल्पः**	सत्य संकल्प
विधिना	विधिसे	**मे मनोरथं**	मेरा मनोरथ
जगत् पतिं	जगदीश्वरकी	**विदध्यात्**	पूर्ण करें ॥२२॥
उपस्थास्ये	उपासना करनी चाहिए		

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ।
आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥२३॥

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तत् उपधावनं आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥२३॥

द्विजश्रेष्ठ	द्विजश्रेष्ठ !	सीदन्त्याः मे	कष्टपाती हुई मुझ-
त्वं तत्	आप वह		पर
उपधावनं	उपासनाकी	देवः आशु	(जिससे) भगवान्
विधिं आदिश	विधि बतलाइये		शीघ्र
सह पुत्रकैः	पुत्रोंके साथ	तुष्यति	प्रसन्न हों ॥२३॥

कश्यप उवाच—

एतन्मे भगवान्पृष्ट प्रजाकामस्य पद्मजः ।
यदाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥२४॥

एतत् मे भगवान् पृष्टः प्रजा कामस्य पद्मजः यत् आह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥२४॥

मे प्रजा	मुझ सन्तान	केशवतोषणं	केशवको सन्तुष्ट
कामस्य	चाहनेवाले द्वारा		करनेवाला
भगवान् पद्मजः	भगवान् ब्रह्माने	व्रतं आह	व्रत बतलाया
एतत् पृष्टः	यही पूछनेपर	ते	(वह) तुमसे
यत्	जो (भगवान्)	प्रवक्ष्यामि	बतलाता हूँ ॥२४॥

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः ।
अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥२५॥

फाल्गुनस्य अमले पक्षे द्वादश अहं पयोव्रतः अर्चयेत् अरविन्दाक्षं भक्त्या परमया अन्वितः ॥२५॥

फाल्गुनस्य	फाल्गुन	अन्वितः	सहित
अमले पक्षे	शुक्ल पक्षमें	अरविन्दाक्षं	कमल-नयन भगवान्‌की
द्वादश अहं	बारह दिनका		
पयोव्रतः	पयोव्रत करके	अर्चयेत्	पूजा करे ॥२५॥
परमया भक्त्या	परम भक्ति		

सिनीवाल्यां मृदाऽऽलिप्य स्नायात् क्रोडविदीर्णया ।
यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२६॥

सिनीवाल्यां मृदा आलिप्य स्नायात् क्रोडविदीर्णया यदि लभ्येत वै स्रोतसि एतं मन्त्रं उदीरयेत् ॥२६॥

सिनीवाल्यां	अमावस्याके दिन	स्रोतसि	नदीमें
यदि लभ्येत	यदि मिल सके तो	स्नायात्	स्नान करे,
क्रोडविदीर्णया	सूकरकी खोदी हुई	एतं मन्त्रं	इस मन्त्रको
मृदा आलिप्य	मिट्टी शरीरमें लगाकर	उदीरयेत्	बोले ॥२६॥

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥२७॥

त्वं देवि आदि वराहेण रसायाः स्थानं इच्छता उद्धृतासि नमः तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥२७॥

देवि त्वं	'देवि ! तुम	उद्धृतासि	उठायी (निकाली) गई हो
स्थानं	(प्राणियोंको) स्थान देनेकी	तुभ्यं नमः	तुमको नमस्कार
इच्छता	इच्छावाले	मे पाप्मानं	मेरे पापोंको
आदि वराहेण	आदि वाराह द्वारा	प्रणाशय	नष्ट कर दो ॥२७॥
रसायाः	पातालसे		

निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत् समाहितः ।
अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥२८॥

निर्वर्तित आत्म नियमः देवं अर्चेत् समाहितः अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुराः अपि ॥२८॥

आत्म नियमः	अपने (नित्य-नैमित्तिक) नियम	सूर्ये जले	सूर्यमें, जलमें,
निर्वर्तित	निपटा (पूरा) करके	वह्नौ	अग्निमें
समाहितः	एकाग्र-चित्तसे	गुराः अपि	और गुरुमें भी
अर्चायां	मूर्तिमें,	देवं अर्चेत्	भगवान्‌की पूजा करे ॥२८॥
स्थण्डिले	वेदीपर,		

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥२९॥

नमः तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे सर्वभूत निवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥२९॥

सर्वभूत	समस्त प्राणियोंके	भगवते	भगवान्
निवासाय	निवास-स्थान	वासुदेवाय	वासुदेव
साक्षिणे	सर्व साक्षी	तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार ॥३०॥
महीयसे	सर्व व्यापक		
पुरुषाय	पुरुष		

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥३०॥

नमः अव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधान पुरुषाय च चतुर्विंशत् गुणज्ञाय गुण संख्यान हेतवे ॥३०॥

अव्यक्ताय	अव्यक्त,	गुण संख्यान	गुणोंकी संख्या करनेके
सूक्ष्माय	अति सूक्ष्म,	हेतवे	कारण (सांख्य-शास्त्रकर्ता)
च प्रधान	तथा प्रकृति-	नमः	आपको नमस्कार ॥३०॥
पुरुषाय	पुरुष रूप		
चतुर्विंशत्	चौबीस तत्त्वोंको		
गुणज्ञाय	जाननेवाले		

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे ।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥३१॥

नमः द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुः शृङ्गाय तन्तवे सप्त हस्ताय यज्ञाय त्रयी विद्या आत्मने नमः ॥३१॥

द्विशीर्ष्णे	(प्रायणीय एवं उदयनीय नामक यज्ञीय दो कर्म रूप) दो सिरवाले,	**सप्त हस्ताय**	(गायत्री आदि सात वैदिक छन्द रूप) सात हाथवाले
		नमः	आपको नमस्कार
त्रिपदे	तीन पद (प्रातः, मध्याह्न तथा तृतीय सवन) वाले	**तन्तवे**	परम्परा बनाये रखनेवाले
		यज्ञाय	यज्ञमूर्ति
चतुः	चार (चार वेद रूप)	**त्रयीविद्या**	वेददिद्या
शृङ्गाय	सीगोंवाले,	**आत्मने**	स्वरूप
		नमः	आपको नमस्कार ॥३१॥

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥३२॥

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च सर्व विद्या अधिपतये भूतानां पतये नमः ॥३२॥

शक्तिधराय	शक्तिधर (अर्धनारीश्वर) को	**नमः**	नमस्कार,
		रुद्राय शिवाय	रुद्र तथा शिव स्वरूप
नमः	नमस्कार		
च सर्व	तथा सम्पूर्ण	**नमः**	आपको नमस्कार ॥३२॥
विद्या अधिपतये	विद्याओंके अधीश्वर		
भूतानां पतये	भूतोंके स्वामीको		

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥३३॥

नमः हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगत् आत्मने योग ऐश्वर्य शरीराय नमः ते योग हेतवे ॥३३॥

जगत् आत्मने	जगन्मय	**योग हेतवे**	योगके कारण रूप
प्राणाय	प्राण स्वरूपको	**ते हिरण्यगर्भाय**	आप हिरण्यगर्भको
नमः	नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥३३॥
योग ऐश्वर्य	योग तथा ऐश्वर्य		
शरीराय	मूर्ति		

नमस्त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥३४॥

नमः त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥३४॥

त आदिदेवाय	आप आदिदेवको	**ऋषये नराय**	ऋषिरूप नर
नमः	नमस्कार	**नारायणाय**	नारायण
ते साक्षिभूताय	आप सर्वसाक्षीको	**हरये नमः**	श्रीहरिको नमस्कार ॥३४॥
नमः	नमस्कार		

नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥३५॥

नमः मरकत श्याम वपुषे अधिगत श्रिये केशवाय नमः तुभ्यं नमः ते पीतवाससे ॥३५॥

अधिगत	लक्ष्मीको (वक्षपर)	**नमः**	नमस्कार,
श्रिये	धारण किये	**तुभ्यं केशवाय**	आप केशवको
मरकत	मरकत मणिके समान	**नमः**	नमस्कार,
		ते	आप
श्याम	श्याम	**पीतवाससे**	पीताम्बरधारीको
वपुषे	शरीर आपको	**नमः**	नमस्कार ॥३५॥

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ।
अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥३६॥

त्व सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरद ऋषभ अतः ते श्रेयसे धीराः पादरेणुं उपासते ॥३६॥

त्वं वरद	आप वरदानियोंमें	अतः धीराः	अतः धीर पुरुष
ऋषभ	श्रेष्ठ,	ते पादरेणुं	आपकी चरणरजकी
वरेण्य	वरण करने योग्य,	उपासते	उपासना करते हैं
पुंसा	पुरुषोंको		॥३६॥
सर्ववरदः	सब प्रकारके वरदान देनेवाले हो,		

अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ।
स्पृहयन्त इवामोदं भगवान्मे प्रसीदताम् ॥३७॥

अनु अवर्तन्त यं देवाः श्रीः च तत् पादपद्मयोः स्पृहयन्त इव आमोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥३७॥

तत् पादपद्मयोः	उनके चरण-कमलों-की	यं अनु अवर्तन्त	जिनके पीछे चलते हैं
आमोदं	सुगन्धिकी	भगवान्	वे भगवान्
स्पृहयन्त	लालसा करते हुए	मे प्रसीदतां	मुझपर प्रसन्न हों
इव	के समान		॥३७॥
देवाः च श्रीः	देवता तथा लक्ष्मी		

एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ।
अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥३८॥

एतैः मन्त्रैः हृषीकेशं आवाहन पुरस्कृतं अर्चयेत् श्रद्धया युक्तः पाद्य उपस्पर्शन आदिभिः ॥३८॥

एतैः मन्त्रैः	इन मन्त्रों द्वारा	आदिभिः	आदिके द्वारा
आवाहन	पहिले आवाहन	श्रद्धया युक्तः	श्रद्धा सहित
पुरस्कृतं	करते हुए	हृषीकेशं	भगवान् हृषीकेशकी
पाद्य उपस्पर्शन	पाद्य, आचमन	अर्चयेत्	अर्चना करें ॥३८॥

अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद् विभुम् ।
वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ।
गन्धधूपादिभिश्चार्चेद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥३९॥

अर्चित्वा गन्ध माल्य आद्यैः पयसा स्नपयेत् विभुं वस्त्र उपवीत आभरण पाद्य उपस्पर्शनैः ततः गन्ध धूप आदिभिः च अर्चेत् द्वादशाक्षर विद्यया ॥३९॥

गन्ध माल्य	चन्दन, पुष्पमाला	वस्त्र उपवीत	वस्त्र, यज्ञोपवीत,
आद्यैः	आदिसे	आभरण	आभूषण,
अर्चित्वा	पूजन करके	पाद्य उपस्पर्शनैः	पाद्य, आचमन,
विभुं पयसा	प्रभुको दूधसे	च गन्ध धूप	और चन्दन, धूप
स्नपयेत्	स्नान करावे	आदिभिः	आदि द्वारा
ततः द्वादशाक्षर	फिर द्वादशाक्षर	अर्चेत्	(दुबारा) पूजन करे
विद्यया	मन्त्रसे		॥३९॥

श्रृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ।
सर्सपिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥४०॥

श्रृतं पयसि नैवेद्यं शालि अन्नं विभवे सति सर्सपिः सगुडं दत्त्वा जुहुयात् मूल विद्यया ॥४०॥

सति विभवे	यदि (इतना) वैभव हो तो	नैवेद्यं दत्त्वा	नैवेद्य भोग लगाकर
पयसि श्रृतं	दूधमें पकाये	मूल विद्यया	मूल विद्या (द्वादशाक्षर) से
शालि अन्नं	शालिके चावलोंमें	जुहुयात्	(उस खीरसे) हवन करे ॥४०॥
सर्सपिः सगुडं	घीके साथ गुड भी मिलाकर		

निवेदितं तद् भक्ताय दद्याद् भुञ्जीत वा स्वयम् ।
दत्त्वाऽऽचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥४१॥

निवेदितं तत् भक्ताय दद्यात् भुञ्जीत वा स्वयं दत्त्वा आचमनं अर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥४१॥

तत् निवेदितं	वह भोग लगाया प्रसाद	आचमनं दत्त्वा	आचमन देकर
भक्ताय दद्यात्	भगवद् भक्तोंको दे दें	अर्चित्वा	पूजा करनेके पश्चात्
वा स्वयं	अथवा स्वयं	ताम्बूलं च	पान भी
भुञ्जीत	खाले,	निवेदयेत्	समर्पण करें ॥४१॥

जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद् दण्डवन्मुदा ॥४२॥

जपेत् अष्टोत्तर शतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुं कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेत् दण्डवत् मुदा ॥४२॥

अष्टोत्तर शतं	एक सौ आठ बार	प्रदक्षिणं कृत्वा	प्रदक्षिणा करके
जपेत्	जप करे	मुदा	आनन्दपूर्वक
स्तुतिभिः	स्तुतिके द्वारा	भूमौ	पृथ्वीपर
प्रभुं	प्रभुका	दण्डवत् प्रणमेत्	दडवत् प्रणाम करे ॥४२॥
स्तुवीत	स्तवन करे,		

कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत् ततः ।
द्व्यवरान्भोजयेद् विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥४३॥

कृत्वा शिरसि तत् शेषां देवं उद्वासयेत् ततः द्व्य अवरान् भोजयेत् विप्रान् पायसेन यथा उचितम् ॥४३॥

तत् शेषां	उस पूजनके निर्माल्यको	शिरसि कृत्वा	मस्तकसे लगाकर
		ततः देवं	तब भगवान्का

उद्वासयेत्	विसर्जन करे,	यथा उचितं	यथोचित रूपमें
द्व्य अवरान्	कमसे कम दो	पायसेन	खीरका
विप्रान्	ब्राह्मणोंको	भोजयेत्	भोजन करावे ॥४३॥

भुञ्जीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ।
ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥४४॥

भुञ्जीत तैः अनुज्ञातः शेषं स इष्टः सभाजितैः ब्रह्मचार्य अथ तत् रात्र्यां श्वः भूते प्रथमे अहनि ॥४४॥

सभाजितैः	(उनको दक्षिणादिसे) सत्कृत् करके	अथ तत् रात्र्यां	और उस रातमें
		ब्रह्मचार्य	ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे,
तैः अनुज्ञातः	उनसे अनुमति लेकर	प्रथमे अहनि	पहिले दिनका
स इष्टः	अभीष्ट जनोंके साथ	श्वः भूते	सवेरा होनेपर ॥४४॥
भुञ्जीत	भोजन करे,		

स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ।
पयसा स्नापयित्वार्चेद् यावद्व्रतसमापनम् ॥४५॥

स्नातः शुचिः यथा उक्तेन विधिना सुसमाहितः पयसा स्नापयित्वा अर्चेत् यावत् व्रत समापनम् ॥४५॥

स्नातः शुचिः	स्नानादिसे पवित्र होकर	पयसा	दूधसे
		स्नापयित्वा	स्नान कराकर
सुसमाहितः	अत्यन्त एकाग्र-चित्तसे	यावत् व्रत	व्रतकी
		समापनं	समाप्ति तक
यथा उक्तेन	जैसे पहिले बतलायी गयी है	अर्चेत्	(प्रतिदिन) पूजा करता रहे ॥४५॥
विधिना	उस विधिसे		

पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद् विष्ण्वर्चनादृतः ।
पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥४६॥

पयः भक्षः व्रतं इदं चरेत् विष्णु अर्चन आदृतः पूर्ववत् जुहुयात् अग्निं ब्राह्मणान् च अपि भोजयेत् ॥४६॥

विष्णु	भगवान् विष्णुकी	**पूर्ववत्**	पहिले (दिन) के समान
अर्चन	पूजामें		
आदृतः	आदर बुद्धि रखने-वाला	**अग्नि जुहुयात्**	अग्निमें हवन करता रहे
पयः भक्षः	दुग्ध (खीर) खाता हुआ	**च ब्राह्मणान्**	तथा ब्राह्मणोंको
		अपि	भी
इदं व्रतं चरेत्	यह व्रत करे,	**भोजयेत्**	भोजन कराया करे ॥४६॥

एवं त्वहरहः कुर्याद् द्वादशाहं पयोव्रतः ।
हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥४७॥

एवं तु अहः अहः कुर्यात् द्वादश अहं पयः व्रतः हरेः आराधनं होमं अर्हणं द्विज तर्पणम् ॥४७॥

एवं तु	इसी प्रकार तो	**हरेः**	श्रीहरिकी
द्वादश अहं	बारह दिन तक	**आराधनं**	आराधनाके लिए
अहः अहः	प्रत्येक दिन	**होमं अर्हणं**	हवन, पूजन,
पयः व्रतः	दुग्धाहार करता हुआ	**द्विज तर्पणं**	ब्राह्मणोंको भोजन
		कुर्यात्	कराता रहे ॥४७॥

प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ।
ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥४८॥

प्रतिपत् दिनं आरभ्य यावत् शुक्ल त्रयोदशी ब्रह्मचर्यं अधः स्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥४८॥

प्रतिपत् दिनं आरभ्य यावत्	प्रतिपदा तिथिसे प्रारम्भ करके जब तक	**शुक्ल त्रयोदशी**	शुक्ल पक्षकी त्रयोदशी आवे
		ब्रह्मचर्यं	ब्रह्मचर्य पालन करे,

अधः स्वप्नं त्रिषवणं	नीचे (भूमिमें) सोवे, तीनों समय (प्रातः दोपहर, शाम)	स्नानं चरेत्	स्नान करे ॥४८॥

वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ।
अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥४९॥

वर्जयेत् असत् आलापं भोगान् उच्च अवचान् तथा अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेव परायणः ॥४९॥

असत् आलापं	मिथ्या एवं अनुचित बातचीत	सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके प्रति
		अहिंस्रः	अहिंसक रहे,
तथा	तथा	वासुदेव	भगवान् वासुदेवमें ही
उच्च अवचान्	बड़े-छोटे		
भोगान् वर्जयेत्	भोगोंको त्याग दे,	परायणः	मन रखें ॥४९॥

त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैर्विभोः ।
कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥५०॥

त्रयोदश्यां अथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैः विभोः कारयेत् शास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥५०॥

अथो त्रयोदश्यां	फिर त्रयोदशीको	विधिना	विधिसे
विधिकोविदैः	विधान जाननेवाले (ब्राह्मणों) द्वारा	विभोः विष्णोः	भगवान् विष्णुका
		पञ्चकैः स्नपनं	पञ्चामृतसे स्नान
शास्त्रदृष्टेन	शास्त्र वर्णित	कारयेत्	करवावे ॥५०॥

पूजां च महतीं कुर्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥५१॥

पूजां च महतीं कुर्यात् वित्तशाठ्य विवर्जितः चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥५१॥

वित्तशाठ्य विवर्जितः	धनकी कृपणता बिना किये	महतीं पूजां च कुर्यात्	महान् पूजा ही करे

शिपिविष्टाय	यज्ञमें आविष्ट	पयसि चरुं	दूधमें खीर
विष्णवे	भगवान् विष्णुके लिए	निरूप्य	पकाकर ॥५१॥

श्रृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ।
नैवेद्यं चातिगुणवद् दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥५२॥

श्रृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः नैवेद्यं च अति गुणवत् दद्यात् पुरुष तुष्टिदम् ॥५२॥

सुसमाहितः	अत्यन्त एकाग्र चित्तसे	च पुरुष	तथा भगवान्को
तेन श्रृतेन	उस शीतल हुई (खीर) से	तुष्टिदं	तृप्ति देनेवाला
पुरुषं यजेत	पुरुषोत्तमका यज्ञ करे	अति गुणवत्	अति गुणवान्
		नैवेद्यं दद्यात्	नैवेद्य निवेदन करे ॥५२॥

आचार्यं ज्ञानसम्पन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ।
तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥५३॥

आचार्यं ज्ञान सम्पन्नं वस्त्र आभरण धेनुभिः तोषयेत् ऋत्विजः च एव तत् विद्यात् आराधनं हरेः ॥५३॥

ज्ञान सम्पन्नं	ज्ञान सम्पन्न	तोषयेत्	सन्तुष्ट करे,
आचार्यं च	आचार्यको तथा	तत् हरेः	इसको श्रीहरिकी
ऋत्विजः एव	ऋत्विजोंको भी	आराधनं	आराधना
वस्त्र आभरण	वस्त्र, आभूषण,	विद्यात्	समझे ॥५३॥
धेनुभिः	गाय देकरके		

भोजयेत् तान् गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ।
अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः ॥५४॥

भोजयेत् तान् गुणवता सत् अन्नेन शुचिस्मिते अन्यान् च ब्राह्मणान् शक्त्या ये च तत्र समागताः ॥५४॥

शुचिस्मिते	पवित्र मुस्कान-वाली !	शक्त्या	अपनी शक्तिके अनुसार
च ये तत्र	तथा जो वहाँ	तान् गुणवता	उनको गुणवाले
समागताः	आ गये हों	सत् अन्नेन	उत्तम अन्नका
अन्यान्	दूसरे	भोजयेत्	भोजन करावे ॥५४॥
ब्राह्मणान्	ब्राह्मणोंको		

दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ।
अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥५५॥

दक्षिणां गुरवे दद्यात् ऋत्विक्भ्यः च यथा अर्हतः अन्न आदिना आश्वपाकान् च प्रीणयेत् समुपागतान् ॥५५॥

यथा अर्हतः	यथा योग्य	आश्वपाकान्	चाण्डाल पर्यन्त सबको
गुरवे च	गुरुको तथा		
ऋत्विक्भ्यः	ऋत्विजोंको	अन्न आदिना	अन्न आदि द्वारा
दक्षिणां दद्यात्	दक्षिणा देवे,	प्रीणयेत्	प्रसन्न करे ॥५५॥
समुपागतान्	वहां आये हुए		

भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणेषु च ।
विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५६॥

भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीन अन्ध कृपणेषु च विष्णोः तत् प्रीणनं विद्वान् भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५६॥

सर्वेषु	सब	विष्णोः	भगवान् विष्णुकी
दीन अन्ध	गरीब, अन्धे	प्रीणनं विद्वान्	तृप्ति जानकर
च कृपणेषु	तथा दुःखियोंके	सह बन्धुभिः	अपने सम्बधियोंके साथ
भुक्तवत्सु च	भोजन कर लेनेपर ही	भुञ्जीत	भोजन करे ॥५६॥
तत्	उसे		

नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ।
कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥५७॥

नृत्य वादित्र गीतैः च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः कारयेत् तत् कथाभिः च पूजां भगवतः अनु अहम् ॥५७॥

अनु अहं	(व्रत कालमें) प्रतिदिन	**च तत्**	तथा उन भगवान्की
नृत्य वादित्र	नृत्य, वाद्य	**कथाभिः**	कथा द्वारा
गीतैः च	गायनसे तथा	**भगवतः पूजां**	भगवान्की पूजा
स्तुतिभिः	स्तुतियोंसे,	**कारयेत्**	करवाता रहे ॥५७॥
स्वस्तिवाचकैः	स्वस्तिवाचनसे,		

एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ।
पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥५८॥

एतत् पयोव्रतं नाम पुरुष आराधनं परं पितामहेन अभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥५८॥

पितामहेन	पितामह ब्रह्माजीने	**परं आराधनं**	सर्वोत्तम आराधना
मया	मुझसे	**अभिहितं**	बतलायी थी
एतत्	यह	**ते समुदाहृतं**	वह तुम्हें बतला दी ॥५८॥
पयोव्रतं नाम	पयोव्रत नामक		
पुरुष	भगवान् पुरुषोत्तमकी		

त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ।
आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥५९॥

त्वं च अनेन महाभागे सम्यक् चीर्णेन केशवं आत्मना शुद्ध भावेन नियत आत्मा भज अव्ययम् ॥५९॥

महाभागे	महाभागे !	**नियत आत्मा**	एकाग्र मनसे
आत्मना शुद्ध	अपने शुद्ध	**त्वं च अनेन**	तुम भी इसका
भावेन	भावसे	**सम्यक्**	भली प्रकार

चीर्णेन	आचरण करती	भज	आराधना करो
अव्ययं	अविनाशी		॥५९॥
केशवं	भगवान् केशवकी		

अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ।
तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥६०॥

अयं वै सर्वयज्ञ आख्यः सर्वव्रतं इति स्मृतं तपः सारं इदं भद्रे दानं च ईश्वर तर्पणम् ॥६०॥

भद्रे	कल्याणी !	सर्वव्रतं इति	'सर्वव्रत' इस प्रकार
ईश्वर तर्पणं	सर्वेश्वरको सन्तुष्ट करनेवाला	स्मृतं	कहा गया है
		इदं तपः सारं	यह तपस्याका सार
वै अयं	निश्चय यही	च दानं	तथा मुख्य दान है
सर्वयज्ञ आख्यः	'सर्वयज्ञ' नामक		॥६०॥

त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ।
तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥६१॥

त एव नियमाः साक्षात् त एव च यम उत्तमाः तपः दानं व्रतं यज्ञः येन तुष्यति अधोक्षजः ॥६१॥

येन	जिनसे	यम उत्तमाः	उत्तम यम,
अधोक्षजः	अन्तर्यामी भगवान्	तपः दानं	तपस्या, दान,
तुष्यति	सन्तुष्ट हों	व्रतं यज्ञः च	व्रत, यज्ञ भी
त एव साक्षात्	वे ही सचमुच	त एव	वही हैं ॥६१॥
नियमाः	नियम हैं,		

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ।
भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥६२॥

तस्मात् एतत् व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर भगवान् परितुष्टः ते वरान् आशु विधास्यति ॥६२॥

तस्मात् भद्रे	इसलिए कल्याणी !	**भगवान्**	भगवान्
प्रयता श्रद्धया	संयत चित्त श्रद्धा पूर्वक	**परितुष्टः**	सन्तुष्ट होकर
		आशु ते	शीघ्र तुम्हारी
एतत् व्रतं	इस व्रतका	**वरान्**	कामनाएँ
चर	आचरण करो	**विधास्यति**	पूर्ण करेंगे ॥६२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे ऽदितिपयोव्रतकथनं नाम षडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्ता सादिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ।
अन्वतिष्ठद् व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥

इति उक्ता सा आदिती राजन् स्वभर्त्रा कश्यपेन वै अन्वतिष्ठत् व्रतं इदं द्वादश अहं अतन्द्रिता ॥१॥

राजन्	राजन्
स्वभर्त्रा	अपने पति
कश्यपेन	कश्यप द्वारा
वै इति	निश्चय पूर्वक
उक्ता	यह कहे जानेपर
अतन्द्रिता	आलस्य त्यागकर
इदं द्वादश अहं	यह बारह दिनके
व्रतं अन्वतिष्ठत्	व्रतका पालन करने लगी ॥१॥

चिन्तयन्त्येकया बुद्धया महापुरुषमीश्वरम् ।
प्रगृह्येन्द्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥

चिन्तयन्ति एकया बुद्धया महापुरुषं ईश्वरं प्रगृह्य इन्द्रिय दुष्ट अश्वान् मनसा बुद्धिसारथिः ॥२॥

बुद्धिसारथिः	बुद्धि रूपी सारथि द्वारा
मनसा	मनके माध्यमसे
इन्द्रिय दुष्ट	इन्द्रिय रूपी
अश्वान्	बिगड़े घोड़ोंको
प्रगृह्य	नियन्त्रित करके
एकया बुद्धया	अनन्य बुद्धिसे
ईश्वरं	सर्वेश्वर
महापुरुषं	पुरुषोत्तमका
चिन्तयन्ति	चिन्तन करने लगी ॥२॥

मनश्चैकाग्र्या बुद्धया भगवत्यखिलात्मनि ।
वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥

मनः च एकाग्रया बुद्धया भगवति अखिल आत्मनि वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥३॥

एकाग्रया बुद्धया	एकनिष्ठ बुद्धि द्वारा	**समाधाय**	पूर्णतः लगाकर
मनः च	मनको भी	**ह**	निश्चय पूर्वक
अखिल आत्मनि	सर्वात्मा	**पयोव्रतं**	पयोव्रत
वासुदेवे	वासुदेवमें	**चचार**	करने लगी ॥३॥

तस्याः प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः ।
पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥

तस्याः प्रादुः अभूत् तात भगवान् आदिपूरुषः पीतवासाः चतुः बाहुः शङ्ख चक्र गदाधरः ॥४॥

तात	प्रिय परीक्षित !	**चतुः बाहुः**	चतुर्भुज
तस्याः	उसके सम्मुख	**आदिपुरुषः**	आदिपुरुष
पीतवासाः	पीताम्बरधारी	**भगवान् प्रादुः**	भगवान् प्रकट
शंख चक्र	शंख, चक्र,	**अभूत्**	हुए ॥४॥
गदाधरः	गदाधारी		

तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ।
ननाम भुवि कायेन दण्डवत् प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥

तं नेत्र गोचरं वीक्ष्य सहसा उत्थाय सादरं ननाम भुवि कायेन दण्डवत् प्रीति विह्वला ॥५॥

तं नेत्र	उनको नेत्रोंके	**कायेन भुवि**	शरीरसे पृथ्वीपर
गोचरं	सम्मुख	**दण्डवत्**	दण्डवत
सहसा वीक्ष्य	अचानक देखकर	**ननाम**	नमस्कार किया ॥५॥
सादरं उत्थाय	आदर पूर्वक उठकर		
प्रीति विह्वला	प्रेमसे विह्वल होकर		

सोत्थाय बद्धाञ्जलिरीडितुं स्थिता
नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा ।
बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृति-
स्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥

स उत्थाय बद्ध अञ्जलिः ईडितुं स्थित न उत्सेह आनन्दजल आकुल ईक्षणा बभूव तूष्णीं पुलक आकुला आकृतिः तत् दर्शन अति उत्सव गात्रवेपथुः ॥६॥

स उत्थाय	(फिर) वह उठकर	पुलक आकुल	रोमाञ्चसे पूर्ण
बद्ध अञ्जलिः	हाथ जोड़कर	आकृतिः	सम्पूर्ण शरीर
ईडितुं स्थिता	स्तुति करने खड़ी हुई; किन्तु	तत् दर्शन	उनके दर्शनके
		उत्सव	उल्लाससे
न उत्सेह	उत्साह नहीं कर सकी,	गात्रवेपथुः	कम्पित शरीर होनेसे
आनन्दजल आकुल ईक्षणा	आनन्दाश्रुसे भरे (डबडबाये) नेत्र होनेसे,	तूष्णीं बभूव	चुप रह गयी ॥६॥

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं
तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ।
उदीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा
रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ ७ ॥

प्रीत्या शनैः गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देवी अदितिः कुरुद्वह उदीक्षती सा पिबती इव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥७॥

कुरुद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !	यज्ञपतिं	यज्ञेश्वर
		जगत्पतिं	जगन्नाथ
सा देवी	वह देवी	रमापतिं	भगवान् लक्ष्मीनाथ-को
अदितिः	अदिति		

चक्षुषा	नेत्रोंसे	गद्गदया	गद्गद्
पिबती इव	मानो पी जायगी	गिरा शनैः	वाणीसे धीरे-धीरे
उदीक्षती	(इस प्रकार) देखती हुई	तुष्टाव	स्तुति करने लगी ॥७॥
प्रीत्याः	प्रेमसे		

अदितिः उवाच—

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य
शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ ८ ॥

यज्ञेश यज्ञपुरुष अच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवण मङ्गल नामधेय आपन्नलोक वृजिन उपशम उदय अद्य शं नः कृधीश भगवन् असि दीननाथः ॥८॥

आपन्नलोक	शरणागत लोगोंके	श्रवण	सुननेसे ही
वृजिन	कष्टको	मङ्गल	मङ्गल करनेवाले
उपशम	दूर करनेके लिए	नामधेय	नामोंवाले,
अद्य उदय	आज प्रगट हुए	कृधीश भगवन्	अधीश्वर भगवान् (क्योंकि आप)
यज्ञेश	यज्ञेश्वर,		
यज्ञपुरुष	यज्ञपुरुष,	दीननाथः	दीनोंके नाथ
अच्युत	अच्युत,	असि	हो
तीर्थपाद	पवित्र-चरण,	नः शं	हमारा कल्याण करो ॥८॥
तीर्थश्रवः	पवित्रकीर्ति,		

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय
स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।
स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध-
व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥

विश्वाय विश्वभवन स्थिति संयमाय स्वैरं गृहीत पुरुशक्ति गुणाय भूम्ने स्वस्थाय शश्वत् उपबृंहित पूर्णबोध व्यापादित आत्मतमसे हरये नमः ते ॥६॥

विश्वभवन	विश्वकी उत्पत्ति,	**स्वस्थाय**	अपने स्वरूपमें स्थित
स्थिति संयमाय	स्थिति, प्रलयके लिए,	**शश्वत्**	निरन्तर
		उपबृंहित	अभिवृद्ध
स्वैरं	स्वेच्छासे	**पूर्णबोध**	पूर्णज्ञानसे
पुरुशक्ति	बहुत-सी शक्तियों	**आत्मतमसे**	आत्मान्धकारको
गुणाय	(तथा) गुणोंको	**व्यापादित**	नष्ट करनेवाले
गृहीत	ग्रहण करनेवाले	**हरये ते**	श्रीहरि, आपको
विश्वाय भूम्ने	विश्व रूप, सर्व व्यापक,	**नमः**	नमस्कार ॥६॥

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मी-
र्द्यौर्भूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्
त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥१०॥

आयुः परं वपुः अभीष्टं अतुल्य लक्ष्मीः द्यौः भूः रसाः सकल योग गुणाः त्रिवर्गः ज्ञानं च केवलं अनन्त भवन्ति तुष्टात् त्वत्तः नृणां किमु सपत्न जय आदिः आशीः ॥१०॥

अनन्त भवन्ति	अनन्त ! आपके	**लक्ष्मीः**	ऐश्वर्य,
तुष्टात्	सन्तुष्ट होनेपर	**सकल योग**	योगके सब
नृणां	मनुष्योंको	**गुणाः**	गुण (सिद्धियाँ)
परम् आयुः	परमायु,	**त्रिवर्गः**	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम)
अभीष्टं वपुः	ईच्छित शरीर,		
अतुल्य	अतुलनीय	**च केवलं**	तथा कैवल्य मोक्ष
द्यौः भूः	स्वर्ग, पृथ्वी,	**ज्ञानं**	देनेवाला ज्ञान
रसाः	पातालका		

भवन्ति	प्राप्त हो जाता है (फिर)	**आदिः**	आदि
सपत्न जय	शत्रुओंपर विजय	**आशीः किमु**	कामनोंकी तो बात ही क्या ॥१०॥

श्रीशुक उवाच–

अदित्यैवं स्तुतो राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः ।
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥११॥

अदित्या एवं स्तुतः राजन् भगवान् पुष्कर ईक्षणः क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानां इति ह उवाच भारत ॥११॥

राजन् भारत	राजन् परीक्षित !	**पुष्कर ईक्षणः**	कमलनयन
अदित्या एवं	अदितिके इस प्रकार	**भगवान्**	भगवान्
स्तुतः	स्तुति करनेपर	**ह इति**	निश्चय पूर्वक यह
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके	**उवाच**	बोले ॥१६॥
क्षेत्रज्ञः	अन्तर्यामी		

श्रीभगवानुवाच–

देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितम् ।
यत् सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥१२॥

देवमातः भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितं यत् सपत्नैः हृत श्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥१२॥

देवमातः	देवमाता	**यत् सपत्नैः**	क्योंकि शत्रुओं द्वारा
भवत्या	आपकी	**हृत श्रीणां**	ऐश्वर्य छीने जाकर
चिरकाङ्क्षितं	पुरानी अभिलाषा	**स्वधामतः**	अपने धामसे
मे विज्ञातं	मैं जानता हूँ	**च्यावितानां**	गिराये गये ॥१२॥

तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ।
प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥१३॥

तान् विनिर्जित्य समरे दुर्मदान् असुर ऋषभान् प्रतिलब्ध जय श्रीभिः पुत्रैः इच्छसि उपासितुम् ॥१३॥

पुत्रैः	अपने पुत्रोंके द्वारा	जय श्रीभिः	विजय और ऐश्वर्य
तान् दुर्मदान्	उन मदमत्त	प्रतिलब्ध	पुनः प्राप्त करके
असुर ऋषभान्	असुरश्रेष्ठोंको	उपासितुं	सेवित होना
समरे	युद्धमें	इच्छसि	चाहती हो ॥१३॥
विनिर्जित्य	जीतकर		

इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् ।
स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ॥१४॥

इन्द्र ज्येष्ठैः स्वतनयैः हतानां युधि विद्विषां स्त्रियः रुदन्तीं आसाद्य द्रष्टुं इच्छसि दुःखिताः ॥१४॥

इन्द्र ज्येष्ठैः	जिनमें इन्द्र ज्येष्ठ हैं उन	दुःखिताः	दुःखी होकर
स्वतनयैः	अपने पुत्रों द्वारा	आसाद्य	उनके पास आकर
युधि हतानां	युद्धमें मारे गये	रुदतीं	रोती हुई
विद्विषां	शत्रुओंकी	द्रष्टुं इच्छसि	देखना चाहती हो ॥१४॥
स्त्रियः	स्त्रियोंको		

आत्मजान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः ।
नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥१५॥

आत्मजान् सुसमृद्धान् त्वं प्रति आहृत यशः श्रियः नाक पृष्ठं अधिष्ठाय क्रीडतः द्रष्टुं इच्छसि ॥१५॥

प्रति आहृत	फिर लौटाये हुए	नाक पृष्ठं	स्वर्गपर
यशः श्रियः	यश और लक्ष्मीसे	अधिष्ठाय	अधिकार करके
सुसमृद्धान्	भली प्रकार सम्पन्न हुए	क्रीडतः	खेलते हुए
आत्मजान्	अपने पुत्रोंको	द्रष्टुं इच्छसि	देखना चाहती हो ॥१५॥

प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा
अपारणीया इति देवि मे मतिः ।
यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता
न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥१६॥

प्रायः अधुना ते असुर यूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः यत् ते अनुकूल ईश्वर विप्र गुप्ता न विक्रमः तत्र सुखं ददाति ॥१६॥

देवि	देवि !	अनुकूल	अपने अनुकूल
ते असुर यूथ-	वे असुर सेना-	ईश्वर	समर्थ
नाथा	नायक	विप्र	ब्राह्मण (शुक्राचार्य)
अधुना	इस समय		द्वारा
प्रायः	प्रायः	गुप्ता	रक्षित हैं,
अपारणीया	पार न पाने योग्य	तत्र विक्रमः	वहां पराक्रम करना
	हैं,	सुखं न ददाति	सुख नहीं देगा
इति मे मतिः	ऐसा मैं समझता हूँ,		॥१६॥
यत् ते	क्योंकि वे		

अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्य
सन्तोषितस्य व्रतचर्यया ते ।
ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा
श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥१७॥

अथ अपि उपायः मम देवि चिन्त्यः संतोषितस्य व्रतचर्यया ते मम अर्चनं न अर्हति गन्तुं अन्यथा श्रद्धा अनुरूपं फल हेतु कत्वात् ॥१७॥

देवि अथ अपि	देवि ! फिर भी	श्रद्धा अनुरूपं	श्रद्धाके अनुसार
ते	तुम्हारे	फल	फल देनेवाला
व्रतचर्यया	व्रताचरणसे	हेतु कत्वात्	होनेके कारण
सन्तोषितस्य	सन्तुष्ट हुए	मम अर्चनं	मेरा पूजन
मम उपायः	मुझे उपाय	अन्यथा गन्तुं	निष्फल होना
चिन्त्यः	सोचना होगा,	न अर्हति	नहीं चाहिए ॥१७॥

त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये
पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ।
स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्
गोप्तास्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥१८॥

त्वया अर्चितः च अहं अपत्य गुप्तये पयोव्रतेन अनुगुणं समीडितः स्व अंशेन पुत्रत्वं उपेत्य ते सुतान् गोप्ता अस्मि मारीच तपसि अधिष्ठितः ॥१८॥

अनुगुणं	यथोचित विधिसे	मारीच	मरीचि-नन्दन कश्यपजीके
समीडितः	भली प्रकार अभिवृद्ध	तपसि	तपरूप वीर्यमें
पयोव्रतेन	पयोव्रतके द्वारा	अधिष्ठितः	स्थित होकर
त्वया	तुम्हारे द्वारा	स्व अंशेन	अपने अंशसे
अपत्य	अपने पुत्रोंकी	ते पुत्रत्वं	तुम्हारा पुत्रत्व
गुप्तये	रक्षाके लिए	उपेत्य	प्राप्त करके
अहं अर्चितः	मैं पूजित हुआ हूँ (अतः)	सुतान् गोप्ता अस्मि	तुम्हारे पुत्रोंका रक्षक होऊंगा ॥१८॥

उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ।
मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥१९॥

उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिं अकल्मषं मां च भावयती पत्या एवं रूपं अवस्थितम् ॥१९॥

भद्रे	कल्याणी !	अवस्थितं	स्थित
अकल्मषं	निष्पाप	मां च भावयती	मेरी भी भावना करती हुई
प्रजापतिं	प्रजापति	पतिं उपधाव	पतिका सेवन करो ॥१९॥
पत्या एवं	अपने पतिमें		
रूपं	इसी रूपमें		

नैतत् परस्मा आख्येयं पृष्टयापि कथंचन ।
सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥२०॥

न एतत् परस्मा आख्येयं पृष्टया अपि कथञ्चन सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥२०॥

देवि	देवि !	**सुसंवृतं**	भली प्रकार सम्हालनेसे
पृष्टया अपि	पूछनेपर भी		
एतत् परस्मा	इस विषयमें दूसरेसे	**देवगुह्यं**	देवताओंके गोपनीय
कथञ्चन न	कुछ भी नहीं	**सर्वं**	सब काम
आख्येयं	कहना चाहिए,	**सम्पद्यते**	सम्पन्न होते हैं ॥२०॥

श्रीशुक उवाच–

एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥२१॥

एतावत् उक्त्वा भगवान् तत्र एव अन्तः अधीयत अदितिः दुर्लभं लब्ध्वा हरेः जन्म आत्मनि प्रभोः ॥२१॥

एतावत् उक्त्वा	इतना कहकर	**दुर्लभं**	दुर्लभ
तत्र एव	वहीं	**जन्म आत्मनि**	आविर्भाव अपनेसे
भगवान्	भगवान्	**लब्ध्वा**	प्राप्त होनेका आश्वासन पाकर ॥२१॥
अन्तः अधीयत	अन्तर्धान हो गये,		
अदितिः	अदितिने		
प्रभोः हरेः	सर्वेश्वर श्रीहरिका		

उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ।
स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ॥२२॥

उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् स वै समाधियोगेन कश्यपः तत् अबुध्यत ॥२२॥

कृतकृत्यवत्	कृतकृत्यसी होकर	**पतिं उपाधावत्**	पतिकी सेवा करने लगी,
परया भक्त्या	परम भक्ति पूर्वक		

वै समाधि-	निश्चय समाधि-	तत्	वह (रहस्य)
योगेन	योगसे	अबुध्यत	समझ गये ॥२२॥
स कश्यपः	वे कश्यपजी		

प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ।
सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ।
समाहितमना राजन्दारुण्यग्निं यथानिलः ॥२३॥

प्रविष्टं आत्मनि हरेः अंशं हि अवितथ ईक्षणः सः अदित्यां वीर्यं आधत्त तपसा चिर संभृतं समाहितमना राजन् दारुणि अग्निं यथा अनिलः ॥२३॥

राजन्	राजन् !	हरेः अंशं	श्रीहरिके अंशको (जानकर)
यथा दारुणि	जैसे काष्ठमें (संघर्षसे)	तपसा	तपस्याके द्वारा
अनिलः अग्निं	वायु अग्नि (उत्पन्न कर देता है)	चिर सम्भृतं	चिरकालसे सुरक्षित
		वीर्यं सः	वीर्यको उन्होंने
हि अवितथ	क्योंकि अमोघ	समाहितमना	एकाग्र मनसे
ईक्षणः	दृष्टिसे	अदित्यां	अदितिमें
आत्मनि	अपने भीतर	आधत्त	आधान किया ॥२३॥
प्रविष्टं	प्रविष्ट		

अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम् ।
हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥२४॥

अदितेः अधिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनं हिरण्यगर्भः विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥२४॥

अदितेः गर्भं	अदितिके गर्भमें	हिरण्यगर्भः	ब्रह्माजी
सनातनं	सनातन पुरुष	गुह्यनामभिः	गोपनीय नामों द्वारा
भगवन्तं	भगवान्‌को	समीडे	स्तुति करने लगे ॥२४॥
अधिष्ठितं	स्थित		
विज्ञाय	जानकर		

ब्रह्मोवाच—

जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥२५॥

जय उरुगाय भगवन् उरुक्रम नमः अस्तु ते नमः ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥२५॥

उरुगाय	वृहत् कीर्तिशाली	**ब्रह्मण्यदेवाय**	ब्राह्मणोंको देवता माननेवाले आपको
भगवन् जय	भगवान्, आपकी जय हो,	**नमः**	नमस्कार
उरुक्रम	अनन्त पराक्रम	**त्रिगुणाय**	त्रिगुण स्वरूप
ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो,	**नमो नमः**	आपको बारम्बार नमस्कार ॥२५॥

नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ।
त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥२६॥

नमः ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥२६॥

पृश्निगर्भाय	पृश्निके पुत्र बननेवाले,	**शिपिविष्टाय**	(पशुरूप) सब प्राणियोंमें विराजमान
वेदगर्भाय	वेदोंमें निहित,		
वेधसे	सबके विधाता,	**विष्णवे**	भगवान् विष्णु
त्रिनाभाय	जिनकी नाभिमें त्रिलोकी स्थित है,	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥२६॥
त्रिपृष्ठाय	त्रिलोकीके पृष्ठ भाग वैकुण्ठके स्वामी,		

त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्य-
मनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः ।

कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं
स्रोतो यथान्तःपतितं गभीरम् ॥२७॥

त्वं आदिः अन्तः भुवनस्य मध्यं अनन्त शक्ति पुरुषं यं आहुः कालः भवान् अक्षिपति ईश विश्वं स्रोतः यथा अन्तः पतितं गभीरम् ॥२७॥

यं अनन्त शक्ति	जिसे अनन्त शक्ति	**पतितं**	गिरे हुएको (जल
पुरुषं आहुः	पुरुष (शास्त्रमें)		बहाता है)
	कहा गया है	**अक्षिपति ईश**	इन्द्रियोंके स्वामी !
अस्य भुवनस्य	इस जगतके	**गभीरं**	गम्भीर (वेग)
त्वं आदिः	आप ही आदि,	**कालः**	काल रूपसे
अन्तः मध्यं	अन्त और मध्य हैं	**भवान् विश्वं**	आप विश्वको
यथा स्रोतः	जैसे स्रोतके		(चला रहे हैं)
अन्तः	भीतर		॥२७॥

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां
प्रजापतीनामसि सम्भविष्णुः ।
दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां
परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥२८॥

त्वं वै प्रजानां स्थिर जङ्गमानां प्रजापतीनां असि सम्भविष्णुः दिवौकसां देव दिवः च्युतानां परायणं नौः इव मज्जतः अप्सु ॥२८॥

वै त्वं	निश्चय आप	**दिवः च्युतानां**	स्वर्गसे भ्रष्ट हुए
स्थिर जङ्गमानां	स्थावर-जंगम	**दिवौकसां**	देवताओंके लिए
प्रजानां	प्रजाको तथा	**अप्सु**	जलमें
प्रजापतीनां	प्रजापतियोंको	**मज्जतः**	डूबते हुएके लिए
सम्भविष्णुः	उत्पन्न करनेवाले	**नौः इव**	नौकाके समान
असि	हैं,	**परायणं**	आश्रय हैं ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

इत्थं विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः
प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ।
चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः
पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥

इत्थं विरिञ्च स्तुत कर्म वीर्यः प्रादुः बभूव अमृत भूः अदित्यां चतुर्भुजः शङ्ख गदा अब्ज चक्रः पिशङ्गवासा नलिन आयत ईक्षणः ॥१॥

इत्थं	इस प्रकार	पिशङ्गवासा	पीताम्बरधारी
विरिञ्च	ब्रह्मा द्वारा	नलिन आयत	कमलके समान
कर्म वीर्यः	कर्म और पराक्रमकी	ईक्षणः	विशाल लोचन
स्तुत	स्तुति करनेपर	अमृत भूः	देवमाता
चतुर्भुजः	चतुर्भुज	अदित्यां प्रादुः	अदितिसे प्रकट
शङ्ख गदा	शंख, गदा,	बभूव	हुए ॥१॥
अब्ज चक्रः	कमल, चक्र लिए		

श्यामावदातो झषराजकुण्डल-
त्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ।
श्रीवत्सवक्षा वलयाङ्गदोल्लस-
त्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥

श्याम अवदातः झषराज-कुण्डल त्विषा उल्लसत् श्रीवदन अम्बुजः पुमान् श्रीवत्सवक्षा वलय अङ्गद उल्लसत् किरीट काञ्ची गुण चारुनूपुरः ॥२॥

श्याम अवदातः	श्याम सुन्दर शरीर,	श्रीवत्सवक्षा	वक्ष-स्थलपर श्रीवत्स,
झषराज-	मकराकृति		
कुण्डल	कुण्डलोंकी	वलय अङ्गद	कंकण, केयूर,
त्विषा उल्लसत्	कान्तिसे दमकती	उल्लसत् किरीट	चमकते मुकुट,
श्रीवदन	शोभावाले	काञ्ची गुण	कटि सूत्र
अम्बुजः	कमल-मुख	चारुनूपुरः	सुन्दर नूपुरोंसे
पुमान्	परम पुरुष		(शोभित थे ॥२॥

मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया
विराजितः श्रीवनमालया हरिः ।
प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा
विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥

मधुव्रतव्रात विघुष्टया स्वया विराजितः श्री वनमालया हरिः प्रजापतेः वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन् कण्ठ निविष्ट कौस्तुभः ॥३॥

मधुव्रतव्रात	भ्रमरावलीकी	कौस्तुभः	कौस्तुभ-मणि तथा
विघुष्टया	गुंजारसे युक्त	स्वरोचिषा	अपनी कान्तिसे
स्वया	अपनी	प्रजापतेः	प्रजापति कश्यपके
वनमालया	वनमालासे	वेश्मतमः	घरके अन्धकारको
श्री विराजितः	अत्यन्त सुशोभित	विनाशयन्	नष्ट कर रहे थे ॥३॥
हरिः	श्रीहरि		
कण्ठ निविष्ट	गलेमें पहिनी		

दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा
प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ।
द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा
गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥

दिशः प्रसेदुः सलिल आशयाः तदा प्रजाः प्रहृष्टाः ऋतवः गुण अन्विताः द्यौः अन्तरिक्षं क्षितिः अग्निजिह्वा गावः द्विजाः संजहृषुः नगाः च ॥४॥

तदा	उस समय	द्यौः अन्तरिक्षं	स्वर्ग, आकाश,
दिशः	दिशाएँ और	क्षितिः	पृथ्वी,
सलिल आशयाः	जलाशय	अग्निजिह्वा	देवता,
प्रसेदुः	निर्मल हो गये	गावः द्विजाः	गौ, ब्राह्मण
प्रजाः	सब प्रजा	च नगाः	तथा पर्वत
प्रहृष्टाः	अत्यन्त हर्षित हुई	संजहृषुः	खूब प्रसन्न हो गये ॥४॥
ऋतवः गुण	ऋतुएँ अपने गुणोंसे		
अन्विताः	युक्त हो गयीं,		

श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ।
सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥

श्रोणायां श्रवण द्वादश्यां मुहूर्ते अभिजिति प्रभुः सर्वे नक्षत्र तारा आद्याः चक्रुः तत् जन्म दक्षिणम् ॥५॥

श्रोणायां	(चन्द्रमाके) श्रवण-नक्षत्रमें रहनेपर	सर्वे नक्षत्र तारा आद्याः	सब नक्षत्रों, तारा आदिने
श्रवण	श्रवण (भाद्रशुक्ल)	तत् जन्म	उनके जन्म (के समय)
द्वादश्यां	द्वादशीको	दक्षिणं चक्रुः	(अपनेको) अनुकूल बना लिया ॥५॥
अभिजिति	अभिजित		
मुहूर्ते	मुहूर्त (दोपहर) में		
प्रभुः	प्रभु (प्रकट हुए)		

द्वादश्यां सवितातिष्ठन्मध्यंदिनगतो नृप ।
विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥

द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यं दिन गतः नृप विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुः हरेः ॥६॥

नृप	राजन् !	नाम	नामसे
यस्यां द्वादश्यां	जिस द्वादशीको	प्रोक्ता	कही गयी है,
हरेः जन्म	श्रीहरिका जन्म	सविता	(उस समय) सूर्य
विदुः	जाना जाता है,	मध्यं दिन गतः	मध्य दिनमें
सा विजया	वह 'विजया'	तिष्ठन्	स्थित थे ॥६॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः ।
चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७ ॥

शङ्ख दुन्दुभयः नेदुः मृदङ्ग पणव आनकाः चित्र वादित्र तूर्याणां निर्घोषः तुमुलः अभवत् ॥७॥

शङ्ख दुन्दुभयः	शंख, दुन्दुभियां,	**चित्र**	अनेक प्रकारके
मृदङ्ग पणव	मृदङ्ग, पणव (छोटे नगाड़े)	**वादित्र**	वाद्यों तथा
		तूर्याणां	तुरहियोंका
आनकाः	आनक (बड़े नगाड़े)	**तुमुलः निर्घोषः**	तुमुल शब्द
नेदुः	बजने लगे,	**अभवत्**	होने लगा ॥७॥

प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गन्धर्वप्रवरा जगुः ।
तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥

प्रीताः च अप्सरसः अनृत्यन् गन्धर्वप्रवरा जगुः तुष्टुवुः मुनयः देवा मनवः पितरः अग्नयः ॥८॥

प्रीताः	प्रसन्न होकर	**मुनयः देवा**	मुनिगण, देवता,
अप्सरसः	अप्सराएँ	**मनवः पितरः**	मनु लोग, पितर,
अनृत्यन्	नाचने लगीं,	**अग्नयः**	अग्निदेव
च	तथा	**तुष्टुवुः**	स्तुति करने लगे ॥८॥
गन्धर्वप्रवराः	श्रेष्ठ गन्धर्व		
जगुः	गाने लगे		

सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः ।
चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥

सिद्ध विद्याधर गणाः स किंपुरुष किन्नराः चारणा यक्ष रक्षांसि सुपर्णा भुजग उत्तमाः ॥९॥

सिद्ध विद्याधर	सिद्ध, विद्याधर	**किंपुरुष**	किंपुरुष और
गणाः	गण,	**स किन्नराः**	किन्नरोंके साथ

यक्ष रक्षांसि	यक्ष-राक्षस,	भुजग उत्तमा	प्रमुख नागगण
सुपर्णा	पक्षीगण,		॥९॥

गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः ।
अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥१०॥

गायन्तः अति प्रशंसन्तः नृत्यन्तः विबुध अनुगाः अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः सम् अवाकिरन् ॥१०॥

विबुध	देवताओंके	अदित्या	अदितिके
अनुगाः	अनुचर गण,	आश्रमपदं	आश्रम-स्थानपर
गायन्तः	गाते	कुसुमैः	पुष्पोंको
नृत्यन्तः	नाचते	सम् अवाकिरन्	खूब बिखेरने लगे
अति प्रशंसन्तः	अत्यन्त प्रशंसा करते हुए		॥१०॥

दृष्ट्वादितिस्तं निजगर्भसम्भवं
परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ।
गृहीतदेहं निजयोगमायया
प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥११॥

दृष्ट्वा अदितिः तं निजगर्भ सम्भवं परं पुमांसं मुदं आप विस्मिता गृहीतदेहं निज योग मायया प्रजापतिः च आह जय इति विस्मितः ॥११॥

निज गर्भ	अपने गर्भसे	निज योग	अपनी योग
सम्भवं	उत्पन्न	मायया	मायासे
तं परं पुमांसं	उन परम पुरुषको	गृहीतदेहं	शरीर धारण किये (देखकर)
दृष्ट्वा अदितिः	देखकर अदिति	विस्मितः	चकित होकर
विस्मिता	चकित और	जय इति आह	'जय हो' ऐसा बोले
मुदं आप	आनन्दित हुई		॥११॥
च	तथा		
प्रजापतिः	प्रजापति कश्यप		

यत् तद् वपुर्भाति विभूषणायुधै-
रव्यक्तचिद् व्यक्तमधारयद्धरिः ।
बभूव तेनैव स वामनो वटुः
संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥१२॥

यत् तत् वपुः भाति विभूषण आयुधैः अव्यक्त चिद् व्यक्तं अधारयत् हरिः बभूव तेन एव स वामनः वटुः सम्पश्यतः दिव्य गतिः यथा नटः ॥१२॥

अव्यक्त	अव्यक्त	तत् तेन एव	वे उसीसे
चिद् व्यक्तं	चित्स्वरूप	नटः यथा	नटके समान
हरिः	श्रीहरिने	दिव्य गतिः	दिव्य गतिसे
यत् विभूषण	जो आभूषण	सम्पश्यतः	सबके देखते हुए
आयुधैः भाति	आयुधोंसे शोभित	वामनः वटुः	वामन ब्रह्मचारी
वपुः अधारयत्	शरीर धारण किया था	बभूव	हो गये ॥१२॥

तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ।
कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥१३॥

तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥१३॥

तं वामनं	उस बौने	प्रजापतिं	प्रजापति कश्यपको
वटुं	ब्रह्मचारीको	पुरस्कृत्य	आगे करके
दृष्ट्वा	देखकर	कर्माणि	सब संस्कार
महर्षयः	महर्षियोंने	कारयामासुः	करवाये ॥१३॥
मोदमानाः	प्रसन्न होकर		

तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताब्रवीत् ।
बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥१४॥

तस्य उपनीयमानस्य सावित्रीं सविता ब्रवीत् बृहस्पतिः ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपः अददात् ॥१४॥

तस्य	उनका	**बृहस्पतिः**	बृहस्पतिने
उपनीयमानस्य	उपनयन होते समय	**ब्रह्मसूत्रं**	यज्ञोपवीत और
सविता	सविता देवताने	**कश्यपः**	कश्यपने
सावित्रीं ब्रवीत्	गायत्रीका उपदेश किया	**मेखलां**	मेखला
		अददात्	प्रदान की ॥१४॥

ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः ।
कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥१५॥

ददौ कृष्ण अजिनं भूमिः दण्डं सोमः वनस्पतिः कौपीन आच्छादनं माता द्यौः छत्रं जगतः पतेः ॥१५॥

जगतः पतेः	(उन) जगत् पतिको	**कौपीन**	कौपीन तथा
भूमिः कृष्ण-	भूमिने कृष्ण-	**आच्छादनं**	ओढ़नेका वस्त्र
अजिनं	मृगचर्म,	**माता**	माता अदितिने
वनस्पतिः	वनस्पतियोंके राजा	**द्यौः छत्रं ददौ**	स्वर्गने छत्र दिया ॥१५॥
सोमः	सोमने		
दण्डं	दण्ड		

कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ।
अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥१६॥

कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान् सप्तर्षयः ददुः अक्षमालां महाराज सरस्वति अव्यय आत्मनः ॥१६॥

महाराज	महाराज !	**सप्तर्षयः**	सप्तर्षियोंने
अव्यय	उन अविनाशी	**कुशान्**	कुश
आत्मनः	परमात्माको	**सरस्वति**	सरस्वतीने
वेदगर्भः	ब्रह्माजीने	**अक्षमालां**	रुद्राक्षकी माला
कमण्डलुं	कमण्डलु,	**ददुः**	दी ॥१६॥

तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ।
भिक्षां भगवती साक्षादुमादादम्बिका सती ॥१७॥

तस्मा इति उपनीताय यक्षराट् पात्रिकां अदात् भिक्षां भगवती साक्षात् उमा अदात् अम्बिका सती ॥१७॥

इति	इस प्रकार	**पात्रिकां अदात्**	भिक्षापात्र दिया
उपनीताय	उपनयन संस्कार हो जानेपर	**साक्षात् सती**	साक्षात् सती
		अम्बिका	अम्बिका
तस्मा	उनको	**उमा**	भगवती उमाने
यक्षराट्	यक्षराक्ष कुबेरने	**भिक्षां अदात्**	भिक्षा दी ॥१७॥

स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो वटुः ।
ब्रह्मर्षिगणसञ्जुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥१८॥

स ब्रह्मवर्चसेन एवं सभां संभावितः वटुः ब्रह्मर्षिगण संजुष्टां अत्यरोचत मारिषः ॥१८॥

एवं	इस प्रकार	**ब्रह्मर्षिगण**	ब्रह्मर्षिगणोंसे
संभावितः	सम्मानित होकर	**संजुष्टां**	युक्त
स मारिषः	वे श्रेष्ठ	**सभां**	सभामें
वटुः	ब्रह्मचारी (वामन)	**अत्यरोचत**	अत्यन्त शोभित हुए ॥१८॥
ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेजके कारण		

समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ।
परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद् द्विजः ॥१९॥

समिद्धं आहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनं परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समित्भिः अजुहोत् द्विजः ॥१९॥

द्विजः	उन द्विजश्रेष्ठने (उपनयनके लिए)	**आहितं समिद्धं**	स्थापित प्रज्वलित
		वह्निं	अग्निका

परिसमूहनं	परिसमूहन,	**समित्भिः**	समिधाओंसे
परिस्तीर्य कृत्वा	परिस्तरण करके	**अजुहोत्**	हवन किया ॥१९॥
समभ्यर्च्य	पूजन करके		

श्रुत्वाश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं
बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ।
जगाम तत्राखिलसारसंभृतो
भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे ॥२०॥

श्रुत्वा अश्वमेधैः यजमानं ऊर्जितं बलिं भृगूणां उपकल्पितैः ततः जगाम तत्र अखिलसार सम्भृतः भारेण गां सन्नमयन् पदे पदे ॥२०॥

ऊर्जितं बलिं	समृद्ध बलिको	**अखिलसार**	सर्वशक्ति
भृगूणां	भृगुवंशी ब्राह्मणों द्वारा	**सम्भृतः**	समन्वित
		ततः	वहांसे
उपकल्पितैः	निर्दिष्ट की जाती विधिसे	**भारेण गां**	अपने भारसे पृथ्वी को
अश्वमेधैः	अश्वमेध यज्ञों द्वारा	**पदे पदे**	पद-पदपर
यजमानं	(भगवानका) यजन करते	**सन्नमयन्**	झुकाते हुए
		तत्र जगाम	वहां गये ॥२०॥
श्रुत्वा	सुनकर		

तं नर्मदायास्तट उत्तरे बले-
र्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ।
प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं
व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम् ॥२१॥

तं नर्मदायाः तट उत्तरे बलेः य ऋत्विजः ते भृगुकच्छ संज्ञके प्रवर्तयन्तः भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षत आरात् उदितं तथा रविम् ॥२१॥

नर्मदायाः	नर्मदाके	**भृगुकच्छ संज्ञके**	भृगुकच्छ नामक स्थानपर
उत्तरे तट	उत्तरी किनारेपर	**भृगवः**	भृगुवंशी ब्राह्मण

क्रतूत्तमं	श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ	ते आरात्	उनको समीप ही
प्रवर्तयन्तः	करा रहे थे (उसी समय)	रविम् उदितं	सूर्योदय हुआ हो
		तथा	इस प्रकार
बलेः य	बलिके जो	व्यचक्षत	देखा ॥२१॥
ऋत्विजः	ऋत्विकोंने		

त ऋत्विजो यजमानः सदस्या
हतत्विषो वामनतेजसा नृप ।
सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः
सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥२२॥

त ऋत्विजः यजमानः सदस्या हतत्विषः वामन तेजसा नृप सूर्यः किल आयति उतवा विभावसुः सनत्कुमारः अथ दिदृक्षया क्रतोः ॥२२॥

नृप	राजन् !	दिदृक्षया	देखनेके लिए
वामन तेजसा	वामनजीके तेजसे	सूर्यः आयति	सूर्यदेव आ रहे हैं
हतत्विषः	कान्तिहीन हुए	उत वा	अथवा
त ऋत्विजः	वे ऋत्विक्,	विभावसुः	अग्निदेव
यजमानः	यजमान और	अथ	या
सदस्या	सदस्य (सोचने लगे)	सनत्कुमारः	सनत्कुमारजी
किल क्रतोः	क्या यज्ञ		॥२२॥

इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा
वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः ।
छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं
विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥२३॥

इत्थं सशिष्येषु भृगुषु अनेकधा वितर्क्यमाणः भगवान् स वामनः छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं बिवेश विभ्रत् हयमेध वाटम् ॥२३॥

सशिष्येषु	शिष्योंके साथ	सदण्डं छत्रं	दण्डके साथ छत्र तथा
भृगुषु	भृगुवंशी ब्राह्मणों द्वारा	सजलं	जल भरा
इत्थं	इस प्रकार	कमण्डलुं	कमण्डलु
अनेकधा	अनेक प्रकारके	बिभ्रत्	लिए हुए
वितर्क्यमाणः	तर्क-वितर्क करते समय	हयमेध	अश्वमेध यज्ञके
		वाटं	मण्डपमें
स वामनः	वे वामन	विवेश	प्रविष्ट हुए ॥२३॥
भगवान्	भगवान्		

मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् ।
जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥२४॥

मौञ्ज्या मेखलया वीतं उपवीत अजिन उत्तरं जटिलं वामनं विप्रं माया माणवकं हरिम् ॥२४॥

मौञ्ज्या	मूंजकी	जटिलं वामनं	जटाधारी बौने
मेखलया	मेखला तथा	विप्रं	ब्राह्मणके रूपमें
उपवीत वीतं	यज्ञोपवीत पहिने,	माया माणवकं	मायासे मनुष्य बने
अजिन	कृष्ण-मृग चर्मका	हरिं	श्रीहरिको ॥२४॥
उत्तरं	उत्तरीय बनाये		

प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ।
प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥२५॥

प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्याः ते सह अग्निभिः प्रत्यगृह्णन् समुत्थाय संक्षिप्ताः तस्य तेजसा ॥२५॥

प्रविष्टं	(यज्ञ मंडपमें) प्रवेश किए	सशिष्याः	शिष्योंके साथ
		सह अग्निभिः	अपनी अग्नियोंके साथ
वीक्ष्य	देखकर		
तस्य तेजसा	उनके तेजसे	समुत्थाय	उठकर खड़े होकर
संक्षिप्ताः	छोटे पड़ गये	प्रत्यगृह्णन्	सत्कार करने लगे ॥२५॥
ते भृगवः	वे भृगुवंशी ब्राह्मण		

यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ।
रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥२६॥

यजमानः प्रमुदितः दर्शनीयं मनोरमं रूप अनुरूप अवयवं तस्मा आसनं आहरत् ॥२६॥

रूप अनुरूप	उस रूपके अनुसार	तस्मा	उनको (देखकर)
अवयवं	अंगोंवाले	प्रमुदितः	आनन्दित
दर्शनीयं	दर्शनीय	यजमानः	यजमान बलिने
मनोरमं	मनोहर	आसनं आहरत्	आसन दिया ॥२७॥

स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः ।
अवनिज्यार्चयामास मुक्तसङ्गमनोरमम् ॥२७॥

स्वागतेन अभिनन्द्य अथ पादौ भगवतः बलिः अवनिज्य अर्चयामास मुक्तसंङ्गं मनोरमम् ॥२७॥

स्वागतेन	स्वागत वाक्योंसे	अवनिज्य	धोकर
अभिनन्द्य	अभिनन्दन करके	अथ	फिर
मुक्तसंगं	निःसंग	बलिः	बलिने
मनोरमं	मनोहर	अर्चयामास	(उनका) पूजन
भगवतः पादौ	भगवान्के चरण		किया ॥२७॥

तत्पादशौचं जनकल्मषापहं
स धर्मवित्मूर्ध्न्यदधात् सुमङ्गलम् ।
यद् देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलि-
र्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥२८॥

तत् पादशौचं जन कल्मष अपहं स धर्मवित् मूर्ध्नि अदधात् सुमङ्गलं यत् देवदेवः गिरिशः चन्द्रमौलिः दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥२८॥

स धर्मवित्	उन धर्मज्ञ बलिने	यत् परया	जिसे परम
जन	लोगोंके	भक्त्या	भक्ति सहित
कल्मष अपहं	पापहारी	देवदेवः	देवदेव
सुमंगलं	परम मंगलमय	चन्द्रमौलिः	चन्द्रशेखर
तत् पादशौचं	उनके चरणोदकको	गिरिशः च	शङ्करजी ने भी
मूर्ध्नि अदधात्	सिर पर धारण किया	मूर्ध्ना दधार	सिर पर धारण किया है ॥२८॥

बलिरुवाच–

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते ।
ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वाऽऽर्य वपुर्धरम् ॥२९॥

स्वागतं ते नमः तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षात् मन्ये त्वा आर्य वपुः धरम् ॥२९॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन्	आर्य वपुः धरं	आपका शरीर धारण करके
ते स्वागतं	आपका स्वागत है,	साक्षात्	प्रत्यक्ष हो गया है
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	त्वा मन्ये	ऐसा मानता हूँ ॥२९॥
ते किं करवाम	आपकी क्या सेवा करूँ ?		
ब्रह्मर्षीणां तपः	ब्रह्मर्षियोंका तप		

अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ।
अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद् भवानागतो गृहान् ॥३०॥

अद्य नः पितरः तृप्ता अद्य नः पावितं कुलं अद्य सु इष्टः क्रतुः अयं यत् भवान् आगतः गृहान् ॥३०॥

यत् भवान्	क्योंकि आप	नः पितरः	हमारे पितर
गृहान् आगतः	(हमारे) घर आये हैं, अतः	अद्य तृप्ताः	आज तृप्त हो गये,
		नः कुलं	हमारा कुल

अद्य पावितं	आज पवित्र हो गया,	अद्य सु इष्टः	आज भली प्रकार गया ॥३०॥
अयं क्रतुः	यह यज्ञ		

अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि
द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ।
हतांहसो वारिभिरियं च भूरहो
तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥३१॥

अद्य अग्नयः मे सुहुता यथाविधि द्विज आत्मज त्वत् चरण अवने जनैः हत अंहसः वारिभिः इयं च भूः अहो तथा पुनीताः तनुभिः पदैः तव ॥३१॥

द्विज आत्मज	विप्रकुमार !	तथा तव	तथा आपके
त्वत् चरण	आपके चरणोंका	तनुभिः पदैः	नन्हें चरणोंसे
अवने जनैः	प्रक्षालन कर लेनेसे	अहो इयं भूः	अहो यह पृथ्वी
अद्य मे	आज मैंने	हत अंहसः	निष्पाप होकर
यथाविधि	विधिपूर्वक	पुनीता	पवित्र हो गयी ॥३१॥
अग्नयः सुहुता	अग्निमें उत्तम आहुति दे ली,		

यद् यद् वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे ।
त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ।
गां काञ्चनं गुणवद् धाम मृष्टं
तथान्नपेयमुत वा विप्र कन्याम् ।
ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा
रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ ॥३२॥

यत् यत् वटो वाञ्छसि तत् प्रतीच्छ मे त्वां अर्थिनं विप्रसुतानु तर्क ये गां काञ्चनं गुणवत् धाम मृष्टं तथा अन्न पेयं उत वा विप्र कन्यां ग्रामान् समृद्धान् तुरगान् गजान् वा रथान् तथा अर्हत्तम सम्प्रतीच्छ ॥३२॥

त्वां अर्थिनं	आपको कुछ चाहने-वाला	**गां काञ्चनं**	गौएँ, स्वर्ण,
विप्रसुतानु	ब्राह्मण-पुत्र ही	**गुणवत् धाम**	सामग्री सहित घर,
तर्क ये	समझता हूँ अतः	**तथा मृष्टं**	तथा पवित्र
अर्हत्तम	परम पूजनीय	**अन्न पेयं**	अन्न, जल,
वटो	ब्रह्मचारीजी !	**वा विप्र कन्यां**	अथवा विप्रकन्या,
यत् तत्	आप जो-जो	**समृद्धान् ग्रामान्**	सम्पत्तिशाली गांव,
वाञ्छसि	चाहते हों—	**तुरगान् गजान्**	घोड़े, हाथी
तत् मे प्रतीच्छ	वह मुझसे मांग लीजिए ।	**वा रथान्**	अथवा रथ
		सम्प्रतीच्छ	वही मांग लीजिए ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं स सूनृतम् ।
निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥

इति वैरोचनेः वाक्यं धर्मयुक्तं स सुनृतं निशम्य भगवान् प्रीतः प्रतिनन्द्य इदं अब्रवीत् ॥१॥

धर्मयुक्तं	धर्मयुक्त तथा	प्रीतः	प्रसन्न होकर
स सूनृतं	सत्य सहित मधुर	भगवान्	भगवान्
इति वैरोचनेः	इस विरोचन-नन्दनकी	प्रतिनन्द्य	उसका अभिनन्दन करके
वाक्यं निशम्य	बात सुनकर	इदं अब्रवीत्	यह बोले ॥१॥

श्रीभगवानुवाच—

वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं
कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ।
यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये
पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥ २ ॥

वचः तव एतत् जनदेव सूनृतं कुल उचितं धर्मयुतं यशः करं यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥२॥

जनदेव	राजन् !	कुल उचितं	(आपके) कुलके लिए उचितः
तव एतत् वचः	आपकी यह बात		
सूनृतं	मधुर और सत्य,	धर्मयुतं	धर्मयुक्त,

यशः करं	यश दायिनी है,	कुलवृद्ध	तुम्हारे कुलमें बड़े
यस्य सांपराये	जिसके पारलौकिक धर्म होनेमें	प्रशान्तः	अत्यन्त शान्त
		पितामहः	तुम्हारे पितामह
भृगवः	(ये) भृगुवंशी ब्राह्मण तथा		(प्रह्लादजी) भी
		प्रमाणं	प्रमाण हैं ॥२॥

न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् ।
प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वादाता द्विजातये ॥ ३ ॥

न हि एतस्मिन् कुले कश्चित् निःसत्त्वः कृपणः पुमान् प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यः वा अदाता द्विजातये ॥३॥

हि एतस्मिन्	क्योंकि इस	यः अदाता	जो दान न करता हो
कुले कश्चित्	कुलमें कोई		
निःसत्त्वः	सत्त्वहीन	वा द्विजातये	अथवा ब्राह्मणको
कृपणः	कृपण	प्रतिश्रुत्य	देनेको कहकर
पुमान् न	पुरुष नहीं हुआ	प्रत्याख्याता	अस्वीकार करदे ॥३॥

न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनार्थिताः
पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः ।
युष्मत्कुले यद्यशसामलेन
प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे ॥ ४ ॥

न सन्ति तीर्थे युधि च अर्थिना अर्थिताः पराङ्मुखाः ये तु अमनस्विनः नृपाः युष्मत् कुले यत् यशसा अमलेन प्रह्लाद उद्भाति यथा उडुपः खे ॥४॥

युष्मत् यत् कुले	आपके जिस कुलमें	अमलेन यशसा	अपने निर्मल यशसे
यथा खे	जैसे आकाशमें	प्रह्लाद उद्भाति	प्रह्लादजी देदीप्यमान हैं
उडुपः	चन्द्रमा	तीर्थे च युधि	तीर्थ और युद्धमें

अर्थिना	अर्थियों द्वारा	नृपाः	राजा
अर्थिताः	याचना करनेपर	पराङ्मुखा	विमुख हो जायँ
ये तु	जो तो	न सन्ति	नहीं हैं ॥४॥
अमनस्विनः	धैर्यहीन		

यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ।
प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ॥ ५ ॥

यतः जातः हिरण्याक्षः चरन् एक इमां महीं प्रतिवीरं दिग्विजये न अविन्दत गदायुधः ॥५॥

यतः जातः	जिस कुलमें उत्पन्न	एक इमां महीं	अकेला इस पृथ्वीपर
हिरण्याक्षः	हिरण्याक्ष	चरन्	घूमता हुआ
गदायुधः	गदारूप शस्त्र लेकर	प्रतिवीरं	प्रतिपक्षी
दिग्विजये	दिग्विजय करनेके लिए	न अविन्दत	नहीं पा सका ॥५॥

यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् ।
नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥

यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्म उद्धार आगतं न आत्मानं जयिनं मेने तत् वीर्यं भूरि अनुस्मरन् ॥६॥

क्ष्म उद्धार	पृथ्वीके उद्धारके लिए	भूरि वीर्यं	महान् पराक्रमका
आगतं विष्णुः	आये विष्णु वे	अनुस्मरन्	बार-बार स्मरण करते हुए
यं कृच्छ्रेण	जिसे बहुत कष्टसे	आत्मानं	अपनेको
विनिर्जित्य	जीत कर	जयिनं न मेने	विजयी नहीं माना ॥६॥
तत्	उसके		

निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा ।
हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥

निशम्य तत् वधं भ्राता हिरण्य कशिपुः पुरा हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धः जगाम निलयं हरेः ॥७॥

पुरा	प्राचीन समयमें	हन्तुं	मारनेके लिए
तत् भ्राता वधं	उस भाईके वधको	हिरण्य कशिपुः	हिरण्यकशिपु
निशम्य	सुनकर	हरेः निलयं	हरिके धाम
क्रुद्धः	क्रुद्ध होकर	जगाम	गया ॥७॥
भ्रातृहणं	भाईके हत्यारेको		

तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् ।
चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८ ॥

तं आयान्तं सम आलोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् चिन्तयामास कालज्ञः विष्णुः मायाविनां वरः ॥८॥

कृतान्तवत्	कालके समान	कालज्ञः	समय पहिचाननेवाले
तं शूलपाणि	उसे हाथमें त्रिशूल लिए	मायाविनां	मायावियोंमें
सम आयान्तं	पास आता	वरः	श्रेष्ठ
आलोक्य	देखकर	विष्णुः	विष्णुने
		चिन्तयामास	सोचा ॥८॥

यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ।
अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥

यतः यतः अहं तत्र असौ मृत्युः प्राणभृतां इव अतः अहं अस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराक् दृशः ॥९॥

अहं यतः यतः	'मैं जहां जहां (जाऊँगा)	अतः	अतः
		पराक् दृशः	बाहर देखनेवाले
प्राणभृतां	प्राणियोंके लिए	अस्य हृदयं	इसके हृदयमें
मृत्युः इव	मृत्युके समान	अहं	मैं
असौ तत्र	यह भी वहां (पहुँच जायगा)	प्रवेक्ष्यामि	प्रवेश करूंगा' ॥९॥

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीर-
माधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र ।
श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेह-
स्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥१०॥

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरं आधावतः निर्विविशे असुरेन्द्र श्वास अनिल अन्तर्हित सूक्ष्मदेहः तत् प्राण रन्ध्रेण विविग्न चेताः ॥१०॥

असुरेन्द्र	असुरेन्द्र !	रन्ध्रेण	छिद्र नासिकासे
स विविग्न	उन उद्विग्न	सूक्ष्मदेहः	सूक्ष्म शरीरसे
चेताः	चित्तने	श्वास अनिल	श्वास वायुमें
एवं निश्चित्य	ऐसा निश्चय करके	अन्तर्हित	छिपकर
आधावतः रिपोः	दौड़ते हुए शत्रुके	निर्विविशे	प्रवेश कर लिया
शरीरं	शरीरमें		॥१०॥
तत् प्राण	उसके प्राण		

स तन्निकेतं परिमृश्य शून्य-
मपश्यमानः कुपितो ननाद ।
क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्
विष्णुं विचिन्वन् न ददर्श वीरः ॥११॥

स तत् निकेतं परिमृश्य शून्यं अपश्यमानः कुपितः ननाद क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान् समुद्रान् विष्णुं विचिन्वन् न ददर्श वीरः ॥११॥

तत् शून्यं	उनके सूने	दिशः	दिशाओं,
निकेतं	भवनको	खं	आकाश तथा
परिमृश्य	ढूंढकर	विवरान्	पातालमें
स कुपितः	वह क्रोधसे	विष्णुं	विष्णुको
ननाद	गरजने लगा	विचिन्वन्	ढूंढ़ता हुआ
वीरः	वह वीर	न ददर्श	नहीं देख सका
क्ष्मां द्यां	पृथ्वी, स्वर्ग,		॥११॥

अपश्यन्निति होवाच मयान्विष्टमिदं जगत् ।
भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥१२॥

अपश्यन् इति ह उवाच मया अन्विष्टं इदं जगत् भ्रातृहा मे गतः नूनं यतः न आवर्तते पुमान् ॥१२॥

अपश्यन्	(उनको) न देखकर	**नूनं मे भ्रातृहा**	निश्चय मेरे भाईका हत्यारा
इति ह	इस प्रकार निश्चय करके	**यतः**	जहाँ जाकर (जीव)
उवाच	बोला	**न आवर्तते**	नहीं लौटता
मया इदं	'मैंने इस	**पुमान्**	(वहां) चला गया ॥१२॥
जगत् अन्विष्टं	पूरे विश्वको ढूंढ़ लिया		

वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् ।
अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥१३॥

वैर अनुबन्ध एतावान् आमृत्योः इह देहिनां अज्ञान प्रभवः मन्युः अहंमान उपबृंहितः ॥१३॥

आमृत्योः	मृत्यु पर्यन्त	**अहंमान**	अह मन्यतासे
एतावान्	जितना ही	**उपबृंहितः**	बढ़ा हुआ
इह	इस लोकमें	**मन्युः**	क्रोध
देहिनां	प्राणियोंका	**अज्ञान**	अज्ञानसे
वैर	शत्रुताका	**प्रभवः**	उत्पन्न होता है ॥१३॥
अनुबन्ध	सम्बन्ध रहता है		

पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः ।
स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्यो देवेभ्योऽदात् स याचितः ॥१४॥

पिता प्रह्लादपुत्रः ते तत् विद्वान् द्विजवत्सलः स्वं आयुः द्विजलिङ्गेभ्यः देवेभ्यः अदात् स याचितः ॥१४॥

प्रह्लादपुत्रः	प्रह्लादके पुत्र	तत् विद्वान्	उन्हें पहिचान
ते पिता	तुम्हारे पिता		करके भी
	(विरोचन) ने	द्विजवत्सलः	ब्राह्मणोंसे प्रेम
द्विजलिङ्गेभ्यः	ब्राह्मण वेशधारी		करनेवाले होनेसे
देवेभ्यः	देवताओंके	स स्वं आयुः	उन्होंने अपनी आयु
याचितः	मांगनेपर	अदात्	दे दी ॥१४॥

भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः ।
ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥१५॥

भवान् आचरितान् धर्मान् आस्थितः गृहमेधिभिः ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैः अन्यैः च उद्दाम कीर्तिभिः ॥१५॥

पूर्वजैः	पहिले उत्पन्न हुए	शूरैः च	वीरों द्वारा भी
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों,	आचरितान्	आचरण किये
अन्यैः उद्दाम	दूसरे परम	धर्मान्	धर्मोंपर
कीर्तिभिः	यशस्वी	भवान्	आप
गृहमेधिभिः	गृहस्थ	आस्थितः	स्थित हैं ॥१५॥

तस्मात् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात् ।
पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ॥१६॥

तस्मात् त्वत्तः महीं ईषत् वृणे अहं वरद ऋषभात् पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ॥१६॥

दैत्येन्द्र	दैत्येन्द्र !	मम पदानि	मेरे पैरोंसे
तस्मात्	इसलिए	संमितानि	नापी हुई
वरद	वरदान देने वालोंमें	त्रीणि पदानि	तीन पद
ऋषभात्	श्रेष्ठ	ईषत् महीं	थोड़ी-सी पृथ्वी
त्वत्तः	तुमसे	अहं वृणे	मैं मांगता हूँ ॥१६॥

नान्यत् ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ।
नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थप्रतिग्रहः ॥१७॥

न अन्यत् ते कामये राजन् वदान्यात् जगदीश्वरात् न एनः प्राप्नोति वै विद्वान् यावत् अर्थ प्रतिग्रहः ॥१७॥

राजन्	राजन्	**यावत् अर्थ**	प्रयोजन मात्रके लिए
ते वदान्यात्	तुम उदार तथा	**प्रतिग्रहः**	दान स्वीकार करने-
जगदीश्वरात्	सम्पूर्ण जगतके स्वामीसे		से
अन्यत् न	दूसरा कुछ नहीं	**विद्वान् वै**	विद्वान् निश्चय
कामये	चाहता	**एनः न**	पाप भागी नहीं
		प्राप्नोति	होता ॥१७॥

बलिरुवाच–

अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ।
त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥१८॥

अहो ब्राह्मण दायाद वाचः ते वृद्ध संमताः त्वं बालः बालिशमतिः स्वार्थं प्रति अबुधः यथा ॥१८॥

अहो ब्राह्मण	हे ब्राह्मण	**बालः**	बालक हो,
दायाद	कुमार !	**यथा**	क्योंकि अपने
ते वाचः	तुम्हारी बातें	**स्वार्थं प्रति**	स्वार्थको भी
वृद्ध संमताः	वृद्धों जैसी हैं; किन्तु	**अबुधः**	नहीं जानते हो ॥१८॥
त्वं	तुम		
बालिशमतिः	अज्ञबुद्धि		

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् ।
पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम् ॥१९॥

मां वचःभिः समाराध्य लोकानां एकं ईश्वरं पदत्रयं वृणीते यः अबुद्धिमान् द्वीपद आशुषम् ॥१९॥

लोकानां	(तीनों) लोकोंके	**द्वीपद**	द्वीप देनेमें
एकं ईश्वरं	एक मात्र स्वामी	**आशुषं**	समर्थ

मां वचःभिः	मुझे स्तुतिसे	यः	जो (केवल)
समाराध्य	भली प्रकार प्रसन्न करके	पदत्रयं	तीन पद
		वृणीते	मांगता है (वह)
		अबुद्धिमान्	बुद्धिहीन है ॥१९॥

न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ।
तस्माद् वृत्तिकरीं भूमिं वटो कामं प्रतीच्छ मे ॥२०॥

न पुमान् मां उपव्रज्य भूयः याचितुं अर्हति तस्मात् वृत्तिकरीं भूमिं वटोः कामं प्रतीच्छ मे ॥२०॥

मां उपव्रज्य	मेरे पास आकर	वृत्तिकरीं	आजीविका देने योग्य
पुमान् भूयः	पुरुषको फिर	कामं भूमिं	इच्छानुसार भूमि
याचितुं न	मांगना नहीं	मे प्रतीच्छ	मुझसे मांग लो
अर्हति	चाहिए		॥२०॥
तस्मात् वटो	इसलिए ब्रह्मचारीजी		

श्रीभगवानुवाच—

यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ।
न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥२१॥

यावन्तः विषयाः प्रेष्ठाः त्रिलोक्यां अजित इन्द्रियं न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥२१॥

नृप	राजन् !	ते सर्वे	वे सब
त्रिलोक्यां	तीनों लोकोंमें	अजित इन्द्रियं	अजितेन्द्रियको
यावन्तः	जितने	प्रतिपूरयितुं	परिपूर्ण करनेमें
प्रेष्ठाः विषयाः	प्रिय विषय हैं,	शक्नुवन्ति न	समर्थ नहीं हैं ॥२१॥

त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ।
नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥२२॥

त्रिभिः क्रमैः असन्तुष्टः द्वीपेन अपि न पूर्यते नववर्ष समेतेन सप्तद्वीप वर इच्छया ॥२२॥

त्रिभिः क्रमैः	तीन पग (पृथ्वी) से	**इच्छया**	इच्छासे
असन्तुष्टः	जो सन्तुष्ट नहीं है, वह	**नववर्ष समेतेन**	नववर्षों सहित
		द्वीपेन अपि	एक द्वीपसे भी
सप्तद्वीप	सातों द्वीपोंका	**पूर्यते न**	परितुष्ट नहीं होगा
वर	वरदान पानेकी		॥२२॥

सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः ।
अर्थैः कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥२३॥

सप्तद्वीप अधिपतयः नृपा वैन्य गय आदयः अर्थैः कामैः गता न अन्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥२३॥

इति नः	ऐसा हमने	**आदयः**	आदि
श्रुतं	सुना है कि	**नृपा**	राजा लोग
सप्तद्वीप	सातों द्वीपोंके	**अर्थैः कामैः**	धन और भोगसे
अधिपतयः	अधिपति	**तृष्णाया अन्तं**	तृष्णाका अन्त
वैन्य गद	वैन्य गद	**न गता**	नहीं पा सके ॥२३॥

यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥२४॥

यदृच्छया उपपन्नेन सन्तुष्टः वर्तते सुखं न असन्तुष्टः त्रिभिः लोकैः अजितात्मा उपसादितैः ॥२४॥

यदृच्छया	(प्रारब्धवश) अपने आप	**असन्तुष्टः**	असन्तुष्ट
		अजितात्मा	अजितेन्द्रिय (व्यक्ति)
उपपन्नेन	प्राप्त हुएसे	**त्रिभिः लोकैः**	तीनों लोकोंके
सन्तुष्टः	सन्तुष्ट रहनेवाला	**उपसादितैः**	मिलनेपर भी
सुखं वर्तते	सुखपूर्वक रहता है; किन्तु	**न**	(सुखी) नहीं (होता) ॥२४॥

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः ।
यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तये स्मृतः ॥२५॥

पुंसः अयं संसृतेः हेतुः असंतोषः अर्थ कामयोः यदृच्छया उपपन्नेन संतोषः मुक्तये स्मृतः ॥२५॥

अर्थ	धन और	**यदृच्छया**	अपने आप
कामयोः	भोगके सम्बन्धमें	**उपपन्नेन**	प्राप्तसे
असंतोषः	असंतोष	**संतोषः**	संतोष
अयं पुंसः	यह पुरुषके	**मुक्तये स्मृतः**	मुक्तिका हेतु कहा गया है ॥२५॥
संसृतेः हेतुः	जन्म-मरणका कारण है,		

यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ।
तत् प्रशाम्यत्यसंतोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥२६॥

यदृच्छा लाभ तुष्टस्य तेजः विप्रस्य वर्धते तत् प्रशाम्यति असन्तोषात् अम्भसा इव आशु शुक्षणिः ॥२६॥

यदृच्छा लाभ	अपने आप मिलेसे	**अम्भसा**	पानीसे
तुष्टस्य	सन्तुष्ट रहनेवाले	**शुक्षणिः**	सींचे हुए की
विप्रस्य	ब्राह्मणका	**इव आशु**	भांति शीघ्र
तेजः वर्धते	तेज बढ़ता है,	**प्रशाम्यति**	शान्त हो जाता है ॥२६॥
असन्तोषात्	असन्तोषसे (वह तेज)		

तस्मात् त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद् वरदर्षभात् ।
एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥२७॥

तस्मात् त्रीणि पदानि एव वृणे त्वत् वरद ऋषभात् एतावता एव सिद्धः अहं वित्तं यावत् प्रयोजनम् ॥२७॥

तस्मात्	इसलिए	**वरद**	वरदान देनेवालोंमें
त्वत्	तुम	**ऋषभात्**	श्रेष्ठसे

त्रीणि पदानि	तीन पद	एतावता एव	(उसके अनुसार) इतने ही
एव	(भूमि) ही		
वृणे	मांगता हूँ,	वित्तं अहं	धनसे मैं
यावत् प्रयोजनं	जितना प्रयोजन है	सिद्धः	सफल हो जाऊँगा ॥२७॥

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् ।
वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥२८॥

इति उक्तः स हसन् आह वाञ्छातः प्रतिगृह्यतां वामनाय महीं दातुं जग्राह जल भाजनम् ॥२८॥

इति उक्तः	ऐसा कहनेपर	वामनाय	भगवान् वामनको
स	वह (बलि)	महीं दातुं	पृथ्वी दानके लिए (संकल्प करनेको)
हसन्	हंसते हुए		
आह	बोला	जल भाजनम्	जल-पात्र
वाञ्छातः	'इच्छानुसार	जग्राह	उठाया ॥२८॥
प्रतिगृह्यतां	दान लो।'		

विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशना असुरेश्वरम् ।
जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः ॥२९॥

विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तं उशना असुर ईश्वरं जानन् चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः ॥२९॥

विदां वरः	ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ	विष्णवे	विष्णु भगवान्‌को
उशना	शुक्राचार्यने	क्ष्मां प्रदास्यन्तं	पृथ्वी देते हुए
विष्णोः	विष्णु भगवान्	असुर ईश्वरं	असुरोंके स्वामी
चिकीर्षितं	जो करना चाहते थे वह	शिष्यं प्राह	अपने शिष्य बलिसे कहा ॥२९॥
जानन्	जानकर		

श्रीशुक उवाच—

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान्विष्णुरव्ययः ।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥३०॥

एष वैरोचने साक्षात् भगवान् विष्णुः अव्ययः कश्यपात् अदितेः जातः देवानां कार्यसाधकः ॥३०॥

वैरोचने	विरोचन-नन्दन !	**अदितेः जातः**	अदितिके पुत्र
देवानां	देवताओंका	**एष साक्षात्**	ये साक्षात्
कार्यसाधकः	कार्य सिद्ध करने-वाले	**अव्ययः**	अविनाशी
		भगवान्	भगवान्
कश्यपात्	कश्यपसे	**विष्णुः**	विष्णु हैं ॥३०॥

प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ।
न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥३१॥

प्रतिश्रुतं त्वया एतस्मै यत् अनर्थं अजानता न साधु मन्ये दैत्यानां महान् उपगतः अनयः ॥३१॥

यत् अनर्थं	जो (भावी) अनर्थ-को	**न मन्ये**	नहीं मानता
		दैत्यानां	दैत्योंके साथ
अजानता	न जाननेके कारण	**महान् अनयः**	महान् अन्यायय
त्वया एतस्मै	तुमने इनको	**उपगतः**	उपस्थित हो गया
प्रतिश्रुतं	वचन दे दिया		है ॥३१॥
साधु	(उसे मैं) अच्छा		

एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ।
दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥३२॥

एष ते स्थानं ऐश्वर्यं श्रियं तेजः यशः श्रुतं दास्यति आच्छिद्य शक्राय माया माणवकः हरिः ॥३२॥

एष माणवकः	ये मायासे मनुष्य बने	**तेजः**	तेज,
		श्रुतं यशः	(विश्व) विख्यात यश
हरिः	विष्णु		
ते स्थानं	तुम्हारा स्थान,	**आच्छिद्य**	छीनकर उसे
ऐश्वर्यं श्रियं	ऐश्वर्य, लक्ष्मी	**शक्राय दास्यति**	इन्द्रको दे देंगे ॥३२॥

त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति ।

सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥३३॥

त्रिभिः क्रमैः इमान् लोकान् विश्वकायः क्रमिष्यति सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥३३॥

विश्वकायः	ये विश्वरूप होकर	**सर्वस्वं**	अपना सर्वस्व
इमान् लोकान्	इन सब लोकोंको	**विष्णवे दत्त्वा**	विष्णुको देकर
त्रिभिः क्रमैः	तीन पदमें	**वर्तिष्यसे**	(अपना) निर्वाह
क्रमिष्यति	माप लेंगे	**कथं**	कैसे करेगा ॥३३॥
मूढ	(अरे) मूर्ख		

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ।

खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥३४॥

क्रमतः गां पद एकेन द्वितीयेन दिवं विभोः खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतः गतिः ॥३४॥

एकेन पद	एक पैरसे	**खं च**	आकाश भी (नप जायगा)
गां	पृथ्वी		
द्वितीयेन दिवं	दूसरे (पदसे) स्वर्ग	**तार्तीयस्य**	फिर तीसरे (पद) के लिए
विभोः	इन सर्वव्यापकके		
क्रमतः	नापते समय	**गतिः कुतः**	स्थान कहां रहेगा ॥३४॥
महता	इनके विशाल		
कायेन	शरीरसे		

निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ।
प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥३५॥

निष्ठां ते नरके मन्ये हि अप्रदातुः प्रतिश्रुतं प्रतिश्रुतस्य यः अनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥३५॥

भवान्	तुम	प्रतिश्रुतं	प्रतिज्ञा करके
प्रतिश्रुतस्य	प्रतिज्ञा करके	अप्रदातुः	न देनेवालेका
प्रतिपादयितुं	उसे पूरा करनेमें	निष्ठां नरके	स्थान नरकमें
हि अनीशः	क्योंकि असमर्थ हो,	मन्ये	मानता हूँ ॥३५॥
यः ते	उस तुम्हारी		

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥३६॥

न तत् दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिः विपद्यते दानं यज्ञः तपः कर्म लोके वृत्तिमतः यतः ॥३६॥

तत् दानं	उस दानकी	यतः लोके	क्योंकि संसारमें
प्रशंसन्ति न	प्रशंसा नहीं की जाती	दानं यज्ञः	दान, यज्ञ,
		तपः कर्म	तपस्यादि कर्म
येन वृत्तिः	जिससे आजीविका	वृत्तिमतः	आजीविका वालेके
विपद्यते	नष्ट होती हो		लिए ही हैं ॥३६॥

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥३७॥

धर्माय यशसे अर्थाय कामाय स्वजनाय च पञ्चधा विभजन् वित्तं इह अमुत्र च मोदते ॥३७॥

धर्माय	धर्मके लिए,	कामाय	अपने उपभोगके लिए
यशसे	यशके लिए		
अर्थाय	फिर धन कमानेके लिए	च स्वजनाय	तथा अपने संबन्धी लोगोंके लिए

वित्तं	(इस प्रकार) धनको	अमुत्र	परलोकमें
पञ्चधा	पांच भागोंमें	मोदते	आनन्द करता है
विभजन्	बांटनेवाला		॥३७॥
इह च	इस लोक और		

अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम ।
सत्यमोमिति यत् प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥३८॥

अत्र अपि बह्व ऋचैः गीतं शृणु मे असुर सत्तम सत्यं ओम् इति यत् प्रोक्तं यत् नेति आह अनृतं हि तत् ॥३८॥*

असुर सत्तम	असुर श्रेष्ठ !	यत् प्रोक्तं	जो कहा (स्वीकार किया) जाय
अत्र	इस (सत्य-मिथ्या) के सम्बन्धमें	सत्यं	वह सत्य है और
अपि	भी	हि	क्योंकि
बह्व ऋचैः	ऋग्वेदकी श्रुतियोंमें	यत् नेति	जिसे 'नहीं है'
गीतं	वर्णित बात	आह	इस प्रकार कहा गया
मे शृणु	मुझसे सुनो		
ओम् इति	'हां' इस प्रकार	तत् अनृतं	वह झूठ है ॥३८॥

सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ।
वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ॥३९॥

सत्यं पुष्पफलं विद्यात् आत्मवृक्षस्य गीयते वृक्षे अजीवति तत् न स्यात् अनृतं मूलं आत्मनः ॥३९॥

आत्मवृक्षस्य	शरीर रूपी वृक्षका	पुष्पफलं	पुष्प और फल
सत्यं	सत्यको	विद्यात्	समझे

*शुक्राचार्य नीतिके आचार्य होनेसे जानबूझकर यहां श्रुतिका अर्थ अपने पक्षमें कर रहे हैं। नहीं तो जो वस्तु आपके पास है ही नहीं, उसे 'नहीं है' कहना झूठ कैसे होगा। श्रुति वस्तुतः परमार्थ सत्ता प्रतिपादक है। जिसे सदा 'ॐ' अथवा सत्तारूप है कहते हैं, वह सत्य है और 'नेति' कहकर जिसका निषेध कर देते हैं, वह मिथ्या-तथ्यहीन है।

गीयते	ऐसा ही श्रुतिमें कहा है,	तत्	वह (सत्य) भी
		न स्यात्	नहीं रहेगा
वृक्षे अजीवति	वृक्षके जीवित न रहनेपर	आत्मनः मूलं	शरीरकी तो जड़ ही
		अनृतं	उन सत्य है ॥३९॥

तद् यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् ।
एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥४०॥

तत् यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यति उद्वर्तते अचिरात् एवं नष्ट अनृतः सद्य आत्मा शुष्येत् संशयः ॥४०॥

तत् यथा	अतः जैसे	नष्ट	असत्यके नष्ट
वृक्ष उन्मूलः	वृक्ष जड़से उखड़कर	अनृतः	हो जानेपर
अचिरात्	शीघ्र	संशयः न	(इसमें) सन्देह नहीं कि
शुष्यति	सूखकर		
उद्वर्तते	गिर पड़ता है	आत्मा शुष्येत्	शरीर सूख जाता है ॥४०॥*
एवं	इस प्रकार		

पराग रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत् तदोमिति ।
यत् किञ्चिदोमिति ब्रूयात् तेन रिच्येत वै पुमान् ।
भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥४१॥

पराक् रिक्तं अपूर्णं वा अक्षरं यत् तत् ओम् इति यत् किञ्चित् ओम् इति ब्रूयात् तेन रिच्येत वै पुमान् भिक्षवे सर्वं ओंकुर्वन न अलं कामेन च आत्मने ॥४१॥

---

*केवल सत्यसे शरीर-निर्वाह भी नहीं होगा, यह समझानेके लिए सत्यके दोष एवं असत्यके गुण नीति शास्त्रके अनुसार बतला रहे हैं; किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि धर्म-विरुद्ध-नीति त्याज्य है। यही बलि करने-वाले हैं।

यत् ओम	जो ओम् (हां देंगे)	तेन वै	उस वस्तुसे निश्चय
अक्षरं	यह अक्षर है	पुमान् रिच्येत	वह पुरुष रिक्त हो जाता है
तत् पराक्	वह (धनको) दूर ले जानेवाला,	भिक्षवे	याचकको
रिक्तं वा	खाली या	सर्वं	सब कुछ
अपूर्णं	अधूरा कर देनेवाला है,	ओंकुर्वन	देना स्वीकार कर लेते हैं
यत् किञ्चित्	जिस कुछके लिए भी	च	और
ओम्	ओम् (हां दूँगा)	आत्मने	अपने
इति	इस प्रकार	कामेन	उपभोगके लिए
ब्रूयात्	कह देता है,	न	नहीं रखते ॥४१॥

अथैतत् पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ।
सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात् स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥४२॥

अथ एतत् पूर्णं अभि आत्मं यत् च नेति अनृतं वचः सर्वं नेति अनृतं ब्रूयात् स दुष्कीर्तिः श्वसन् मृतः ॥४२॥

यत् नेति	तो 'नहीं' इस प्रकारकी	नेति	नहीं दूंगा इस प्रकार
अनृतं वचः	मिथ्या वाणी है	अनृतं	जो झूठी वाणी ही
अथ एतत्	अतः यह	ब्रूयात्	बोलता है
अभि आत्मं	शरीरके अनुकूल और	स दुष्कीर्तिः	वह अपयश भागी होता है
पूर्णं	(धनको) पूरा रखनेवाली है; किन्तु	श्वसन्	श्वास लेते हुए भी
सर्वं	सबके लिए 'नहीं' है,	मृतः	मरेके समान है ॥४२॥

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥४३॥

स्त्रीषु नर्म विवाहे च वृत्ति अर्थे प्राण सङ्कटे गो ब्राह्मण अर्थे हिंसायां न अनृतं स्यात् जुगुप्सितम् ॥४३॥

स्त्रीषु	स्त्रियोंके साथ (उनको अनुकूल रखनेको)	**सङ्कटे**	संकट होनेपर
		गो ब्राह्मण	गाय तथा ब्राह्मण
		अर्थे	हितके लिए
नर्म	परिहासमें	**हिंसायां**	किसीकी हिंसा होती हो तो
च विवाहे	तथा विवाहमें,		
वृत्ति	आजीविका	**अनृतं**	झूठ बोल देना
अर्थे	रक्षा के लिए	**जुगुप्सितं**	निन्दनीय
प्राण	प्राणोंपर	**न स्यात्**	नहीं है ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ।
तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥

बलिः एवं गृहपतिः कुल आचार्येण भाषितः तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन् उवाच अवहितः गुरुम् ॥१॥

राजन्	राजन् !	**क्षणं तूष्णीं**	एक क्षण चुप
एवं	इस प्रकार	**भूत्वा**	रहकर
कुल आचार्येण	कुल गुरु द्वारा	**अवहितः**	सावधानी पूर्वक
भाषितः	कहनेपर	**गुरुं उवाच**	गुरुसे बोले ॥१॥
गृहपतिः बलिः	गृहस्थ राजा बलि		

बलिरुवाच-

सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ।
अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २ ॥

सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मः अयं गृहमेधिनां अर्थं कामं यशः वृत्तिं यः न बाधेत कर्हिचित् ॥२॥

भगवता प्रोक्तं	भगवन् ! आपका कहा	**यः अर्थं कामः**	जिससे धन, भोग,
		यशः वृत्तिं	यश आजीविकामें
गृहमेधितां	गृहस्थोंका	**कर्हिचित्**	कभी भी
अयं धर्मः सत्यं	यह धर्म ठीक है कि	**बाधेत न**	बाधा न पड़े ॥२॥

स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ।
प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥

स च अहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजं प्रतिश्रुत्य ददामि इति प्राह्लादिः कितवः यथा ॥३॥

च स अहं	किन्तु वह मैं	कितवः यथा	कपटीकी भांति
प्राह्लादिः	प्रह्लाद-नन्दन विरोचनका पुत्र होकर	वित्तलोभेन	धनके लोभसे
		कथं	कैसे
		प्रत्याचक्षे	प्रत्याख्यान (अस्वीकार) करूँगा ॥३॥
द्विजं ददामि	ब्राह्मणसे 'दूंगा'		
इति	इस प्रकार		
प्रतिश्रुत्य	प्रतिज्ञा करके		

न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४ ॥

न हि असत्यात् परः अधर्म इति ह उवाच भूः इयं सर्वं सोढुं अलं मन्ये ऋते अलीक परं नरम् ॥४॥

इयं भूः	इस पृथ्वीने	सर्वं सोढुं	मैं और सबका भार सहनेमें
ह इति उवाच	निश्चयपूर्वक ऐसा कहा है	अलं	समर्थ हूँ,
		हि	क्योंकि
अलीक परं	असत्य परायण	असत्यात् परः	असत्यसे बड़ा कोई
नरं ऋते	मनुष्यको छोड़कर	अधर्मः न	अधर्म नहीं है ॥४॥

नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ।
न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥

न अहं बिभेमि निरयात् न अधन्यात् असुख अर्णवात् न स्थान च्यवनात् मृत्योः यथा विप्र प्रलम्भनात् ॥५॥

विप्र	ब्राह्मणकी	यथा बिभेमि	जैसा डरता हूँ (वैसा)
प्रलम्भनात्	वंचना करनेसे		

निरयात् न	नरकसे नहीं,	स्थान च्यवनात्	पदच्युति तथा
असुख अर्णवात्	दुःखोंके समुद्रके समान	मृत्योः न	मृत्युसे नहीं (डरता) ॥५॥
अधन्यात् न	धनहीनतासे नहीं,		

यद् यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ।
तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥

यत् यत् हास्यति लोके अस्मिन् सम्परेतं धन आदिकं तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रः तुष्येत् न तेन चेत् ॥६॥

अस्मिन् लोके	इस लोकमें	विप्रः	ब्राह्मण
यत् यत्	जो जो	न तुष्येत्	सन्तुष्ट नहीं हुआ
धन आदिकं	धन आदि	तस्य त्यागे	उसको छोड़ देनेमें कारणका
सम्परेतं	मरनेपर		
हास्यति	छोड़ ही देगा	किं निमित्तं	क्या विचार करना है ॥६॥
तेन चेत्	उससे यदि		

श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ।
दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥

श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवः दुस्त्यज असुभिः दध्यङ् शिबि प्रभृतयः कः विकल्पः धरा आदिषु ॥७॥

दध्यङ्	दधीचि	भूतानां श्रेयः	प्राणियोंका कल्याण
शिबि प्रभृतयः	शिबि आदि	कुर्वन्ति	किया है (तब)
साधवः	सत्पुरुषोंने	धरा आदिषु	पृथ्वी आदि (देने) में
दुस्त्यज	दुस्त्याज्य		
असुभिः	प्राणोंको भी देकर	विकल्पः कः	सोचना क्या है ॥७॥

यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः ।
तेषां कालोऽग्रसील्लोकान् न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८ ॥

यः इयं बुभुजे ब्रह्मन् दैत्येन्द्रैः अनिवर्तिभिः तेषां कालः अग्रसीत् लोकान् न यशः अधिगतं भुवि ॥८॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	लोकान्	परलोकको
यैः	जिन (युद्धसे पीछे)	कालः	कालने
अनिवर्तिभिः	न लौटनेवाले	अग्रसीत्	खा लिया; किन्तु
दैत्येन्द्रैः	दैत्य-सम्राटोंने	भुवि अधिगतं	पृथ्वीपर प्राप्त
इयं बुभुजे	इस पृथ्वीको भोग है	यशः न	यशको नहीं (खा सका) ॥८॥
तेषां	उनके इस और		

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः ।
न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥

सुलभा युधि विप्रर्षे हि अनिवृत्ताः तनुत्यजः न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥९॥

विप्रर्षे	ब्रह्मर्षि !	तीर्थ आयाते	पवित्र पात्र आनेपर
हि युधि	क्योंकि युद्धमें	श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक
अनिवृत्ताः	पीछे न लौटकर	ये धनत्यजः	जो धन त्याग दें
तनुत्यजः	शरीर छोड़ देनेवाले	तथा	वैसे (सुलभ)
सुलभा	सरलतासे मिलते हैं; किन्तु	न	नहीं हैं ॥९॥

मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं
यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ।
कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां
ततो वटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥१०॥

मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यत् अर्थि काम उपनयेन दुर्गतिः कुतः पुनः ब्रह्मविदां भवादृशां ततः वटोः अस्य ददामि वाञ्छितम् ॥१०॥

मनस्विनः	धैर्यशाली	**पुनः भवादृशां**	फिर आपके समान
कारुणिकस्य	करुणमय (पुरुष) के लिए (चाहे जिस)	**ब्रह्मविदां**	वेद वेत्ताओंको (देकर तो)
		कुतः	कहना ही क्या
अर्थि	याचककी	**ततः अस्य वटोः**	अतः इस ब्रह्मचारी-को
काम उपनयेन	कामना पूरी करनेसे		
यत् दुर्गतिः	जो दुर्गति होती है वह	**अस्य वाञ्छितं**	इसका चाहा
		ददामि	दूँगा ॥१०॥
शोभनं	शोभास्पद है,		

यजन्ति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता
भवन्त आम्नायविधानकोविदाः ।
स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो
दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥११॥

यजन्ति यज्ञक्रतुभिः यं आदृता भवन्त आम्नाय विधान कोविदाः स एव विष्णुः वरदः अस्तु वा परः दास्यामि अमुष्मै क्षितिं ईप्सितां मुने ॥११॥

मुने	महामुनिजी !	**यजन्ति**	पूजन करते हैं
आम्नाय विधान	शास्त्रीय विधिके	**स एव वरदः**	वही वरदायक
कोविदाः	मर्मज्ञ	**विष्णुः अस्तु**	विष्णु हों
भवन्त	आप लोग	**वा परः**	अथवा कोई दूसरा
यज्ञक्रतुभिः	छोटे-बड़े यज्ञों द्वारा	**अमुष्मै**	इनको
यं	जिनका	**ईप्सितां क्षितिं**	इनकी चाही पृथ्वी
आदृता	आदर पूर्वक	**दास्यामि**	दूँगा ॥११॥

यदप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ।
तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥१२॥

यत् अपि असाः अधर्मेण मां बध्नीयात् अनागसं तथा अपि एनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥१२॥

यत् अपि	यदि कहीं	भीतं	भयभीत होकर
मां अनागसं	मुझ निरपराधको	ब्रह्मतनुं	ब्राह्मण शरीरधारी
अधर्मेण	अधर्मपूर्वक	रिपुं	शत्रु
असाः	ये	एनं	इनको
बध्नीयात्	बाँध लें	हिंसिष्ये न	मारूंगा नहीं ॥१२॥
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी		

एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद् यशः ।
हत्वा मैनां हरेद् युद्धे शयीत निहतो मया ॥१३॥

एष वा उत्तमश्लोकः न जिहासति यत् यशः हत्वा म एनां हरेत् युद्धे शयीत निहतः मया ॥१३॥

एष	ये	एनां	इस पृथ्वीको
उत्तमश्लोकः	पवित्र-कीर्ति	हरेत्	छीन लेंगे
यत् यशः	यदि अपना यश	वा	अथवा
न जिहासति	नहीं छोड़ेंगे तो	मया	मेरे द्वारा
म युद्धे हत्वा	मुझे युद्धमें मारकर	निहतः	मारे जाकर
		शयीत	सो जायँगे ॥१३॥

श्रीशुक उवाच–

एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ।
शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥१४॥

एवं अश्रद्धितं शिष्यं अनादेशकरं गुरुः शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥१४॥

एवं	इस प्रकार	मनस्विनं	धैर्यशाली
अश्रद्धितं	श्रद्धा न करनेवाले	शिष्यं	शिष्यको
अनादेशकरं	आदेशका पालन न करनेवाले,	दैवप्रहितः	दैवकी प्रेरणासे
		गुरुः शशाप	गुरुने शाप दे दिया ॥१४॥
सत्यसन्धं	सत्यपरायण,		

दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ।
मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रियः ॥१५॥

दृढं पण्डितमान् अज्ञः स्तब्धः असि अस्मत् उपेक्षया मत् शासन अतिगः यः त्वं अचिरात् भ्रश्यसे श्रियः ॥१५॥

अज्ञः	अज्ञानी	मत् शासन	मेरी आज्ञाका
स्तब्धः असि	मूढ़मति होकर भी	अतिगः	अतिक्रमण किया है,
दृढं पण्डितमान्	बड़ा पण्डित मानने लगा है ?	अचिरात्	शीघ्र
		श्रियः	ऐश्वर्य
अस्मत् उपेक्षया	मेरी उपेक्षा करके	भ्रश्यसे	भ्रष्ट हो जायगा ॥१५॥
यः त्वं	क्योंकि तूने		

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ।
वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥१६॥

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यात् न चलितः महान् वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥१६॥

स्वगुरुणा	अपने गुरु द्वारा	चलितः	विचलित
एवं	इस प्रकार	न	नहीं हुआ,
शप्तः	शाप दिये जानेपर भी	वामनाय	वामन भगवान्‌को
		महीं दातुं	पृथ्वी देनेके लिए
महान्	महात्मा (बलि)	जल भाजनं	जल-पात्र
सत्यात्	सत्यसे	जग्राह	उठाया ॥१६॥

विन्ध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी ।
आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥१७॥

विन्ध्यावलिः तदा आगत्य पत्नी जालक मालिनी आनिन्ये कलशं हैमं अवनेजन् अपां भृतम् ॥१७॥

तदा	उस समय	आगत्य	वहां आकर
जालक	केशोंमें मोतियोंकी झालर तथा	अवनेजनं	चरण धोनेके लिए
मालिनी	माला पहिने	अपां भृतं	जलसे भरा
पत्नी	(बलिकी) पत्नी	हैमं कलशं	स्वर्ण-कलश
विन्ध्यावलिः	विन्ध्यावलि	आनिन्ये	ले आयी ॥१७॥

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत् पादयुगं मुदा ।
अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥१८॥

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत् पादयुगं मुदा अवनिज्य आवहत् मूर्ध्नि तत् अपः विश्वपावनीः ॥१८॥

स्वयं यजमानः	स्वयं यजमान बलिने	विश्वपावनीः	भुवनपावन
तस्य श्रीमत्	उनके शोभाशाली	अपः	जलको
पादयुगं	दोनों चरणोंको	मूर्ध्नि	सिरपर
अवनिज्य	प्रक्षालित करके	आवहत्	धारण किया ॥१८॥
तत्	उस		

तदासुरेन्द्रं दिवि देवतागणा
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।
तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं
प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदान्विताः ॥१९॥

तदा असुरेन्द्रं दिवि देवतागणा गन्धर्व विद्याधर सिद्ध चारणाः तत् कर्म सर्वे अपि गृणन्त आर्जवं प्रसूनवर्षैः ववृषुः मुद अन्विताः ॥१९॥

तदा	उस समय	सर्वे अपि	सभी
दिवि	आकाशमें स्थिति	तत् कर्म	उस कर्म और
देवतागणा	देवता लोग,	आर्जवं	सरलताकी
गन्धर्व विद्याधर	गन्धर्व, विद्याधर	गृणन्त	प्रशंसा करते हुए
सिद्ध चारणाः	सिद्ध तथा चारण	मुद अन्विताः	प्रसन्न होकर

असुरेन्द्रं	असुरराज बलिके ऊपर	प्रसूनवर्षैः	पुष्पोंकी वर्षा
		ववृषुः	करने लगे ॥१९॥

नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो
गन्धर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः ।
मनस्विनानेन कृतं सुदुष्करं
विद्वानदाद् यद् रिपवे जगत्त्रयम् ॥२०॥

नेदुः मुहुः दुन्दुभयः सहस्रशः गन्धर्व किंपूरुष किन्नरा जगुः मनस्विना अनेन कृतं सुदुष्करं विद्वान् अदात् यत् रिपवे जगत् त्रयम् ॥२०॥

सहस्रशः	हजारों	मनस्विना	धैर्यशालीने
दुन्दुभयः	दुन्दुभियां	सुदुष्करं	अत्यन्त कठिन
मुहुः नेदुः	बार-बार बजने लगीं,	कृतं	काम किया
		यत् विद्वान्	जो जानते हुए
गन्धर्व	गन्धर्व,	रिपवे	शत्रुको
किंपूरुष	किंपुरुष,	जगत् त्रयं	त्रिलोकी
किन्नरा जगुः	किन्नर गाने लगे कि	अदात्	दे दी ॥२०॥
अनेन	इस		

तद् वामनं रूपमवर्धताद्भुतं
हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ।
भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधय-
स्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥२१॥

तत् वामनं रूपं अवर्धत अद्भुतं हरेः अनन्तस्य गुणत्रय आत्मकं भूः खं दिशः द्यौः विवराः पयोधयः तिर्यक् नृ देवा ऋषयः यत् आसत ॥२१॥

तत् अनन्तस्य	वह अनन्त	अद्भुतं	अद्भुत
हरेः	श्रीहरिका	अवर्धत	रूपसे बढ़ने लगा,
गुणत्रय आत्मकं	त्रिगुणात्मक	भूः खं	पृथ्वी, आकाश,
वामनं रूपं	वामन रूप	दिशः	दिशाएँ,

द्यौः विवराः	स्वर्ग, पाताल,	देवा ऋषयः	देवता, ऋषि,
पयोधयः	समुद्र,	यत् आसत	जिसमें आ गये
तिर्यक् नृ	पशु-पक्षी, मनुष्य,		॥२१॥

काये बलिस्तस्य महाविभूतेः
सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ।
ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके
भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥२२॥

काये बलिः तस्य महाविभूतेः सह ऋत्विक् आचार्य सदस्य एतत् ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुण आत्मके भूत इन्द्रिय अर्थ आशय जीवयुक्तम् ॥२२॥

तस्य	उन	सदस्य सह	सदस्योंके साथ
महाविभूतेः	महाऐश्वर्यशालीके	भूत	पंच महाभूत,
गुण	गुणमय	इन्द्रिय	इन्द्रिय,
आत्मके काये	शरीरमें	अर्थ आशय	विषय, अन्तःकरण
बलिः	बलिने	जीवयुक्तं	जीवसे युक्त
ऋत्विक्	ऋत्विक्,	एतत् त्रिगुणं	यह त्रिगुणमय
आचार्य	आचार्य,	विश्वं ददर्श	विश्व देखा ॥२२॥

रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ पादयो-
र्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः ।
पतत्त्रिणो जानुनि विश्वमूर्ते-
रूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥२३॥

रसां अचष्ट अङ्घ्रितले अथ पादयोः महीं महीध्रान् पुरुषस्य जङ्घयोः पतत्त्रिणः जानुनि विश्वमूर्तेः उर्वोः गणं मारुतं इन्द्रसेनः ॥२३॥

इन्द्रसेनः	बलिने	अङ्घ्रितले	पैरके तलवोंमें
विश्वमूर्तेः	विश्वमूर्ति	रसां	पाताल,
पुरुषस्य	परम पुरुषके	अथ पादयोः	फिर पैरोंमें

महीं	पृथ्वी	पतत्त्रिणः	पक्षियोंको
जङ्घयोः	पिंडलियोंमें	उर्वो	जांघोंमें
महीध्रान्	पर्वतोंको,	मारुतं गणं	मरुद्गणोंको
जानुनि	घुटनोंमें	अचष्ट	देखा ॥२३॥

सन्ध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्
प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान् ।
नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धू-
नुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥२४॥

सन्ध्यां विभोः वाससि गुह्य ऐक्षत् प्रजापतीन् जघने आत्म मुख्यान् नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धून् उरुक्रमस्य उरसि च अर्क्षमालाम् ॥२४॥

उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम	मुख्यान्	सब मुख्य असुरगण,
विभोः	उन सर्वव्यापकके	नाभ्यां नभः	नाभिमें आकाश
वाससि सन्ध्यां	वस्त्रोंमें सन्ध्या,	कुक्षिषु	कोखमें
गुह्य	गुह्य देशमें	सप्तसिन्धून्	सातो समुद्र
प्रजापतीन्	प्रजापति-गण	च उरसि	तथा हृदयपर
जघने	जांघोंमें	अर्क्षमालां	नक्षत्र-मालाको
आत्म	अपने सहित	ऐक्षत्	देखा ॥२४॥

हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारे-
र्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेन्दुम् ।
श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां
कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥२५॥

हृदि अङ्ग धर्मं स्तनयोः मुरारेः ऋतं च सत्यं च मनसि अथ इन्दुं श्रियं च वक्षसि अरविन्द हस्तां कण्ठे च सामानि समस्त रेफान् ॥२५॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित् !	हृदि धर्मं	हृदयमें धर्म,
मुरारेः	श्रीमुरारिके	स्तनयोः	दोनों स्तनोंमें

ऋतं च सत्यं	ऋत और सत्य,	अरविन्द श्रियं	कमल लिए लक्ष्मी-
अथ मनसि च	तथा मनमें		को
इन्दुं	चन्द्रमाको	च कण्ठे	और कण्ठमें
च वक्षसि	एवं वक्षस्थलमें	सामानि	सामश्रुति
हन्तां	हाथमें	समस्त रेफान्	तथा सम्पूर्ण शब्द राशि ॥२५॥

इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु
तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ।
केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकाया-
मक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥२६॥

इन्द्र प्रधानान् अमरान् भुजेषु तत् कर्णयोः ककुभः द्यौः च मूर्ध्नि केशेषु मेघान् श्वसनं नासिकायां अक्ष्णोः च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥२६॥

तत् भुजेषु	उनकी भुजाओंमें	नासिकायां	नाकमें
इन्द्र प्रधानान्	इन्द्र प्रमुख	श्वसनं च	वायु तथा
अमरान्	देवताओंको,	अक्ष्णोः सूर्यं	नेत्रोंमें सूर्य
कर्णयोः ककुभः	कानोंमें दिशाएँ,	च वदने	एवं मुखमें
च मूर्ध्नि द्यौः	और मस्तकमें स्वर्ग,	वह्निं	अग्नि ॥२६॥
केशेषु मेघान्	बालोंमें मेघ,		

वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं
भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ।
अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो
मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥२७॥

वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोः निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु अहः च रात्रिं च परस्य पुंसः मन्युं ललाटे अधर एव लोभम् ॥२७॥

परस्य पुंसः	परम-पुरुषकी	च रसे जलेशं	और रसनामें वरुण,
वाण्यां छन्दांसि	वाणीमें वेद	च भ्रुवोः	एवं भौंहोंमें

निषेधं च विधि	विधान और निषेध,	मन्युं	क्रोध,
च पक्ष्मसु	तथा पलकोंमें	अधर एव	अधरमें ही
अहः च रात्रि	दिन और रात्रि,	लोभं	लोभ ॥२७॥
च ललाटे	और ललाटमें		

स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः
पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ।
छायासु मृत्युं हसिते च मायां
तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥२८॥

स्पर्शे च कामं नृप रेतसः अम्भः पृष्ठे तु अधर्मं क्रमणेषु यज्ञं छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेषु ओषधि जातयः च ॥२८॥

नृप	राजन् !	क्रमणेषु यज्ञं	गतिमें यज्ञ,
स्पर्शे कामं	स्पर्शमें काम,	छायासु मृत्युं	छायामें मृत्यु,
च रेतसः	और वीर्यमें	च हसिते मायां	तथा हास्यमें माया,
अम्भः	जल,	च तनूरुहेषु	एवं रोमोंमें
पृष्ठे तु अधर्मं	पीठमें तो अधर्म,	औषधि जातयः	औषधियां ॥२८॥

नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु
बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ।
प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि
सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥२९॥

नदीः च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धाः अजं देवगणान् ऋषीन् च प्राणेषु गात्रे स्थिर जङ्गमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥२९॥

नाडीषु नदीः	नाड़ियोंमें नदियां,	देवगणान् च	देवता और
च नखेषु	और नखोंमें	ऋषीन्	ऋषिगण,
शिला	शिलाएँ	वीरः	वीर बलिने
बुद्धाः अजं	बुद्धिमें ब्रह्मा,	प्राणेषु	(भगवान्‌के) प्राण

गात्रे	तथा शरीरमें	जङ्गमानि	जंगम आदि
सर्वाणि	सब	भूतानि	प्राणियोंको
स्थिर	स्थावर-	ददर्श	देखा ॥२९॥

सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य
सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग ।
सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो
धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥३०॥

सर्वात्मनि इदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वे असुराः कश्मलं आपुः अङ्ग सुदर्शनं चक्रं असह्यतेजः धनुः च शार्ङ्गं स्तनयित्नु घोषम् ॥३०॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित् !	कश्मलं आपुः	भयभीत हो गये
सर्वात्मनि	सर्वात्मा (भगवान्) में	असह्यतेजः	असह्य तेजवाला
		सुदर्शनं चक्रं	सुदर्शन चक्र,
इदं भुवनं	इस त्रिभुवनको	च स्तनयित्नु	तथा मेघ
निरीक्ष्य	देखकर	घोषं	गर्जन करनेवाला
सर्वे असुराः	सब असुर	शार्ङ्गं धनुः	शारंग धनुष ॥३०॥

पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः
कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ।
विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्त-
स्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥३१॥

पर्जन्यघोषः जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्णु गदा तरस्विनी विद्याधरः असिः शतचन्द्रयुक्तः तूण उत्तमाः अक्षय सायकौ च ॥३१॥

पर्जन्यघोषः	मेघ गम्भीर ध्वनि-वाला	विष्णु	भगवान् विष्णुकी
		गदा	गदा
पाञ्चजन्यः	पाञ्चजन्य	कौमोदकी	कौमोदकी
जलजः	शंख,	शतचन्द्रयुक्तः	ढालके साथ
तरस्विनी	वेगवती	विद्याधरः	विद्याधर नामक

असिः	खड्ग	उत्तमाः	दोनों श्रेष्ठ
च	तथा	तूण	तरकश ॥३१॥
अक्षय सायकौ	अक्षय बाणवाले		

सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं
पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ।
स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डल-
श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥३२॥

सुनन्द मुख्याः उपतस्थुः ईशं पार्षद मुख्याः सह लोकपालाः स्फुरत् किरीट अङ्गद मीन कुण्डल श्रीवत्स रत्न उत्तम मेखला अम्बरैः ॥३२॥

सह लोकपालाः	लोक पालोंके साथ	अङ्गद	केयूर,
सुनन्द मुख्याः	सुनन्द प्रमुख	मीन कुण्डल	मत्स्या कृति कुण्डल,
पार्षद मुख्याः	मुख्य-मुख्य पार्षद	श्रीवत्स	श्रीवत्स लाञ्छन,
ईशं	उन सर्वेश्वरके समीप	उत्तम रत्न	उत्तम रत्न जडित
		मेखला अम्बरैः	काञ्ची तथा वस्त्र ॥३२॥
उपतस्थुः	उपस्थित हो गये,		
स्फुरत् किरीट	देदीप्यमान मुकुट,		

मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो
रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ।
क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे
नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥३३॥

मधुव्रत स्रक् वनमालया वृतः रराज राजन् भगवान् उरुक्रमः क्षितिं पद एकेन बलेः विचक्रमे नभः शरीरेण दिशः च बाहुभिः ॥३३॥

राजन्	राजन् !	उरुक्रमः	अनन्त पराक्रम
मधुव्रत स्रक्	भ्रमर युक्त माला	भगवान्	भगवान् अत्यन्त
वनमालया	वनमाला	रराज	शोभित हुए,
वृतः	धारण किये	एकेन पदेन	एक पदसे

बलेः क्षितिं	बलिकी पृथ्वी,	बाहुभिः दिशः	भुजाओंसे दिशामें
शरीरेण नभः	शरीर द्वारा आकाश और	विचक्रमे	नाप लीं ॥३३॥

पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं
न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ।
उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो
महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३४॥

पदं द्वितीयं क्रमतः त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयं अणु अपि उरुक्रमस्य अङ्घ्रिः उपरि उपरि अथो महः जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३४॥

द्वितीयं पदं	दूसरे पैरसे	उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम भगवान्का
त्रिविष्टपं	स्वर्ग नापते	अङ्घ्रिः	चरण
क्रमतः	समय	उपरि उपरि	ऊपर-ऊपर उठता
वै तृतीयाय	निश्चय तीसरेके लिए	महः	महर्लोक,
तदीयं अणु अपि	उन (बलि) का एक अणु भी	जनाभ्यां	जनलोक होता
		तपसः	तपोलोकसे भी
न	नहीं बचा,	परं गतः	ऊपर चला गया ॥३४॥
अथो	फिर भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे विश्वरूपदर्शनं विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभि-
र्हृतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ।
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः
सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥

सत्यं समीक्ष्य अब्जभवः नख इन्दुभिः हृत स्वधामद्युतिः आवृतः अभ्यगात् मरीचिमिश्रा ऋषयः बृहद् व्रताः सनन्दन आद्या नरदेव योगिनः ॥१॥

नरदेव	राजन् !	मरीचिमिश्रा	मरीचि आदि
सत्यं	सत्य लोकमें पहुँचे	ऋषयः	ऋषियों तथा
नख	(भगवान्के) चरण नख	बृहद् व्रताः	आजीवन ब्रह्मचारी
		सनन्दन आद्या	(सनक) सन्दन आदि
इन्दुभिः	चन्द्रों द्वारा	योगिनः आवृतः	योगियोंसे घिरे
स्वधामद्युति	अपने धामकी कान्ति	अब्जभवः	ब्रह्माजी
हृत समीक्ष्य	मन्द पड़ गयी देख-कर	अभ्यगात्	वहां आये ॥१॥

वेदोपवेदा नियमान्विता यमा-
स्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः ।
ये चापरे योगसमीरदीपित-
ज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः ।
ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः
स्वायम्भुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ २ ॥

वेद उपवेदा नियम अन्विता यमाः तर्क इतिहास अङ्ग पुराण संहिताः ये च अपरे योगसमीर दीपित ज्ञानाग्निना रन्धित कर्म कल्मषाः ववन्दिरे यत् स्मरण अनुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥२॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	कर्म कल्मषाः	कर्मोंके मलको
वेद उपवेदा	वेद, उपवेद,	रन्धित	भस्म कर चुके थे
नियम अन्विता	नियमोंके साथ	यत् स्मरण	जिनके स्मरणके
यमाः	यम,	अनुभावतः	प्रभावसे
तर्क	दर्शनशास्त्र,	अकर्मकं	कर्मके द्वारा न प्राप्त होनेवाले
इतिहास	इतिहास		
पुराण संहिताः	पुराण संहिता,	स्वायम्भुवं	ब्रह्माजीके
च अपरे	तथा जो दूसरे	धाम गता	लोक पहुँचे थे
योगसमीर	योगरूप वायुसे	ववन्दिरे	(उन चरणोंकी)
दीपित	प्रज्वलित		वन्दना की ॥२॥
ज्ञानाग्निना	ज्ञानाग्नि द्वारा		

अथाङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णो-
रुपाहरत् पद्मभवोऽर्हणोदकम् ।
समर्च्य भक्त्याभ्यगृणाच्छुचिश्रवा
यन्नाभिपङ्केरुहसंभवः स्वयम् ॥ ३ ॥

अथ अङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोः उप आहरत् पद्मभवः अर्हण उदकं समर्च्य भक्त्या अभि गृणात् शुचिश्रवा यत् नाभिपङ्केरुह संभवः स्वयम् ॥३॥

अथ	फिर	अर्हण उदकं	पूजनका जल
प्रोन्नमिताय	ऊपर उठे	उप आहरत्	समीप ले आये
विष्णोः	भगवान् विष्णुके	यत्	जिनकी
अङ्घ्रये	चरणके लिए	नाभिपङ्केरुह	नाभि-कमलसे
पद्मभवः	कमल संभव ब्रह्माजी	स्वयं संभवः	स्वयं उत्पन्न हुए थे

समर्च्य	(उनके चरणका) भली प्रकार पूजन करके	भक्त्या	भक्ति
		अभि गृणात्	पूर्वक स्तुति करने लगे ॥३॥
शुचिश्रवाः	उन पवित्र कीर्ति भगवान्‌की		

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य
पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ।
स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतति निमार्ष्टि
लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥

धातुः कमण्डलु जलं तत् उरुक्रमस्य पाद अवनेजन पवित्रतया नरेन्द्र स्वर्धुनी अभूत् नभसि सा पतति निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतः विशद एव कीर्तिः ॥४॥

नरेन्द्र	महाराज !	भगवतः	भगवान्‌की
तत्	वह	विशद	निर्मल
उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम भगवान्‌के	एव कीर्तिः	कीर्तिके समान
		सा नभसि	वे आकाशसे
पाद अवनेजन	पाद-प्रक्षालनसे	पतति	गिरती हुई
पवित्रतया	पवित्र हुआ	लोकत्रयं	तीनों लोकोंको
धातुः कमण्डलु	ब्रह्माके कमंडलुका	निमार्ष्टि	पवित्र कर दिया ॥४॥
जलं	जल		
स्वर्धुनी अभूत्	सुरसरि हो गया		

ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समाहृताः ।
सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥

ब्रह्मा आदयः लोकनाथाः स्वनाथाय सम आहृताः सानुगा बलिं आजह्रुः संक्षिप्त आत्म विभूतये ॥५॥

आत्म विभूतये	अपने ऐश्वर्यके लिए	स्वनाथाय	अपने स्वामीको
संक्षिप्त ब्रह्मा	छोटे ब्रह्मा	सम आहृताः	अत्यन्त आदरके साथ
आदयः	आदि		
लोकनाथाः	लोकपालोंने	बलिं	उपहार
सानुगा	अपने अनुचरोंके साथ	आजह्रुः	अर्पित किये ॥५॥

तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः ।
धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ॥ ६ ॥

तोयैः समर्हणैः स्रक्भिः दिव्य गन्ध अनुलेपनैः धूपैः दीपैः सुरभिभिः लाज अक्षत फल अङ्कुरैः ॥६॥

तोयैः	जल,	सुरभिभिः	सुगन्धित (इत्रादि) से,
समर्हणैः	पूजोपहार,		
स्रक्भिः	मालाओं द्वारा,	लाज अक्षत	लाजा, अक्षत,
दिव्य गन्ध	दिव्य सुगन्धित	फल	फल तथा
अनुलेपनैः	अंगरागसे	अङ्कुरैः	दूर्वाङ्कुरसे ॥६॥
धूपैः दीपैः	धूप-दीप		

स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः ।
नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ७ ॥

स्तवनैः जयशब्दैः च तद् वीर्य महिमा अङ्कितैः नृत्य वादित्र गीतैः च शङ्ख दुन्दुभि निःस्वनैः ॥७॥

तद्	उन (भगवान्के)	च जयशब्दैः	तथा जयध्वनिसे
वीर्य	पराक्रम तथा	नृत्य गीतैः	नृत्य, गायन,
महिमा	महिमा	वादित्र	वाद्योंसे
अङ्कितैः	सूचित करनेवाले	शङ्ख दुन्दुभि	शंख, नगाड़ोंके
स्तवनैः	स्तुतियोंसे	निःस्वनैः	तुमुल घोषसे ॥७॥

जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः ।
विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥

जाम्बवान् ऋक्षराजः तु भेरी शब्दैः मनः जवः विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवं अघोषयत् ॥८॥

मनः जवः	मनके समान गति-वाले	**भेरी शब्दैः**	भेरीके शब्द द्वारा
		विजयं	विजय
ऋक्षराजः	रीछराज	**महोत्सवं**	महोत्सवकी
जाम्बवान् तु	जाम्बवानने तो	**अघोषयत्**	घोषणा कर दी ॥८॥
सर्वासु दिक्षु	सब दिशाओंमें		

महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया ।
ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ ॥

महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याज याञ्चया ऊचुः स्वभर्तुः असुरा दीक्षितस्य अति अमर्षिताः ॥९॥

दीक्षितस्य	यज्ञ दीक्षा लिए	**हृतां**	हरण की गयी
स्वभर्तुः	अपने स्वामीकी	**दृष्ट्वा**	देखकर
सर्वां महीं	सम्पूर्ण पृथ्वी	**अति अमर्षिताः**	अत्यन्त कुपित होकर
त्रिपदव्याज	तीन पैरके बहाने	**असुरा ऊचुः**	असुर बोले ॥९॥
याञ्चया	मांगकर		

न वा अयं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥१०॥

न वा अयं ब्रह्म बन्धुः विष्णुः मायाविनां वरः द्विज रूप प्रतिच्छन्नः देवकार्यं चिकीर्षति ॥१०॥

वा अयं	निश्चय यह	**द्विज रूप**	ब्राह्मणके रूपमें
ब्रह्म बन्धुः	ब्राह्मणाधम भी	**प्रतिच्छन्नः**	छिपकर (यह)
न	नहीं है	**देवकार्यं**	देवताओंका काम
मायाविनां वरः	मायावियोंमें श्रेष्ठ	**चिकीर्षति**	करना चाहता है ॥१०॥
विष्णुः	विष्णु हैं,		

अनेन याचमानेन शत्रुणा वटुरूपिणा ।
सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥११॥

अनेन याचमानेन शत्रुणा वटुरूपिणा सर्वस्वं नः हृतं भर्तुः न्यस्त दण्डस्य बर्हिषि ॥११॥

बर्हिषि	यज्ञमें	अनेन शत्रुणा	इस शत्रुने
न्यस्त दण्डस्य	दण्ड देना त्यागे हुए	याचमानेन	याचना करते हुए
नः भर्तुः	हमारे स्वामीका	हृतं	हरण कर लिया
सर्वस्वं	सर्वस्व		॥११॥
वटुरूपिणा	ब्रह्मचारी वेशधारी		

सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ।
नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥१२॥

सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः न अनृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥१२॥

ब्रह्मण्यस्य	ब्राह्मणपर	दीक्षितस्य	दीक्षित होनेपर
दयावतः	दया करनेवाले	अनृतं	(हमारे स्वामीके लिए) झूठ
सततं	सदा	भाषितुं	बोलना
सत्यव्रतस्य	सत्यका व्रत रखने वाले	शक्यं न	सम्भव नहीं है ॥१२॥
विशेषतः	विशेषतः		

तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ।
इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः ॥१३॥

तस्मात् अस्य वधः धर्मः भर्तुः शुश्रूषणं च नः इति आयुधानि जगृहुः बलेः अनुचरा असुराः ॥१३॥

तस्मात्	इसलिए	नः धर्मः	हमारा धर्म है
अस्य वधः	इसका वध	च भर्तुः	तथा स्वामीकी

शुश्रूषणं	सेवा भी है।	असुराः	असुरोंने
इति	इस प्रकार (निश्चय करके)	आयुधानि	शस्त्र
		जगृहुः	उठा लिये ॥१३॥
बलेः अनुचरा	बलिके अनुचर		

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः।
अनिच्छतो बले राजन् प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥१४॥

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूल पट्टिश पाणयः अनिच्छतः बलेः राजन् प्राद्रवन् जातमन्यवः ॥१४॥

राजन्	राजन् !	शूल पट्टिश	त्रिशूल, पट्टिश आदि
बलेः	बलिके	पाणयः	हाथमें लेकर
अनिच्छतः	न चाहनेपर भी	वामनं	वामनको
जातमन्यवः	क्रुद्ध होकर	हन्तुं	मारनेके लिए
ते सर्वे	वे सब	प्राद्रवन्	दौड़ पड़े ॥१४॥

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान् नृप।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥१५॥

तान् अभिद्रवतः दृष्ट्वा दितिज अनीकपान् नृप प्रहस्य अनुचराः विष्णोः प्रत्यषेधन् उद आयुधाः ॥१५॥

नृप	राजन् !	विष्णोः	भगवान् विष्णुके
तान् दितिज	उन दैत्य	अनुचराः	सेवकोंने
अनीकपान्	सेनानायकोंको	उद आयुधाः	शस्त्र उठाकर
अभिद्रवतः	अपनी ओर दौड़े आते	प्रहस्य	हंसकर
		प्रत्यषेधन्	रोक दिया ॥१५॥
दृष्ट्वा	देखकर		

नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट् ॥१६॥

जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः ।
सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥१७॥

नन्दः सुनन्दः, अथ जयः, विजयः, प्रबलः, बलः, कुमुदः, कुमुदाक्षः, च विष्वक्सेनः, पतत् त्रिराट् (पक्षिराग गरुड़) जयन्तः, श्रुतदेवः च पुष्पदन्तः अथ सात्वत* सर्वे नाग अयुत प्राणाः चमूं ते जघ्नुः आसुरीम् ॥१६-१७॥

सर्वे	ये सब	**ते**	उन्होंने
अयुत नाग	दस हजार हाथियोंके समान	**आसुरीं चमूं**	असुर सेनाको
		जघ्नुः	मारने लगा ॥१७॥
प्राणाः	बलवाले हैं,		

हन्यमानान् स्वकान् दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ।
वारयामास संरब्धान् काव्यशापमनुस्मरन् ॥१८॥

हन्यमानान् स्वकान् दृष्ट्वा पुरुष अनुचरैः बलिः वारयामास संरब्धान् काव्यशापं अनुस्मरन् ॥१८॥

पुरुष	परम पुरुषके	**दृष्ट्वा**	देखकर
अनुचरैः	सेवकों द्वारा	**काव्यशापं**	शुक्राचार्यके शापको
संरब्धान्	कुपित	**अनुस्मरन्**	स्मरण करके
स्वकान्	अपने सेवकोंको	**बलिः**	बलिने
हन्यमानान्	मारे जाते हुए	**वारयामास**	मना किया ॥१८॥

श्रीशुक उवाच–*

हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ।
मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥१९॥

---

*भगवत् पार्षदोंके केवल नाम हैं। इनमें 'अथ' ही नाम नहीं है उसका तथा 'च' का अर्थ 'और' होता है।

*यह अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

हे विप्रचित्ते हे राहुः हे नेमे श्रूयतां वचः मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालः अयं अर्थकृत् ॥१९॥

हे विप्रचित्ते	हे विप्रचित्ति,	**अयं कालः**	यह समय
हे राहुः	हे राहु,	**नः**	हमारा
हे नेमे	हे नेमि,	**अर्थकृत्**	प्रयोजन सिद्ध करनेवाला
वचः श्रूयतां	(मेरी) बात सुनो !	**न**	नहीं है ॥१९॥
मा युध्यत	युद्ध मत करो,		
निवर्तध्वं	लौट आओ !		

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ।
तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥२०॥

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुख दुःख उपपत्तये तं न अतिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैः ईश्वरः पुमान् ॥२०॥

दैत्याः	दैत्यो !	**पुमान्**	कोई पुरुष अपने
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंको	**पौरुषैः**	पुरुषार्थसे
सुख दुःख	सुख-दुःख	**अतिवर्तितुं**	अतिक्रमण
उपपत्तये	देनेमें	**न**	नहीं कर सकता ॥२०॥
यः प्रभुः	जो समर्थ है		
तं ईश्वरः	उस सर्वसमर्थको		

यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ।
स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥२१॥

यः नः भवाय प्राक् आसीत् अभवाय दिव ओकसां स एव भगवान् अद्य वर्तते तत् विपर्ययं ॥२१॥

यः नः भवाय	जो हमारी उन्नतिके तथा	**प्राक् आसीत्**	पहिले थे
दिव ओकसां	स्वर्गवासी देवताओं-की	**स एव भगवान्**	वही भगवान्
अभवाय	अवनतिके (कारण)	**अद्य तत्**	इस समय
		विपर्ययं	उससे उलटे
		वर्तते	बरत रहे हैं ॥२१॥

बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः ।
सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥२२॥

बलेन सचिवैः बुद्ध्या दुर्गैः मन्त्र औषध आदिभिः साम आदिभिः उपायैः च कालं न अति एति वै जनः ॥२२॥

वै जनः	निश्चय कोई पुरुष	**च साम**	तथा साम
बलेन सचिवैः	बलसे, मन्त्रियों द्वारा,	**आदिभिः**	आदि
		उपायै	उपायोंसे
बुद्ध्या	बुद्धिसे	**कालं अति**	कालका पार
दुर्गैः मन्त्र	दुर्गसे, मन्त्र,	**एति न**	नहीं पा सकता
औषध	औषधि		॥२२॥
आदिभिः	आदिसे		

भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ।
दैवेनद्धैंस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥२३॥

भवद्भिः निर्जिता हि एते बहुशः अनुचरा हरेः दैवे नद्धैंः त एव अद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥२३॥

हि दैवे	क्योंकि विधाताकी	**निर्जिता**	जीते गये हैं,
नद्धैंः	अनुकूलता होनेपर	**अद्य त एव**	आज वही
भवद्भिः	तुम लोगों द्वारा	**नः युधि**	हमको युद्धमें
हरेः एते	हरिके ये	**जित्वा**	जीतकर
अनुचरा	अनुचर	**नदन्ति**	गर्जना कर रहे हैं
बहुशः	बहुत बार		॥२३॥

एतान् वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ।
तस्मात् कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥२४॥

एतान् वयं विजेष्यामः यदि दैवं प्रसीदति तस्मात् कालं प्रतीक्षध्वं यः नः अर्थ त्वाय कल्पते ॥२४॥

यदि दैवं	यदि दव	यः नः	जो हमारे
प्रसीदति	प्रसन्न होगा तो	अर्थ त्वाय	प्रयोजनको
वयं एतान्	हम इनको फिर	कल्पते	पूर्ण करनेवाला हो
विजेष्यामः	जीत लेंगे	कालं	उस कालकी
तस्मात्	इसलिए	प्रतीक्षध्वं	प्रतीक्षा करो ॥२४॥

श्रीशुक उवाच–

पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ।
रसां निविविशू राजन् विष्णुपार्षदताडिताः ॥२५॥

पत्युः निगदितं श्रुत्वा दैत्य दानव यूथपाः रसां निविविशू राजन् विष्णु पार्षद ताडिताः ॥२५॥

राजन्	राजन् !	पत्युः निगदितं	अपने स्वामीकी बात
विष्णु	भगवान् विष्णुके	श्रुत्वा	सुनकर
पार्षद	पार्षदों द्वारा	रसां	रसातलमें
ताडिताः	पीटे जानेपर	निदिविशू	प्रवेश कर गये ॥२५॥
दैत्य दानव	दैत्य-दानव		
यूथपाः	सेनानायक		

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट् प्रभुचिकीर्षितम् ।
बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥२६॥

अथ तार्क्ष्य सुतः ज्ञात्वा विराट् प्रभु चिकीर्षितं बबन्ध वारुणैः पाशैः बलिं सौत्ये अहनि क्रतौ ॥२६॥

अथ	फिर	क्रतौ	यज्ञमें
तार्क्ष्य सुतः	तार्क्ष्य-नन्दन गरुड़ने	सौत्ये अहनि	सोमाभिषवके दिन
विराट् प्रभु	विराट् भगवान्‌की	वारुणैः पाशैः	वरुणके पाशोंमें
चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा	बलिं	बलिको
ज्ञात्वा	जानकर	बबन्ध	बाँध दिया ॥२६॥

हाहाकारो महानासीद् रोदस्योः सर्वतोदिशम् ।
गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२७॥

हाहाकारः महान् आसीत् रोदस्योः सर्वतः दिशं गृह्यमाणे असुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२७॥

प्रभविष्णुना	सर्वसमर्थ	रोदस्योः	पृथ्वीमें
विष्णुना	भगवान् विष्णु द्वारा	सर्वतः दिशं	चारों ओर
असुरपतौ	दैत्यराज बलिको	महान्	महा
गृह्यमाणे	पकड़ (बाँध) लेनेपर	हाहाकारः	हा-हाकार
		आसीत्	होने लगा ॥२७॥

तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ।
नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥२८॥

तं बद्धं वारुणैः पाशैः भगवान् आह वामनः नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञं उदारयशसं नृप ॥२८॥

नृप	राजन् !	स्थिरप्रज्ञं	स्थिर बुद्धि
वारुणैः पाशैः	वरुणके पाशोंसे	उदारयशसं	उदार कीर्ति
बद्धं	बँधे,	तं	उन बलिसे
नष्टश्रियं	लक्ष्मी नष्ट होनेपर भी	भगवान्	भगवान्
		वामनः आह	वामनने कहा ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच—*

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयासुर ।
द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥२९॥

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेः मह्यं त्वया असुर द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयं उपकल्पय ॥२९॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

असुर	असुर !	सर्वा मही	सम्पूर्ण पृथ्वी
त्वया मह्यं	तुमरे मुझे	क्रान्ता	(मैंने) माप ली,
त्रीणि पदानि	तीन पद	तृतीयं	अब तीसरेकी
भूमेः दत्तानि	पृथ्वी दिया था,	उपकल्पय	व्यवस्था करो
द्वाभ्यां	दो (पद) से		॥२९॥

यावत् तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः ।
यावद् वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरिय तव ॥३०॥

यावत् तपति असौ गोभिः यावत् इन्दुः सह उडुभिः यावत् वर्षति पर्जन्यः तावती भूः इयं तव ॥३०॥

यावत्	जहां तक	यावत्	जहां तक (प्रकाशित
असौ	यह (सूर्य)		होता है)
गोभिः	किरणोंसे	यावत् पर्यन्यः	जहां तक मेघ
तपति	ताप पहुँचाता है,	वर्षति	वर्षा करते हैं,
सह उडुभिः	तारागणोंके साथ	तावती इयं	वहां तक यह
इन्दुः	चन्द्रमा	तव भूः	तुम्हारी पृथ्वी है
			॥३०॥

पदैकेन मया क्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ।
स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥३१॥

पदा एकेन मया क्रान्तः भूः लोकः खं दिशः तनोः स्वः लोकः तु द्वितीयेन पश्यतः ते स्वं आत्मना ॥३१॥

ते पश्यतः	तुम्हारे देखते हुए	दिशः	दिशाएँ,
स्वं आत्मना	मैंने अपने	तु द्वितीयेन	तथा दूसरे (पद) से
एकेन पदा	एक पैरसे	स्वः लोक	स्वर्ग लोक
भूः लोकः	(सम्पूर्ण) भूलोक	क्रान्तः	माप लिया है
तनोः	शरीरसे		॥३१॥
खं	आकाश और		

प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ।
विश त्वं निरयं तस्माद् गुरुणा चानुमोदितः ॥३२॥

प्रतिश्रुतं अदातुः ते निरये वास इष्यते विश त्वं निरयं तस्मात् गुरुणा च अनुमोदितः ॥३२॥

प्रतिश्रुतं	प्रतिज्ञाकी वस्तु	**त्वं निरयं**	तुम नरकमें
अदातुः	न देनेवाले	**विश**	प्रवेश करो,
ते वास	तुम्हारे निवास	**च**	तथा तुम्हारे
निरये	नरकमें	**गुरुणा**	गुरुने भी
इष्यते	होना चाहिए,	**अनुमोदितः**	(इसका) अनुमोदन
तस्मात्	इसलिए		किया है ॥३२॥

वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ।
प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते ॥३३॥

वृथा मनोरथः तस्य दूरे स्वर्गः पतति अधः प्रतिश्रुतस्य दानेन यः अर्थिनं विप्रलम्भते ॥३३॥

यः	जो	**मनोरथः**	अभिलाषाएँ
प्रतिश्रुतस्य	प्रतिज्ञा की हुई (वस्तु) के	**वृथा**	व्यर्थ हैं
		स्वर्गः दूरे	स्वर्ग तो दूर रहा
दानेन	दानमें	**अधः**	वह नीचे
अर्थिनं	याचकको	**पतति**	गिरता है
विप्रलम्भते	ठग लेता है,		॥३३॥
तस्य	उसकी		

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ।
तद् व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित् समाः ॥३४॥

विप्रलब्धः ददामि इति त्वया अहं च आढ्य मानिना तत् व्यलीक फलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित् समाः ॥३४॥

आढ्य	(अपनेको) बड़ा धनी	विप्रलब्धः	ठगा गया हूँ
मानिना	माननेवाले	तत्	अतः
त्वया	तुम्हारे द्वारा	कतिचित् समाः	कुछ वर्ष
ददामि	'मैं दूंगा'	व्यलीक	उस झूठ बोलनेके
इति	इस प्रकार कहकर	फलं	फलसे
अहं च	मैं भी	निरयं	नरक
		भुङ्क्ष्व	भोगो ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

एवं विप्रकृतो राजन् बलिर्भगवतासुरः ।
भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥

एवं विप्रकृतः राजन् बलिः भगवता असुरः भिद्यमानः अपि अभिन्न आत्मा प्रति आह अविक्लवं वचः ॥१॥

राजन्	राजन्	अभिन्न आत्मा	अविचल चित्त
एवं	इस प्रकार	असुरः बलिः	असुरराज बलि
भगवता	भगवान द्वारा	अविक्लवं	व्याकुलता रहित
विप्रकृतः	तिरस्कृत और	वचः	वाणीसे
भिद्यमानः अपि	डिगाये जानेपर भी	प्रति आह	उत्तरमें बोले ॥१॥

बलिरुवाच–

यद्युत्तमश्लोक भवान् ममेरितं
वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते ।
करोम्यृतं तन्न भवेत् प्रलम्भनं
पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥

यदि उत्तम श्लोक भवान् मम ईरितं वचः व्यलीकं सुरवर्य मन्यते करोमि ऋतं तत् न भवेत् प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥२॥

सुरवर्य	देवश्रेष्ठ	वचः व्यलीकं	बातको झूठी
उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति !	मन्यते	मानते हैं तो
यदि भवान्	यदि आप	तत् ऋतं	उसे सच्ची
मम ईरितं	मेरी कही हुई	करोमि	करता हूँ

प्रलंभनं	(वह) ठगना	पदं	पद
न भवेत्	न होवे	मे शीर्ष्णि	मेरे सिरपर
निजं तृतीयं	अपना तीसरा	कुरु	रखिये ॥२॥

बिभेमि नाहं निरयात् पदच्युतो
न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात् ।
नैवार्थकृच्छ्राद् भवतो विनिग्रहा-
दसाधुवादाद् भशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥

विभेमि न अहं निरयात् पदच्युतः न पाश बन्धात् व्यसनात् दुरत्ययात् न एव अर्थ कृच्छ्रात् भवतः विनिग्रहात् असाधु वादात् भृशं उद्विजे यथा ॥३॥

यथा	जैसा	बन्धात्	बन्धनसे,
असाधु वादात्	अपकीर्तिसे	दुरत्ययात्	दुस्तर
भृशं	बहुत	व्यसनात् न	दुःखोंसे नहीं
उद्विजे	उद्विग्न होता हूँ, वैसा	अर्थ कृच्छ्रात्	अर्थ-कष्ट और
		भवतः	आपके
निरयात्	नरकसे,	विनिग्रहात्	दण्डसे
पदच्युतः	पद भ्रष्ट होनेसे	न एव	नहीं ही
न	नहीं,	विभेमि	डरता हूँ ॥३॥
पाश	इन पाशोंके		

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥ ४ ॥

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डं अर्हत्तम अर्पितं यं न माता पिता भ्राता सुहृदः च आदिशन्ति हि ॥४॥

अर्हत्तम	पूज्यतम पुरुषोंका	पुंसां	पुरुषोंके लिए
अर्पितं	दिया	श्लाघ्यतमं	अत्यन्त प्रशंसनीय
दण्डं	दण्ड	मन्ये	मानता हूँ,

हि	क्योंकि	यं न आदिशन्ति	जिस (प्रकारका दण्ड) नहीं देते ॥४॥
माता पिता	माता-पिता,		
भ्राता च सुहृदः	भाई तथा सुहृद		

त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः ।
यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥

त्वं नूनं असुराणां नः पारोक्ष्यः परमः गुरुः यः नः अनेक मद अन्धानां विभ्रंशं चक्षुः आदिशत् ॥५॥

नूनं त्वं	निश्चय आप	अन्धानां	अन्धे हुए
नः असुराणां	हम असुरोंके	यः नः	जो हम लोगोंको
पारोक्ष्यः	परोक्ष रूपसे	विभ्रंशं	ऐश्वर्य भ्रष्ट रूपी
परमः गुरुः	परम गुरु हैं,	चक्षु	नेत्र
अनेक	अनेक प्रकारके	आदिशत्	प्रदान करते हैं ॥५॥
मद	मदोंसे		

यस्मिन् वैरानुबन्धेन रूढेन विबुधेतराः ।
बहवो लेभिरे सिद्धिं यामु हैकान्तयोगिनः ॥ ६ ॥

यस्मिन् वैर अनुबन्धेन रूढेन विबुध इतराः बहवः लेभिरे सिद्धिं यां उ ह एकान्त योगिनः ॥६॥

यस्मिन्	जिनसे	सिद्धिं	परम सिद्धि
रूढेन	दृढ़	लेभिरे	प्राप्त की
वैर	बैर	उ ह यां	निश्चय ही जिसे
अनुबन्धेन	बाँध लेनेसे	एकान्त	अनन्य
बहवः	बहुतसे	योगिनः	योगी पाते हैं ॥६॥
विबुध इतराः	असुरोंने (वह)		

तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ।
बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥

तेन अहं निगृहीतः अस्मि भवतभूरि कर्मणा बद्धः च वारुणैः पाशैः न अति व्रीडे न च व्यथे ॥७॥

तेन	उन्हीं	पाशैः	पाशोंसे
भूरि कर्मणा	अनन्तकर्मा	बद्धः	बांधा गया हूँ अतः
भवत अहं	आपके द्वारा मैं	न अति व्रीडे	न विशेष लज्जित हूँ
निगृहीतः अस्मि	पकड़ा गया हूँ	च न	और न
च वारुणैः	तथा वरुणके	व्यथे	व्यथित हूँ ॥७॥

पितामहो मे भवदीयसंमतः
प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः ।
भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं
संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥

पितामहः मे भवदीय संमतः प्रह्लाद आविष्कृत साधुवादः भवत् विपक्षेण विचित्र वैशसं संप्रापितः त्वत् परमः स्वपित्रा ॥८॥

आविष्कृत	प्रसिद्ध	परमः	परायण होनेसे
साधुवादः	कीर्ति प्राप्त		(उन्हें)
मे पितामहः	मेरे पितामह	स्वपित्रा	अपने पिता द्वारा
प्रह्लाद	प्रह्लादजी	विचित्र	नाना प्रकारके
भवदीय	आपके निजजनोंमें	वैशसं	कष्ट
संमतः	माने गये हैं,	संप्रापितः	दिये गये थे ॥८॥
त्वत्	आपके		

किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥

किं आत्मना अनेन जहाति यः अन्ततः किं रिक्थ हारैः स्वजन आख्य दस्युभिः किं जायया संसृति हेतु भूतया मर्त्यस्य गेहैः किं इह आयुषः व्ययः ॥९॥

यः अन्ततः	जो अन्ततः	हेतु	कारण
जहाति	छोड़ ही देता है उस	भूतया	रूपा
अनेन आत्मना	इस शरीरसे	जायया	पत्नीसे
किं	क्या लाभ,	किं	क्या लाभ,
रिक्थ	धन	इह	इस संसारमें
हारैः	हरण करनेवाले	आयुष	आयुको
स्वजन	स्वजन	व्ययः	(व्यर्थ) नष्ट करने-
आख्य	कहे जानेवाले		वाले
दस्युभिः	डाकुओंसे	गेहैः किं	गृहादिसे क्या लाभ
किं	क्या लाभ,		॥९॥
संसृति	आवागमनका		

इत्थं स निश्चित्य पितामहो महा-
नगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ।
ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्
भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तमः ॥१०॥

इत्थं स निश्चित्य पितामहः महान् अगाधबोधः भवतः पादपद्मं ध्रुवं प्रपेदे हि अकुतः भयं जनात् भीतः स्वपक्ष क्षपणस्य सत्तमः ॥१०॥

अगाधबोधः	अगाध ज्ञान	अकुतः	जहां कहींसे
सत्तमः	सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ	भयं	भय नहीं उन
महान् स	महान् उन	स्वपक्ष	अपने (असुर) पक्षके
पितामहः	पितामहने	क्षपणस्य	नाशक
इत्थं	ऐसा	भवतः	आपके
निश्चित्य	निश्चय करके	पादपद्मं	चरण-कमलकी
जनात्	जन संसर्गसे	ध्रुवं	दृढ़ता पूर्वक
भीतः	डरकर	प्रपेदे	शरण ली ॥१०॥

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं
दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ।

इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं
ययाध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥११॥

अथ अहं अपि आत्मरिपोः तव अन्तिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजित श्रीः इदं कृतान्त अन्तिक वर्ति जीवितं यथा अध्रुवं स्तब्ध मतिः न बुध्यते ॥११॥

इदं कृतान्त	इस मृत्युके	प्रसभं	बलपूर्वक
अन्तिक वर्ति	समीप पैड़े	त्याजितः	छुड़ाकर
जीवितं	जीवनको	दैवेन	दैवने
यथा	जिससे	अहं अपि	मुझको भी
स्तब्ध	जड़ हुई	आत्मरिपोः	अपने शत्रु
मतिः	बुद्धिके कारण	तव अन्तिकं	आपके पास
अध्रुवं	अनिश्चित	नीतः	पहुँचा दिया है ॥११॥
न बुध्यते	नहीं समझ पाता		
श्रीः	उस लक्ष्मीसे		

श्रीशुक उवाच—

तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ।
आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥१२॥

तस्य इत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादः भगवत् प्रियः आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिः इव उत्थितः ॥१२॥

कुरुश्रेष्ठ	परीक्षित् !	राकापतिः इव	चन्द्रमाके समान
तस्य	उन (बलि) के	भगवत् प्रियः	भगवान्‌के प्रिय
इत्थं	इस प्रकार	प्रह्लादः	प्रह्लादजी
भाषमाणस्य	कहते समय ही	आजगाम	आ गये ॥१२॥
उत्थितः	उगते हुए		

तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया
विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ।

प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं
प्रलम्बबाहुं सुभगं समैक्षत ॥१३॥

तं इन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिन आयत ईक्षणं प्राशुं पिशङ्ग अम्बरं अञ्जन त्विषं प्रलंबबाहुं सुभगं समैक्षत ॥१३॥

इन्द्रसेनः	दैत्यराज बलिने	**पिशङ्ग अम्बरं**	पीताम्बरधारी
श्रिया	शोभा	**अञ्जन त्विषं**	कृष्णकान्ति
विराजमानं	सम्पन्न	**सुभगं**	मनोहर
नलिन आयल	कमलके समान	**तं स्वपितामहं**	उन अपने पितामह-को
ईक्षणं	विशाल लोचन		
प्राशुं	उन्नत काय,	**समैक्षत**	देखा ॥१३॥

तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः
समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ।
ननाम मूर्ध्नाश्रुविलोललोचनः
सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥१०॥

तस्मै बलिः वारुणपाश यन्त्रितः समर्हणं न उपजहार पूर्ववत् ननाम मूर्ध्ना अश्रु विलोल लोचनः सवीड नीचीन मुखः बभूव ह ॥१४॥

वारुणपाश	वरुणके पाशोंसे	**अश्रु**	आंसू भरनेसे
यन्त्रितः	बँधे हुए	**विलोल लोचनः**	चंचल नेत्र
बलिः तस्मैः	बलि उन (प्रह्लाद-जी)के लिए	**मूर्ध्ना ननाम**	सिर झुकाकर प्रणाम किया
पूर्ववत्	पहिलेके समान	**सव्रीड**	लज्जा सहित
समर्हणं	पूजाकी उत्तम सामग्री	**नीचीन मुखः**	नीचे मुख
		बभूव ह	कर लिया ॥१४॥
न उपजहार	नहीं ला सके		

स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं
सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ।

उपेत्य भूमौ शिरसा महामना
ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविक्लवः ॥१५॥

स तत्र ह आसीनं उद्वीक्ष्य सत् पतिं सुनन्द नन्द आदि अनुगैः उपासितं उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलक अश्रु विक्लवः ॥१५॥

तत्र	वहां	**महामना**	महामनस्वी
सुनन्दनन्द	सुनन्द, नन्द	**पुलक अश्रु**	रोमांच तथा अश्रु
आदि	आदि	**विक्लवः**	छलक आये
अनुगैः उपासितं	अनुचरों द्वारा सेवित	**स**	उन (प्रह्लादजी)ने
ह सत्	निश्चय सत्पुरुषोंके	**मूर्ध्नो**	मस्तक और
पतिं	स्वामी भगवान्को	**शिरसा**	ललाटसे
आसीनं	बैठा	**भूमौ ननाम**	पृथ्वीपर (भूमिसे
उद्वीक्ष्य	देकर		स्पर्श कराके)प्रणाम
उपेत्य	उनके समीप जाकर		किया ॥१५॥

प्रह्लाद उवाच—

त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं
हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ।
मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो
विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥१६॥

त्वयि एव दत्तं पदं ऐन्द्रं ऊर्जितं हृतं तत् एव अद्य तथा एव शोभनं मन्ये महान् अस्य कृतः हि अनुग्रहः विभ्रंशितः यत् श्रिय आत्ममोहनात् ॥१६॥

त्वयि एव	आपने ही	**तथा एव**	(यह भी) उस देने-
ऊर्जितं	समृद्धशाली		के समान ही
ऐन्द्रं पदं दत्तं	इन्द्र पद दिया था,	**शोभनं**	अच्छा है,
तत् अद्य एव	वह आज	**मन्ये**	मैं मानता हूँ कि
हृतं	छीन लिया,	**अस्य**	इस (बलि) पर

हि	क्योंकि	श्रिय	ऐश्वर्यसे
महान् अनुग्रहः	(आपने) महती कृपा	विभ्रंशितः	भ्रष्ट कर दिया है
कृतः	की है		॥१६॥
यत्	जिसने		
आत्ममोहनात्	बुद्धिको मोहमें डालने वाली		

यया हि विद्वानपि मुह्यते यत-
स्तत् को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ।
तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै
नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥१७॥

यया हि विद्वान् अपि मुह्यते यतः तत् कः विचष्टे गतिं आत्मनः यथा तस्मै नमः ते जगत् ईश्वराय वै नारायणाय अखिललोकः साक्षिणे ॥१७॥

हि यया	क्योंकि जिस (लक्ष्मी)के द्वारा	विचष्टे	जान सकता है
		वै तस्मै	निश्चय उन
विद्वान् अपि	विद्वान पुरुष भी	जगत् ईश्वराय	विश्वके स्वामी
मुह्यते	मोहित हो जाते हैं	अखिललोक	समस्त लोकोंके
तत् यतः	उस (लक्ष्मी)के रहते	साक्षिणे ते	साक्षी आप
कः यथा	कौन यथावत्	नारायणाय	नारायणको
आत्मनः गतिं	अपने स्वरूपको	नमः	नमस्कार ॥१७॥

श्रीशुक उवाच—

तस्यानुशृण्वतो राजन् प्रह्लादस्य कृताञ्जलेः ।
हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥१८॥

तस्य अनुशृण्वतः राजन् प्रह्लादस्य कृत अञ्जलेः हिरण्यगर्भः भगवान् उवाच मधुसूदनम् ॥१८॥

राजन्	राजन् !	प्रह्लादस्य	प्रह्लादजीके
तस्य कृत	उन हाथ	अनुशृण्वतः	सुनते हुए
अञ्जलेः	जोड़े	हिरण्यगर्भः	ब्रह्माजीने

भगवान्	भगवान्	उवाच	कहा ॥१८॥
मधुसूदनं	मधुसूदनसे		

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ।
प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥१९॥

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत् पत्नी भयविह्वला प्राञ्जलिः प्रणत उपेन्द्रं बभाषे अवाङ्मुखी नृप ॥१९॥

नृप	राजन् !	अवाङ्मुखी	नीचे सिर किये
पतिं बद्धं	पतिको बँधा हुआ	प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर
वीक्ष्य	देखकर	प्रणत	प्रणाम कर
तत् पत्नी	उन (बलि)की पत्नीने	उपेन्द्रं	वामन भगवान्से
भयविह्वला	भयसे व्याकुल होकर	बभाषे	बोली ॥१९॥

विन्ध्यावलिरुवाच—

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते
स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति
त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥२०॥

क्रीडार्थः आत्मन् इदं त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियः अपर ईश कुर्युः कर्तुः प्रभोः तव किं अस्यत आवहन्ति त्यक्त ह्रियः त्वत् अवरोपित कर्तृवादाः ॥२०॥

ईश	ईश !	स्वाम्यं कुर्युः	(इस पर अपना) स्वामित्व मानने लगे ।
इदं त्रिजगत्	यह त्रिलोकी		
आत्मन् क्रीडार्थः	अपनेमें ही क्रीड़ाके लिए	प्रभोः तव	प्रभो ! आप
कृतं	(आपने) बनाया	अस्यत कर्तुः	इस जगत् कर्ताको
अपर कुधियः	दूसरे दुर्बुद्धि लोग	त्वत्	आपके द्वारा

कर्तृवादाः	कर्तृत्वको	त्यक्त ह्रियः	निर्लज्ज लोग
अवरोपित	आरोपित किये	किं आवहन्ति	क्या अर्पित करेंगे

॥२०॥

ब्रह्मोवाच–

भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ।
मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥२१॥

भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय मुञ्च एनं हृतसर्वस्वं न अयं अर्हति निग्रहम् ॥२१॥

भूतभावन	प्राणियोंके पालक !	हृतसर्वस्वं	इसका सर्वस्व हरण
भूतेश	भूतेश्वर !		हो चुका है
देवदेव	देवाधिदेव !	एनं मुञ्च	इसे छोड़ दीजिए
जगन्मय	विश्वरूप !	अयं निग्रहं	यह दण्ड पाने योग्य
		न अर्हति	नहीं है ॥२१॥

कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ।
निवेदितं च सर्वस्वमात्माविक्लवया धिया ॥२२॥

कृत्स्ना ते अनेन दत्ता भूः लोकाः कर्म अर्जिताः च ये निवेदितं च सर्वस्वं आत्मा अविक्लवया धिया ॥२२॥

अनेन ते	इस (बलि) ने आपको	दत्ता	दे दिये,
कृत्स्ना भूः	सम्पूर्ण पृथ्वी	सर्वस्वं	(अपना) सर्वस्व
च ये	तथा जो	च आत्मा	और शरीर भी
कर्म	अपने कर्मसे	अविक्लवया-	बुद्धिको बिना
अर्जिताः	उपार्जित	धिया	व्याकुल किये
लोकाः	लोक थे वे	निवेदितं	निवेदन कर दिया

॥२२॥

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वाकुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥२३॥

यत् पादयोः अशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वा अंकुरैः अपि विधाय सतीं सपर्यां अपि उत्तमां गतिं असौ भजते त्रिलोकीं दाश्वान् अविक्लवमनाः कथं आर्तिम् ऋच्छेत् ॥२३॥

यत् पादयोः	जिनके चरणोंमें	**भजते**	पा लेते हैं (उस आपको)
अशठधीः	निष्कपट भावसे	**अविक्लवमनाः**	अखिन्न चित्त
सलिलं प्रदाय	जलका अर्घ्य देकर	**त्रिलोकीं**	त्रिलोकी
अपि दूर्वा	तथा दूबके	**दाश्वान्**	दे देनेवाला
अंकुरैः	अंकुरोंसे	**असौ**	यह (बलि)
सतीं सपर्यां	श्रेष्ठ पूजा	**आर्तिम् कथं**	कष्ट कैसे
विधाय	करके	**ऋच्छेत्**	पा सकता है ॥२३॥
अपि	भी		
उत्तमां गतिं	लोग उत्तम गति		

श्रीभगवानुवाच—

ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥२४॥

ब्रह्मन् यं अनुगृह्णामि तत् विशः विधुनोमि अहं यत् मदः पुरुषः स्तब्धः लोकं मां च अवमन्यते ॥२४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्माजी !	**यत्**	जिस (धन)के
अहं यं	मैं जिसपर	**मदः**	घमण्डसे
अनुगृह्णामि	अनुग्रह करता हूँ,	**पुरुषः**	पुरुष
तत् विशः	उसका धन	**लोकं च मां**	लोगोंका तथा मेरा
विधुनोमि	नष्ट कर देता हूँ,	**अवमन्यते**	अपमान करता है ॥२४॥

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन् निजकर्मभिः ।
नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥२५॥

यदा कदाचित् जीवात्मा संसरन् निजकर्मभिः नाना योनिषु अनीशः अयं पौरुषीं गतिं आव्रजेत् ॥२५॥

अयं अनीशः	यह असमर्थ	**योनिषु**	योनियोंमें
जीवात्मा	जीव	**संसरन्**	घूमता हुआ
निजकर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार	**यदा कदाचित्**	जब कभी
		पौरुषीं गतिं	मनुष्य स्वरूपमें
नाना	अनेक प्रकारकी	**आव्रजेत्**	आ पाता है ॥२५॥

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥२६॥

जन्म कर्म वयः रूप विद्या ऐश्वर्य धन आदिभिः यदि अस्य न भवेत् स्तम्भः तत्र अयं मत् अनुग्रहः ॥२६॥

तत्र	उस (मनुष्य देह) में	**विद्या ऐश्वर्य**	विद्या, प्रभुत्व,
यदि	यदि	**धन आदिभिः**	धन आदिसे
जन्म	(उत्तम कुलमें) जन्म	**अस्य स्तम्भः**	इसे गर्व
कर्म	(श्रेष्ठ) कर्म,	**न भवेत्**	न हो जाय तो
वयः	(युवा) आयु,	**अयं मत्**	यह मेरी
रूप	सौन्दर्य,	**अनुग्रहः**	कृपा है ॥२६॥

मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः ।
सर्वश्रेयः प्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥२७॥

मान स्तम्भ निमित्तानां जन्म आदीनां समन्ततः सर्वश्रेयः प्रतीपानां हन्त मुह्येत न मत् परः ॥२७॥

सर्वश्रेयः	सब प्रकारके श्रेयके	**मान**	अभिमान और
प्रतीपानां	विरोधी	**स्तम्भ**	उद्धतताके

निमित्तानां	कारण	परः	परायण जन
जन्म आदीनां	जन्म आदिसे	मुह्यन्ति न	मोहित नहीं होते
समन्ततः	चारों ओरसे ही		॥२७॥
हन्त मत्	अहो, मेरे		

एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ।
अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥२८॥

एष दानव दैत्यानां अग्रणीः कीर्तिवर्धनः अजैषीत् अजयां मायां सीदन् अपि न मुह्यति ॥२८॥

दानव दैत्यानां	दानव-दैत्योंमें	अजैषीत्	जीत लिया
अग्रणीः	प्रमुख,		(क्योंकि)
कीर्तिवर्धनः	अपना सुयश बढ़ाने-	सीदन् अपि	कष्ट पाते हुए भी
	वाला	मुह्यति न	मोहमें नहीं पड़ा
एष	इस (बलि) ने		॥२८॥
अजयां मायां	अजेय मायाको		

क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात् क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ।
ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥२९॥

क्षीण रिक्थः च्युतः स्थानात् क्षिप्तः बद्धः च शत्रुभिः ज्ञातिभिः च परित्यक्तः यातनां अनुयापितः ॥२९॥

क्षीण रिक्थः	धन नष्ट हो गया,	च ज्ञातिभिः	एवं जातिवालों
स्थानात्	अपने स्थानसे		द्वारा
च्युतः	भ्रष्ट हो गया	परित्यक्तः	त्याग दिया गया;
शत्रुभिः	(इसके) शत्रु (मेरे)		किन्तु
	द्वारा		(इस प्रकार अनेक)
क्षिप्तः	अपमानित हुआ	यातनां	यातनाएँ
च बद्धः	तथा बांधा गया	अनुयापितः	दी गयीं ॥२९॥

गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ।
छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥३०॥

गुरुणा भर्त्सितः शप्तः जहौ सत्यं न सुव्रतः छलैः उक्तः मया धर्मः न अयं त्यजति सत्यवाक् ॥३०॥

गुरुणा	गुरुके द्वारा	मया छलैः	मैंने छलपूर्ण
भर्त्सितः	डांटा गया,	उक्तः	बातें कहीं,
शप्तः	शाप दिया गया (फिर भी)	अयं सत्यवाक्	किन्तु यह सत्यवादी
सुव्रतः	(इस) दृढ़ प्रतिज्ञने	धर्मः न	(अपना) धर्म नहीं
सत्यं न जहौ	सत्यको नहीं त्यागा,	त्यजति	छोड़ता है ॥३०॥

एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ।
सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥३१॥

एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापं अमरैः अपि सावर्णेः अन्तरस्य अयं भविता इन्द्रः मत् आश्रयः ॥३१॥

अमरैः अपि	देवताओं द्वारा भी	अन्तरस्य	मन्वन्तरका
दुष्प्रापं	दुष्प्राप्य	मत् आश्रयः	मेरे आश्रयसे
मे स्थानं	मेरा स्थान (धाम)	इन्द्रः भविता	(यह) इन्द्र होगा ॥३१॥
एष प्रापितः	इसे (मैंने) दिया,		
सावर्णेः	सावर्णि		

तावत् सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ।
यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः ।
नोपसर्गा निवसतां संभवन्ति ममेक्षया ॥३२॥

तावत् सुतलं अध्यास्तां विश्वकर्म विनिर्मितं यत् न आधयः व्याधयः च क्लमः तन्द्रा पराभवः न उपसर्गाः निवसतां संभवन्ति मम ईक्षया ॥३२॥

तावत्	तब तक	आधयः	चिन्ता,
विश्वकर्म	विश्वकर्माके	व्याधयः	रोग,
विनिर्मितं	बनाये	च क्लमः तन्द्रा	तथा श्रान्ति, तन्द्रा
सुतलं	सुतल लोकमें	पराभवः न	पराजय नहीं होती
अध्यास्तां	निवास करें,	न उपसर्गाः	न किसी प्रकारके
यत्	जहां		विघ्न
निवसतां	निवास करनेवाले-को	संभवन्ति	उत्पन्न होते हैं ॥३२॥
मम ईक्षया	मेरी कृपा-दृष्टिसे		

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ।
सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥३३॥

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रं अस्तु ते सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥३३॥

भो महाराज	हे महाराज	स्वर्गिभिः	देवताओं द्वारा भी
इन्द्रसेन	इन्द्रसेन !	प्रार्थ्यं	प्रार्थनीय
ज्ञातिभिः	अपने जाति-	सुतलं याहि	सुतल-लोक जाओ,
परिवारितः	परिवारवालोंके साथ	ते	तुम्हारा
		भद्रं अस्तु	कल्याण हो ॥३३॥

न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे ।
त्वच्छासनातिगान् दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥३४॥

न त्वां अभिभविष्यन्ति लोकेशाः किं उत अपरे त्वत् शासन अतिगान् दैत्यान् चक्रं मे सूदयिष्यति ॥३४॥

अपरे उत किं	दूसरे तो क्या	त्वत्	तुम्हारे
लोकेशाः	लोकपाल भी	शासन	अनुशासनका
त्वां	तुम्हारा	अतिगान्	अतिक्रमण करने-वाले
अभिभविष्यन्ति	पराभाव		
न	नहीं कर सकेंगे,	दैत्यान्	दैत्योंको

मे चक्रं	मेरा चक्र	सूदयिष्यति	मार दिया करेगा ॥३४॥

रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥३५॥

रक्षिष्ये सर्वतः अहं त्वां सानुगं सपरिच्छदं सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥३५॥

सानुगं	अनुचरों और	वीर भवान्	वीरवर आप
सपरिच्छदं	सामग्री सहित	तत्र सदा	वहां सर्वदा
त्वां सर्वतः	तुम्हारी सब ओरसे	मां सन्निहितं	मुझे अपने पास
अहं रक्षिष्ये	मैं रक्षा करूँगा	द्रक्ष्यते	देखोगे ॥३५॥

तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात् ते भाव आसुरः ।
दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥३६॥

तत्र दानव दैत्यानां सङ्गात् ते भाव आसुरः दृष्ट्वा मत् अनुभावं वै सद्यः कुण्ठः विनङ्क्ष्यति ॥३६॥

दानव दैत्यानां	दानव-दैत्योंके	दृष्ट्वा	देखकर
सङ्गात्	संसर्गसे	सद्यः	तुरन्त
ते	तुम्हारा	कुण्ठः	कुण्ठित होकर
आसुरः भावः	आसुर भाव	विनङ्क्ष्यति	नष्ट हो जायगा ॥३६॥
तत्र मत्	वहां मेरा		
अनुभावं	प्रभाव		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं
महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ।
बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो
भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराब्रवीत् ॥ १ ॥

इति उक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं महा अनुभावः अखिल साधु संमतः बद्ध अञ्जलिः बाष्पकला आकुल ईक्षणः भक्ति उद्गलः गद्गदया गिराब्रवीत् ॥१॥

पुरुषं	पुराण-पुरुष	बद्ध अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
पुरातनं	भगवान्के	बाष्पकला	अश्रुओंसे
इति उक्तवन्तं	ऐसा कहनेपर	आकुल ईक्षणः	डबडबाये नेत्र
अखिल साधु	समस्त सत्पुरुषों द्वारा	भक्ति	भक्ति भावसे
		उद्गलः	भरे कण्ठ
सम्मतः	सम्मानित	गद्गदया	गद्गद्
महा अनुभावः	महा प्रभावशाली (बलि)	गिराब्रवीत	वाणीसे बोले ॥१॥

बलिरुवाच–

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः
प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ।
यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरै-
रलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्न भक्त अर्थ विधौ समाहितः यत् लोकपालैः तुवत् अनुग्रहः अमरैः अलब्ध पूर्वः अपसदे असुरे अर्पितः ॥२॥

अहो	अहो,	**लोकपालैः**	लोकपालों
प्रणामाय	प्रणाम करनेके लिए	**अमरैः**	देवताओंको
कृतः समुद्यमः	किया हुआ प्रयत्न	**तुवत्**	तो भी
प्रपन्न भक्त	शरणागत भक्तको	**अलब्ध पूर्वः**	पहिले कभी न मिला
अर्थ विधौ	प्राप्त होनेवाले फल-को	**अनुग्रहः**	अनुग्रह (आपने)
		असुरे अपसदे	(मुझ) असुराधमको
समाहितः	देनेवाला हो गया	**अर्पितः**	प्रदान किया ॥२॥
यत्	क्योंकि		

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ।
विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥

इति उक्त्वा हरिं आनम्य ब्रह्माणं सभवं ततः विवेश सुतलं प्रीतः बलिः मुक्तः सह असुरैः ॥३॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**बलिः**	बलि
हरिं	श्रीहरिको,	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
सभवं	शंकरजीके साथ	**सह असुरैः**	असुरोंके साथ
ब्रह्माणं आनम्य	ब्रह्माजीको प्रणाम करके	**सुतलं**	सुतलमें
		विवेश	प्रवेश कर गये ॥३॥
मुक्तः	(बन्धनसे) छूटे		

एवमिन्द्राय भगवान् प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ।
पूरयित्वादितेः काममशासत् सकलं जगत् ॥ ४ ॥

एवं इन्द्राय भगवान् प्रत्यानीय त्रिविष्टपं पूरयित्वा अदितेः कामं अशासत् सकलं जगत् ॥४॥

एवं	इस प्रकार	अदितेः कामं	अदितिकी कामना
भगवान्	भगवान्ने	पूरयित्वा	पूर्ण करके
इन्द्राय	इन्द्रको	सकलं जगत्	सम्पूर्ण संसारका
त्रिविष्टपं	स्वर्ग	अशासत्	शासन किया ॥४॥
प्रत्यानीय	पुनः लौटाकर		

लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ।
निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

लब्धं प्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिं निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लादः इदं अब्रवीत् ॥५॥

वंशधरं	अपने वंशको चलानेवाले	निशाम्य	देखकर
		भक्तिप्रवणः	भक्तिसे विनम्र होकर
पौत्रं बलिं	पौत्र बलिको		
निर्मुक्तं	पाशसे छूटे हुए	प्रह्लादः	प्रह्लादजी
लब्ध प्रसादं	भगवत् कृपा प्राप्त	इदं अब्रवीत्	यह बोले ॥५॥

प्रह्लाद उवाच—

नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं
न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ।
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो
विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

न इमं विरिञ्चः लभते प्रसादं न श्रीः न शर्वः किं उत अपरे ते यत् नः असुराणां असि दुर्गपालः विश्व अभिवन्द्यैः अपि वन्दित अङ्घ्रिः ॥६॥

इमं प्रसादं	(आपकी) यह कृपा	लभते	प्राप्त करते हैं,
न विरिञ्चः	न ब्रह्माजी,	ते अपरे	फिर उन किन्ही दूसरोंकी
न श्रीः	न लक्ष्मीजी,		
न शर्वः	न शंकरजी	किं उत	क्या बात

विश्व	विश्व	अङ्घ्रिः	चरण
अभिवन्द्यैः	वन्द्योंके द्वारा	यत् नः	जो हम
अपि	भी	असुराणां	असुरोंके (आप)
वन्दित	वन्दित-	दुर्गपालः असि	दुर्गपाल हैं ॥६॥

यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन
ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवतेविभूतीः ।
कस्माद् वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते
दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥

यत् पादपद्म मकरन्द निषेवणेन ब्रह्मा आदयः शरणदा अश्नुवते विभूतीः कस्मात् वयं कुसृतयः खलयोनयः ते दाक्षिण्य दृष्टि पदवीं भवतः प्रणीताः ॥७॥

शरणदा	शरणदाता प्रभो !	ते दाक्षिण्य	उन्हीं आपकी
यत्	जिनके	दृष्टि	दया दृष्टिके
पादपद्म	चरण-कमलोंके	पदवीं	पात्र
मकरन्द	मकरन्दकी	वयं कुसृतयः	हम कुमार्गी
निषेवणेन	सेवासे	खलयोनयः	दुष्ट योनिमें उत्पन्न
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मा आदि	भवतः	आपके द्वारा
विभूतीः	वैभव	कस्मात्	क्यों
अश्नुवते	भोगते हैं,	प्रणीताः	बना लिये गये ॥७॥

चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमाया-
लीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ।
सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो
भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥

चित्रं तव ईहितं अहो अमित योगमाया लीला विसृष्ट भुवनस्य विशारदय सर्वात्मनः समदृशः विषमः स्वभावः भक्तप्रियः यत् असि कल्पतरु स्वभावः ॥८॥

अहो तव ईहितं	अहो, आपकी लीला	**सर्वात्मनः**	सर्वात्मा
चित्रं	विचित्र है,	**समदृशः**	समदर्शीका
अमित	अपरमित	**स्वभावः**	स्वभाव
योगमाया	योगमाया द्वारा	**विषमः**	विषम है
लीला	लीला पूर्वक	**यत् कल्पतरु**	क्योंकि कल्पवृक्षके
भुवनस्य	त्रिभुवनकी	**स्वभावः**	समान स्वभाववाले
विसृष्ट	सृष्टिमें	**भक्तप्रियः**	भक्तवत्सल
विशारदस्य	परम निपुण	**असि**	हैं ॥८॥

श्रीभगवानुवाच—

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ।

मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतल आलयं मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखं आवह ॥९॥

वत्स प्रह्लाद	वत्स प्रह्लाद !	**मोदमानः**	आनन्द पूर्वक रहते हुए
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,	**ज्ञातीनां**	अपनी जाति वालों-को
सुतल आलयं	सुतल-लोक	**सुखं आवह**	सुखी करो ॥९॥
प्रयाहि	प्रस्थान करो,		
स्वपौत्रेण	अपने पौत्रके साथ		

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ।

मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥१०॥

नित्यं द्रष्टा असि मां तत्र गदापाणिं अवस्थितं मत् दर्शन महाह्लाद ध्वस्त कर्मनिबन्धनः ॥१०॥

तत्र नित्यं	वहां सदा	**अवस्थितं**	उपस्थित
गदापाणिं	हाथमें गदा लिये	**मां द्रष्टा असि**	मुझे देखोगे

मत् दर्शन	मेरे दर्शनके	ध्वस्त	नष्ट हो जायँगे
महाह्लाद	परमानन्दसे		॥१०॥
कर्मनिबन्धनः	(तुम्हारे) कर्म-बन्धन		

श्रीशुक उवाच—

आज्ञां भगवतो राजन्प्रह्लादो बलिना सह ।
बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः ॥११॥

आज्ञां भगवतः राजन् प्रह्लादः बलिना सह बाढं इति अमल प्रज्ञः मूर्ध्ना आधाय कृत अञ्जलिः ॥११॥

राजन्	राजन् !	बलिना सह	बलिके साथ
भगवतः	भगवान्‌की	बाढं इति	'बहुत अच्छा' कह-
आज्ञां	आज्ञाको		कर
अमल प्रज्ञः	निर्मल बुद्धि	कृत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
प्रह्लादः	प्रह्लादने	मूर्ध्ना आधाय	शिरोधार्य की ॥११॥

परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ।
प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥१२॥

परिक्रम्य आदिपुरुषं सर्व असुर चमूपतिः प्रणतः तत् अनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥१२॥

आदिपुरुषं	उन आदिपुरुषकी	अनुज्ञातः	अनुमति पाकर
सर्व असुर	सब असुर	महाबिलं	सुतल लोकमें
चमूपतिः	सेना-नायकोंके साथ	प्रविवेश	प्रवेश कर गये
प्रणतः	प्रणाम करके		॥१२॥
तत्	उन (भगवान्) से		

अथाहोशनसं राजन् हरिर्नारायणोऽन्तिके ।
आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥१३॥

अथ आह उशनसं राजन् हरिः नारायणः अन्तिके आसीनं ऋत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥१३॥

अथ हरिः	फिर श्रीहरि	ऋत्विजां मध्ये	ऋत्विजके बीचमें
नारायणः	नारायणने	अन्तिके आसीनं	समीप बैठे
ब्रह्मवादिनां	वेदवादियोंकी	उशनसं आह	शुक्राचार्यसे कहा ॥१३॥
सदसि	सभामें		

श्रीभगवानुवाच–*

ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्म च्छिद्रं वितन्वतः ।
यत् तत् कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥१४॥

ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्म च्छिद्रं वितन्वतः यत् तत् कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥१४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	तत्	जो
शिष्यस्य	(आपके) शिष्यके	वैषम्यं	विषमता रह जाय
वितन्वतः	यज्ञमें		तो
कर्म च्छिद्रं	जो कर्ममें त्रुटि रही हो	ब्रह्मदृष्टं	ब्राह्मणोंकी दृष्टि पड़नेसे ही
संतनु	उसे पूर्ण कीजिए	समं भवेत्	बराबर हो जाती है ॥१४॥
यत् कर्मसु	क्योंकि कर्ममें		

श्रीशुक उवाच–

कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ।
यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥१५॥

कुतः तत् कर्म वैषम्यं यस्य कर्म ईश्वरः भवान् यज्ञेशः यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥१५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तत् कर्म	उसके कर्ममें	ईश्वर	स्वामी
वैषम्यं	विषमता होगी	यज्ञेशः	यज्ञेश्वर,
कुतः	कहांसे	यज्ञपुरुषः	यज्ञ-पुरुष
यस्य	जिसके द्वारा	सर्वभावेन	सब प्रकारसे
भवान् कर्म	आप कर्मोंके	पूजितः	पूजित हुए हैं ॥१५॥

√ मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥१६॥

मन्त्रतः तन्त्रतः छिद्रं देश काल अर्ह वस्तुतः सर्वं करोति निच्छिद्रं नाम संकीर्तनं तव ॥१६॥

मन्त्रतः तन्त्रतः	मन्त्रोंमें, विधिमें,	सर्वं निच्छिद्रं	सबको त्रुटिहीन
देश काल	स्थान, समय,	तव नाम	आपके नामका
अर्हं वस्तुतः	पूज्यवर्ग तथा पदार्थोंमें	संकीर्तनं	संकीर्तन
छिद्रं	जो त्रुटियां (रह जाती हैं)	करोति	कर देता है ॥१६॥

तथापि वदतो भूमन् करिष्याम्यनुशासनम् ।
एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत् तवाज्ञानुपालनम् ॥१७॥

तथा अपि वदतः भूमन् करिष्यामि अनुशासनं एतत् श्रेयः परं पुंसां यत् तव आज्ञा अनुपालनम् ॥१७॥

भूमन्	सर्वव्यापी प्रभो !	आज्ञा	आज्ञाका
तथा अपि	फिर भी	अनुपालनं	पालन ही
वदतः	(आप) कहते हैं तो	एतत् पुसां	यह पुरुषका
अनुशासनं	आज्ञा पालन	परं श्रेयः	परम कल्याण है ॥१७॥
करिष्यामि	करूंगा,		
यत् तव	क्योंकि आपकी		

श्रीशुक उवाच—

अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ।
यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥१८॥

अभिनन्द्य हरेः आज्ञां उशना भगवान् इति यज्ञः छिद्रं सम आधत्त बलेः विप्रर्षिभिः सह ॥१८॥

इति	इस प्रकार	**विप्रर्षिभिः सह**	ब्रह्मर्षियोंके साथ
हरेः आज्ञां	श्रीहरिकी आज्ञाका	**बलेः यज्ञः**	बलिके यज्ञकी
अभिनन्द्य	अभिनन्दन करके	**छिद्रं**	त्रुटियोंको
भगवान्	भगवान्	**सम आधत्त**	बराबर (दूर) कर दिया ॥१८॥
उशना	शुक्राचार्यने		

एवं बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः ।
ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत् परैर्हृतम् ॥१९॥

एवं बलेः महीं राजन् भिक्षित्वा वामनः हरिः ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत् परैः हृतम् ॥१९॥

राजन्	राजन् !	**भिक्षित्वा**	भिक्षामें लेकर
यत् परैः	जो शत्रुओंने	**वामनः**	वामन रूपधारी
हृतं	छीन लिया था	**हरिः**	श्रीहरिने
त्रिदिवं	वह स्वर्ग और	**भ्रात्रे**	अपने बड़े भाई
बलेः महीं	बलिकी पृथ्वी	**महेन्द्राय**	इन्द्रको
एवं	इस प्रकार	**ददौ**	दे दिया ॥१९॥

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ।
दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥२०॥

प्रजापति पतिः ब्रह्मा देव ऋषि पितृ भूमिपैः दक्ष भृगुः अङ्गिरः मुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥२०॥

देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर,
भूमिपैः भृगुः	राजाओं, भृगु,
अङ्गिरः मुख्यैः	अङ्गिरा प्रमुख
कुमारेण	सनत्कुमारादि
च भवेन	तथा शंकरजीके साथ
प्रजापति	प्रजापतियोंके
पतिः	स्वामी
ब्रह्मा	ब्रह्माजीने ॥२०॥

कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ।
लोकानां लोकपालानामकरोद् वामनं पतिम् ॥२१॥

कश्यपस्य अदितेः प्रीत्यै सर्वभूत भवाय च लोकानां लोकपालानां अकरोत् वामनं पतिम् ॥२१॥

कश्यपस्य	कश्यप तथा
अदितेः	अदितिकी
प्रीत्यै	प्रसन्नताके लिए
च सर्वभूत	तथा सब प्राणियोंके
भवाय	हितके लिए
लोकानां	लोकों तथा
लोकपालानां	लोकपालोंका
वामनं	भगवान् वामनको
पतिं अकरोत्	स्वामी बना दिया ॥२१॥

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ।
मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥२२॥

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्ग अपवर्गयोः ॥२२॥

वेदानां	वेदोंकी
सर्वदेवानां	सब देवताओंकी
धर्मस्य यशसः	धर्म, यश,
श्रियः	लक्ष्मी,
मङ्गलानां	मंगल,
व्रतानां स्वर्ग	व्रत, स्वर्ग
च	तथा
अपवर्गयोः	मोक्षकी (वामन भगवान्‌को)
कल्पं	रक्षा करनेमें समर्थ ॥२२॥

उपेन्द्रं कल्पयाञ्चक्रे पतिं सर्वविभूतये ।
तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥२३॥

उपेन्द्रं कल्पयाञ्चक्रे पतिं सर्व विभूतये तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥२३॥

नृप	राजन् !	**कल्पयाञ्चक्रे**	बनाया
सर्व	सबके	**तदा**	उस समय
विभूतये	वैभवके लिए	**सर्वाणि भूतानि**	सभी प्राणी
पतिं	सबका स्वामी	**भृशं**	अत्यन्त
उपेन्द्रं	उपेन्द्र	**मुमुदिरे**	प्रसन्न हुए ॥२३॥

ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ।
लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥२४॥

ततः तु इन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनं लोकपालैः दिवं निन्ये ब्रह्मणा च अनुमोदितः ॥२४॥

ततः तु	इसके पश्चात् तो	**वामनं**	वामन भगवान्को
लोकपालैः	लोकपालों	**पुरस्कृत्य**	आगे करके
च ब्रह्मणा	तथा ब्रह्माजी द्वारा	**देवयानेन**	स्वर्गीय विमानसे
अनुमोदितः	समर्थन पाकर	**दिवं निन्ये**	(उनको) स्वर्ग ले गये ॥२४॥
इन्द्रः	इन्द्रने		

प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः ।
श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥२५॥

प्राप्य त्रिभुवनं च इन्द्र उपेन्द्र भुज पालितः श्रिया परमया जुष्टः मुमुदे गत साध्वसः ॥२५॥

इन्द्र	इन्द्र	**गत साध्वसः**	निर्भय होकर
उपेन्द्र भुज	उपेन्द्रके भुजा बलसे	**च परमया**	तथा परम
पालितः	रक्षित	**श्रिया**	ऐश्वर्य
त्रिभुवनं	तीनों लोक	**जुष्टः**	सम्पन्न होकर
प्राप्य	पाकर	**मुमुदे**	आनन्दित हुए ॥२५॥

ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ।
पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥२६॥

ब्रह्मा शर्वः कुमारः च भृगु आद्या मुनयः नृप पितरः सर्व भूतानि सिद्धाः वैमानिकाः च ये ॥२६॥

नृपः	राजन् !	**पितरः**	पितृगण,
ब्रह्मा शर्वः	ब्रह्मा, शिव,	**च सर्व**	एवं सभी
कुमारः	सनकादि कुमार	**भूतानि**	प्राणी
भृगु आद्या	भृगु आदि	**च ये सिद्धाः**	तथा जो सिद्ध,
मुनयः	मुनिगण,	**वैमानिकाः**	देवता थे ॥२६॥

सुमहत् कर्म तद् विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम् ।
धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥२७॥

सुमहत् कर्म तत् विष्णोः गायन्तः परम अद्भुतं धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुः अदितिं च शशंसिरे ॥२७॥

तत्	उस	**अदितिं च**	तथा अदितिकी भी
विष्णोः	विष्णु भगवान्‌के	**शशंसिरे**	प्रशंसा की
सुमहत्	अत्यन्त महान	**ते स्वानि**	फिर वे अपने
अद्भुतं कर्म	अद्भुत कार्यका	**धिष्ण्यानि**	स्थानोंको
गायन्तः	गायन करते हुए	**जग्मुः**	चले गये ॥२७॥

सर्वमेतन्मयाऽऽख्यातं भवतः कुलनन्दन ।
उरुक्रमस्य चरितं श्रोतृणामघमोचनम् ॥२८॥

सर्वं एतत् मया आख्यातं भवतः कुलनन्दन उरुक्रमस्य चरितं श्रोतृणां अघमोचनम् ॥२८॥

कुलनन्दन	कुलनन्दन परीक्षित !	**अघमोचनं**	पाप नष्ट करनेवाला
श्रोतृणां	सुनने वालोंका	**उरुक्रमस्य**	अनन्त पराक्रम श्रीहरिका

एतत् सर्वं	यह सब	आख्यातं	वर्णन कर दिया ॥२८॥
चरितं	चरित		
मया भवतः	मैंने तुमसे		

पारं महिम्न उरु विक्रमतो गृणानो
यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः।
किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य
इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥२९॥

पारं महिम्न उरु विक्रमतः गृणानः यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इति आह मन्त्रदृक् ऋषि पुरुषस्य यस्य ॥२९॥

यः मर्त्यः	जो मनुष्य	पुरुषस्य	पुरुषके विषयमें
उरु	अनन्त	मन्त्रदृक्	मन्त्रद्रष्टा
विक्रमतः	पराक्रमशाली भगवान्‌की	ऋषिः	ऋषि (वशिष्ठ) ने
		इति आह	यह कहा है
महिम्नः	महिमाका	किं	'क्या आगे
गृणानः	वर्णन करके	जायमान	उत्पन्न होनेवाले
पारं	पार पाना चाहता है	उत जात	अथवा उत्पन्न हुए
स	वह (सम्भवतः)	मर्त्य	मनुष्य
पार्थिवानि	पृथ्वीके	उपैति	(आपकी महिमाका पार) पा सकता है' ॥२९॥
रजांसि	धूलि कणोंको		
विममे	गिन लें,		
यस्य	जिन परम		

य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः।
अवतारानुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥३०॥

यः इदं देवदेवस्य हरेः अद्भुत कर्मणः अवतार अनुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥३०॥

अद्भुत	अद्भुत	**अनुचरितं**	चरितको
कर्मणः	कर्म करनेवाले	**यः शृण्वन्**	जो सुनता रहता है (वह)
देवदेवस्य	देवाधिदेव		
हरेः	श्रीहरिके	**परां गतिं**	परमपद
इदं अवतार	इस अवतार	**याति**	पाता है ॥३०॥

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ।
यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत् तेषां सुकृतं विदुः ॥३१॥

क्रियमाणे कर्मणि इदं दैवे पित्र्ये अथ मानुषे यत्र यत्र अनुकीर्त्येत तत् तेषां सुकृतं विदुः ॥३१॥

दैवे पित्र्ये	देवयज्ञ, पितृयज्ञ,	**अनुकीर्त्येत**	बार-बार वर्णन-कीर्तन किया जाता है,
अथ मानुषे	अथवा मनुष्ययज्ञ		
कर्मणि	कर्मोंको		
क्रियामाणे	करते समय	**तत्**	वह (कीर्तन)
इदं	इस चरितका	**तेषां**	उन (कर्मों) का
यत्र यत्र	जहां-जहां	**सुकृतं**	पुण्य (वर्धक)
		विदुः	जाना जाता है ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे वामनावतारचरिते त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

राजोवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ।
अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥

भगवन् श्रोतुं इच्छामि हरेः अद्भुत कर्मणः अवतार कथां आद्यां मायामत्स्य विडम्बनम् ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	**विडम्बनं**	बननेकी नकल करनेकी
अद्भुत कर्मणः	अद्भुत कर्म करनेवाले	**आद्यां**	पहिली*
हरेः	श्रीहरिकी	**अवतार कथां**	अवतार-कथा
मायामत्स्य	मायासे मछली	**श्रोतुं इच्छामि**	सुनना चाहता हूँ ॥१॥

यदर्थमदधाद् रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ।
तमः प्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्त इवेश्वरः ॥ २ ॥

यत् अर्थं अदधात् रूपं मात्स्यं लोक जुगुप्सितं तमः प्रकृति दुर्मर्षं कर्म ग्रस्त इव ईश्वरः ॥२॥

ईश्वरः	सर्व समर्थ (होते हुए भी)	**कर्म ग्रस्त इव**	कर्म-बन्धनमें पड़ेके समान

---

*मत्स्यावतारको पहिला अवतार अधिक लोग इस 'आद्यां' के कारण मानते हैं; किन्तु इसी वर्णनमें स्पष्ट है कि यह अवतार वामनावतारके भी पीछे हुआ। क्योंकि इस वैवस्वत-मन्वन्तरका यह पहिला अवतार है, इस मन्वन्तरसे पहिलेकी जल-प्रलयमें हुआ-इसीसे इसे यहां आदि अवतार कहा गया है।

यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे	दुर्मर्षं	अत्यन्त असहनशील
लोक जुगुप्सितं	लोकमें निन्दित	मात्स्यं रूपं	मछलीका रूप
तमः प्रकृति	तमोगुणी स्वभाव	अदधात्	धारण किया ॥२॥

एतन्नो भगवान् सर्वं यथावद् वक्तुमर्हसि ।
उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥

एतत् नः भगवान् सर्वं यथावत् वक्तुं अर्हसि उत्तम श्लोक चरितं सर्वलोक सुख आवहम् ॥३॥

भगवान्	भगवन् !	उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति भगवान्का
एतत् सर्वं	यह सब	चरितं	चरित
यथावत्	ठीक-ठीक	सर्वलोक	सभी लोगोंको
नः वक्तुं	मुझसे (आपको) बतलाना	सुख आवहं	सुख देनेवाला है ॥३॥
अर्हति	चाहिए (क्योंकि)		

सूत उवाच–

इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः ।
उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत् कृतम् ॥ ४ ॥

इति उक्तः विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः उवाच चरितं विष्णोः मत्स्य रूपेण यत् कृतम् ॥४॥

विष्णुरातेन	परीक्षितके	यत् कृतं	जो किया था वह
इति उक्तः	इस प्रकार कहनेपर	विष्णोः	भगवान् विष्णुका
भगवान्	भगवान्	चरितं	चरित
बादरायणिः	व्यासनन्दन शुक-देवजीने	उवाच	वर्णन करने लगे ॥४॥
मत्स्य रूपेण	मत्स्य रूप द्वारा		

श्रीशुक उवाच–

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥

गो विप्र सुर साधूनां छन्दसां अपि च ईश्वरः रक्षां इच्छन् तनूः धत्ते धर्मस्य अर्थस्य च एव हि ॥५॥

हि	क्योंकि	**एव**	की ही
ईश्वरः	सर्वसमर्थ प्रभु	**रक्षां**	रक्षा करनेकी
गो विप्र सुर	गौ, ब्राह्मण, देवता	**इच्छन्**	इच्छासे
च छन्दसां	तथा वेदोंकी	**तनूः**	अवतार देह
अपि	भी	**धत्ते**	धारण करते हैं ॥५॥
धर्मस्य अर्थस्य	धर्म तथा सम्पत्ति		

उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः ।
नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥

उच्च अवचेषु भूतेषु चरन् वायुः इव ईश्वरः न उच्च आवचत्वं भजते निर्गुणत्वात् हि यः गुणैः ॥६ ॥

हि यः	क्योंकि जो	**चरन्**	घूमते हुए
निर्गुणत्वात्	निर्गुण होनेके कारण	**ईश्वरः**	सर्वसमर्थ
		गुणैः	गुणोंके द्वारा
वायुः इव	वायुके समान	**उच्च अवचत्वं**	बड़ा-छोटापन
उच्च अवचेषु	बड़े-छोटे	**न भजते**	नहीं स्वीकार करते ॥६॥
भूतेषु	प्राणियोंमें		

आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ।
समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७ ॥

आसीत् अतीत कल्प अन्ते ब्राह्मः नैमित्तिकः लयः समुद्रः उपप्लुताः तत्र लोका भूः आदयः नृप ॥७॥

नृप	राजन् !	लयः आसीत्	प्रलय हुआ था ।
अतीत कल्प	पिछले कल्पके	तत्र	उस समय
अन्ते	अन्तमें*	भूः आदयः	भूर्लोक आदि
ब्राह्मः	ब्राह्म नामक	समुद्रः	समुद्रमें
नैमित्तिकः	नैमित्तिक	उपप्लुताः	डूब गये थे ॥७॥

कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली ।
मुखतो निःसृतान् वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥ ८ ॥

कालेन आगत निद्रस्य धातुः शिशयिषोः बली मुखतः निःसृतान् वेदान् हयग्रीवः अन्तिके अहरत् ॥८॥

कालेन	कालक्रमसे	निःसृतान्	निकले
धातुः	ब्रह्माजीको	अन्तिके वेदान्	पास पड़े वेदोंको
आगत निद्रस्य	नींद आ जानेपर	हयग्रीवः	हयग्रीव दानव
शिशयिषः	उनके सोते समय	अहरत्	हरणकर लिया ॥८॥
मुखतः	मुखसे		

ज्ञात्वा तद् दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ।
दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥

ज्ञात्वा तत् दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितं दधार शफरी रूपं भगवान् हरिः ईश्वरः ॥९॥

तत् दानवेन्द्रस्य	उस दानवेन्द्र	भगवान्	भगवान्
हयग्रीवस्य	हयग्रीवकी	हरिः	श्रीहरिने
चेष्टितं ज्ञात्वा	चेष्टा जानकर	शफरी रूपं	मछलीका रूप
ईश्वरः	सर्वसमर्थ	दधार	धारण किया ॥९॥

---

*मत्स्यावतार इस कल्पके प्रारम्भमें प्रलय कालमें हुआ, इसलिए इस कल्पके लिए तो आद्यावतार है; कि भागवतमें अष्टम स्कन्धसे पहिले के सब अवतारोंका वर्णन प्रथम कल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तर है, यह अष्टम स्कन्धके प्रारम्भमें राजाके प्रश्नमें स्पष्ट है ।

तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ।
नारायणपरोऽतप्यत् तपः स सलिलाशनः ॥१०॥

तत्र राजऋषिः कश्चित् नाम्ना सत्यव्रतः महान् नारायण परः अतप्यत् तपः स सलित अशनः ॥१०॥

तत्र कश्चित्	उस समय कोई	**परः**	परायण
सत्यव्रतः	सत्यव्रत	**सलिल**	केवल जल
नाम्ना	नामक	**अशनः**	पीकर
महान्	महान्	**तपः**	तपस्या
राजऋषिः	राजर्षि थे,	**अतप्यत्**	कर रहे थे ॥१०॥*
स नारायण	वे नारायण		

योऽसावस्मिन् महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ।
श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणार्पितः ॥११॥

यः असौ अस्मिन् महाकल्पे तनयः स विवस्वतः श्राद्धदेव इति ख्यातः मनुत्वे हरिणा अर्पितः ॥११॥

यः असौ	जो इस	**इति**	इस नामसे
महाकल्पे	महाकल्पमें	**ख्यातः**	प्रसिद्ध हुए,
विवस्वतः	सूर्यके	**हरिण**	श्रीहरिने (उन्हें)
तनयः	पुत्र	**मनुत्वे**	मनुपद
स श्राद्धदेव	वही श्राद्धदेव	**अर्पितः**	प्रदान किया ॥११॥

एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ।
तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत ॥१२॥

---

*क्योंकि प्रलय समीप है—केवल ६ दिन बाद, अतः यह उस (इससे पूर्वके) कल्पकी अन्तिम चतुर्युगीका अन्तिम कलियुग समाप्त होनेवाला होगा और दक्षिण भारतका स्थान होगा; क्योंकि कृतमाल कावेरीसे भी नीचेकी नदी है।

एकदा कृतमालायां कुर्वतः जलतर्पणं तस्य अञ्जलि उदके काचित् शफरी एका अभ्यपद्यत ॥१२॥

एकदा	एक बार	उदके	जलमें
कृतमालायां	कृतमाला नदीमें	काचित् एका	कोई अकेली
जलतर्पणं	जलसे तर्पण	शफरी	छोटी मछली
कुर्वतः	करते समय	अभ्यपद्यत	आ गयी ॥१२॥
तस्य अञ्जलि	उनकी अञ्जलिके		

सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत ।
उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥१३॥

सत्यव्रतः अञ्जलि गतां सह तोयेन भारत उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविड ईश्वरः ॥१३॥

भारत	परीक्षित् !	शफरीं	उस छोटी मछलीको
द्रविड ईश्वरः	द्रविड़ देशके राजा	सह तोयेन	जलके साथ
सत्यव्रतः	सत्यव्रतने	नदीतोये	नदीके जलमें
अञ्जलि	अपनी अञ्जलिमें	उत्ससर्ज	छोड़ दिया ॥१३॥
गतां	आयी		

तमाह सातिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् ।
यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ।
कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले ॥१४॥

तं आह स अतिकरुणं महाकारुणिकं नृपं यादोभ्यः ज्ञाति घातिभ्यः दीनां मां दीन वत्सल कथं विसृजसे राजन् भीतां अस्मिन् सरित् जले ॥१४॥

महाकारुणिकं	परम दयालु	दीन	दीनोंपर
तं नृपं	उस राजासे	वत्सल	स्नेह करनेवाले
स	वह (मछली)	राजन्	राजन्
अतिकरुणं	अत्यन्त दीनतापूर्वक	अस्मिन् सरित्	इस नदीके
आह	बोली	जले	जलमें

ज्ञाति	अपनी जातिवालों-को ही	भीतां	(मैं) डरी हुई
		मां	मुझे
घातिभ्यः	मारनेवाले	दीनां कथं	दीनाको कैसे
यादोभ्यः	जल-जीवोंसे	विसृजसे	त्याग रहे हैं ॥१४॥

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ।
अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ॥१५॥

तं आत्मनः अनुग्रह अर्थं प्रीत्या मत्स्यवपुः धरं अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनः दधे ॥१५॥

प्रीत्या	प्रसन्न होकर	अजानन्	न जानते हुए
आत्मनः	अपनेपर	शफर्याः	उस मछलीकी
अनुग्रह अर्थं	कृपा करनेके लिए	रक्षणार्थाय	रक्षाके लिए
मत्स्यवपुः धरं	मत्स्य-शरीर-धारी	स मनः	उन्होंने मन
तं	उन (भगवान्) को	दधे	किया ॥१५॥

तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ।
कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥१६॥

तस्या दीनतरं वाक्यं आश्रुत्य स महीपतिः कलश अप्सु निधाय एनां दयालुः निन्य आश्रमम् ॥१६॥

स दयालुः	उन दयालु	एनां	इस (मछली) को
महीपतिः	राजाने	कलश अप्सु	कलशके जलमें
तस्या	उसकी अत्यन्त	निधाय	डालकर
दीनतरं	दीनतापूर्ण	आश्रमं	(अपने) आश्रम
वाक्यं आश्रुत्य	वाणी सुनकर	निन्य	ले आये ॥१६॥

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ ।
अलब्ध्वाऽऽत्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥१७॥

सा तु तत्र एक रात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ अलब्ध्वा आत्म अवकाशं वा इदं आह महीपतिम् ॥१७॥

तत्र सातु	वहां तो वह	आत्म अवकाशं	अपने लिए स्थान
एक रात्रेण	एक रातमें	वा अलब्ध्वा	और न पा करके
वर्ध माना	बढ़कर	महीपतिं	राजासे
कमण्डलौ	कमण्डलुमें	इदं आह	यह बोली ॥१७॥

नाहं कमण्डलावस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ।
कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥१८॥

न अहं कमण्डलौ अस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुं इह उत्सहे कल्पय ओकः सुविपुलं यत्र अहं निवसे सुखम् ॥१८॥

अस्मिन्	इस	सुविपुलं	(मेरे लिए) अच्छा
कमण्डलौ	कमण्डलुमें	ओकः	बड़ा निवास
इह	यहां	कल्पय	दीजिये
कृच्छ्रं वस्तुं	कठिनाईसे भी रहने-में	यत्र अहं	जहां मैं
		सुखं	सुखपूर्वक
अहं उत्सहे न	मैं उत्सुक नहीं हूँ,	निवसे	निवास करूँ ॥१८॥

स एनां तत आदाय न्यधादौदञ्चनोदके ।
तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥१९॥

स एनां तत आदाय न्यधात् औदञ्चन उदके तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयं अवर्धत ॥१९॥

स	उस (राजा) ने	तत्र क्षिप्ता	वहां डाली हुई (वह)
एनां	इस (मछली) को	मुहूर्तेन	एक मुहूर्तमें
तत आदाय	वहांसे लेकर	हस्तत्रयं	तीन हाथ
औदञ्चन	बड़े मटके के	अवर्धत	बढ़ गई ॥१९॥
उदके न्यधात्	जलमें डाला; किन्तु		

न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ।
पृथु देहि पदं मह्यं यत् त्वाहं शरणं गता ॥२०॥

न म एतत् अलं राजन् सुखं वस्तुं उदञ्चनं पृथु देहि पदं मह्यं यत् त्वा अहं शरणं गताः ॥२०॥

राजन्	राजन् !	**पृथु पदं**	बड़ा स्थान
म सुखं वस्तुं	मेरे सुखपूर्वक रहनेके लिए	**देहि**	दीजिए
		यत् अहं	क्योंकि मैं
एतत् उदञ्चनं	यह मटका	**त्वा शरणं**	आपकी शरण
अलं न	पर्याप्त नहीं है	**गताः**	आयी हूँ ॥२०॥
मह्यं	मुझे		

तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे ।
तदावृत्यात्मना सोऽयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥२१॥

तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे तदा आवृत्य आत्मना सः अयं महामीनः अन्ववर्धत ॥२१॥

राजन्	राजन् !	**आत्मना**	अपने शरीरसे
सा तत आदाय	उसे वहांसे लेकर	**आवृत्य**	(सरोवरको) घेरकर
राज्ञा सरोवरे	राजाने सरोवरमें		
क्षिप्ता	डाल दिया	**अयं**	यह
तदा सः	तब वह	**अन्ववर्धत**	बहुत बढ़ गया ॥२१॥
महामीनः	महामत्स्य		

नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ।
निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥२२॥

न एतत् मे स्वस्तये राजन् उदकं सलिल ओकसः निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मां अविदासिनि ॥२२॥

राजन्	राजन् !	रक्षायोगेन	रक्षाके योग्य
मे	मुझे	अविदासिनि	अक्षय
सलिल ओकसः	जलचरके लिए	ह्रदे मां	सरोवरमें मुझे
एतत्	यह (सरोवर)	निधेहि	डाल दीजिए ॥२२॥
स्वस्तये न	सुखकर नहीं		

इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ।
जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥२३॥

इति उक्तः सः अनयत् मत्स्यं तत्र तत्र अविदासिनि जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपत् झषम् ॥२३॥

इति उक्तः	ऐसा कहनेपर	जलाशये	उन जलाशयोंके
सः मत्स्यं	वे राजा मत्स्यको	संमितं	बराबर बढ़ जानेसे
तत्र तत्र	जहां-तहां कई	तं झषं	उस मत्स्यको
अविदासिनि	अक्षय सरोवरोंमें	समुद्रे	समुद्रमें
अनयत्	ले गये	प्राक्षिपत्	डाल दिया ॥२३॥

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ।
अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥२४॥

क्षिप्यमाणः तं आह इदं इह मां मकर आदयः अदन्ति अतिबला वीर मां न इह उत्स्रष्टुं अर्हसि ॥२४॥

क्षिप्यमाणः	(समुद्रमें) डालते समय	मकर आदयः	मगर आदि
		अदन्ति	खा लेंगे
तं इदं	उस (राजा) से यह	मां इह	मुझे यहां (आपको)
आह	बोला	न उत्स्रष्टुं	नहीं छोड़ना
वीर इह	वीरवर ! यहां	अर्हसि	चाहिए ॥२४॥
अतिबला	अत्यन्त बलवान		

एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ।
तमाह को भवानस्मान् मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥

एवं विमोहितः तेन वदता वल्गु भारतीं तं आह कः भवान् अस्मान् मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥*

एवं	इस प्रकार	**तं आह**	उससे बोले
वल्गु भारतीं	मधुर वाणी	**मत्स्यरूपेण**	मत्स्यके रूपसे
वदता	बोलते हुए	**मोहयन्**	मोहित करनेवाले
तेन	उस मत्स्य द्वारा	**भवान् कः**	आप कौन हैं ॥२५॥
विमोहितः	मोहमें डाले गये राजा		

नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च ।
यो भवान् योजनशतमह्नाभिव्यानशे सरः ॥२६॥

न एवं वीर्यः जलचरः दृष्टः अस्माभिः श्रुतः अपि च यः भवान् योजन शतं अह्नाभिः व्यानशे सरः ॥२६॥

अस्माभिः	हम लोगों द्वारा	**यः भवान्**	जो आपने
एवं	इस प्रकार	**शतं योजन**	सौ योजनका
वीर्यः	वीर्यशाली	**सरः**	सरोवर
जलचरः	जलजीव	**अह्नाभिः**	एक दिनमें
दृष्टः च	देखा अथवा	**व्यानशे**	व्याप्त कर लिया
श्रुतः अपि न	सुना भी नहीं है		॥२६॥

नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥२७॥

नूनं त्वं भगवान् साक्षात् हरिः नारायणः अव्ययः अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जल ओकसाम् ॥२७॥

---

*यह सम्पूर्ण संवाद 'श्रीशुक उवाच' के अन्तर्गत श्लोक १८ से चल रहा है। श्लोक ३० के आगे फिर 'श्रीशुक उवाच' है; किन्तु यहां इस श्लोकके पंक्तिके बीचसे ही 'सत्यव्रत उवाच' आरम्भ होनेसे उसे पृथक नहीं किया जा सका ।

नूनं त्वं	निश्चय आप	अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिए
साक्षात्	साक्षात्	जल ओकसां	जलचरका
अव्ययः	अविनाशी	रूपं	रूप
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि	धत्से	धारण किया है
नारायणः	नारायण हैं,		॥२७॥
भूतानां	प्राणियोंपर		

नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ।
भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥२८॥

नमः ते पुरुषश्रेष्ठ स्थिति उत्पत्ति अप्यय ईश्वर भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यः हि आत्म गतिः विभो ॥२८॥

स्थिति	(जगतकी) स्थिति,	विभो हि	प्रभो ! क्योंकि
उत्पत्ति	उत्पत्ति,	नः प्रपन्नानां	हम शरणागत
अप्यय ईश्वर	प्रलयमें समर्थ	भक्तानां	भक्तोंके (आप)
पुरुषश्रेष्ठ	पुरुषोत्तम !	मुख्यः आत्मा	मुख्य आत्मा और
ते नमः	आपको नमस्कार	गतिः	गति हैं ॥२८॥

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥२९॥

सर्वे लीला अवतारः ते भूतानां भूति हेतवः ज्ञातुं इच्छामि अदो रूपं यत् अर्थं भवता धृतम् ॥२९॥

ते सर्वे	आपके सब	अदो रूपं	यह रूप
लीला अवतारः	लीलावतार	भवता धृतं	आपने धारण किया
भूतानां	प्राणियोंके		है
भूति	अभ्युदयके	ज्ञातुं	उसे जानना
हेतवः	लिये होते हैं,	इच्छामि	चाहता हूँ ॥२९॥
यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे		

न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं
मृषा भवेत् सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।
यथेतरेषां पृथगात्मनां सता-
मदीदृशो यद् वपुरद्भुतं हि नः ॥३०॥

न ते अरविन्द अक्ष पदा उपसर्पणं मृषा भवेत् सर्व सुहृत् प्रिय आत्मनः यथा इतरेषां पृथक् आत्मनां सतां अदीदृशः यत् वपुः अद्भुतं हि नः ॥३०॥

अरविन्द अक्ष	कमल-नयन !	हि अद्भुतं	क्योंकि अद्भुत
आत्मनां पृथक्	अपनेको पृथक्	वपुः	(यह मत्स्य) शरीर
सतां	माननेवालोंके	नः	हमको
यथा	समान	यत् अदीदृशः	जो दर्शन कराया
ते सर्व सुहृत्	आप सबके सुहृद		उससे (हम आपके
प्रिय आत्मनः	प्रिय आत्माके		चरणोंमें पहुँचे, यह
पदा उपसर्पणं	चरणोंमें पहुँचना		व्यर्थ नहीं होना
मृषा न भवेत्	व्यर्थ नहीं होता,		चाहिए) ॥३०॥

श्रीशुक उवाच—

इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः
सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ।
विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवी-
च्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियः प्रियम् ॥३१॥

इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत् पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुः युगक्षये विहर्तुकामः प्रलय अर्णवे अब्रवीत् चिकीर्षुः एकान्त जनप्रियः प्रियम् ॥३१॥

एकान्त	अनन्य	मत्स्यवपुः	मत्य-शरीर-धारी
जनःप्रियः	भक्तोंके प्रिय	जगत् पतिः	जगदीश्वर

युगक्षये	युगान्तमें	नृपति	राजा
प्रलय अर्णवे	प्रलय समुद्रमें	सत्यव्रतं	सत्यव्रतसे
विहर्तु-	विहार करनेकी	प्रियं	उनका प्रिय
कामः	इच्छासे	चिकीर्षुः	करनेकी इच्छासे
इति ब्रुवाणं	ऐसा करते हुए	अब्रवीत्	बोले ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच–

सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिन्दम ।
निमङ्क्षत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥३२॥

सप्तमे अद्यतनात् उर्ध्वं अहनि एतत् अरिन्दम निमङ्क्ष्यति अप्यय अम्भोधौ त्रैलोक्यं भूः भुवः आदिकम् ॥३२॥

अरिन्दम	शत्रुदमनकर्ता राजन् !	एतत् भूः भुवः	ये भूः भुवः
अद्यतनात्	आजसे	आदिकं	आदि
ऊर्ध्वं सप्तमे	आगे सातवें	त्रैलोक्यं	तीनों लोक
अहनि	दिन	अप्यय अम्भोद्यौ	प्रलय समुद्रमें
		निमङ्क्ष्यति	डूब जायँगे ॥३२॥

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा ।
उपस्थास्यति नौः काचिद् विशाला त्वां मयेरिता ॥३३॥

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्त अम्भसि वै तदा उपस्थास्यति नौः काचित् विशाला त्वां मया ईरिता ॥३३॥

संवर्त अम्भसि	प्रलय जलमें	काचित्	कोई
त्रिलोक्यां	त्रिभुवनके	विशाला	बहुत बड़ी
लीयमानायां	डूबते हुए	नौः त्वां	नौका तुम्हारे
वै तदा	निश्चय उस समय	उपस्थास्यति	समीप आवेगी ॥३३॥
मया ईरिता	मेरे द्वारा प्रेरित		

त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ।
सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥३४॥

त्वं तावत् ओषधीः सर्वा बीजानि उच्च अवचानि च सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्व सत्त्व उपबृंहितः ॥३४॥

तावत् त्वं	तब तक तुम	**उपबृंहितः**	समृद्ध हो जाओ इन्हें (एकत्र कर लो)
सर्वा ओषधीः	सब औषधियां,		
उच्च अवचानि	बड़े-छोटे सब		
बीजानि	बीज तथा	**सप्तर्षिभिः**	तब सप्तर्षियोंसे
सर्वा सत्त्व	सब प्राणियों (के जोड़े) से	**परिवृतः**	घिरे हुए ॥३४॥

आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ।
एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥३५॥

आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यसि अविक्लवः एक अर्णवे निः आलोके ऋषीणां एव वर्चसा ॥३५॥

बृहतीं नावं	उस बड़ी नौकापर	**ऋषीणां एव**	ऋषियोंके ही
आरुह्य	चढ़कर	**वर्चसा**	तेज (आलोक) में
निः आलोके	प्रकाशहीन	**अविक्लवः**	बिना व्याकुलताके
एक	उस एक ही	**विचरिष्यसि**	विचरण करोगे ॥३५॥
अर्णवे	प्रलय सागरमें		

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ।
उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥३६॥

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महा अहिना ॥३६॥

बलीयसा	प्रचण्ड	**तां नावं**	उस नावके
समीरेण	पवनसे	**दोधूयमानां**	झकझोरे जानेपर

महा	महा	मे शृङ्गे	मेरे सींगमें
अहिना	सर्प (वासुकी) द्वारा	निबध्नीहि	बाँध देना ॥३६॥
उपस्थितस्य	आये हुए		

अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ।
विकर्षन् विचरिष्यामि यावद् ब्राह्मी निशा प्रभो ॥३७॥

अहं त्वां ऋषिभिः साकं सहनावं उदन्वति विकर्षन् विचरिष्यामि यावत् ब्राह्मी निशा प्रभो ॥३७॥

प्रभो	राजन् !	यावत्	जब तक
ऋषिभिः साकं	ऋषियोंके साथ	ब्राह्मी	ब्रह्माजीकी
त्वां सहनावं	तुम्हें नाव सहित	निशा	रात रहेगी
उदन्वति	उस (प्रलय) समुद्रमें	विचरिष्यामि	घूमता रहूँगा ॥३७॥
विकर्षन्	खींचते हुए		

मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ।
वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥३८॥

मदीयं महिमानं च परं ब्रह्म इति शब्दितं वेत्स्यसि अनुगृहीतं मे संप्रश्नैः विवृतं हृदि ॥३८॥

संप्रश्नैः	प्रश्नोंके द्वारा	इति	इस
मे	मेरे	शब्दितं	शब्दसे कही जाने-
अनुगृहीतं	अनुग्रह करके (उत्तर देनेसे)		वाली
हृदि विवृतं	हृदयमें अपरोक्ष हुए	मदीयं	मेरी
परं ब्रह्म	परम ब्रह्म	महिमानं	महिमाको
		वेत्स्यसि	जानोगे ॥३८॥

इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत ।
सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥३९॥

इत्थं आदिश्य राजानं हरिः अन्तः अधीयत सः अन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥३९॥

इत्थं	इस प्रकार	**कालं**	समयकी
राजानं	राजा सत्यव्रतको	**अन्ववैक्षत**	प्रतीक्षा करने लगे
आदिश्य	आदेश देकर	**यं**	जिसे भगवान्
हरिः	श्रीहरि	**हृषीकेश**	हृषीकेशने
अन्तः अधीयत	अन्तर्धान हो गये	**आदिशत्**	सूचित किया था
सः तं	वे राजा उस		॥३९॥

आस्तीर्य दर्भान् प्राक्कूलान् राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ।
निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन् मत्स्यरूपिणः ॥४०॥

आस्तीर्य दर्भान् प्राक् कूलान् राजर्षिः प्राक् उदङ्मुखः निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन् मत्स्यरूपिणः ॥४०॥

प्राक्	पूर्वकी ओर	**पादौ**	स्वरूपका*
कूलान्	नोंक करके	**चिन्तयन्**	चिन्तन करते हुए
दर्भान्	कुशोंको	**राजर्षिः**	राजर्षि सत्यव्रत
आस्तीर्य	बिछाकर	**प्राक् उदङ्**	पूर्वोत्तर (ईशान)
मत्स्यरूपिणः	मत्स्य रूपधारी	**मुखः**	मुख
हरेः	श्रीहरिके	**निषसाद**	बैठ गये ॥४०॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीम् ।
वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥४१॥

ततः समुद्रः उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीं वर्धमानः महामेघैः वर्षद्भिः समदृश्यत ॥४१॥

ततः महामेघैः	तब महामेघोंके	**वर्धमानः**	बढ़ता हुआ
वर्षद् भिः	वर्षा करनेसे	**उद्वेलः**	किनारा छोड़कर

---

* क्योंकि मत्स्य भगवान्‌के चरण नहीं हैं 'पादौ' का अर्थ स्वरूप होना चाहिए ।

सर्वतः	सब ओरसे	समदृश्यत	दिखलायी पड़ा
महीं	पृथ्वीको		॥४१॥
प्लावयन्	डुबाता		

ध्यायन् भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् ।
तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥४२॥

ध्यायन् भगवत आदेशं ददृशे नावं आगतां तां आरुरोह विप्रेन्दैः आदाय औषधि वीरुधः ॥४२॥

भगवत आदेशं	भगवान्‌के आदेशको	तां विप्रेन्द्रैः	उसमें सप्तर्षियोंके
ध्यायन्	स्मरण कर ही रहे		साथ
	थे कि	औषधि	औषधियां
नावं आगतां	नौका आयी हुई	वीरुधः	और पौधे (बीज)
ददृशे	देखा	आदाय	लेकर
		आरुरोह	चढ़ गये ॥४२॥

तमूचुर्मनयः प्रीता राजन् ध्यायस्व केशवम् ।
स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति ॥४३॥

तं ऊचुः मुनयः प्रीता राजन् ध्यायस्व केशवं स वै नः संकटात् अस्मात् अविता शं विधास्यति ॥४३॥

प्रीता	प्रसन्न होकर	सः	सबकी
मुनयः	मुनियोंने (सप्तर्षि)	अस्मात्	इस
तं ऊचुः	उनसे कहा	संकटात्	संकटसे
राजन्	राजन् !	अविता	रक्षा करेंगे और
केशवं	भगवान् केशवका	शं विधास्यति	कल्याण करेंगे
ध्यायस्व	ध्यान करो		॥४३॥
वै नः	निश्चय वे हम		

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ।
एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥४४॥

सः अनुध्यातः ततः राज्ञा प्रादुः आसीत् महार्णवे एकशृङ्गधरः मत्स्यः हैमः नियुत योजनः ॥४४॥

ततः राज्ञा	तब राजा द्वारा	मत्स्यः	मत्स्य
अनुध्यातः	ध्यान करनेपर	महार्णवे	(उस प्रलय) महा-सागरमें
सः हैमः	वह स्वर्णिम	प्रादुः आसीत्	प्रकट हो गया ॥४४॥
नियुत	एक लाख		
योजनः	योजनवाला		
एकशृङ्गधरः	एक सींगधारी		

निबध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा ।
वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥४५॥

निबध्य नावं तत् शृङ्गे यथा उक्तः हरिणा पुरा वरत्रेण अहिना तुष्टः तुष्टाव मधुसूदनम् ॥४५॥

यथा पुरा	जैसा पहिले	नावं निबध्य	नौकाको बाँधकर
हरिणा उक्तः	श्रीहरिने कथा था	तुष्टः	सन्तुष्ट चित्तसे
अहिना	(वासुकि) नाग रूपी	मधुसूदनं	भगवान् मधुसूदनकी
वरत्रेण	रस्सीसे	तुष्टाव	स्तुति करने लगे ॥४५॥
तत्	उस (मत्स्य) के		
शृङ्गे	सींगमें		

सत्यव्रत उवाच—*

अनाद्यविद्योपहतात्मसंविद-
स्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ।
यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयु-
र्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥४६॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है।

अनादि अविद्या अपहृत आत्म संविदः तत् मूल संसार परिश्रम आतुराः यदृच्छया इह उपसृता यं आप्नुयुः विमुक्तिदः नः परमः गुरुः भवान् ॥४६॥

अनादि	अनादि	यदृच्छया	संयोगवश
अविद्या	अविद्या द्वारा	इह	इस
आत्म संविदः	आत्मज्ञान (जिनका)	उपसृता	मनुष्य-योनिमें आकर
अपहृत	आच्छादित हो गया है	यं विमुक्तिदः	जिनको मोक्षदाता
तत् मूल	उस (अविद्या) मूलक	आप्नुयुः	पाते हैं
संसार परिश्रम	संसार-श्रमसे	भवान् नः	(वे) आप हमारे
आतुराः	व्याकुल लोग	परमः गुरुः	परम गुरु हैं ॥४६॥

जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः
सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ।
यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं
ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥४७॥

जनः अबुधः अयं निजकर्म बन्धनः सुख इच्छया कर्म समीहते असुखं यत् सेवया तां विधुनोति असत् मतिं ग्रन्थि स भिन्द्यात् हृदयं स नः गुरुः ॥४७॥

निजकर्म	अपने कर्मोंके	यत् सेवया	जिनकी सेवासे
बन्धनः	बन्धनमें पड़ा	तां असत् मतिं	उस दुर्बुद्धिको
अयं	यह	विधुनोति	नष्ट करता है
अबुधः जनः	अज्ञानी मनुष्य	स नः गुरुः	वे हमारे गुरु आप
सुख	सुख पानेकी	स	उस (अविद्या रूप)
इच्छया	इच्छासे	हृदयं ग्रन्थि	हृदय ग्रन्थिका
असुखं कर्म	दुःख रूप कर्म	भिन्द्यात्	छेदन करें ॥४७॥
समीहते	करता रहता है,		

यत्सेवयाग्नेरिव रुद्ररोदनं
पुमान् विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ।
भजेत वर्ण निजमेष सोऽव्ययो
भूयात् स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥४८॥

यत् सेवया अग्नेः इव रुद्ररोदनं पुमान् विजह्यात् मलं आत्मनः तमः भजेत वर्ण निजं एष सः अव्ययः भूयात् स ईशः परमः गुरोः गुरुः ॥४८॥

अग्नेः	अग्निके द्वारा	**निजं वर्ण**	अपने स्वरूपको
रुद्ररोदनं	सोने-चाँदीके	**भजेत्**	पा लेता
मलं इव	मलकी भांति	**एष सः अव्ययः**	ये वही अविनाशी
आत्मनः तमः	अपने अज्ञानको	**परमः गुरो**	परम गुरु
पुमान्	पुरुष	**स ईशः**	वही सर्वेश
यत् सेवया	जिनकी सेवासे	**गुरुः**	हमारे गुरु
विजह्यात्	त्याग देता है और	**भूयात्**	होवें ॥४८॥

न यत्प्रसादायुतभागलेश-
मन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंस-
स्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४९॥

न यत् प्रसाद अयुत भाग लेशं अन्ये च देवा गुरवः जनाः स्वयं कर्तुं: समेताः प्रभवन्ति पुंसः तं ईश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४९॥

देवा	देवता,	**पुंसः स्वयं**	पुरुषपर स्वयं
गुरवः	गुरु लोग,	**प्रभवन्ति**	(कृपा करनेमें) सम
च अन्ये जनाः	तथा दूसरे लोग	**न**	नहीं हैं
समेताः	सब मिल कर भी	**तं त्वां**	उस आप
यत् प्रसाद	जिनकी कृपाके	**ईश्वरं**	सर्वेश्वरकी
अयुत	दस हजारवें	**शरणं प्रपद्ये**	शरणापन्न हूँ ॥४९॥
भाग लेशं	भागके लेश बराबर भी		

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृत-
स्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो
वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥५०॥

अचक्षुः अन्धस्य यथा अग्रणीः कृतः तथा जनस्य अविदुषः अबुधः गुरुः त्वं अर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणः वृतः गुरुः नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥५०॥

यथा अचक्षुः	जैसे नेत्रहीन व्यक्ति	अर्कदृक्	सूर्यके समान
अन्धस्य	अन्धेको	सर्वदृशां	सबकी दृष्टियोंको
अग्रणी	आगे चलनेवाला		भी
कृतः	बना लें,	समीक्षणः	सम्पूर्ण रूपसे देखने-
तथा	उसी प्रकार		वाले हैं
अविदुषः	अज्ञानीका	स्वगतिं	अतः अपने स्वरूपको
अबुधः	अज्ञानी	बुभुत्सतां	जाननेके इच्छुक
गुरुः	गुरु बना लेना है,	नः	हमने (आपको)
त्वं	आप	गुरुः वृतः	गुरु बनाया है ॥५०॥

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं
यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा
प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥५१॥

जनः जनस्य आदिशते असतीं मतिं यया प्रपद्यते दुरत्ययं तमः त्वं तु अव्ययं ज्ञानं अमोघं अञ्जसा प्रपद्यते येन जनः निजं पदम् ॥५१॥

जनः	लोग तो	असतीं	(अर्थ-कामादि
जनस्य	दूसरे लोगोंको		विषयक्) असत्
		मतिं	बुद्धिका

आदिशते	उपदेश करते हैं,	ज्ञानं	ज्ञानका (उपदेश करते हैं)
यया दुरत्ययं	जिससे दुष्पार		
तमः	अन्धकार (संसार) में	येन जनः	जिससे पुरुष
		अञ्जसा	सरलतापूर्वक
प्रपद्यते	वह जाता है,	निजं पदं	अपने स्वरूपको
तु त्वं	किन्तु आप	प्रपद्यते	प्राप्त कर लेता है
अव्ययं अमोघं	अक्षय अमोघ		॥५१॥

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो
ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ।
तथापि लोको न भवन्तमन्धधी-
र्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥५२॥

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रिय ईश्वरः हि आत्मा गुरुः ज्ञानं अभीष्ट सिद्धिः तथा अपि लोकः न भवन्तं अन्धधीः जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥५२॥

सर्वलोकस्य	सम्पूर्ण लोकोंके	अन्धधीः लोकः	अन्ध बुद्धि लोग
त्वं सुहृत्	आप सुहृद,	बद्धकामः	कामनाओंसे बँधे हुए
प्रिय ईश्वरः	प्रिय स्वामी हैं		
हि	क्योंकि (सबके)	हृदि	अपने हृदयमें
आत्मा	आत्मा,	सन्तं	विराजमान
गुरुः ज्ञानं	गुरु, ज्ञान तथा	भवन्तं न	आपको नहीं
अभीष्ट सिद्धिः	इच्छित फलरूप हैं,	जानाति	जानते ॥५२॥
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी		

तं त्वामहं देववरं वरेण्यं
प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ।
छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन् वचोभि-
र्ग्रन्थीन् हृदय्यान् विवृणु स्वमोकः ॥५३॥

तं त्वां अहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय छिन्धि अर्थ दीपैः भगवन् वचः भिः ग्रन्थीन् हृदय्यान् विवृणु स्वं ओकः ॥५३॥

प्रतिबोधनाय	तत्त्वज्ञान पानेके लिए	वचः भिः	अपने वचनोंसे
तं त्वां देववरं	उस आप देवश्रेष्ठ	हृदय्यान्	हृदयकी
वरेण्यं ईशं	पूजनीय परमेश्वर-की	ग्रन्थीन् छिन्धि	गाठोंको काट दीजिए
अहं प्रपद्य	मैं शरण आया हूँ,	स्वं ओकः	अपने धाम (स्वरूप) को
भगवन्	भगवन् !	विवृणु	प्रकाशित कीजिए
अर्थ	परमार्थको		॥५३॥
दीपैः	प्रकाशित करनेवाले		

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः ।
मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥५४॥

इति उक्तवन्तं नृपतिं भगवान् आदिपूरुषः मत्स्यरूपी महा अम्भोधौ विहरन् तत्त्वं अब्रवीत् ॥५४॥

इति	इस प्रकार	महा अम्भोधौ	(प्रलय) महासागरमें
उक्तवन्तं	कहनेपर	मत्स्यरूपी	मत्स्यरूपसे
नृपतिं	राजा (सत्यव्रत) से	विहरन्	विचरण करते हुए
आदिपूरुषः	आदिपुरुष	तत्त्वं अब्रवीत्	तत्त्वोपदेश किया
भगवान्	भगवान्ने		॥५४॥

पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् ।
सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥५५॥

पुराण संहितां दिव्यां सांख्य योग क्रियावतीं सत्यव्रतस्य राजर्षेः आत्म गुह्यं अशेषतः ॥५५॥

सांख्य योग	सांख्य, योग,	सत्यव्रतस्य	सत्यव्रतको
क्रियावतीं	क्रियावाली	दिव्यां	दिव्या
अशेषतः	सम्पूर्ण रूपसे	पुराण	(मत्स्य) पुराण
आत्म गुह्यं	आत्म रहस्य युक्त	संहितां	संहिता (सुनायी)
राजर्षेः	राजर्षि		॥५५॥

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ।
नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥५६॥

अश्रौषीत् ऋषिभिः साकं आत्मतत्त्वं असंशयं नाव्या आसीनः भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥५६॥

ऋषिभिः साकं	ऋषियोंके साथ	सनातनं	सनातन (नित्य)
नाव्या आसीनः	नौकामें बैठे हुए	ब्रह्म	ब्रह्मतत्त्व
भगवता प्रोक्तं	भगवान्‌के द्वारा कहा	असंशयं	सन्देहहीन होकर
		अश्रौषीत्	श्रवण किया ॥५६॥
आत्मतत्त्वं	आत्मतत्त्व		

अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे ।
हत्वासुरं हयग्रीवं वेदान् प्रत्याहरद्धरिः ॥५७॥

अतीत प्रलय अपाय उत्थिताय वेधसे हत्वा असुरं हयग्रीवं वेदान् प्रत्यर्पयत् हरिः ॥५७॥

अतीत प्रलय	अतीत प्रलयका	हत्वा	मारकर
अपाय	अन्त होनेपर	स हरिः	उन श्रीहरिने
उत्थिताय	उठे हुए	वेदान्	वेद
वेधसे	ब्रह्माको	प्रत्यर्पयत्	लौटा दिए ॥५७॥
असुरं हयग्रीवं	असुर हयग्रीवको		

स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ।
विष्णोः प्रसादात् कल्पेऽस्मिन्नासीद् वैवस्वतो मनुः ॥५८॥

स तु सत्यव्रतः राजा ज्ञान विज्ञान संयुतः विष्णोः प्रसादात् कल्पे अस्मिन् आसीत् वैवस्वतः मनुः ॥५८॥

ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञानसे	**प्रसादात्**	कृपासे
संयुतः	सम्पन्न	**अस्मिन् कल्पे**	इस कल्पमें
स राजा	वे राजा	**वैवस्वतः मनुः**	वैवस्वत मनु
सत्यव्रतः तु	सत्यव्रत तो	**आसीत्**	हुए ॥५८॥
विष्णोः	भगवान् विष्णुकी		

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ।
संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥५९॥

सत्यव्रतस्य राजर्षेः माया मत्स्यस्य शार्ङ्गिणः संवादं महत् आख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥५९॥

राजर्षेः	राजर्षि	**संवादं**	संवाद रूप (यह)
सत्यव्रतस्य	सत्यव्रतका और	**महत् आख्यानं**	महान् आख्यान्
माया मत्स्यस्य	मायासे मत्स्य बने	**श्रुत्वा**	सुनकर (मनुष्य)
शार्ङ्गिणः	भगवान् शार्ङ्ग-गधन्वाका	**किल्बिषात्**	पापोंसे
		मुच्येत	छूट जाता है ॥५९॥

अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ।
सङ्कल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥६०॥

अवतारः हरेः यः अयं कीर्तयेत् अनु अहं नरः सङ्कल्पाः तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥६०॥

यः नरः	जो पुरुष	**तस्य सङ्कल्पाः**	उसके संकल्प
अयं हरेः	इस श्रीहरिके	**सिध्यन्ति**	पूर्ण होते हैं और
अवतारः	अवतारका	**स परमां गतिं**	वह परमगति
अनु अहं	प्रत्येक दिन	**याति**	जाता है ॥६०॥
कीर्तयेत्	कीर्तन करता है		

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥६१॥

प्रलय पयसि धातुः सुप्तशक्तेः मुखेभ्यः श्रुतिगणं अपनीतं प्रति उपादत्त हत्वा दितिजं अकथयत् यः ब्रह्म सत्यव्रतानां तं अहं अखिल हेतुं जिह्ममीनं नतः अस्मि ॥६१॥

प्रलय पयसि	प्रलय समुद्रमें
सुप्तशक्तेः	अपनी शक्तियों सहित सोये
धातुः मुखेभ्यः	ब्रह्माके मुखसे (निकले)
श्रुतिगणं	वेदोंको
अपनीतं	चुराकर ले गये
दितिजं	दैत्य हयग्रीवको
हत्वा	मारकर
प्रति उपादत्त	फिर लौटा दिया तथा
सत्यव्रतानां	सत्यव्रत आदिको
यः ब्रह्म	जिन्होंने ब्रह्म-ज्ञानका
अकथयत्	उपदेश किया
तं अखिल हेतुं	उन निखिल जगत् कारण
जिह्ममीनं	माया मत्स्यको
अहं नतः अस्मि	मैं प्रणाम करता हूँ ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

॥ अष्टमस्कन्ध समाप्त ॥